ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

चतुर्थो ग्रन्थः

(स्पर्शनानुगम-कालानुगमनामानुयोगद्वारद्वयसमन्वितः)

सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितः

(गणिनी ज्ञानमती विरचिता)

अथ स्पर्शनानुगमः

मंगलाचरण

शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा, कर्मेन्धनानि संयताः।
सिद्धिं प्रापुर्नमस्तेभ्यः, शुक्लध्यानस्य सिद्धये।।१।।
अष्टोत्तरसहस्राणि, जिनबिम्बानि भान्त्विह।
यानि स्थास्यन्ति पद्मस्य, दलेषु नवमन्दिरे।।२।।

अथ स्पर्शनानुगम प्रारम्भ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — शुक्लध्यान की अग्नि के द्वारा जिन संयतों ने कर्मरूपी ईंधन को जलाकर भस्म कर दिया है, उन सभी संयतों को शुक्लध्यान की सिद्धि के लिए मेरा नमस्कार है ।।१।।

यहाँ एक हजार आठ जिनप्रतिमाएँ शोभायमान होती रहें जो कि नूतन मंदिर के कमल पत्रों पर विराजमान होंगी।।२।।

पादपद्मरज:स्पर्शात्, कर्मरेणुर्विधूयते।
येषां तेषां नुमः पाद-पद्मानि भक्तितो वयम्।।३।।

मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे वर्तमाने द्विद्विपंचद्व्यंके वीरनिर्वाणसंवत्सरे ज्येष्ठशुक्लाषष्ठ्यां अष्टोत्तरसहस्र-जिनप्रतिमानां पंचकल्याणकप्रतिष्ठा संजाता। अग्रे आश्विनशुक्लात्रयोदश्यां यासां विराजमानकरणार्थमधुना गोलाकारमन्दिरस्याभ्यन्तरे अष्टोत्तरशतदलसहितस्य अभूतपूर्वकमलस्य च निर्माणं द्रुतगत्या भवदस्ति। ताः इह विभासमानाः जिनप्रतिमाः सदा स्थेयासुः जगति मंगलं च कुर्वन्तु।

तत्र षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे चतुर्थस्पर्शनानुगम-नामानुयोगद्वारं ग्रन्थः प्रारभ्यते।

जिन प्रतिमाओं के चरणकमलों की धूलि के स्पर्श मात्र से कर्मरूपी धूलि नष्ट हो जाती है, उनके चरण कमलों को हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।३।।

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में वर्तमान में वीर निर्वाण संवत् २५२२ में ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी के दिन एक हजार आठ प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है। आगे आश्विन शुक्ला त्रयोदशी के दिन इन्हें जिस मंदिर में विराजमान करना है उस गोलाकार कमलमंदिर का तथा उसके अंदर एक सौ आठ दल वाले अभूतपूर्व कमल का निर्माण द्रुतगति से चल रहा है। ये सभी प्रतिमाएँ जिनमंदिर में विराजमान होकर सदैव जगत का मंगल करें, यही मंगल कामना है।

भावार्थ — षट्खण्डागम की इस चतुर्थ पुस्तक के लेखन में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र का स्मरण किया है, क्योंकि उस समय वे हस्तिनापुर से इसी पंचकल्याणक के निमित्त अपने संघ सहित मांगीतुंगी गई थीं। उस पंचकल्याणक के पश्चात् आसपास मालेगांव आदि नगरों में विहार के अनन्तर पुनः मांगीतुंगी में ही संघ का वर्षायोग स्थापना हुआ। वर्षायोग के मध्य पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से वहाँ तीर्थ परिसर में सहस्रकूट कमलमंदिर का निर्माण हुआ, पुनः आश्विन शुक्ला त्रयोदशी के दिन उस कमलमंदिर में निर्मित एक सौ आठ दल की कमल वेदियों पर एक हजार आठ प्रतिमाएँ विराजमान हुईं।

वर्तमान में वह सुन्दर कमल मंदिर भव्यात्माओं के पुण्य की अभिवृद्धि करता हुआ तीर्थयात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। ये जिनमंदिर और जिनप्रतिमाएँ अनादि जैनसंस्कृति को जीवन्त रखते हुए हम सबके कल्याण का माध्यम बनें, यही मंगल भावना भाई गई है।

श्रीमान् भगवन् धरसेनाचार्य के मुखकमल से विनिर्गत उनके शिष्य श्री पुष्पदंत और भूतबली आचार्य द्वारा लिखित षट्खंडागम ग्रंथ के जीवस्थान नाम के प्रथम खंड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम और कालानुगम नाम के दो अनुयोगद्वार कहे जा रहे हैं क्योंकि सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नाम के आठ अनुयोगद्वार बताये गये हैं। उनमें से प्रथम खंड में सत्प्ररूपणा का वर्णन है। द्वितीय ग्रंथ में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत आलाप कहे गये हैं। तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम इन दो अनुयोगद्वारों का प्ररूपण है।

इस चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम और कालानुगम इन दो अनुयोगद्वारों का वर्णन कर रहे हैं। इस चतुर्थ ग्रंथ में चार महाधिकार हैं। स्पर्शनानुयोगद्वार में दो महाधिकार वर्णित हैं, पुनः कालानुयोगद्वार में भी दो महाधिकार कहेंगे।

अब इस षट्खंडागम ग्रंथराज के प्रथम खंड की चतुर्थ पुस्तक में चौथा स्पर्शनानुगम नाम का

तत्र तावद् द्वौ महाधिकारौ स्तः। तस्मिन् महाधिकारे प्रथमे दशसूत्राणि। द्वितीये महाधिकारे पंचसप्तत्यधिक-शतसूत्राणि सन्ति। एषु द्वितीयमहाधिकारेषु चतुर्दशाधिकाराः वर्तन्ते। तत्रापि प्रथमाधिकारे गतिमार्गणायां षट्चत्वारिंशत् सूत्राणि। द्वितीयाधिकारे इंद्रियमार्गणायां नवसूत्राणि। तृतीयाधिकारे कायमार्गणायां अष्टसूत्राणि। चतुर्थे योगाधिकारे अष्टाविंशतिसूत्राणि। पंचमे वेदमार्गणायां अष्टादश सूत्राणि। षष्ठेऽधिकारे कषायमार्गणायां त्रीणि सूत्राणि। सप्तमे ज्ञानमार्गणायां नव सूत्राणि। अष्टमाधिकारे संयममार्गणायां अष्टौ सूत्राणि। दर्शनाधिकारे नवमे षट् सूत्राणि। दशमे लेश्याधिकारे एकोनविंशतिसूत्राणि। एकादशे भव्यमार्गणायां द्वे सूत्रे। द्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणायां दश सूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञिमार्गणायां चत्वारि सूत्राणि। चतुर्दशेऽधिकारे आहारमार्गणायां पंच सूत्राणि। इति पंचाशीत्यधिकशतसूत्रैरयं स्पर्शनानुगमो ग्रंथः।

तस्मिन्नपि प्रथममहाधिकारे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहितं व्याख्यानं क्रियते। तत्र सप्तान्तरस्थलानि सन्ति। तस्मिन् प्रथमस्थले गुणस्थानमार्गणयोः स्पर्शनकथनार्थं ''फोसणाणुगमेण'' इत्यादिना प्रतिज्ञारूपेण एकं सूत्रं वक्ष्यते। ततः परं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''ओघेण मिच्छा'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु तृतीयस्थले सासादनजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शनप्ररूपणत्वेन ''सम्मामिच्छाइट्ठि'' इत्यादि सूत्रद्वयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले संयतासंयतानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''संजदासंजदेहि'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनः षष्ठस्थले प्रमत्तसंयतादि-अयोगिकेवलिपर्यंतानां स्पर्शनप्ररूपणत्वेन ''पमत्तसंजद'' इत्यादिसूत्रमेकं।

अनुयोगद्वार प्रारंभ हो रहा है। इसमें मुख्यरूप से दो महाधिकार हैं। उनमें से प्रथम महाधिकार में दश सूत्र हैं। द्वितीय महाधिकार में एक सौ पचहत्तर सूत्र हैं। इस द्वितीय महाधिकार में चौदह अधिकार हैं। उसमें भी प्रथम गतिमार्गणा में छियालीस सूत्र हैं। द्वितीय अधिकार में इन्द्रियमार्गणाा में नौ सूत्र हैं। तृतीय कायमार्गणा अधिकार में आठ सूत्र हैं। चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में अट्ठाईस सूत्र हैं। पंचम वेदमार्गणा अधिकार में अट्ठारह सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं। सप्तम ज्ञानमार्गणा अधिकार में नौ सूत्र हैं। आठवें संयममार्गणा अधिकार में आठ सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में छह सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में उन्नीस सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में दश सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में पाँच सूत्र हैं।

इस प्रकार एक सौ पिच्चासी (१८५) सूत्रों के द्वारा यह स्पर्शनानुगम ग्रंथ कहा जा रहा है।

उसमें भी प्रथम महाधिकार में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका सहित व्याख्यान किया जा रहा है। उसमें सात अन्तर्स्थल हैं। उसमें से प्रथम स्थल में गुणस्थान और मार्गणाओं में स्पर्शन का कथन करने हेतु ''फोसणाणुगमेण'' इत्यादि प्रतिज्ञारूप से एक सूत्र कहेंगे। उसके आगे द्वितीयस्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु ''ओघेण मिच्छा'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु ''सासण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन प्ररूपण करने वाले '' सम्मामिच्छाइट्ठि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में संयतासंयत जीवों का स्पर्शन कहने हेतु ''संजदासंजदेहि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त सभी मुनियों एवं भगवन्तों का स्पर्शन बताने हेतु ''पमत्तसंजद'' इत्यादि एक सूत्र है। उससे आगे सातवें स्थल में सयोगकेवली अरिहंतों का

ततः परं सप्तमस्थले सयोगिकेवलिनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''सजोगिकेवलीहि'' इत्यादिना सूत्रमेकं इति समुदायपातनिका भवति।

अधुना स्पर्शनानुगमप्रतिज्ञापनार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण—

फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्पर्शनानुगमेन जीवानां स्पर्शनकथनापेक्षया द्विविधः निर्देशः वर्तते। ओघेण—गुणस्थानापेक्षया, आदेसेण य—आदेशेन—मार्गणापेक्षया च। स्पर्शनस्य षड्विधा निक्षेपाः सन्ति—नामस्पर्शनं, स्थापनास्पर्शनं, द्रव्यस्पर्शनं, क्षेत्रस्पर्शनं, कालस्पर्शनं, भावस्पर्शनं चेति। तत्र स्पर्शनशब्दः नाम स्पर्शनं निक्षेपः, अयं द्रव्यार्थिकनयस्य विषयः। सोऽयं इति बुद्ध्या अन्यद्रव्येण सह अन्यद्रव्यस्य एकत्वकरणं स्थापनास्पर्शनं यथा पाषाणप्रतिमादिषु अयं ऋषभोऽजितः संभवोऽभिनंदनः इति। एषोऽपि द्रव्यार्थिकनयस्य विषयः। द्रव्यस्पर्शननिक्षेपो द्विविधः—आगमनोआगमभेदात्। स्पर्शनविषयकशास्त्रज्ञायकः किन्तु वर्तमानकालेऽनुपयुक्तः क्षयोपशमसहितश्च जीवः आगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेपोऽस्ति। नोआगमद्रव्यस्पर्शन-निक्षेपस्त्रिविधः—ज्ञायकशरीर-भव्य-तद्व्यतिरिक्तभेदात्। तत्र ज्ञायकशरीरमपि त्रिविधं भाविवर्तमानत्यक्त-भेदात्। स्पर्शनप्राभृतसाहचर्यात् उक्तं त्रिविधशरीरमपि स्पर्शनसंज्ञां लभते।**

भविष्यत्काले स्पर्शनविषयशास्त्रज्ञायकः भव्यद्रव्यस्पर्शनं भवति।

तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यस्पर्शनं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिविधं भवति। सचित्तद्रव्याणां संयोगः

स्पर्शन कहने हेतु ''सजोगिकेवलीहि'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब स्पर्शनानुगम को प्रतिज्ञापित करने के लिए श्रीभूतबली आचार्यप्रवर सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ—

स्पर्शनानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।।१।।

हिन्दी टीका—स्पर्शनानुगम के द्वारा जीवों का स्पर्शन कथन की अपेक्षा दो प्रकार का निर्देश होता है। ओघेन-गुणस्थान की अपेक्षा और आदेसेण—मार्गणा की अपेक्षा। अर्थात् इन दोनों की अपेक्षा स्पर्शनानुगम का वर्णन करेंगे।

स्पर्शन का निक्षेप छह प्रकार का है—नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, कालस्पर्शन और भावस्पर्शन। उनमें ''स्पर्शन'' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है, यह निक्षेप द्रव्यार्थिकनय का विषय है। ''यह वही है'' इस प्रकार की बुद्धि से अन्य द्रव्य के साथ अन्य द्रव्य का एकत्व स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। जैसे—पाषाण प्रतिमा आदिक में 'यह ऋषभ हैं, यह अजित हैं, यह संभव हैं, यह अभिनंदन हैं, इत्यादि। यह स्थापना निक्षेप भी द्रव्यार्थिकनय का विषय है। आगम और नोआगम के भेद से द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकार का है। उनमें स्पर्शनविषयक शास्त्र का ज्ञायक, किन्तु वर्तमान में अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप है। नोआगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप ज्ञायक शरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यस्पर्शन के भेद से तीन प्रकार का है। उसमें ज्ञायकशरीर भी तीन प्रकार का है-भावी, वर्तमान और त्यक्त। स्पर्शनप्राभृत के साहचर्य से उक्त तीन प्रकार के शरीर को भी स्पर्शन संज्ञा प्राप्त हो जाती है। भविष्यकाल में स्पर्शनविषयक शास्त्र का ज्ञायक भव्य द्रव्यस्पर्शन है।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यस्पर्शन सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। जो सचित्त द्रव्यों का

सचित्तद्रव्यस्पर्शनं, अचित्तद्रव्याणां अन्योन्येन संयोगः अचित्तद्रव्यस्पर्शनं, चेतनाचेतनस्वरूपषड्द्रव्याणां संयोगेन मिश्रद्रव्यस्पर्शनं इदं एकोनषष्टिभेदरूपं। अत्र षड्द्रव्याणां संयोगेन भंगानां संख्या उच्यते— षड्द्रव्यसंयोगेन द्विसंयोगिनो भंगाः पंचदश, त्रिसंयोगिनः भंगाः विंशतिः, चतुःसंयोगिनो भंगाः पंचदश, पंचसंयोगिनः षट्, षट्संयोगी एकश्चेति एतेषु सप्तपंचाशत्भंगेषु जीवद्रव्येण सह जीवद्रव्यस्य, पुद्गलद्रव्येण सह पुद्गलद्रव्यस्य भंगौ मेलयित्वा इमे एकोनषष्टिभंगाः भवन्ति।

एवं द्रव्यस्पर्शनं कथितं भवति।

शेषद्रव्याणां आकाशेन सह संयोगः क्षेत्रस्पर्शनम्।

अमूर्तेनाकाशेन सह शेषद्रव्याणां मूर्ताणाममूर्ताणां वा कथं स्पर्शः?

नैष दोषः, अवगाह्य—अवगाहकभावस्यैव उपचारेण स्पर्शव्यपदेशात्। अथवा सत्त्वप्रमेयत्वादिना मूर्तद्रव्येण सह अमूर्तद्रव्याणां परस्परं समानत्वात् स्पर्शव्यपदेशो घटते।

कालद्रव्यस्य अन्यद्रव्यैः सह यः संयोगः स कालस्पर्शनं। अत्र अमूर्तेन कालद्रव्येण यद्यपि शेषद्रव्याणां स्पर्शो नास्ति, तथापि परिणाम्यमानानि शेषद्रव्याणि परिणामत्वेन कालेन स्पर्शितानि इति उपचारेण कालस्पर्शनं कथ्यते।

भावस्पर्शनं द्विविधं—आगम-नोआगमभेदेन। स्पर्शनप्राभृतज्ञायकः उपयुक्तश्च आगमभावस्पर्शनं। स्पर्शगुणपरिणतपुद्गलद्रव्यं नोआगमभावस्पर्शनम्।

एतेषु षड्विधेषु स्पर्शनेषु अत्र जीवक्षेत्रस्पर्शनेन प्रयोजनम्। अस्पर्शि स्पृश्यते इति स्पर्शनम्-अस्यायमर्थः।

संयोग होता है, वह सचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है। अचित्त द्रव्यों का जो परस्पर में संयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है। मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतन-अचेतनस्वरूप छहों द्रव्यों के संयोग से उनसठ भेद वाला है।

यहाँ छहों द्रव्यों के संयोग से भंगों की संख्या कहते हैं—

छह द्रव्यों के संयोग से द्विसंयोगी भंग पंद्रह (१५) होते हैं, त्रिसंयोगी भंग बीस (२०) हैं, चतुःसंयोगी भंग पंद्रह (१५) हैं, पंचसंयोगी भंग छह (६) हैं, षट्संयोगी भंग एक (१) है।

इन सत्तावन भंगों में दो भंग (एक जीव का एक जीव के साथ, पुद्गल का पुद्गल के साथ) मिलाने पर ये कुल उनसठ (५९) भंग होते हैं। इस प्रकार द्रव्यस्पर्शन का कथन हुआ है।

शेष द्रव्यों का आकाश के साथ संयोग क्षेत्रस्पर्शन कहलाता है।

शंका—अमूर्त आकाश के साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्यों का स्पर्श कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवगाह्य—अवगाहक भाव की ही उपचार से स्पर्श संज्ञा है अथवा सत्त्व, प्रमेयत्व आदि के द्वारा मूर्त द्रव्य के साथ अमूर्त द्रव्यों की परस्पर समानता होने से भी स्पर्श का व्यवहार बन जाता है।

कालद्रव्य का अन्य द्रव्यों के साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है। यहां यद्यपि अमूर्त कालद्रव्य के साथ शेष द्रव्यों का स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्व की अपेक्षा काल से स्पर्शित हैं, इस प्रकार के उपचार से कालस्पर्शन कहा जाता है।

भावस्पर्शन आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। स्पर्शनविषयक शास्त्र के ज्ञायक और वर्तमान में उसमें उपयुक्त जीव को आगमभावस्पर्शन कहते हैं। स्पर्शगुण से परिणत पुद्गल द्रव्य को नोआगमभाव स्पर्शन कहते हैं।

इन उक्त छह प्रकार के स्पर्शनों में से यहाँ पर जीवद्रव्यसम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शन से प्रयोजन है। जो स्पर्शित

यद्भूतकाले अस्पर्शि, वर्तमानकाले च स्पृश्यते तत्स्पर्शनम्। स्पर्शनस्य अनुगमः स्पर्शनानुगमः तेन स्पर्शनानुगमेन। निर्देशः कथनं व्याख्यानमिति एकार्थः। सः द्विविधः, यथा प्रकृतिः। ओघेन पिंडेन अभेदनेति एकार्थः। आदेशेन भेदेन विशेषेणेति समानार्थः। एवं ओघादेशाभ्यां द्विविधो निर्देशः भवति, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयौ अनालम्ब्य कथनोपायाभावात्।

यदि एवं तर्हि प्रमाणवाक्यस्य अभावो प्रसज्यते इति चेत्?

भवतु नाम अभावः, गौणप्रधानभावमन्तरेण कथनोपायाभावात्। अथवा प्रमाणेनोत्पादितं वचनं प्रमाणवाक्यमुपचारेण उच्यते[१]।

एवं प्रथमस्थले प्रतिज्ञा कथनत्वेन एकं सूत्रं गतं।

अधुना मिथ्यादृष्टिस्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**'यथा उद्देश्यः तथा निर्देशः' इति न्यायात् तावद् ओघेन भणामि इति 'ओघेण' वचनं। शेषगुणस्थान-प्रतिषेधार्थं 'मिच्छादिट्ठीहिं' इति वचनं। 'केवडियं खेत्तं फोसिदं' इति पृच्छासूत्रं शास्त्रस्य प्रमाणत्वप्रतिपादनफलं।**

क्षेत्रानुयोगद्वारे सर्वमार्गणास्थानानि आश्रित्य सर्वगुणस्थानां वर्तमानकालविशिष्टं क्षेत्रं प्रतिपादितं,

---

हुआ और जिसका स्पर्श किया जाता है वह स्पर्शन है इसका यह अर्थ है जो भूतकाल में स्पर्श किया गया और वर्तमान में स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है। स्पर्शन के अनुगम को स्पर्शनानुगम कहते हैं, उससे अर्थात् स्पर्शनानुगम से। निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों एकार्थक नाम हैं। वह निर्देश प्रकृति के निर्देश के समान दो प्रकार का होता है। ओघ, पिण्ड और अभेद ये सब एकार्थक नाम हैं। आदेश, भेद और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं। ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश इस प्रकार से निर्देश दो ही प्रकार का होता है क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयों के अवलम्बन किये बिना वस्तुस्वरूप के कथन करने के उपाय का अभाव है।

शंका—यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्य का अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—भले ही प्रमाणवाक्य का अभाव हो जावे क्योंकि गौणता और प्रधानता के बिना वस्तुस्वरूप के कथन करने के उपाय का भी अभाव है। अथवा, प्रमाण से उत्पादित वचन को उपचार से प्रमाणवाक्य कहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा कथनरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

ओघ से मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक स्पर्श किया है।।२।।

हिन्दी टीका—''जिस प्रकार से उद्देश्य होता है, उसी प्रकार से निर्देश किया जाता है।'' इस न्याय के अनुसार सर्वप्रथम ओघ का कथन करता हूँ। इसीलिए सूत्र में पहले 'ओघ से' ऐसा वचन कहा। सासादनादि शेष गुणस्थानों के प्रतिषेध करने के लिए 'मिथ्यादृष्टियों के द्वारा' यह वचन कहा। 'कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? यह पृच्छासूत्र शास्त्र की प्रमाणता का प्रतिपादन करने के लिए कहा गया है।

शंका—क्षेत्रानुयोगद्वार में सर्वमार्गणा स्थानों का आश्रय लेकर सभी गुणस्थानों के वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्र का प्रतिपादन कर दिया गया है। अब पुनः इस स्पर्शनानुयोगद्वार से क्या प्ररूपण किया जाएगा?

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १४५।

संप्रति स्पर्शनानुयोगद्वारेण किं प्ररूप्यते?

चतुर्दशमार्गणास्थानानि आश्रित्य सर्वगुणस्थानानां अतीतकालविशेषितक्षेत्रं स्पर्शनं उच्यते।

कश्चिदाह— अत्र वर्तमानक्षेत्रप्ररूपणमपि सूत्रनिबद्धमेव दृश्यते। ततो न स्पर्शनमतीतकालविशिष्ट-क्षेत्रप्रतिपादनं, किन्तु वर्तमानातीतकालविशेषितक्षेत्रप्रतिपादनं इति चेत्?

आचार्यः प्राह—अत्र न क्षेत्रप्ररूपणं, तत्तत् पूर्वं क्षेत्रानियोगद्वारप्ररूपित-वर्तमानक्षेत्रं स्मारयित्वा अतीतकालविशिष्टक्षेत्रप्रतिपादनार्थं तस्योपादानं। ततः स्पर्शनं अतीतकालविशेषितक्षेत्रप्रतिपादनमेवेति सिद्धं।

'सव्वलोगो' संपूर्णलोकः मिथ्यादृष्टिभिः स्पृष्टः इत्युक्तं भवति। अत्र लोकप्रमाणं पूर्वं आनेतव्यं—

तत्र गाथा—

मुहसहिदमूलमज्झं, छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण।
हंतूणेगट्ठकदे, घणरज्जू होंति लोगम्हि[1]।।

मध्यलोकस्य द्वौ विभागौ कृत्वा द्वयोः विभागयोः पृथक्-पृथक्मुखसहितमूलविष्कंभयोः अर्द्धं कृत्वा पुनः सप्तवर्गेण गुणयित्वा, लब्धौ उभौ राशी मेलयित्वा लोकसंबंधिघनरज्जवः त्रिचत्वरिंशदधिकत्रिशतप्रमाणाः भवन्ति।

समाधान—चौदह मार्गणास्थानों का आश्रय लेकर के सभी गुणस्थानों के अतीत (भूत) काल विशिष्ट जो क्षेत्र है, वह स्पर्शन कहलाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि यहाँ स्पर्शनानुयोगद्वार में वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्र की प्ररूपणा भी सूत्रनिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्र का प्रतिपादन करने वाला नहीं है किंतु वर्तमान और अतीतकाल से विशिष्ट क्षेत्र का प्रतिपादन करने वाला है?

आचार्यश्री इसका समाधान देते हैं कि यहां स्पर्शनानुयोगद्वार में वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा नहीं है किंतु पहले क्षेत्रानुयोगद्वार में प्ररूपित उस-उस वर्तमान क्षेत्र को स्मरण कराकर अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्र के प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है अतएव स्पर्शनानुयोगद्वार अतीतकाल से विशिष्ट क्षेत्र का ही प्रतिपादन करने वाला है, यह सिद्ध हुआ ।

'सर्वलोक' इस पद से सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा कहा गया है। यहाँ पर लोक का प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणा में बताए गये नियम के अनुसार निकाल लेना चाहिए। उसके लिए गाथा कही गई है—

गाथार्थ—लोक के मध्य को छेदकर अर्थात् मध्यलोक के दो विभाग कर, दोनों विभागों के पृथक्-पृथक् मुख सहित मूल के विस्तार को आधा करके, पुनः सात के वर्ग से गुणा करके, उन दोनों राशियों को जोड़ देने पर, लोकसम्बन्धी घनराजु उत्पन्न होते हैं।

मध्यलोक के दो विभाग करके दोनों विभागों में पृथक्-पृथक् मुख सहित मूल विष्कंभ को आधा करके पुनः सात के वर्ग से गुणित करके जो लब्ध आवे, उन दोनों राशियों को मिलाकर लोकसम्बन्धी घनरज्जु तीन सौ तेंतालीस प्रमाण (३४३) होते हैं।

यहाँ पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं—

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणन्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १४६।

अत्र पर्यायार्थिकनयप्ररूपणा उच्यते। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगत-मिथ्यादृष्टिभिः अतीतेन वर्तमानेन च सर्वलोकः स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकसमुद्घातगतैः जीवैः वर्तमाने काले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणितमात्रं क्षेत्रं स्पृष्टं। अत्र अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणावत् ज्ञातव्या।

अतीतेन अष्ट चतुर्दशभागा देशोना। तद्यथा—लोकनालिं चतुर्दश खण्डानि कृत्वा मेरुमूलादधो द्वे खण्डे उपरिमषट्खण्डानि च एकत्रीकृते अष्ट चतुर्दशभागा भवंति। इमे अष्ट चतुर्दशभागाः तृतीयपृथिव्याः अधः एकसहस्रयोजनहीनाः अतः देशोनाः कथ्यन्ते।

अत्र रज्जुशब्दस्य व्याख्या उच्यते—''असंख्यातयोजनकोट्याकाशप्रदेशपरिमाणा रज्जुस्तावदुच्यते। तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जु-त्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमाणो लोक उच्यते।[१]''

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

सासादनसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतत्सूत्रं मंदबुद्धिशिष्यप्रतिबोधनार्थं क्षेत्रानुयोगद्वारे उक्तमेवात्र पुनरपि उक्तं। अथवा अतीतानागतवर्तमानकालविशिष्टक्षेत्रेषु चतुर्दशगुणस्थानयुक्तेषु पृष्टेषु तत्शिष्यसंदेहविनाशनार्थं**

जीवों ने अतीतकाल और वर्तमानकाल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात मिथ्यादृष्टि जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है तथा अढ़ाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर अपवर्तना क्षेत्र प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा देशोन क्षेत्र स्पर्श किया है, वह इस प्रकार से है—लोक नाली के चौदह खंड करके मेरूपर्वत के मूल भाग से नीचे के दो खंडों को और ऊपर के छह खंडों को एकत्रित करने पर आठ बटे चौदह (८/१४) भाग हो जाते हैं। ये आठ बटे चौदह राजु तीसरी पृथिवी के नीचे के एक हजार योजनों से हीनप्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है।

यहाँ रज्जु शब्द की व्याख्या कहते हैं—असंख्यात करोड़ योजन प्रमाण आकाश के प्रदेशों को एक राजु कहते हैं और तीन सौ तैंतालीस समचतुरस्र राजु प्रमाण लोक होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है ।।३।।

हिन्दी टीका—यह सूत्र मंदबुद्धि शिष्यों के प्रतिबोध—ज्ञान हेतु क्षेत्रानुयोगद्वार में कहा जा चुका है, फिर भी यहाँ पर पुनः उसे कहा है।

अथवा, चौदह गुणस्थान से युक्त भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट क्षेत्रों के पूछने पर उस शिष्य के संदेह विनाशनार्थ भूतकाल और वर्तमानकाल इन दो कालों से विशिष्ट क्षेत्र की प्ररूपणा की जा

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १, सूत्र ८।

अतीतवर्तमानद्विकालविशिष्टक्षेत्रप्ररूपणं क्रियते। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः। मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृष्टं। अत्र कारणं पूर्ववत् वक्तव्यं।

तत्रैव सीमाप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अट्ठ वारह चोद्दसभागा वा देसूणा।।४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सासादनसम्यग्दृष्टिभिः चतुर्दशरज्जुषु चतुर्दशभागेषु अष्टौ भागाः देशोनाः स्पृष्टाः, अथवा चतुर्दशभागेषु द्वादशभागाः स्पृष्टाः। स्वस्थानस्वस्थानगतैः सासादनैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणितक्षेत्रं स्पृष्टं। अतीतस्वस्थानक्षेत्रस्यानयनविधानं उच्यते। तद्यथा—तत्र तावत् तिर्यक्सासादनानां स्वस्थानक्षेत्रं भणिष्यामः। त्रसजीवाः लोकनाल्याः अभ्यन्तरे चैव भवन्ति, न बहिः। ततः रज्जु प्रतरस्याभ्यन्तरे सर्वत्र सासादनाः संभवन्ति। त्रसजीवविरहितेषु असंख्यातेषु समुद्रेषु सासादनाः न सन्ति। वैरभावयुक्तैर्व्यन्तरदेवैः गृहीतानामस्ति संभवः, किन्तु ते स्वस्थानस्था न भवन्ति, विहारेण परिणतत्त्वात्। तत्क्षेत्रं तिर्यग्लोकप्रमाणेन क्रियमाणे एकं जगत्प्रतरं पुरतः भण्यमानप्रमाणैः संख्यातरूपैः खंडयित्वा यल्लब्धं तत् रज्जुप्रतरात् अपनीय संख्यातांगुलैः गुणिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं भूत्वा संख्यातांगुलबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति।[१]**

रही है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदों को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्य लोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है तथा मानुष क्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर कारण पूर्व के समान ही कहना चाहिए।

अब उसी सीमा का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।।४।।

हिन्दी टीका—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने चौदह राजु के चौदह भागों में आठ भाग देशोन अर्थात् कुछ कम (८/१४) भाग को स्पर्श किया है अथवा चौदह भागों में बारहवाँ भाग (१२/१४) स्पर्श किया है।

स्वस्थानस्वस्थान पद को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग तथा ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्र के निकालने का नियम बताते हैं। वह इस प्रकार है— उसमें से पहले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियों के स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्र को कहते हैं।

त्रसजीव लोकनाली के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं।

इसलिए राजू प्रतर के भीतर सर्वत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं। त्रस जीवों से विरहित असंख्यात समुद्रों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं। यद्यपि वैरभाव रखने वाले व्यन्तर देवों के द्वारा हरण करके ले जाए गये जीवों की वहाँ संभावना है, किंतु वे वहाँ पर स्वस्थान-स्वस्थान में स्थित नहीं कहलाते हैं क्योंकि उस समय वे विहाररूप से परिणत हो रहे हैं। इस क्षेत्र को तिर्यग्लोक के प्रमाण से करने पर, एक जगत्प्रतर

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, पृ. (धवला टीका समन्वित)१५०।

उक्तं चान्यत्र—"तत्र स्वस्थानविहारापेक्षया सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। एवमग्रेऽपि सर्वत्र स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागो ज्ञातव्यः। परस्थानविहारापेक्षया तु सासादनदेवानां प्रथमपृथिवीत्रये विहारात् रज्जुद्वयं। अच्युतान्तोपरिविहारात् षड् रज्जव इत्यष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः।

द्वादश भागाः कथं स्पृष्टाः इति चेत्?

उच्यते—सप्तमपृथिव्यां परित्यक्तसासादनादिगुणस्थान एव मारणान्तिकं विदधाति इति नियमात् षष्ठीतो मध्यलोके पञ्चरज्जवः सासादनो मारणान्तिकं करोति। मध्यलोकाच्च लोकाग्रे बादरपृथिवीकायिक-बादराप्कायिक-बादरवनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यते इति सप्त रज्जवः। एवं द्वादश रज्जवो भवन्ति। सासादनसम्यग्दृष्टिर्हि वायुकायिकेषु तेजःकायिकेषु नरकेषु सर्वसूक्ष्मकायिकेषु च चतुर्षु स्थानकेषु नोत्पद्यते इति नियमः।

"देशोनाः इति कथं? केचित् प्रदेशाः सासादनसम्यग्दर्शनयोग्या न भवन्तीति देशोनाः। एवमुत्तरत्र सर्वत्रापि अस्पर्शनयोग्यापेक्षया देशोनत्वं वेदितव्यम्[१]।"

संप्रति ज्योतिष्कसासादनसम्यग्दृष्टिस्वस्थानक्षेत्रं भणिष्यामः। तद्यथा—जंबूद्वीपे द्वौ चन्द्रौ, द्वौ सूर्यौ। लवणसमुद्रे चत्वारः चन्द्राः, चत्वारः सूर्याः। धातकीखण्डे द्वादश चंद्रौ, द्वादश सूर्यौ। कालोदसमुद्रे

को आगे कहे जाने वाले संख्यातरूप प्रमाण से खंडित करके जो लब्ध आवे, उसे राजुप्रतरों में से निकालकर पुनः संख्यात अंगुलों से गुणा करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग होकर संख्यात अंगुल बाहल्य वाला जगत्प्रतर होता है।

अन्यत्र-तत्त्वार्थसूत्र की टीका तत्त्वार्थ वृत्ति में भी कहा है—

स्वस्थानविहार की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टियों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है। इस प्रकार आगे भी सर्वत्र स्वस्थानविहारापेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। परस्थानविहार की अपेक्षा सासादन देवों द्वारा प्रथम नरक से तृतीय नरकपर्यन्त विहार होने से दो राजू स्पृष्ट है। अच्युत स्वर्ग के उपरिभागपर्यन्त विहार होने से ६ राजू क्षेत्र स्पृष्ट है। इस प्रकार लोक के ८, १२ या कुछ कम १४ भाग स्पृष्ट हैं।

प्रश्न—द्वादश भाग किस प्रकार स्पृष्ट होते हैं ?

उत्तर—"सप्तम नरक में जिसने सासादन आदि गुणस्थानों को छोड़ दिया है, वही जीव मारणान्तिक समुद्घात करता है" इस नियम से षष्ठ नरक से मध्यलोकपर्यन्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिक समुद्घात को करता है अतः पांच राजू और मध्यलोक से लोक के अग्रभागपर्यन्त बादरपृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है अतः ७ राजू क्षेत्र यह हुआ। इस प्रकार १२ राजू क्षेत्र हो जाता है। यह नियम है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव वायुकायिक, तेजकायिक, नरक और सर्वसूक्ष्मकायिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं। कहा भी है—तेजकायिक, वायुकायिक, नरक और सर्वसूक्ष्मकायिक को छोड़कर बाकी के स्थानों में सासादन जीव उत्पन्न होता है।

प्रश्न—देशोनक्षेत्र कैसे होता है ?

उत्तर—कुछ प्रदेश सासादनसम्यग्दृष्टि के स्पर्शनयोग्य नहीं होते हैं इसलिए देशोनक्षेत्र हो जाता है। आगे भी देशोनता इसी प्रकार समझनी चाहिए। अर्थात् स्पर्श के अयोग्य क्षेत्र की अपेक्षा कम समझना चाहिए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवों के स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्र को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

द्विचत्वारिंशत् चन्द्राः, द्विचत्वारिंशत् सूर्याः। पुष्करार्धद्वीपे द्विसप्ततिः चन्द्राः, द्विसप्ततिः सूर्याः।

मानुषोत्तरशैलात् बाह्यभागे प्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशदधिकएकशतचन्द्राः, एतावन्तः सूर्याः। ततः परतः अष्टमवलयपर्यन्ताः चतुश्चतुःसंख्याः वर्धयितव्याः। इमे सर्वे चन्द्राः एकसहस्र-द्विशत-चतुःषष्टिप्रमाणाः, एतावन्तः सूर्याः। पुष्करसमुद्रे द्वात्रिंशत् वलयाः, तेषु सर्वे मिलित्वा द्व्यशीतिसहस्र-अष्टशत-अशीतिचन्द्राः, एतावन्तः सूर्याः। एवं विधिना स्वयंभूरमणपर्यन्ताः चन्द्राः सूर्याश्च असंख्याताः भवन्ति।

मानुषोत्तरशैलादभ्यन्तरे इमे ज्योतिष्कदेवविमानानि प्रदक्षिणाक्रमेण भ्राम्यन्ति। ततो बहिः सर्वाणि ज्योतिष्कविमानानि यथास्थानं तिष्ठन्ति।

उक्तं च—मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।।१३।। तत्कृतः कालविभागः।।१४।। बहिरवस्थिताः।।१५।।[१]

एकस्य चन्द्रस्य परिवारदेवाः— तत्र चन्द्रः इन्द्रः, सूर्यः प्रतीन्द्रः, अशीतिग्रहाः, अष्टाविंशतिनक्षत्राणि, षट्षष्टिसहस्र-नवशत-पंचसप्ततिकोटिकोट्यः तारागणाः,

उक्तं च— अडसीदट्ठावीसा, गहरिक्खा तार कोडिकोडीणं।
छावट्ठिसहस्साणि य, णवसय-पण्णत्तरिगि चंदे[२]।।३६२।।

जम्बूद्वीप में दो चंद्र और दो सूर्य हैं। लवणसमुद्र में चार चंद्रमा और चार सूर्य हैं। धातकीखंड में बारह चंद्रमा और बारह सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में ब्यालीस चंद्र और ब्यालीस सूर्य हैं। पुष्करार्ध द्वीप में बहत्तर चंद्रमा और बहत्तर सूर्य हैं।

मानुषोत्तर शैल से बाह्य भाग के प्रथम वलय में एक सौ चवालीस चंद्रमा और इतने ही (१४४) सूर्य हैं। इससे आगे चार संख्या को प्रक्षेप करके, अर्थात् चार-चार बढ़ाते हुए आठवें वलय तक ले जाना चाहिए।

ये सभी चंद्रमा एक हजार दो सौ चौंसठ प्रमाण हैं, इतने ही अर्थात् एक हजार दो सौ चौंसठ सूर्य हैं। पुष्कर समुद्र में बत्तीस वलय हैं, उनमें सब मिलकर बयासी हजार आठ सौ अस्सी चन्द्रमा हैं और इतने ही सूर्य हैं। इस प्रकार स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त असंख्यात चंद्रमा और सूर्य होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के अभ्यंतर भाग में ये ज्योतिष्क देव के विमान प्रदक्षिणा क्रम से भ्रमण करते हैं। उसके बाहर सभी ज्योतिष्क देवों के विमान यथास्थान स्थिर रहते हैं अर्थात् उनका भ्रमण नहीं होता है।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है—

मनुष्यलोक में ज्योतिषीदेव मेरू की प्रदक्षिणा देते हुए सदा गमन करते रहते हैं ।।१३।।

उन गमन करने वाले ज्योतिषी देवों के द्वारा ही किया हुआ काल विभाग है ।।१४।।

मनुष्यलोक के बाहर स्थित सर्व ज्योतिषीदेव स्थिर—निश्चल रहते हैं अर्थात् गमन नहीं करते हैं।।१५।।

एक चंद्रमा के परिवार देव—

ज्योतिषी देवों में चंद्रमा इन्द्र कहलाता है और सूर्य को प्रतीन्द्र संज्ञा है।

अस्सी (८०) ग्रह हैं, अट्ठाईस (२८) नक्षत्र हैं, छ्यासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

कहा भी है—

गाथार्थ—एक चंद्रमा के परिवार में अट्ठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छ्यासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं ।।३६२।।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ४, सूत्र १३-१४-१५। २. त्रिलोकसार।

ज्योतिष्कदेवानां यावन्ति विमानानि, तेषु प्रत्येकं जिनमंदिराणि सन्ति। ते कियन्त? इत्याह—

''वेसदछप्पण्णंगुल-कदिहिदपदरस्स संखभागमिदे।
जोइसजिणिंदगेहे, गणणातीदे णमंसामि[1]।।३०२।।

स्वयंभूरमणसमुद्रात् परतः ज्योतिष्कदेवविमानानि न सन्ति, किन्तु तत्समुद्रात् परे पृथिव्याः अस्तित्वं अस्ति। स्वयंभूरमणसमुद्रस्य परभागेऽपि असंख्यातद्वीपसमुद्राणां व्यासरुद्धयोजनेभ्यः संख्यातसहस्रगुणित-योजनानि अग्रे गत्वा तिर्यग्लोकस्य समाप्तिर्भवति, तत्रापि रज्जुअर्धच्छेदाः उपलब्धाः भवन्ति[2]।''

ज्योतिष्कदेवानां सर्वविमानानि यावन्ति सन्ति, तानि संख्यातघनांगुलैः गुणिते स्वस्थानक्षेत्रं भवति। स्वस्थानक्षेत्रं संख्यातरूपैः गुणयित्वा संख्यातघनांगुलैः अपवर्तिते ज्योतिष्कराशिर्भवति। इमं राशिं ज्योतिष्कदेवस्य शरीरोत्सेधेन गुणितविमानाभ्यन्तरप्रतरांगुलैः गुणिते ज्योतिष्कस्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं भवति। विशेषेण तु देवोत्सेधगुणित विमानाभ्यंतरप्रतरांगुलानि उत्सेधांगुलानि प्रमाणांगुलानि कर्तव्यानि।

इमानि प्रतरांगुलानि उत्सेधांगुलानि इति कथं ज्ञायते?

यदि तानि प्रतरांगुलानि उत्सेधांगुलानि न मन्यन्ते तर्हि जंबूद्वीपस्य अभ्यन्तरे जंबूद्वीपस्थतारागणानां अवकाशोऽपि न लभेत।

अथवा इमानि प्रतरांगुलानि प्रमाणांगुलान्येव।

ज्योतिष्क देवों के जितने विमान हैं, उन सभी में प्रत्येक में एक-एक जिनमंदिर हैं। वे जिनमंदिर कितने हैं? सो कहते हैं—

गाथार्थ—जगत्प्रतर को दो सौ छप्पन (२५६) अंगुलों के वर्ग (२५६×२५६=६५५३६) का भाग देने पर ज्योतिषी देवों का प्रमाण प्राप्त होता है। ज्योतिषी देवों के संख्यातभागप्रमाण ज्योतिर्बिम्ब एवं चैत्यालय हैं, जो असंख्यात हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ।।३०२।।

स्वयंभूरमणसमुद्र से आगे ज्योतिष्क देवों के विमान नहीं हैं, किंतु उस समुद्र से आगे पृथिवी का अस्तित्व है। स्वयम्भूरमण समुद्र के आगे भी असंख्यात द्वीप-समुद्रों के व्यास से रुद्ध योजनों से संख्यात हजार गुणे योजन आगे जाकर तिर्यग्लोक की समाप्ति होती है। वहाँ भी राजू के अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं।

ज्योतिष्क देवों के सभी विमान जितने भी हैं, उन सभी को संख्यातघनांगुलों से गुणित करने पर स्वस्थानक्षेत्र होता है। स्वस्थानक्षेत्र को संख्यातरूपों से गुणित करके संख्यात घनांगुलों से अपवर्तित करने—घटाने पर ज्योतिष्क देवों की राशि प्राप्त होती है। इस देवराशि को ज्योतिष्क देव के शरीर की ऊँचाई से गुणित एवं विमान के अभ्यंतर प्रतरांगुलों से गुणित करने पर ज्योतिष्क स्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भागमात्र होता है। विशेष रूप से देवों के उत्सेध से गुणित विमानों के अभ्यंतर प्रतरांगुल उत्सेधांगुल हैं, ऐसा समझकर उनके प्रमाणांगुल करना चाहिए।

प्रश्न—ये प्रतरांगुल उत्सेधांगुल हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—यदि उन प्रतरांगुलों को उत्सेधांगुल नहीं माना जाएगा तो जम्बूद्वीप के भीतर जम्बूद्वीपस्थ तारागणों के रहने के लिए अवकाश ही नहीं मिल पाएगा। अथवा ये प्रतरांगुल प्रमाणांगुल ही हैं, ऐसा समझना चाहिए।

---

१. त्रिलोकसार। २. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १५८।

कथं पुनः इमे तारागणाः जंबूद्वीपे सम्मान्ति?

नैतत्, जंबूद्वीप-लवणसमुद्रौ आश्रित्य ज्योतिष्कविमानानां अवस्थानं वर्तते। अस्यायमर्थः—जंबूद्वीपसंबंधि-ज्योतिष्कविमानानि उभौ आश्रित्य तिष्ठन्ति अतएवावकाशं लभन्ते इमानि ज्योतिष्कदेवविमानानि इति[1]।

सासादनसम्यग्दृष्टिव्यन्तरदेवानां स्वस्थानक्षेत्रमपि तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं भवति।

तत्कथं ज्ञायते?

व्यंतरदेवराशिं स्थापयित्वा एकैकस्मिन् व्यन्तरावासे संख्याताश्चैव व्यन्तरदेवा भवन्ति इति संख्यातरूपैः भागे कृते व्यन्तरावासा भवन्ति। नैष क्रमः भवनवासि-सौधर्मादीनां, तत्र संख्यातेषु भवनवासिविमानेषु असंख्यातयोजनायामेषु असंख्याता देवाः देव्यश्च भवन्ति।

कुतः? तेषां असंख्यातत्वान्यथानुपपत्तेः।

पुनः व्यन्तरावासे आत्मनः विमानाभ्यन्तर-संख्यातघनांगुलैः गुणिते व्यन्तरदेवसासादनसम्यग्दृष्टि-स्वस्थानक्षेत्रं भवति। एतानि त्रीण्यपि क्षेत्राणि मेलिते—सासादनसम्यग्दृष्टितिरश्चां, सासादनसम्यग्दृष्टि-ज्योतिष्कदेवानां, सासादनसम्यग्दृष्टिव्यन्तरदेवानां च त्रीण्यपि क्षेत्राणि मेलिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति[2]।

विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः।

कियन्मात्रेण ऊनाः इति चेत्?

प्रश्न—फिर ये तारागण जम्बूद्वीप में कैसे समाते हैं ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि जम्बूद्वीप और लवण समुद्र का आश्रय लेकर ये ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं। इसका अर्थ यह है कि जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्कदेवों के विमान जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र इन दोनों का आश्रय लेकर रहते हैं। इसलिए ये ज्योतिष्क विमान वहाँ अवकाश प्राप्त करते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती व्यंतरदेवों का स्वस्थानक्षेत्र भी तिर्यग्लोक का संख्यातवां भागमात्र होता है।

प्रश्न—यह बात कैसे जानी जाती है ?

उत्तर—व्यंतरदेवों की राशि को स्थापित करके एक-एक व्यन्तर आवास में संख्यात ही व्यन्तर देव रहते हैं। इसलिए संख्यातरूपों से व्यंतर देवों की राशि में भाग देने पर व्यंतर देवों के आवासों की संख्या हो जाती है किंतु यह क्रम भवनवासी और सौधर्मादि कल्पवासी देवों के नहीं है, क्योंकि उनमें असंख्यात योजन आयाम वाले संख्यात भवनों और विमानों में असंख्यात देव और देवियाँ रहते हैं।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि, ऐसा नहीं मानने से उनकी राशि के असंख्यातपना नहीं बन सकता है पुनः व्यंतरों के आवास क्षेत्र को अपने विमानों के भीतरी संख्यात घनांगुलों से गुणित करने पर सासादनसम्यग्दृष्टि व्यंतरदेवों का स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। उन तीनों ही क्षेत्रों को अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों के स्वस्थान क्षेत्र को, सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवों के स्वस्थानक्षेत्र को और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यंतर देवों के स्वस्थान क्षेत्र को इकट्ठे मिलाने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग होता है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने लोकनाली के चौदह भागों में से देशोन आठ भागप्रमाण क्षेत्र को स्पर्श किया है।

शंका—यहाँ देशोन से तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्र से न्यून है ?

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १५९-१६०। २. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १६०।

तृतीयपृथिव्याः अधः एकसहस्रयोजनप्रमाणक्षेत्रेण न्यूनाः देशोनाः अत्राभीष्टाः।

मारणान्तिकसमुद्घातगतैः द्वादश चतुर्दशभागा देशोना स्पृष्टाः। तद्यथा—सुमेरुमूलादुपरि यावत् ईषत्प्राग्भारपृथिवी इति सप्त रज्जवः, अधस्तने यावत् षष्ठीपृथिवी इति पंच रज्जवः। एतेषां मेलिते सासादनमारणान्तिकक्षेत्रायामो भवति। विशेषेण अधस्तने सहस्रयोजनैः न्यूनो वक्तव्यः।

सासादनसम्यग्दृष्टयः एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यन्ते अतो न तेषां द्वे गुणस्थाने स्तः। किन्तु ते सासादनाः मारणान्तिकसमुद्घातं एकेन्द्रियेषु कुर्वन्ति एष अस्माकं निश्चयः इति ज्ञातव्यः, किंच छिन्नायुःकाले तत्र सासादनगुणस्थानानुपलम्भात्। अस्ति विशेषः—सप्तमपृथिव्याः नारकाः सासादनेन सह देवानामिव मारणान्तिकं न कुर्वन्ति।

सासादना देवाः यदि एकेन्द्रियेषु मारणान्तिकं कुर्वन्ति तर्हि सर्वलोकवर्तिषु एकेन्द्रियेषु कथं न कुर्वन्ति?

नैतत्, तेषां सासादनगुणस्थानप्राधान्येन लोकनाल्याः बहिः उत्पत्तेः स्वभावाभावात्। लोकनाल्याः अभ्यंतरेऽपि मारणान्तिकं कुर्वन्तोऽपि भवनवासिलोकस्य मूलभागादुपरि देवास्तिर्यञ्चो वा सासादनाः मारणान्तिकं कुर्वन्ति नोधः, सासादनगुणस्थानप्राधान्यादेव।

राजुप्रतरमात्रपृथिवी उपरि नास्ति, देवा अपि सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु नोत्पद्यन्ते। न च बादरैकेन्द्रियाः वायुकायिक-व्यतिरिक्ताः पृथिवीमन्तरेण अन्यत्र न तिष्ठन्ति। अंतो सासादनानां मारणान्तिकक्षेत्रं द्वादश चतुर्दशभागोपदेशो न घटते इति चेत्?

समाधान—तीसरी पृथिवी के नीचे के एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्र से न्यून क्षेत्र देशोन से अभीष्ट है। मारणान्तिकसमुद्घातगत, सासादनसम्यग्दृष्टियों ने लोकनाली के चौदह राजुओं में से देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्र को स्पर्श किया है। वह इस प्रकार से जानना चाहिए—सुमेरूपर्वत के मूलभाग से लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी तक सात राजू होते हैं और नीचे छठी पृथिवी तक पाँच राजु होते हैं। इन दोनों को मिला देने पर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के मारणान्तिक क्षेत्र की लम्बाई हो जाती है। विशेष बात यह है कि छठी पृथिवी के नीचे के एक हजार योजन से न्यून क्षेत्र कहना चाहिए।

'सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियों में नहीं उत्पन्न होते हैं इसलिए उनके दो गुणस्थान नहीं होते हैं किन्तु वे सासादनसम्यग्दृष्टि मारणान्तिक समुद्घात को एकेन्द्रियों में करते हैं, यह हमारा निश्चय है, ऐसा जानना चाहिए क्योंकि छिन्न हुई आयु के काल में उनमें सासादन गुणस्थान नहीं जानना चाहिए।

यहाँ विशेष बात यह है कि सप्तम नरक पृथिवी के नारकी सासादन गुणस्थान के साथ देवों के समान मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते हैं।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियों में मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए पाये जाते हैं, तो फिर सर्व लोकवर्ती एकेन्द्रियों में क्यों नहीं मारणान्तिक समुद्घात करते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके सासादनगुणस्थान की प्रधानता से लोक नाली के बाहर उत्पन्न होने के स्वभाव का अभाव है और लोकनाली के भीतर मारणान्तिक समुद्घात को करते हुए भी भवनवासी लोक के मूलभाग से ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिक समुद्घात को करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि ऐसा वे सासादन गुणस्थान की प्रधानता से ही करते हैं।

शंका—राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है, देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में नहीं उत्पन्न होते हैं और वायुकायिक जीवों को छोड़कर शेष बादर एकेन्द्रिय जीव पृथिवी के बिना अन्यत्र रहते नहीं हैं इसलिए सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवों के मारणान्तिक क्षेत्र का बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग का उपदेश घटित नहीं होता है?

नैष दोषः, ईषत्प्राग्भारपृथिवीतः उपरि सासादनानां अप्कायिकेषु मारणान्तिकसंभवात्, तथा एकरज्जुप्रतराभ्यन्तरं सर्वमापूर्य स्थिताष्टमपृथिव्यां तेषां मारणान्तिककरणं प्रति विरोधाभावात् च।

वायुकायिकेषु सासादनाः मारणान्तिकं किं न कुर्वन्ति?

नैतत्, सकलसासादनानां देवानामिव तेजोवायुकायिकयोः मारणान्तिकाभावात्। पृथिवीपरिणामस्वरूप-विमान-तल-शिला-स्थूलतल-स्तंभ-शालभंजिका-भित्ति-तोरणादीनां तदुत्पत्तियोगानां दर्शनाच्च।

उपपादगतसासादनैः देशोना एकादश-चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। तद्यथा—मेरुतलादधः षष्ठीपृथिवीतः पंच रज्जवः, उपरि यावत् आरण-अच्युतकल्पौ इति षड्रज्जवः, आयामो विस्तारश्च एकरज्जुः। एवंप्रकारेणैव उपपादक्षेत्रप्रमाणं। केऽपि आचार्याः ''देवाः नियमेन मूलशरीरं प्रविश्य म्रियन्ते'' इति भणन्ति, तेषां अभिप्रायेण सासादनोपपादसंबंधिस्पर्शनक्षेत्रं दश चतुर्दशभागा देशोना। एवं व्याख्यानमत्रैव कार्मणशरीर-सासादनोपपादस्पर्शनस्य एकादश चतुर्दशभागा 'इति प्ररूपकसूत्रेण विरुद्धमिति न गृहीतव्यं। ये पुनः ''देवसासनाः एकेन्द्रियेषु उत्पद्यन्ते'' इति भणन्ति, तेषामभिप्रायेण द्वादश चतुर्दशभागा देशोना उपपादस्पर्शनं भवति, इदमपि व्याख्यानं सत्प्ररूपणा-द्रव्यानुयोगद्वाराभ्यां सूत्राभ्यां विरुद्धं इति न गृहीतव्यम्[१]।''

एवं तृतीयस्थले सासादनानां स्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ईषत्प्राग्भार पृथिवी से ऊपर सासादनसम्यग्दृष्टियों का अप्कायिक जीवों में मारणान्तिक समुद्घात संभव है तथा एक राजुप्रतर के भीतर सर्वक्षेत्र को व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवी में उन जीवों के मारणान्तिक समुद्घात करने के प्रति कोई विरोध भी नहीं है।

शंका—वायुकायिक जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिक समुद्घात को क्यों नहीं करते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का देवों के समान तैजसकायिक और वायुकायिक जीवों में मारणान्तिक समुद्घात का अभाव माना गया है और पृथिवी के परिणमनस्वरूप विमान, शय्या, शिला, स्तंभ, स्थूल, तलभाग तथा खड़ी हुई शालभंजिका, (पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्ति का योग देखा जाता है। उपपादगत सासादन सम्यगदृष्टि जीवों ने लोक के कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग (११/१४) स्पर्श किये हैं, वह इस प्रकार है—मेरुतल से नीचे छठी पृथिवी तक पाँच राजु होते हैं, ऊपर आरण-अच्युतकल्प तक छह राजु होते हैं तथा इसका आयाम और विस्तार एक राजु है, इस प्रकार कुछ कम ग्यारह राजु उपपाद क्षेत्र का प्रमाण है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियम से मूल शरीर में प्रवेश करके ही मरते हैं। उनके अभिप्राय से सासादनगुणस्थानवर्ती उपपादसंबंधी स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग (१०/१४) प्रमाण होता है किन्तु यह व्याख्यान यहीं पर विग्रहगति को प्राप्त कार्मणशरीर वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के उपपाद-स्पर्शन के ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग के प्ररूपक सूत्र के साथ विरोध को प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्राय से कुछ कम बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग उपपाद का स्पर्शन होता है किन्तु यह भी व्याख्यान सत्प्ररूपणा और द्रव्यानुयोगद्वार के सूत्रों के विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के स्पर्शन का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १६५।

संप्रति सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

इदानीं अनयोरेव क्षेत्रस्य स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।।६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अर्थः सुगमः। सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवानां क्षेत्रवत्स्पर्शनं प्रायेण। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः स्वस्थानेन त्रिलोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागश्च। तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागक्षेत्रोत्पादने सासादनभंगो ज्ञातव्यः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकसमुद्घातगतैः अष्ट चतुर्दशभागा देशोना स्पृष्टाः, उपरि षड्रज्जवः, अधो द्वौ रज्जू इति। उपपादगतैः षट् चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, अधः असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादक्षेत्रानुपलम्भात्।**

तात्पर्यमेतत्—यथा सीताचरेण अच्युतस्वर्गस्य प्रतीन्द्रेण षोडशस्वर्गस्य षड्रज्जुभ्यः अधः आगत्य तृतीयनरके द्विरज्जुपर्यंतं गत्वा लक्ष्मणचर-रावणचरौ नारकौ संबोधितौ। एतद्विहारवत्स्वस्थानेन स्पर्शो भवति।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब उपर्युक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों के क्षेत्र का स्पर्शन बताने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जितना क्षेत्र है, प्रायः उतना ही यहाँ स्पर्शन ग्रहण किया गया है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा स्वस्थान की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा तथा तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है। तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र के उत्पादन में सासादन के समान भंग जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त जीवों ने देशोन—कुछ कम ८/१४ भाग का स्पर्श किया है अर्थात् ऊपर छह राजू और नीचे दो राजू का क्षेत्र स्पर्श किया है, ऐसा अभिप्राय है। उपपाद पद को प्राप्त जीवों ने कुछ कम ६/१४ भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि नीचे अर्थात् प्रथम नरक के ऊपरी भाग को छोड़कर नीचे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपादक्षेत्र नहीं पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि जैसे सीताचर जीव ने अच्युतस्वर्ग के प्रतीन्द्र की पर्याय में सोलहवें स्वर्ग से छह राजू नीचे आकर तीसरे नरक में दो राजूपर्यन्त जाकर अर्थात् कुल आठ राजू जाकर लक्ष्मणचर एवं रावणचर

तथैव असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादक्षेत्रस्पर्शनं चतुर्दशरज्जुभ्य: षडेव रज्जव:, प्रथमनरकस्योपरिभागं विहाय अध: उत्पादाभावात्, श्रेणिकराज्ञ: इव।

के नारकी जीवों को सम्बोधित किया। यह विहारवत्स्वस्थान के द्वारा स्पर्श करने का उदाहरण है।

इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपादक्षेत्रस्पर्शन चौदह राजू से छह राजू ही प्रथम नरक के ऊपर के भाग को छोड़कर नीचे उत्पाद का अभाव है, श्रेणिक राजा के समान।

विशेषार्थ — जैसे राजा श्रेणिक ने पहले सप्तम नरक की तेंतीससागरप्रमाण आयु का बंध कर लिया था पुन: भगवान महावीर के समवसरण में परिणामों की विशेष शुद्धि करके क्षायिक सम्यक्त्व के साथ-साथ तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति का भी बंध कर लिया था अत: अविरतसम्यग्दृष्टि के रूप में उन्होंने सप्तम नरक की आयु को घटाकर प्रथम नरक की मध्यम आयु (८४ हजार वर्ष) में जन्म धारण कर लिया, क्योंकि सम्यग्दर्शन के साथ नरकायु का बंध करने वाला जीव प्रथम नरक से नीचे नहीं जा सकता है। ये राजा श्रेणिक अपनी नरक आयु को पूर्ण करके आगामी चतुर्थकाल में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर ''महापद्म'' तीर्थंकर के रूप में जन्म धारण करेंगे।

यहाँ यह विशेष जानना है कि उपपाद की अपेक्षा जो छह बटे चौदह (६/१४) राजू का प्रमाण कहा है यह उसका उदाहरण है। आगे ८/१४ राजू के प्रमाण में सीता के जीव प्रतीन्द्र का उदाहरण दिया गया है।

अच्युत स्वर्ग के प्रतीन्द्र के रूप में सीता के जीव द्वारा तृतीय नरक में लक्ष्मण और रावण के जीव को सम्बोधित करने की बात स्पर्शन के प्रसंग में कही है कि सोलहवें स्वर्ग से छह राजू नीचे आकर तीसरे नरक में दो राजूपर्यंत क्षेत्र तक जाकर उसने स्पर्श किया। पद्मपुराण के एक सौ तेइसवें पर्व में यह वर्णन आया है —

अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो, लक्ष्मीधरगुणार्णवम्।
प्रतिबोधयितुं वाञ्छन्, प्रतस्थे बालुकाप्रभाम्।।१।।
मानुषोत्तर समुल्लंघ्य, गिरिं मर्त्यसुदुर्गमम्।
रत्नप्रभामतिक्रम्य, शर्करां चापि मेदिनीम्।।२।।

अर्थात् सीतेन्द्र, लक्ष्मण के गुणरूपी सागर का स्मरण कर उसे सम्बोधन करने की इच्छा से बालुकाप्रभा पृथिवी (तृतीयनरक) की ओर चला पुन: मनुष्यों के लिए अत्यन्त दुर्गम मानुषोत्तर पर्वत को लांघकर तथा क्रम से नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा की भूमि को भी उल्लंघन कर वह तीसरी बालुकाप्रभा भूमि में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने नारकियों की अत्यंत घृणित कष्ट की अधिकता से दु:सह एवं पाप कर्म से उत्पन्न अवस्था देखी।

वहीं पर सीतेन्द्र ने भयंकर नेत्र वाले रावण के नारकी जीव को देखा, जिसे शम्बूक का जीव असुर-कुमार देव लक्ष्मण के विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था। वहाँ सीतेन्द्र ने रावण और लक्ष्मण दोनों को सम्बोधन देकर सम्यक्त्व ग्रहण कराया।

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में स्पर्शन का वर्णन करते हुए आचार्य श्री अकलंकदेव ने लिखा है —

''अवस्थाविशेषो विचित्र: त्र्यस्रचतुरस्रादि:, तस्य त्रिकालविषयमुपश्लेषणं स्पर्शनम्। कस्यचित्तत्क्षेत्र- मेव स्पर्शनम्, कस्यचिद् द्रव्यमेव, **कस्यचिद् रज्जव: षडष्टौ वेति एकसर्वजीवसन्निधौ,** तन्निश्चयार्थं तदुच्यते।''

अर्थात् अवस्थाविशेष की विचित्रता होने से त्रिकालविषय के उपश्लेष (स्पर्श) का निर्णय करने के लिए स्पर्शन कहा है।................किसी मानव, देवादि का छह राजू, आठ राजू आदि स्पर्श है। एक जीव और सर्व जीवों की सन्निधि में उसका निश्चय करने के लिए कहा जाता है। जैसे — कोई जीव इस लोक में तप करके

एवं चतुर्थस्थले मिश्र-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संयतासंयतानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७।।

सूत्रं सुगममेत्।

एषामेव रज्जुप्रमाणनिर्णयाय सूत्रावतारो भवति—

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**पूर्वं क्षेत्रप्ररूपणायां वर्तमानकालविशिष्टक्षेत्रं प्ररूपितं, इदानीं तु अतीतकालसंबंधीदं सूत्रमिति अवगम्यते। अनागतकालसंबंधि न भवति, तेन व्यवहाराभावात्। अथवा अतीतानागतकालविशिष्ट-क्षेत्राणां प्ररूपकानि प्राक्तनसर्वसूत्राणीति निश्चयः कर्तव्यः, उभयत्र विशेषाभावात्।**

अच्युतकल्प में उत्पन्न हुआ, वहाँ से च्युत होकर पुनः इस लोक में उत्पन्न हुआ, उस जीव का गमनागमन छह राजू हुआ। सोलहवें स्वर्ग का जीव तीसरे नरक तक गमन करने गया, वह विहार की अपेक्षा स्पर्श आठ राजू हुआ।

इसी बात को तत्त्वार्थवृत्ति की टीका में श्रीश्रुतसागर सूरि ने कहा है—

''**सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः स्पृष्टाः।**''

अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के द्वारा लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का तथा त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग का स्पर्श होता है। यह स्पर्श भी विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणांतिक समुद्घात की अपेक्षा जानना चाहिए परन्तु तीसरे गुणस्थान में समुद्घात नहीं होता है।

यहाँ इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र या देवों का तृतीय नरक में जाकर नारकियों को सम्बोधित करना आगमसम्मत सिद्ध है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में मिश्र गुणस्थानवर्ती एवं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत जीवों के स्पर्शन का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।७।।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है अर्थात् इन सभी की स्पर्शनप्ररूपणा पूर्वोक्त इन्हीं की क्षेत्रप्ररूपणा के सदृश ही है।

अब उपर्युक्त प्रकार के जीवों का ही रज्जूप्रमाण निर्णय करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।८।।

हिन्दी टीका—पूर्व में क्षेत्रप्ररूपणा में वर्तमानकाल विशिष्ट क्षेत्र का प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यह सूत्र अतीतकालसंबंधी है, यह बात जानी जाती है किन्तु यह अनागत (भविष्यत) कालसंबंधी नहीं है, क्योंकि उसके साथ व्यवहार का अभाव है। अथवा, पीछे के सभी सूत्र अतीत और अनागतकाल

इदानीं संयतासंयतानां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रस्य स्पर्शनं उच्यते—

स्वयंभूरमणसमुद्रविष्कम्भः द्वयोः पार्श्वयोः सातिरेकमर्द्धरज्जुप्रमाणं भवति। स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्रमपि द्वयोः पार्श्वयोः एकरज्जु-अष्टमभागमात्रविष्कम्भो भवति। तौ द्वौ अपि परिमाणौ मेलिते एकरज्जोः अष्टभागेभ्यः पंचभागा भवन्ति। एते पंच भागाः रज्जुविष्कम्भेभ्यः अपनीते त्रयो अष्टभागा भवन्ति। एतस्मिन् त्रिषु अष्टभागे क्षेत्रे सूर्यमण्डलाकारेण संस्थिते भोगभूमिप्रतिभागे संयतासंयताः न सन्ति। किन्तु बाह्येषु पंचसु अष्टभागेषु, सार्धद्वयद्वीपेषु द्वयोः समुद्रयोः च सन्ति, कर्मभूमित्वात्। ''व्यासार्धकृतित्रिकं समस्तफलमिति'' एतेन करणसूत्रेण मध्यवर्ति-जघन्य-भोगभूमि-प्रतिबद्धक्षेत्रफलमानीते षोडश सप्तविंशतिभागाभ्यधिक-चतुःषष्ट्युत्तरचतुशतरूपैः जगत्प्रतरे भागे हृते एकभागः आगच्छति। तं रज्जुप्रतरात् अपनीय संख्यातांगुलैः गुणिते संयतासंयतस्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं भवति।

शेषपदानां क्षेत्रमानीयमाने एकं जगत्प्रतरं स्थापयित्वा संख्यातसूच्यंगुलैः संयतासंयतोत्सेधस्य एकोनपंचाशद्भागमात्रैः गुणिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रक्षेत्रं भवति।

मानुषोत्तरपर्वतपरभागवर्तिषु स्वयंप्रभाचलपूर्वभागवर्तिषु च शेषद्वीपसमुद्रेषु संयतासंयतजीवानां कथं संभवः?

नैतत् वक्तव्यं, पूर्ववैरिदेवैः तत्र गृहीतानां तिर्यक्संयतासंयतानां संभवं प्रति विरोधाभावात्[१]।

विशिष्ट क्षेत्रों की प्ररूपणा करने वाले हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि भूतकाल और भविष्यकाल में स्पर्शन की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है।

अब संयतासंयत जीवों के स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्र का स्पर्शन कहते हैं—स्वयम्भूरमणसमुद्र का विष्कम्भ दोनों ही पार्श्वभागों की अपेक्षा कुछ अधिक आधा राजू प्रमाण है। स्वयंप्रभपर्वत का परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्वभागों की अपेक्षा एक राजु के अष्टम भागमात्र विष्कम्भ वाला है। ये दोनों ही विष्कम्भ मिला देने पर एक राजु के आठ भागों में से पाँच भाग प्रमाण (५/८) क्षेत्र हो जाता है। ये पाँच बटे आठ (५/८) भाग राजु के विष्कम्भ में से निकाल देने पर तीन बटे आठ (३/८) भाग अवशिष्ट रहते हैं। इस तीन बटे आठ (३/८) भाग वाले सूर्यमण्डल के आकार से संस्थित और भोगभूमि से प्रतिबद्ध क्षेत्र में संयतासंयत जीव नहीं होते हैं किन्तु बाहरी पाँच बटे आठ (५/८) भागों में जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध इन अढ़ाई द्वीपों में और लवणोदधि वा कालोदधि इन दो समुद्रों में संयतासंयत जीव रहते हैं, क्योंकि वहाँ पर कर्मभूमि है। 'व्यास के आधे का वर्ग करके उसका तिगुना कर देने से विवक्षित क्षेत्र का समस्त क्षेत्रफल निकल आता है' इस करण सूत्र से मध्यवर्ती अर्थात् जघन्य भोगभूमि प्रतिबद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने पर जो प्रमाण आता है, वह सोलह बटे सत्ताईस भाग से अधिक चार सौ चौंसठ रूपों से जगत् प्रतर में भाग देने पर उपलब्ध एक भाग के बराबर होता है।

इस एक भाग को राजु प्रतर में से निकालकर संख्यात अंगुलों से गुणा करने पर तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण संयतासंयतों का स्वस्थान क्षेत्र हो जाता है। विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदों का क्षेत्र निकालने पर एक जगत्प्रतर को स्थापित करके संयतासंयत जीवों के शरीर की ऊँचाई के उनंचास भागमात्र संख्यात सूच्यंगुलों से गुणा करने पर तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है।

शंका—मानुषोत्तर पर्वत से परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचल से पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप-समुद्रों में संयतासंयत जीवों की संभावना कैसे है?

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १६९।

एषोऽर्थः सूत्रेण अकथितः कथमवगम्यते?

नैष दोषः, सूत्रस्थितेन 'वाशब्देन' अनुक्तसमुच्चयार्थेन सूचितत्वात्।

मारणान्तिकसमुद्घातगतैः षट् चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः।

कुतः?

सर्वत्र लोकनाल्याः अभ्यन्तरे स्थित्वा मारणान्तिककरणं प्रति विरोधाभावात्।

केन ऊनाः षट् चतुर्दशभागाः?

चित्रा पृथिवीसंबंधि-अधः योजनसहस्रेण आरण-अच्युतविमानानामुपरिमभागेन च न्यूनाः इति ज्ञातव्याः।

एवं पंचमस्थले संयतासंयतानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इतो विस्तरः —

संप्रति मानुषक्षेत्रस्य तिर्यग्लोकस्य च किंचित् निरूपणं क्रियते —

मंदरपर्वतमूलादेकलक्षयोजनोपरिपर्यंत-एकरज्जुविष्कंभ-आयतक्षेत्रेषु मध्यलोकः तिर्यक्त्रसलोको वा कथ्यते। एषु तिर्यग्लोकेषु असंख्यातद्वीपसमुद्राः सन्ति। पंचविंशतिकोटिकोटि-उद्धारपल्यानां रोमप्रमाणाः द्वीपसमुद्राः, तेषु क्रमशः अर्धसंख्या द्वीपानां अर्धसमुद्राणां च। सर्वद्वीपाः समुद्राश्चासंख्याताः समवृत्ताः सन्ति। अत्र प्रथमो जंबूद्वीपः अंतिमः स्वयंभूरमणसमुद्रः मध्ये द्वीपसमुद्राश्च। चित्रापृथिव्याः उपरि बहुमध्यभागे एकरज्जुविष्कंभ-एकरज्जुआयतक्षेत्रस्याभ्यन्तरे एकैकं समंतात् वेष्टयित्वा द्वीपसमुद्राः स्थिताः। सर्वेऽपि समुद्राः चित्रापृथिवीं खण्डयित्वा वज्रापृथिव्याः उपरि, सर्वे द्वीपाश्च चित्रापृथिव्या उपरि सन्ति।

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, **क्योंकि पूर्वभव के बैरी देवों के द्वारा वहाँ ले जाये गये तिर्यंच संयतासंयत जीवों की संभावना की अपेक्षा कोई विरोध नहीं है।**

शंका — सूत्र में नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सूत्र में स्थित और अनुक्त का अर्थात् नहीं कहे गये अर्थ का समुच्चय करने वाले ''वा'' शब्द से उक्त अकथित अर्थ सूचित किया गया है। मारणान्तिक समुद्घातगत संयतासंयत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं।

क्यों? क्योंकि लोक नाली के भीतर सर्वत्र रहकर मारणान्तिकसमुद्घात करने के प्रति कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न — छह बटे चौदह (६/१४) भाग में जो ''ऊन'' शब्द है वह किस क्षेत्र से कम है?

उत्तर — चित्रा पृथिवीसंबंधी नीचे के एक हजार योजन से और आरण-अच्युत विमानों के उपरिम भाग से न्यून — कम किया जाता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार पंचमस्थल में संयतासंयत जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ अब विस्तारपूर्वक कथन करते हैं —

अब यहाँ मनुष्यक्षेत्र एवं तिर्यग्लोक का किंचित् निरूपण किया जा रहा है —

मंदरपर्वत — सुमेरुपर्वत के मूल से एक लाख योजन ऊपर जाकर एक राजु लम्बे-चौड़े क्षेत्र में मध्यलोक अथवा तिर्यक् त्रसलोक स्थित है ऐसा कहा गया है। इस तिर्यग्लोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। पच्चीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों के रोमप्रमाण द्वीप और समुद्रों की संख्या है। इनमें आधी संख्या क्रमशः द्वीपों की और आधी संख्या समुद्रों की है। सभी द्वीप-समुद्र असंख्यात एवं समवृत्त — गोल हैं। उनमें प्रथम जम्बूद्वीप है, अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र है और मध्य में द्वीप-समुद्र हैं। चित्रा पृथिवी के ऊपर बहुमध्य भाग में एक राजु विस्तृत

सर्वद्वीपानामाद्ये जंबूद्वीप:, एकलक्षयोजनविस्तृत:। तत: परे आ समंतात् द्वीपं वेष्टयित्वा लवणसमुद्र: द्विलक्षयोजनविस्तृत:। तत: परे समुद्रं वेष्टयित्वा धातकीखण्डद्वीप: अस्य विष्कंभ: चतुर्लक्षयोजन:। तत: परे कालोदधिनाम समुद्र: अष्टलक्षयोजनविस्तृत:। तत: परे पुष्करवरद्वीप: षोडशलक्षयोजनविष्कंभ:। अस्य द्वीपस्य बहुमध्यभागे वलयाकार: मानुषोत्तरपर्वतो विद्यते, अतोऽस्य द्वीपस्य मानुषोत्तरपर्वतात् इत: अभ्यंतरे पुष्करार्ध संज्ञास्ति, एतन्मानुषोत्तरपर्वतपर्यंतं मानुषक्षेत्रमुच्यते। इदं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनविस्तृतं अस्ति। तद्यथा—

जंबूद्वीप एकलक्षयोजन:, लवणसमुद्र: द्विलक्षयोजन:, सर्वत: जंबूद्वीपस्यास्ति अत: एतयो: द्वीपसमुद्रयो: बाह्यसूचीव्यास: पंचलक्षयोजन:। पुन: धातकीखण्डस्य उभयत: चतुर्लक्षयोजनयो: बाह्यसूचीव्यास: त्रयोदशलक्षयोजन:। तत: कालोदधि: अष्टलक्षप्रमाणं, उभयत: अस्य बाह्यसूचीव्यास: एकोनत्रिंशत्-लक्षयोजनप्रमाणं। तत: परे मानुषोत्तरपर्यंतं पुष्करार्धस्य अष्टाष्टलक्षाणि मिलित्वा बाह्यसूचीव्यास: पंचचत्वारिंशल्लक्ष-योजनप्रमाणमस्ति। इदं एव मानुषक्षेत्रं सार्धद्वयद्वीप:अस्ति। एषु मध्ये द्वौ समुद्रौ स्त:।

मानुषोत्तर पर्वताद्बहि: पुष्करार्धस्य परे पुष्करवरसमुद्र:। तत: परे वारुणीवरद्वीप:, तत: परे वारुणीवरसमुद्र:। एवमेव क्रमश: क्षीरवरद्वीप:, क्षीरवरसमुद्र:, घृतवरद्वीप:, घृतवरसमुद्र:, क्षौद्रवरद्वीप:, क्षौद्रवरसमुद्र:, नन्दीश्वरद्वीप:, नंदीश्वर समुद्र:। अस्मिन् अष्टमे नंदीश्वरद्वीपे द्वापञ्चाशदकृत्रिमजिनालया: सन्ति। तेषां पूजनार्थं प्रत्येकं वर्षे त्रीणि वाराणि नंदीश्वरपर्वाणि आगच्छन्ति।

और एक राजु लम्बे क्षेत्र के अभ्यन्तर में एक-एक को चारों ओर घेरे हुए द्वीप व समुद्र स्थित हैं। सभी समुद्र चित्रा पृथिवी को खण्डित करके वज्रा पृथिवी के ऊपर और सब द्वीप चित्रा पृथिवी के ऊपर स्थित हैं।

उन सब द्वीपों के आदि में जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है, उससे आगे चारों ओर से द्वीप को वेष्टित करके लवणसमुद्र है जो कि दो लाख योजन विस्तार वाला है। उससे आगे लवण समुद्र को वेष्टित करके धातकीखंड द्वीप है, इसका विस्तार चार लाख योजन है। उसके आगे कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन विस्तृत है। उसके बाद सोलह लाख योजन विस्तार वाला पुष्करवरद्वीप है। इस द्वीप के ठीक मध्यभाग में चूड़ी के आकार वाला गोल मानुषोत्तर पर्वत पाया जाता है, इसलिए इस द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत के अभ्यन्तर का भाग पुष्करार्धद्वीप के नाम से जाना जाता है। इस मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य क्षेत्र होता है, यह पैंतालीस लाख योजन वाला है। इसका विस्तृत कथन इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप एक लाख योजन वाला है, लवण समुद्र दो लाख योजन है, जम्बूद्वीप का और समुद्र के दोनों तरफ का बाह्य सूची व्यास पाँच लाख योजन है। उसके आगे धातकीखण्ड का दोनों तरफ का ४-४ लाख योजन मिलाने से इनका बाह्यसूची व्यास तेरह लाख योजन है। उससे आगे कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन है, इसका दोनों ओर से बाह्यसूचीव्यास उनतीस लाख योजनप्रमाण है। उससे आगे मानुषोत्तरपर्यन्त आठ-आठ लाख योजन मिलकर पुष्करार्ध द्वीप पर्यन्त बाह्यसूचीव्यास पैंतालीस लाख योजनप्रमाण है। यही मनुष्यक्षेत्र वाला ढाईद्वीप है। इन ढाईद्वीपों के मध्य में दो समुद्र होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर पुष्करार्ध द्वीप के आगे पुष्करवरसमुद्र है। उससे आगे चौथा वारुणीवर द्वीप है, पुन: उसे घेरकर वारुणीवर समुद्र है। इसी प्रकार आगे क्रम से पांचवाँ क्षीरवर द्वीप और क्षीरवर समुद्र है, छठा घृतवर द्वीप और घृतवर समुद्र है, सातवां क्षौद्रवर द्वीप और क्षौद्रवर समुद्र है, आठवां नंदीश्वर द्वीप और नंदीश्वर समुद्र है। इस आठवें नंदीश्वर द्वीप में बावन अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, उनकी (उनमें विराजमान स्वयंसिद्ध जिनप्रतिमाओं की) पूजा करने के लिए प्रत्येक वर्ष में तीन बार—कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़मास में नंदीश्वर पर्व—आष्टान्हिक पर्व आते हैं।

ततः परे अरुणवरद्वीपः, अरुणवरसमुद्रः, अरुणाभासद्वीपः, अरुणाभाससमुद्रः, कुण्डलवरद्वीपः, कुण्डलवरसमुद्रः, शंखवरद्वीपः, शंखवरसमुद्रः, रुचकवरद्वीपः, रुचकवरसमुद्रः। अनयोः एकादश-त्रयोदशद्वीपयोः बहुमध्यभागे कुंडलवर-रुचकवर नामपर्वते स्तः। द्वयोः उपरि चतुश्चतुर्जिनालयाः सन्ति। अस्मात् त्रयोदशद्वीपाद्बहिर्जिनालयाः न सन्ति।

पुनः भुजगवरद्वीपः, भुजगवरसमुद्रः, कुशवरद्वीपः, कुशवरसमुद्रः, क्रौंचवरद्वीपः, क्रौंचवरसमुद्रश्च। इमे जंबूद्वीपादिषोडशद्वीपाः, लवणसमुद्रादिषोडशसमुद्राः, एतानि द्वात्रिंशद्नामान्येव आगमे दृश्यन्ते[1]। ततः परे असंख्यातद्वीपसमुद्रेषु अतीतेषु बाह्यभागस्यापि द्वात्रिंशद्नामानि उच्यन्ते—

अंतिमसमुद्रादभ्यन्तरभागे स्वयंभूरमणसमुद्रः, स्वयंभूरमणद्वीपः,अहीन्द्रवरसमुद्रः, अहीन्द्रवरद्वीपः, देववरसमुद्रः, देववरद्वीपः, यक्षवरसमुद्रः, यक्षवरद्वीपः, भूतवरसमुद्रः, भूतवरद्वीपः, नागवरसमुद्रः, नागवरद्वीपः,वैडूर्यसमुद्रः, वैडूर्यद्वीपः, वज्रवरसमुद्रः, वज्रवरद्वीपः, कांचनसमुद्रः, कांचनद्वीपः, रूप्यवरसमुद्रः, रूप्यवरद्वीपः, हिंगुलसमुद्रः, हिंगुलद्वीपः, अंजनवरसमुद्रः, अंजनवरद्वीपः, श्यामसमुद्रः, श्यामद्वीपः, सिंदूरसमुद्रः, सिंदूरद्वीपः, हरितालसमुद्रः, हरितालद्वीपः, मनःशिलसमुद्रः, मनःशिलद्वीपश्च षोडशसमुद्राः, षोडशद्वीपाश्च कथिताः सन्ति।

प्रारम्भे वारुणीवर-लवणाब्धि-घृतवर-क्षीरवरनामधेयेषु चतुःसमुद्रेषु स्वनामसदृशरसवज्जलानि तथा कालोद-पुष्करवर-स्वयंभूरमणसमुद्रेषु उदकरससदृशजलानि। शेषासंख्यातसमुद्रेषु इक्षुरसस्वादजलानि सन्ति।

इस आठवें द्वीप–समुद्र के बाद नवमां अरुणवर द्वीप और अरुणवर समुद्र है, दशवाँ अरुणाभास द्वीप और अरुणाभास समुद्र है, ग्यारहवाँ कुण्डलवर द्वीप और कुण्डलवर समुद्र है, बारहवाँ शंखवर द्वीप और शंखवर समुद्र है, तेरहवाँ रुचकवर द्वीप और रुचकवर समुद्र है। इन ग्यारहवें और तेरहवें दोनों द्वीपों के बीचों बीच में वलयाकार अपने–अपने द्वीप वाले नाम के कुण्डलवर और रुचकवर पर्वत हैं। उन दोनों पर्वतों पर चारों दिशाओं में चार–चार जिनालय हैं। इस तेरहवें द्वीप से बाहर कोई जिनालय नहीं हैं।

पुनः इनके आगे भुजगवर द्वीप और भुजगवर समुद्र है, पुनः कुशवर द्वीप और कुशवर समुद्र है, उसके बाद क्रौंचवर द्वीप और क्रौंचवर समुद्र है। ये जम्बूद्वीप आदि सोलह द्वीप और लवणसमुद्र आदि सोलह समुद्र हैं। इस प्रकार आगम में ये बत्तीस (३२) नाम ही देखे जाते हैं। इससे आगे पहले कहे गये असंख्यात द्वीप–समुद्रों में बाह्यभाग के बत्तीस नाम भी कहते हैं—

अंतिम समुद्र से अभ्यन्तर भाग में अर्थात् अंत से प्रारंभ करने पर स्वयम्भूरमणसमुद्र–स्वयंभूरमणद्वीप, अहीन्द्रवरसमुद्र–अहीन्द्रवरद्वीप, देववरसमुद्र–देववरद्वीप, यक्षवरसमुद्र–यक्षवरद्वीप, भूतवरसमुद्र–भूतवरद्वीप, नागवरसमुद्र–नागवरद्वीप, वैडूर्यसमुद्र–वैडूर्यद्वीप, वज्रवरसमुद्र–वज्रवरद्वीप, कांचनसमुद्र–कांचनद्वीप, रूप्यवरसमुद्र–रूप्यवरद्वीप, हिंगुलसमुद्र–हिंगुलद्वीप, अंजनवरसमुद्र–अंजनवरद्वीप, श्यामसमुद्र–श्यामद्वीप, सिंदूरसमुद्र–सिंदूरद्वीप, हरितालसमुद्र–हरितालद्वीप, मनःशिलसमुद्र–मनःशिलद्वीप ये सोलह समुद्र और सोलह द्वीप कहे गये हैं।

प्रारंभ के वारुणीवर, लवणोदधि, घृतवर एवं क्षीरवर इन चार समुद्रों में अपने नाम के समान रस वाला जल भरा होता है तथा कालोदधि, पुष्करवर और स्वयंभूरमण समुद्रों में उदक रस (स्वाभाविक जल के स्वाद से सहित) के समान जल है। शेष असंख्यात समुद्रों में इक्षुरस के स्वाद के सदृश जल है।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ५।।

कर्मभूमिसंबद्ध-लवणोद-कालोद-अन्त्यस्वयंभूरमणसमुद्रेषु जलचरजीवाः सन्ति शेषसमुद्रेषु न सन्ति[१]।

जंबूद्वीप-लवणोदधिप्रभृतिद्वीपसमुद्रानां अधिपती द्वौ व्यन्तरदेवौ स्तः। यथा—जंबूद्वीपस्याधिपती आदरानादरदेवौ। लवणोदस्य प्रभासप्रियदर्शनौ द्वौ देवौ। धातकीखण्डस्य प्रिय-दर्शनौ द्वौ देवौ। कालोदधि-अधिपती कालमहाकालदेवौ। पुष्करवरद्वीपस्य पद्मपुण्डरीकौ देवौ स्तः। मानुषोत्तरपर्वतस्य चक्षु-सुचक्षुनामानौ द्वौ देवौः स्तः इत्यादयः[२]।

जंबूद्वीपः—एकलक्षयोजनविस्तृते जंबूद्वीपे दक्षिणादारभ्य भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवत-ऐरावतनामानि सप्तक्षेत्राणि सन्ति। हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो नाम्ना षट्कुलाचलाः सन्ति। जंबूद्वीपे नवत्यधिकशतेन भागे कृते यल्लब्धं तत् षड्विंशत्यधिपंचशतयोजनानि, षट्एकोनविंशतिभागाः प्रमाणं भरतक्षेत्रस्य विष्कंभः। ततो द्विगुणा द्विगुणाः विदेहक्षेत्रपर्यंतं पुनश्च ततोऽर्धार्धप्रमाणानि पर्वतक्षेत्राणि।

अस्य जंबूद्वीपस्य बहुमध्यभागे सुदर्शनमेरुपर्वतोऽस्ति। सुमेरोः पूर्वपश्चिमयोः भागयोः पूर्वपश्चिमविदेहाः, दक्षिणोत्तरयोः देवकुरु-उत्तरकुरु भोगभूमी स्तः। विदेहेषु षोडशवक्षाराः, द्वादशविभंगानद्यः, एषामासां च निमित्तेन विदेहस्य द्वात्रिंशद् भागाः संजाताः। एषु द्वात्रिंशद्विदेहेषु विजयार्धैः गंगासिंधुरक्तारक्तोदानदीभिश्च षट्खण्डाः भवन्ति प्रत्येकं क्षेत्रेषु। तत्रापि पंच पंच म्लेच्छखण्डाः एकैकः आर्यखण्डश्च। तत्र शाश्वतकर्मभूमयः सन्ति।

कर्मभूमि से संबद्ध लवणसमुद्र, कालोदधि एवं अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में ही जलचर जीव पाये जाते हैं, शेष समुद्रों में नहीं।

जम्बूद्वीप-लवणसमुद्र आदि द्वीप-समुद्रों के अधिपति दो व्यंतर देव हैं। जैसे—जम्बूद्वीप के आदर और अनादर ये दो अधिपति देव हैं। लवण समुद्र के प्रभास और प्रियदर्शन ये दो अधिपति देव हैं। धातकीखण्ड द्वीप के प्रिय और दर्शन ये दो अधिपति देव हैं। कालोदधि के अधिपति काल और महाकाल नाम के दो देव हैं। पुष्करवरद्वीप के पद्म और पुण्डरीक ये दो देव हैं। मानुषोत्तर पर्वत के चक्षु और सुचक्षु नाम के दो अधिपति देव हैं इत्यादि वर्णन आगम से समझना चाहिए।

अब जम्बूद्वीप का वर्णन करते हैं—एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप में दक्षिण दिशा से प्रारंभ करके भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत् और ऐरावत नाम के सात क्षेत्र हैं। हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि, शिखरी नाम वाले छह कुलाचल (कुलपर्वत) हैं। जम्बूद्वीप के विस्तार में एक सौ नब्बे (१९०) का भाग देने पर जो लब्ध आवे, वह ५२६ (६/१९) योजनप्रमाण भरतक्षेत्र का विस्तार है। उससे दुगुना-दुगुना प्रमाण-विस्तार आगे के पर्वत और क्षेत्रों का (विदेहक्षेत्रपर्यन्त) है, पुनश्च विदेह क्षेत्र से आगे उत्तरदिशा के क्षेत्र और पर्वत आधे-आधे प्रमाण वाले हैं।

उस जम्बूद्वीप के बहुमध्यभाग में सुदर्शनमेरु नामका पर्वत है। इसे सुमेरुपर्वत के नाम से भी जाना जाता है। इस सुमेरुपर्वत के पूर्व और पश्चिम भाग में पूर्व-पश्चिम विदेहक्षेत्र हैं, दक्षिण और उत्तर भाग में देवकुरु-उत्तरकुरु नाम की भोगभूमियाँ हैं। विदेहक्षेत्रों में सोलह वक्षार पर्वत हैं, बारह विभंगा नदियाँ हैं। उन पर्वत और नदियों के निमित्त से विदेह के बत्तीस भाग—भेद हो जाते हैं। उन बत्तीस विदेहक्षेत्रों में विजयार्ध पर्वतों से गंगा-सिंधु, रक्ता-रक्तोदा नदियों से प्रत्येक विदेहक्षेत्र में छह-छह खण्ड हो जाते हैं। वहाँ भी पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्ड और एक-एक आर्यखण्ड होते हैं, वहाँ शाश्वत कर्मभूमियाँ रहती हैं।

१-२. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ५।

भरतक्षेत्रषट्खण्डाः—भरतक्षेत्रस्य मध्ये दक्षिणोत्तरायतः त्रिश्रेणिसहितो विजयार्धपर्वतोऽस्ति। हिमवत्पर्वतस्य पद्मसरोवरात् गंगा-सिंधू नद्यौ निर्गत्य नीचैः गंगा-सिंधुकुंडयोः पतित्वा विजयार्धस्य गुफायां प्रविश्य भरतक्षेत्रे वहन्त्यौ लवणसमुद्रे प्रविशतः। एवं विजयार्धपर्वतेन गंगासिंधुनदीभ्यां चास्य भरतक्षेत्रस्य षट्खण्डाः संजाताः। एवमेव ऐरावतक्षेत्रेऽपि ज्ञातव्यं।

अनयोर्द्वयोर्भरतैरावतक्षेत्रयोरार्यखण्डयोः षट्कालपरिवर्तनं वर्तते। उक्तं च तत्त्वार्थसूत्रमहाग्रन्थे—

''भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।[१] अतः एतयोर्द्वयोरार्यखण्डयोः त्रिषु कालेषु भोगभूमिव्यवस्था, त्रिषु कालेषु च कर्मभूमिव्यवस्था वर्तते। उभे अपि अशाश्वत्यौ एव।

विदेहक्षेत्राणां भरतैरावतयोश्च मिलित्वा कर्मभूमयश्चतुस्त्रिंशद् भवन्ति। संप्रति भरतक्षेत्रस्यार्यखण्डे पंचमकाले वयं निवसामः अस्मिन् जंबूद्वीपे।

चतुर्दशमहानद्यः—हिमवदादिषट्कुलपर्वतानामुपरि पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ-केसरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीकाख्याः षट् सरोवराः सन्ति। प्रथम-षष्ठसरोवराभ्यां तिस्रः तिस्रः नद्यः निर्गच्छन्ति, शेषचतुःसरोवरेभ्यः द्वे द्वे नद्यौ निर्गच्छतः। एवं चतुर्दशमहानद्यः जंबूद्वीपे। तासां नामानि—गंगासिंधु-रोहितरोहितास्या-हरित्हरिकान्ता-सीतासीतोदा-नारीनरकान्ता-सुवर्णकूलारूप्यकूला-रक्तारक्तोदाः सन्ति।

भरतक्षेत्र के छह खण्डों का विवरण—

भरतक्षेत्र के मध्य में दक्षिण और उत्तर में लम्बे ऐसे तीन श्रेणियों से सहित एक विजयार्ध पर्वत है। हिमवन् पर्वत के पद्म सरोवर से गंगा-सिंधु ये दो नदियाँ निकलकर नीचे गंगा-सिंधु कुण्ड में गिरकर पुनः विजयार्ध पर्वत की गुफा में प्रवेश करके भरतक्षेत्र में बहती हुई लवणसमुद्र में प्रवेश करती हैं। इस प्रकार विजयार्ध पर्वत एवं गंगा-सिंधु नदियों के निमित्त से भरतक्षेत्र के छह खण्ड हो जाते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था ऐरावत क्षेत्र में भी जानना चाहिए।

इन दोनों भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्डों में षट्काल का परिवर्तन होता है।

तत्त्वार्थसूत्र महाग्रंथ में कहा है—

सूत्रार्थ—**भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह-छह कालों में मनुष्यों की आयु-काय-भोगोपभोग सम्पदा-वीर्य-बुद्धि आदि की वृद्धि और ह्रास होता है।**

अतः इन दोनों आर्यखण्डों में प्रारंभिक तीन कालों में भोगभूमि की व्यवस्था रहती है तथा अन्त के तीन कालों में कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है। दोनों जगह अशाश्वत व्यवस्था ही पाई जाती है अर्थात् न तो शाश्वत कर्मभूमि रहती है और न शाश्वत भोगभूमि पाई जाती है, प्रत्युत् परिवर्तन के साथ दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ देखी जाती हैं।

इस प्रकार बत्तीस विदेह क्षेत्रों की और भरत-ऐरावत क्षेत्रों की कुल मिलाकर ३४कर्मभूमियाँ होती हैं। वर्तमान में हम सभी इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में निवास कर रहे हैं, यहाँ इस समय पंचमकाल चल रहा है।

चौदह महानदियों का विवरण—हिमवन् आदि षट्कुलाचल पर्वतों के ऊपर पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरि, महापुंडरीक और पुण्डरीक नाम के छह सरोवर हैं। उनमें से प्रथम और छठे सरोवर से तीन-तीन नदियाँ निकलती हैं तथा शेष चार सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकलती हैं। इस प्रकार जंबूद्वीप में चौदह महानदियाँ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गंगा-सिंधु, रोहित्-रोहितास्या, हरित्-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकांता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ.३, सूत्र २८।

भरतादिसप्तक्षेत्रेषु आसु द्वे द्वे नद्यौ वहतः।

द्वयो र्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः।।२१।। शेषास्त्वपरगाः।।२२।।

इति सूत्राभ्यां गंगा-रोहितादिनद्यः पूर्वभागे लवणसमुद्रे प्रविशन्ति, शेषाः सिन्धुरोहितास्यादयः पश्चिमसमुद्रे च।

भोगभूमयः—जंबूद्वीपे हैमवत-हैरण्यवत्-हरि-रम्यक्-देवकुरुउत्तरकुरुक्षेत्रयोः क्रमशः द्वयोर्द्वयोः क्षेत्रयोः जघन्यमध्यमोत्तमाः भोगभूमयः सन्ति, इमाः शाश्वत्यः। जंबूवृक्षः—जंबूद्वीपे मेरोरीशानभागे उत्तरकुरुक्षेत्रे जंबूवृक्षः। देवकुरु भोगभूमौ नैऋत्यकोणे शाल्मलीवृक्षः इमौ द्वौ अपि वृक्षौ पृथिवीकायिकरत्ननिर्मितौ स्तः।

विजयार्धपर्वताः—चतुस्त्रिंशत्कर्मभूमिषु एकैकविजयार्धपर्वताः अतः चतुस्त्रिंशद्विजयार्द्धपर्वताः।

गजदन्ताः—मेरोर्विदिक्षु एकैकगजदन्ताः अतश्चत्वारः गजदन्ताः। एवमेव जंबूद्वीपे द्विशतकांचनगिरयः, सीतासीतोदानद्योः उभयतटयोः सन्ति। चत्वारो यमकगिरयः, दशदिग्गजपर्वताः, चतुस्त्रिंशद् वृषभाचलाः, चत्वारो नाभिगिरयश्च तथा एकः सुमेरुः, षट्कुलाचलाः, षोडश वक्षाराः, चतुस्त्रिंशद्विजयार्द्धाश्च इमे सर्वे मिलित्वा एकादशाधिकत्रिशतपर्वताः सन्ति।

जंबूद्वीपस्याकृत्रिमजिनालयाः—अस्मिन् प्राग्द्वीपे-सुदर्शनमेरोः भद्रसालनंदनसौमनसपांडुकवनसंबंधिनः

भरत आदि क्षेत्रों में इनमें से दो-दो नदियाँ बहती हैं। तत्त्वार्थसूत्र में कहा भी है—

सूत्रार्थ—इन दो-दो नदियों में से पहली नदी पूर्व लवण समुद्र में प्रवेश करती है।।२१।।

दूसरी नदियाँ—युगल नामों में से बाद वाली नदी पश्चिम समुद्र में जाती हैं।।२२।।

इन दोनों सूत्रों के अनुसार उपर्युक्त चौदह महानदियों में से गंगा नदी, रोहित् नदी आदि पूर्व-पूर्व में कथित सात नदियाँ लवणसमुद्र के पूर्वभाग में प्रवेश करती हैं और इनसे अतिरिक्त शेष सिंधु नदी, रोहितास्या नदी आदि लवणसमुद्र के पश्चिम भाग में प्रवेश करती हैं।

भोगभूमियों का वर्णन— जम्बूद्वीप में हैमवत्, हैरण्यवत्, हरि, रम्यक् इन चार क्षेत्रों में तथा देवकुरु और उत्तरकुरु में क्रमश: दो-दो क्षेत्रों में जघन्य, मध्यम और उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है अर्थात् हैमवत् और हैरण्यवत् क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि, हरि और रम्यक् क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि और देवकुरु एवं उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि हैं। ये सभी शाश्वत भोगभूमियाँ हैं, यहाँ कभी कर्मभूमि नहीं होती है।

जम्बूवृक्ष— जम्बूद्वीप में सुमेरुपर्वत के ईशान कोण (पूर्व और उत्तर दिशा के बीच की विदिशा) में उत्तरकुरु क्षेत्र में जम्बूवृक्ष है और देवकुरु भोगभूमि के नैऋत्य कोण (दक्षिण-पश्चिम का मध्यभाग) में शाल्मली वृक्ष है। ये दोनों वृक्ष पृथिवीकायिक रत्नों से निर्मित अनादिनिधन हैं।

विजयार्ध पर्वतों का विवरण— जम्बूद्वीप में चौंतीस कर्मभूमि क्षेत्रों में (भरत-ऐरावत क्षेत्र तथा बत्तीस विदेहक्षेत्रों में) सभी जगह एक-एक विजयार्ध पर्वत हैं, अत: कुल ३४ विजयार्ध पर्वत हैं।

गजदंत पर्वत— सुमेरु पर्वत की चार विदिशाओं में चार गजदंत पर्वत हैं।

इसी प्रकार जम्बूद्वीप में दो सौ कांचनगिरि नामक पर्वत हैं, ये सीता और सीतोदा नदी के दोनों तटों पर स्थित हैं। चार यमकगिरि हैं, दश दिग्गज पर्वत हैं, चौंतीस वृषभाचल पर्वत हैं, चार नाभिगिरि हैं तथा एक सुमेरुपर्वत है, छह कुलाचल हैं, सोलह वक्षार पर्वत हैं, चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में सब मिलकर कुल तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं।

जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय— जम्बूद्वीप नामके इस प्रथम द्वीप में सुदर्शन मेरु के भद्रशाल,

षोडश, जंबू-शाल्मलिवृक्षयोः द्वौ, गजदन्तानां चतुर्णां चत्वारः, षोडशवक्षारपर्वतानां षोडश, चतुस्त्रिंशद्विजयार्धानां चतुस्त्रिंशद्, षट्कुलाचलानां षट्, इमे सर्वे जिनालयाः अष्टसप्ततिः सन्ति।

धातकीखण्डे दक्षिणभागे-उत्तरभागे च द्वौ इष्वाकारगिरी स्तः। अनयोः निमित्तेन पूर्वधातकी-पश्चिमधातकीभागौ द्वौ भवतः।

अनयोः उभयधातकीखण्डद्वीपयोः जंबूद्वीपवत् सर्वरचनाः वर्तन्ते, विशेषेण तु मेरुपर्वतौ विजयाचलाख्यौ। धातकीवृक्षौ शाल्मलिवृक्षौ च। एतन्नाम्ना एवान्तरं न तु संख्यायाः। एवमेव पुष्करार्धद्वीपे द्वौ इष्वाकारौ स्तः। अतः धातकीपुष्करार्धयोः चत्वारः पर्वताः अधिकाः जाताः।

मानुषोत्तरपर्वतस्योपरि चत्वारो जिनालयाः।

सार्धद्वयद्वीपजिनालयसंख्या—जंबूद्वीपस्य अष्टसप्ततिः, धातकीखण्डस्य अष्टपंचाशदधिकएकशतं, पुष्करार्धस्य अष्टपंचाशदकिएकशतं, मानुषोत्तरस्य चत्वारश्चेति सर्वे मिलित्वा अष्टानवत्यधिकत्रिशतजिनालयाः सन्ति।

अस्मिन् सार्धद्वयद्वीपे सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिषु यदि कदाचिद् अधिकतमाः तीर्थंकराः भवेयुः तर्हि सप्तत्यधिकशततीर्थंकराः भवितुमर्हन्ति।

सार्धद्वयद्वीपेषु मानवाः—

विजयार्धपर्वतानां सप्तत्यधिशतानां उभयश्रेण्योः विद्याधराः निवसन्ति। ते विद्याधराः मनुष्याः। भोगभूमिषु अपि भोगभूमिजाः मनुष्याः, सार्धद्वयद्वीपेषु त्रिंशद्भोगभूमयः। षण्णवतिकुभोगभूमिषु

नंदन, सौमनस और पाण्डुकवनों के चार-चार चैत्यालयसंबंधी सोलह (१६) चैत्यालय, जम्बू-शाल्मलि वृक्षसंबंधी दो (२) चैत्यालय, गजदंतों के चार (४) चैत्यालय, सोलह वक्षार पर्वतों के सोलह (१६) चैत्यालय, चौंतीस विजयार्ध पर्वतों के चौंतीस (३४) चैत्यालय और षट्कुलाचल पर्वतों के छह (६) चैत्यालय। ये सभी कुल मिलाकर १६+२+४+१६+३४+६=७८ अकृत्रिम जिनालय हैं।

द्वितीय धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिण और उत्तर भाग में दो इष्वाकार पर्वत हैं। उनके निमित्त से धातकीखण्ड के दो भाग हो जाते हैं—पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकीखण्ड। धातकीखण्ड द्वीप के इन दोनों भागों में जम्बूद्वीप के समान ही सम्पूर्ण रचना बनी हुई है, विशेषता यह है कि यहाँ पूर्वधातकीखण्ड में विजयमेरु तथा पश्चिमधातकीखण्ड में अचलमेरु, ये दो मेरु पर्वत इस द्वीप में पाये जाते हैं। इस द्वीप में धातकी और शाल्मली वृक्ष हैं। इनमें केवल नामका अन्तर है, संख्या का अंतर नहीं है। इसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में, दो इष्वाकार पर्वत हैं। इसलिए धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप में दो-दो इष्वाकारों के निमित्त से चार पर्वत अधिक हो जाते हैं पुनः आगे मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर चार जिनालय हैं।

ढाईद्वीप के जिनालयों की संख्या— जम्बूद्वीप के अठत्तर (७८), धातकीखण्ड के एक सौ अट्ठावन (१५८), पुष्करार्ध द्वीप के एक सौ अट्ठावन (१५८) और मानुषोत्तर के चार (४) ये सभी मिलकर तीन सौ अट्ठानवे (३९८) चैत्यालय ढाईद्वीप में होते हैं।

इस ढाईद्वीप में एक सौ सत्तर (१७०) कर्मभूमियों में यदि कदाचित् अधिकतम तीर्थंकर होवें, तो एक सौ सत्तर तीर्थंकर हो सकते हैं।

ढाईद्वीपों में होने वाले मनुष्य— एक सौ सत्तर विजयार्ध पर्वतों की उत्तर-दक्षिण दोनों श्रेणियों में विद्याधर रहते हैं। वे विद्याधर मनुष्य होते हैं। भोगभूमियों में भी भोगभूमिज मनुष्य हैं, ढाईद्वीपों में तीस भोगभूमियाँ हैं। छियानवे कुभोगभूमियों में कुभोगभूमिज मनुष्य होते हैं तथा एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में

कुभोगभूमिजाः मानवाः, तथा च सप्तत्यधिशतकर्मभूमिषु कर्मभूमिजाः मनुष्याः। पंचाशदधिक-अष्टशतम्लेच्छखण्डेषु म्लेच्छा मनुष्याः। इमे सर्वे मानवाः मनुष्यजातिनामकर्मोदयत्वात् सदृशाः अपि विसदृशाः एव, तत्तद्भूमिनिमित्तत्वात्। एतेषां विस्तरः तिलोयपण्णत्तिग्रन्थाद् ज्ञातव्यः।

कुमानुषाः क्व सन्ति?

लवणसमुद्रस्य उभयतटयोः अभ्यन्तरभागे अष्टचत्वारिंशद् अंतर्द्वीपाः, कालोदधिउभयतटयोः अभ्यंतरभागे च अष्टचत्वारिंशद् अंतर्द्वीपाः सन्ति। एषु उत्पन्ना मनुष्याः केचिद् एकपादाः, केचित् पुच्छिणः, केचित् शृंगिणः, केचित् मूकाः, केचिन्मत्स्यादिमुखाश्च। इमे युगलौ एव जायेते, युगलौ एव म्रियेते। तत्र केचित् मधुरमृत्तिकां भक्षयन्ति, केचित् वृक्षाणां फलादीनां भोजनं कुर्वन्ति। इमे कुत्सितपुण्यदानादिनिमित्तेन तत्र उत्पद्यन्ते।

लंकादिद्वीपाः क्व सन्ति?

लवणसमुद्रे गौतमद्वीपः हंसद्वीपः वानरद्वीपः, लंकाद्वीपश्चादय अनेके द्वीपाः सन्ति।

वर्तमानकालेऽत्र आर्यखंडे लंकादयः द्वीपाः, गंगासिंध्वादिनद्यः, हिमवदादिपर्वताः न सन्ति। अत्र केवलं नामधारिणः सन्ति न चाकृत्रिमाः।

कर्मभूमयः क्व क्व सन्ति?

सार्धद्वयद्वीपेषु सप्तत्यधिशतानि कर्मभूमयः। स्वयंप्रभपर्वताद्बहिः अर्धस्वयंभूरमणद्वीपे स्वयंभूरमणसमुद्रे च कर्मभूमिजाः सन्ति। विशेषेण तु सार्धद्वयद्वीपेषु मनुष्याः तिर्यञ्चश्च कर्मभूमिजाः, किन्तु स्वयंप्रभपर्वताद्बहिर्भागे कर्मभूमिजाः तिर्यञ्च एव न मनुष्याः। मनुष्यास्तु मानुषक्षेत्रे एव। सर्वे कर्मभूमिजतिर्यञ्चः संयतासंयताः अपि भवितुमर्हन्ति।

कर्मभूमिज मनुष्य होते हैं। आठ सौ पचास म्लेच्छ खण्डों में म्लेच्छ मनुष्य होते हैं। ये सभी मनुष्य मनुष्यजातिनामकर्म के उदय से सदृश होते हुए भी उन-उन भूमियों के निमित्त से विसदृश भी होते हैं। इन सभी का विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से जानना चाहिए।

कुमानुष कहाँ होते हैं?

लवणसमुद्र के दोनों तटों के अभ्यन्तर भाग में अड़तालीस (४८) अन्तर्द्वीप हैं, कालोदधि के दोनों तटों के अभ्यन्तर भाग में अड़तालीस (४८) अन्तर्द्वीप हैं। उनमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई एक पैर वाले, कोई पूंछ वाले, कोई सींग वाले, कोई मूक और कोई मछली आदि मुख वाले होते हैं। ये सभी मनुष्य युगलियारूप में ही जन्म लेते हैं और युगलिया ही मरते हैं। वहाँ कोई मीठी मिट्टी खाते हैं, कोई वृक्षों के फल आदि का भोजन करते हैं। ये मनुष्य पूर्व जन्म के कुत्सित पुण्य-कुत्सित दानादि के निमित्त से वहाँ जन्म लेते हैं।

लंका आदि द्वीप कहाँ हैं?

लवण समुद्र में गौतमद्वीप, हंसद्वीप, वानरद्वीप और लंकाद्वीप आदि अनेक द्वीप हैं। वर्तमानकाल में यहाँ आर्यखण्ड में लंका आदि द्वीप, गंगा-सिंधु आदि नदियाँ और हिमवन् आदि पर्वत नहीं हैं। यहाँ केवल नामधारी जो पर्वत-नदी-द्वीप आदि हैं, वे अकृत्रिम नहीं हैं।

कर्मभूमियाँ कहाँ-कहाँ हैं?

ढाईद्वीपों में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं। स्वयंप्रभ पर्वत से बाहर अर्धस्वयंभूरमण द्वीप में और स्वयंभूरमण समुद्र में कर्मभूमि हैं। विशेषरूप से ढाई द्वीपों में मनुष्य और तिर्यंच कर्मभूमिज हैं किन्तु स्वयंप्रभ पर्वत से बाहर कर्मभूमिज तिर्यंच ही रहते हैं, वहाँ मनुष्य नहीं होते हैं। मनुष्य तो केवल मानुषक्षेत्र में ही होते हैं। वे सभी कर्मभूमिज तिर्यंच संयतासंयत भी हो सकते हैं।

भोगभूमयः क्व क्व सन्ति?

सार्धद्वयद्वीपेषु त्रिंशद् भोगभूमयः। षण्णवतिकुभोगभूमयः। आसु भूमिषु मनुष्याः कुमनुष्याश्च भवन्ति। तथा च सार्धद्वयद्वीपाद् बहिः स्वयंप्रभपर्वताद् अभ्यंतरे च असंख्यातद्वीपेषु जघन्यभोगभूमयः उच्यन्ते। आसु युगलौ तिर्यञ्चौ जायेते सार्धमेव म्रियेते च। ते चापि भोगभूमिजाः उच्यन्ते। केषांचिदाचार्याणामभिप्रायेण इमे तिर्यञ्चः मृत्वा स्वर्गं लभन्ते। सर्वत्रापि भोगभूमिषु विकलत्रयाः न भवन्ति। मध्ये असंख्यातसमुद्रेषु जलचराः अपि नोत्पद्यन्ते।

सार्धद्वयद्वीपेषु अन्याः काः विशेषताः दृश्यन्ते?

सार्धद्वयद्वीपेषु सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिषु अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः पंचपरमेष्ठिनो भवन्ति। जिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयाश्च भवन्ति। तीर्थंकराणां पंचकल्याणकभूमयः अन्येषां भरतादिमहापुरुषाणां तपःकैवल्यनिर्वाणभूमयः अतिशयक्षेत्राणि च। मुनि-आर्यिका-क्षुल्लक-क्षुल्लिका-श्रावक-श्राविकादयः चतुर्विधसंघाः च दृश्यन्ते।

अष्टपंचाशदधिचतुःशतजिनालयाः क्व पर्यन्ताः सन्ति?

मध्यलोकसंबंधिनः इमे जिनालयाः त्रयोदशद्वीपपर्यन्ताः सन्ति। यथा—मानुषक्षेत्रस्य अष्टनवत्यधिक-त्रिशतजिनालयाः, नंदीश्वरद्वीपस्य द्वापंचाशद्, कुंडलवरपर्वतस्य चत्वारः, रुचकवरपर्वतस्य चत्वारश्च इमे सर्वे मिलित्वा अष्टपंचाशदधिकचतुःशतजिनालयाः सन्ति।

ख्रिष्टाब्दे षट्सप्तत्यधिकैकोनविंशतिशततमे, वीराब्दे द्व्यधिकपंचविंशतिशततमे 'खतौली' नामग्रामे

भोगभूमियाँ कहाँ-कहाँ हैं?

ढाई द्वीपों में तीस भोगभूमियाँ हैं। छियानवे कुभोगभूमियाँ हैं। इन भूमियों में मनुष्य और कुमानुष होते हैं तथा ढाई द्वीप से बाहर और स्वयंप्रभ पर्वत के अभ्यंतर भाग में असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमियाँ कही गई हैं। इन जघन्य भोगभूमियों में युगलिया तिर्यंच उत्पन्न होते हैं, जो एक साथ ही मरण को भी प्राप्त करते हैं और वे भी भोगभूमिज ही कहलाते हैं। कुछ आचार्यों के अभिप्रायानुसार ये जीव मरकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। सर्वत्र इन भोगभूमियों में विकलत्रय जीव नहीं होते हैं। मध्यवर्ती असंख्यात समुद्रों में जलचर जीव नहीं उत्पन्न होते हैं।

ढाईद्वीपों में अन्य कौन सी विशेषताएँ देखी जाती हैं?

ढाई द्वीपों की एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पंच-परमेष्ठी होते हैं। जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय होते हैं। तीर्थंकरों की पंचकल्याणक भूमियाँ, अन्य भरत आदि महापुरुषों की तप, केवलज्ञान एवं निर्वाणभूमियाँ और अतिशय क्षेत्र हैं। मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका, श्रावक-श्राविका आदिरूप चतुर्विध संघ भी ढाई द्वीपों के अंदर ही विचरण करते हैं।

चार सौ अट्ठावन जिनालय कहाँ तक हैं?

मध्यलोकसंबंधी ये सभी चार सौ अट्ठावन जिनालय तेरहद्वीपों तक ही हैं। जैसे—मनुष्य क्षेत्र के तीन सौ अट्ठानवे (३९८) जिनालय, नंदीश्वर द्वीप के बावन (५२), कुण्डलवर पर्वत के चार (४) और रुचकवर पर्वत के चार (४) ये सभी मिलकर ३९८+५२+४+४=४५८ चार सौ अट्ठावन जिनालय हैं।

ईसवी सन्-संवत्सर उन्नीस सौ छियत्तर (१९७६), वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ दो (२५०२) में खतौली नामक ग्राम में (जिला-मुजफ्फरनगर, उ.प्र.) वर्षायोग के अन्तर्गत मैंने मातृभाषा—हिन्दी भाषा में

वर्षायोगे मया इन्द्रध्वजविधानं मातृभाषायां रचितं, तस्मिन् विधाने एतेषां मध्यलोकसंबंधि-अष्टपंचाशदधिकचतु:शतजिनालयानां एकोनपंचाशत् अथवा सिद्धपूजासहित-पंचाशत्पूजाः सन्ति। एतत्पूजाविधानं भारतवर्षे सर्वत्र सर्वतोमुखीप्रभावनामवाप।

जंबूद्वीपरचना—

शांतिकुन्थु-अरतीर्थंकरत्रयजन्मभूमि-हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे मम प्रेरणया जंबूद्वीपरचना संजाता। वीराब्दे पंचविंशतिशततमे दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थानस्य कार्यकर्तृभिः श्रावकैः अस्य जंबूद्वीपस्य निर्माणमारभ्य एकादशाधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे जंबूद्वीपजिनबिम्बप्रतिष्ठापनामहामहोत्सवेन सह महत्या प्रभावनया च पंचकल्याणकप्रतिष्ठामहोत्सवः कारितः। अस्मात् महोत्सवात् प्राक् जंबूद्वीपज्ञानज्योतिरथप्रवर्तनमपि पंचत्रिंशद्दिनन्यूनत्रिवर्षपर्यंतं भारतवर्षे बभूव।

संप्रति प्रतिदिनं दर्शनार्थिनः तत्र हस्तिनापुरक्षेत्रे आगत्य इमं जंबूद्वीपं विलोक्य हर्षातिरेकेण सहसा ब्रुवन्ति—''अहो! वयं स्वर्गलोके एव आगतवन्तः, धन्या वयं'' इत्यादि गद्गदवाणीं ब्रुवन्तः सन्तः जंबूद्वीपस्य दर्शनं कृत्वा सुमेरोः उपरि आरुह्य वंदनां कृत्वा च परमानन्दं लभन्ते, कथयन्ति च—एतादृशी सुंदरतमा रम्या रचना क्वापि नास्ति, इदं तीर्थं सर्वेषु तीर्थेषु सर्वोपरि श्रेष्ठं मनोहरं हृद्यं अतिशयकारि वर्तते।

तात्पर्यमेतत्—अस्मिन् ग्रन्थे पुनः पुनः तिर्यग्लोकस्य मानुषक्षेत्रस्य च कथनं आगच्छति अतः एतयोः ज्ञापनार्थं अत्र किंचित्प्रतिपादनं कृतं। विशेषजिज्ञासुभिः तिलोयपण्णत्ति-त्रिलोकसारादिग्रन्थानां स्वाध्यायः कर्तव्यः, इत्यलं विस्तरेणात्र।

''इन्द्रध्वज विधान'' नामक एक पूजा का काव्य ग्रंथ लिखा, उस विधान में इन सभी मध्यलोकसंबंधी चार सौ अट्ठावन जिनालयों की ४९ पूजाएँ अथवा सिद्ध पूजा सहित पचास (५०) पूजाएँ हैं। इस इन्द्रध्वज पूजा-विधान के द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष में सर्वत्र सर्वतोमुखी धर्मप्रभावना हुई और हो रही है।

जम्बूद्वीप रचना—तीर्थंकर श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ भगवान की जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र में मेरी प्रेरणा से जम्बूद्वीप की रचना का निर्माण हुआ है। वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ (२५००)-सन् १९७४ में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकर्ता श्रावकों ने इस जम्बूद्वीप का निर्माण प्रारंभ करके वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ ग्यारह (२५११)-सन् १९८५ में जम्बूद्वीप जिनबिंब प्रतिष्ठापना महामहोत्सव के साथ महती धर्मप्रभावनापूर्वक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न किया। इस महोत्सव से पूर्व जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का प्रवर्तन (तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा प्रवर्तित) भी पूरे भारतवर्ष में ३५ दिन कम तीन वर्ष तक (४ जून १९८२ से २८ अप्रैल १९८५ तक) हुआ। जिसके माध्यम से लाखों-लाख जनता ने अहिंसा, सदाचार, शाकाहार और व्यसनमुक्ति का संदेश प्राप्त किया।

अब उस हस्तिनापुर में प्रतिदिन हजारों दर्शनार्थी यात्री पहुँचकर जम्बूद्वीप रचना के दर्शन करके हर्षातिरेक से भावविभोर होकर सहसा कहने लगते हैं—अहो ! हम तो स्वर्गलोक में आ गये हैं, हम तो धन्य हो गये.....इत्यादि अनेक प्रकार से गद्गद होकर प्रशंसा के वचन बोलते हुए जम्बूद्वीप का दर्शन करके सुमेरु पर्वत के ऊपर चढ़कर वंदना करके परमानंद का अनुभव करते हैं और कहते हैं कि ऐसी सुन्दर रचना कहीं भी नहीं है। यह हस्तिनापुर तीर्थ सब तीर्थों में सर्वोपरि, श्रेष्ठ और मनोहर है तथा अतिशयकारी है।

तात्पर्य यह है कि इस ग्रंथ में पुनः पुनः तिर्यग्लोक और मानुषक्षेत्र का कथन आया है अतः दोनों विषयों का ज्ञान कराने हेतु यहाँ किंचित् प्रतिपादन किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए। इत्यलं विस्तरेण।

अधुना प्रमत्तसंयतादि अयोगिकेवलिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। अत्र द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य भण्यमाने अतीत-वर्तमानकालेषु 'लोकस्य असंख्यातभागः' इति भवति। पुनः पर्यायार्थिकनयावलम्ब्यमाने अस्ति विशेषः। वर्तमानकालमाश्रित्य पर्यायार्थिकनयेन प्ररूपणायां क्षेत्रवत्स्पर्शनं भवति। संप्रति अतीतकालमाश्रित्य पर्यायार्थिकनयप्ररूपणा क्रियते। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-तैजस-आहारसमुद्घातगतैः**

विशेषार्थ— यहाँ षट्खण्डागम के प्रथम खंड की इस चतुर्थ पुस्तक में स्पर्शनानुगम नामक अधिकार के आठवें सूत्र में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वरचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में प्रसंगोपात्त जैन भूगोल का सुन्दर प्रकरण देकर विषय का स्पष्टीकरण किया है। उसी के अन्तर्गत हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप रचना का वर्णन भी किया है, इससे पाठकों को सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि जम्बूद्वीप निर्माण की प्रेरणा प्रदान करने वाली, इन्द्रध्वज विधान की रचना करने वाली तथा इस ग्रंथ की संस्कृत टीका लिखने वाली ज्ञानमती माताजी एक ही हैं। उन्होंने ही सन् १९७४ में हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप रचना बनाने की प्रेरणा दी, सन् १९७६ में इन्द्रध्वज विधान की रचना करके जैनसमाज को जिनेन्द्रभक्ति करने हेतु एक बहुत सुन्दर उपहार प्रदान किया एवं उन्होंने ही सन् १९९५ से षट्खण्डागम सूत्रों पर सरल संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया, उसी के मध्य १९९६ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर वर्षायोग के अन्तर्गत इस टीका में करणानुयोग का वर्णन किया है। इन्हीं की प्रेरणा से हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप तीर्थ परिसर के अन्दर विशाल ६४×६४ फुट डायमीटर के गोल मंदिर में सन् २००७ में तेरहद्वीपों की रचना भी निर्मित हुई है। इस तेरहद्वीप रचना में मध्यलोक के ४५८ जिनमंदिर स्वर्णिम छवि को दर्शा रहे हैं। ''तेरहद्वीप जिनालय'' के नाम से यह जिनमंदिर सभी के लिए भूगोल ज्ञान में निमित्त बने तथा इसके दर्शन से भव्यात्मा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करें, यही मंगल भावना है।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली तक जिनों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सुगम है।

यहाँ द्रव्यार्थिक नय का आश्रय लेकर कथन करने पर अतीत और वर्तमानकाल में लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शन का क्षेत्र होता है पुनः पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन करने पर कुछ विशेषता है। उसमें से वर्तमानकाल का आश्रय करके पर्यायार्थिक नयसंबंधी स्पर्शनप्ररूपणा करने पर क्षेत्रप्ररूपणा के समान ही स्पर्शन का क्षेत्र है। अब अतीतकाल का आश्रय लेकर पर्यायार्थिकनयसंबंधी स्पर्शन की प्ररूपणा की जाती है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजसमुद्घात

चतुर्लोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः। कश्चिदाह—विक्रियादिऋद्धिप्राप्तैः मानुषक्षेत्रस्याभ्यन्तरे अप्रतिहतगमनैः ऋषिभिः अतीतकाले सर्वमपि मानुषक्षेत्रं स्पृश्यते इति 'मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः।' इति वचनं न घटते?

आचार्यः प्राह—नैष दोषः, उपरि योजनलक्षमात्रगमने संभवाभावात्।

मेरुमस्तकारोहणसमर्थानां ऋषीणां किमिति लक्षयोजनस्योपरि गमनं न संभवेत्? भवतु नाम मेरुपर्वतस्योर्ध्वप्रदेशे ऋषीणां गमनस्य शक्तिः किन्तु सर्वत्र गमनस्य नास्ति, 'मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः' इति आचार्यवचनस्यान्यथानुपपत्तेः। अथवा अतीतकाले लब्धिसंपन्नमुनिवरैः सर्वमपि मानुषक्षेत्रं स्पृश्यते, तस्य मानुषक्षेत्रव्यपदेशान्यथानुपपत्तेः।

स्वस्थाने पुनः मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागश्चैव स्पृष्टः।

यदि एवं, तर्हि पंचेन्द्रियतिरश्चां अपि पूर्ववैरिदेवानां प्रयोगात् योजनलक्षस्योपरि गमनं प्राप्नोति?

भवतु, न कोऽपि दोषः।

मारणान्तिकसमुद्घातगतैः प्रमत्तसंयतादिभिः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य असंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

और आहारकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवों ने सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है और मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि मानुषक्षेत्र के भीतर अप्रतिहत गमनशील विक्रियादि ऋद्धिप्राप्त ऋषियों ने अतीतकाल में संपूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग किया है, यह वचन घटित नहीं होता है?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उतने ऊपर एक लाख योजनप्रमाण गमन करने की संभावना नहीं है।

शंका—सुमेरुपर्वत के मस्तक (शिखर) पर चढ़ने में समर्थ ऋषियों के एक लाख योजन ऊपर गमन करने की संभावना क्यों नहीं है?

समाधान—सुमेरुपर्वत के ऊर्ध्वप्रदेश में ऋषियों के गमन करने की वह शक्ति भले ही होवे किन्तु मानुषक्षेत्र के भीतर एक लाख योजन ऊपर जाने की वह शक्ति सर्वत्र नहीं है, अन्यथा मनुष्यक्षेत्र के संख्यातवें भाग में, ऐसा आचार्यों का वचन नहीं बन सकता है। अथवा, अतीतकाल में विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिवरों ने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श किया है अन्यथा उसका मनुष्यक्षेत्र यह नाम नहीं बन सकता है। स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि संयतों ने मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग ही स्पर्श किया है।

शंका—यदि ऐसा है, तो पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का भी पूर्वभव के वैरी देवों के प्रयोग से एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है?

समाधान—यदि तिर्यंचों का ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो होवे, उसमें भी कोई दोष नहीं है। मारणान्तिक समुद्घातगत उन्हीं प्रमत्तसंयतादिकों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती मुनियों का मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा अथवा असंख्यातगुणा क्यों नहीं होता है?

कश्चिदाह—तैरेव संयतैः मारणान्तिकक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, ततः संख्यातगुणं असंख्यातगुणं वा किं न स्पृष्टं?

आचार्यः प्राह—न स्पृश्यते, ऊर्ध्ववृत्ते पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभे समपरिमंडलसंस्थिते सप्तरज्जुआयते सति तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो क्षेत्रं न भवति, संख्यातप्रतरांगुलमात्रश्रेणिप्रमाणत्वात्। न च पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभसंख्यातांगुलबाहल्यं संख्यातरज्ज्वायातकल्पवासिविमान-मात्रतिर्यग्रूपावस्थानं क्षेत्रमपि तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति, एतस्य पूर्वक्षेत्रात् संख्यातगुणहीनस्य तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागत्वविरोधात्।

विमानप्रतिष्ठित असंख्यातोपपादभवनसम्मुखप्रवर्तमानक्षेत्रेषु समुदितेषु किं न तद् भवति?

न भवति, श्रेण्याः असंख्यातभाग-असंख्यातयोजनविस्तृत क्षेत्रेषु गृहीतेषु अपि तदसंभवात्।

अस्मिन सूत्रे सयोगिकेवलिनां ग्रहणं न भवति, अग्रिमसूत्रे तेषां पृथक् ग्रहणत्वात्।

एवं षष्ठस्थले प्रमत्तादिमहामुनीनां स्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना सयोगिकेवलिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। वर्तमानकालं अतीतकालमपि आश्रित्य पर्यायार्थिकनयापेक्षया**

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि उसके ऊर्ध्ववृत्त पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ वाले, समपरिमंडल आकार से संस्थित और सात राजु आयत होने पर वह क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग नहीं होता है, क्योंकि वह क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलमात्र जगत्श्रेणी प्रमाण है और न संख्यात राजु आयत तथा कल्पवासी विमानों के प्रमाण तिर्यग्रूप से प्रवर्तमान उक्त जीवों का पैंतालीस लाख योजन विस्तार और संख्यात अंगुल बाहल्य वाला मारणान्तिक क्षेत्र भी तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग होता है, क्योंकि पूर्वोक्त क्षेत्र से संख्यातगुणे हीन इस क्षेत्र को तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मानने में विरोध आता है।

शंका—विमानों में प्रतिष्ठित असंख्यात उपपादशय्या वाले भवनों के सम्मुख प्रवर्तमान उक्त जीवों के समस्त मारणान्तिक क्षेत्र संयुक्त करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि श्रेणी के असंख्यातवें भाग तथा असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्रों के ग्रहण करने पर भी तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग प्राप्त होना असंभव है।

इस सूत्र में सयोगकेवलियों का ग्रहण नहीं होता है क्योंकि अगले सूत्र में उनका पृथक् कथन किया जा रहा है।

इस प्रकार छठे स्थल में प्रमत्तादि महामुनियों के स्पर्शन का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ। अब सयोगकेवली भगवन्तों का स्पर्शन बताने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली भगवन्तों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।।१०।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। वर्तमानकाल और अतीतकाल का भी आश्रय करके पर्यायार्थिकनय

क्षेत्रमिव स्पर्शनं। विशेषेण तु कपाटगतस्य पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनबाहल्यं जगत्प्रतरमेकं कपाटक्षेत्रं भवति। इदं कायोत्सर्गस्थ-केवलिनोऽपेक्षया वर्तते। अपरं समुपविष्टकेवलिनोऽपेक्षया कपाटक्षेत्रं नवतिलक्षयोजनबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति। एवं कपाटक्षेत्रे द्वे अपि मेलिते तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणं क्षेत्रं भवति। लोकपूरणसमुद्घाते सर्वोऽपि लोकः स्पृष्टः भवति।

तात्पर्यमेतत्—निजशुद्धस्वसंवेदनज्ञानेन अध्यात्मध्यानेन वा निजशुद्धबुद्धपरमात्मानं स्पृष्ट्वा केवलज्ञानं संप्राप्य निजातीन्द्रिय-अनंतकेवलज्ञानबलेन निजज्ञानरश्मिभिर्वा सर्वोऽपि लोकाकाशोऽलोकाकाशश्च स्पर्शनीयः अस्माभिरिति भावनया गुणस्थानेषु स्पर्शनानुगमो अध्येतव्यः।

एवं सप्तमस्थले सयोगिकेवलि-स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिभट्टारकविरचितषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमनामचतुर्थप्रकरणे धवलाटीकाप्रमुख-अनेकग्रन्थाधारेण जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका-गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्ता-मणिटीकायां गुणस्थानेषु स्पर्शनानुगमप्ररूपको प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

की अपेक्षा स्पर्श की प्ररूपणा भी क्षेत्र के समान है। विशेष बात यह है कि कपाट समुद्घातगत स्पर्शनक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाला एक जगत्प्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है। यह कायोत्सर्गस्थ केवली की अपेक्षा जानना और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवली के कपाट समुद्घात का क्षेत्र नब्बे लाख योजन बाहल्य वाले जगत् प्रतरप्रमाण कपाट समुद्घातसंबंधी स्पर्शन क्षेत्र होता है। इस प्रकार दोनों कपाट क्षेत्रों को मिला देने पर तिर्यग्लोक से संख्यात गुणा क्षेत्र हो जाता है।

लोकपूरण समुद्घात में सम्पूर्ण लोक का स्पर्श हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि निजशुद्धस्वसंवेदनज्ञान से अथवा अध्यात्म ध्यान के द्वारा निज शुद्ध-बुद्ध परमात्मा का स्पर्श करके केवलज्ञान को प्राप्त करके पुन: अपने अतीन्द्रिय-अनंत केवलज्ञान के बल से अथवा आत्मा से उत्पन्न ज्ञान की किरणों के द्वारा हम सभी को लोकाकाश तथा अलोकाकाश दोनों को स्पर्श करना चाहिए, ऐसी भावना से गुणस्थानों में स्पर्शनानुगम का अध्ययन करना चाहिए।

इस प्रकार सप्तमस्थल में सयोगकेवली के स्पर्शन को प्रतिपादित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली भट्टारक द्वारा विरचित षट्खण्डागम के प्रथम खंड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक प्रकरण में धवला टीका को प्रमुख करके तथा अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में गुणस्थानों में स्पर्शनानुगम का प्ररूपण करने वाला प्रथम महाधिकार पूर्ण हुआ।

अथ द्वितीयो महाधिकार:

मंगलाचरणं

ॐ नम: मंगलं कुर्यात्, ह्रीं नमश्चापि मंगलम्।
मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नम: सुमंगलम्।।१।।

नवमनारायणश्रीकृष्णस्य यस्मिन् तुंगीगिरौ अन्त्यसंस्कारो जात:। यश्च भाविकाले अत्र भरतक्षेत्रे अयोध्यायां 'श्रीनिर्मलभगवान्' नाम्ना षोडशतीर्थंकरो भविता। यस्य भ्रातान्तिमबलभद्रोऽपि तपश्चरणप्रभावेन स्वर्गो जगाम, अग्रे च तीर्थंकरो भूत्वा मोक्षं लप्स्यते, तं भाविनं षोडशतीर्थंकरं बलभद्रचरं भावितीर्थंकरं च वयं वन्दामहे।

अथ चतुर्भिरन्तराधिकारै: षट्चत्वारिंशत् सूत्रै: तावत् स्पर्शनानुगमे द्वितीयमहाधिकारे मार्गणासु गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकार: प्रारभ्यते। तत्र तावत् नरकगतौ स्थलत्रयेण द्वादशसूत्रै नरकगति नामान्तराधिकारस्य व्याख्यानं क्रियते। तत्रापि प्रथमस्थले नरकगतौ नारकाणां सामान्यतया स्पर्शनप्ररूपणाय ''आदेसेण'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनु द्वितीयस्थले प्रथमादिषट्पृथिवीषु नारकस्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''पढमाए'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत: परं तृतीयस्थले सप्तमपृथिवीनारकाणां स्पर्शनकथनेन ''सत्तमाए'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना नरकगतौ मिथ्यादृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११।।

अथ द्वितीय महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

'ॐ नम:' नाम का मंत्र सभी का मंगल करे, ''ह्रीं नम:'' मंत्र भी जगत का मंगल करे तथा मोक्ष प्राप्ति का बीजभूत ''अर्हं नम:'' महामंत्र विश्व के लिए मंगलकारी है।।१।।

जैनागम में वर्णित नवमें नारायण श्रीकृष्ण का जिस तुंगीगिरि पर्वत पर अंतिम संस्कार हुआ है। जो भविष्यत्काल में यहाँ जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी में ''श्री निर्मलनाथ' नामक के सोलहवें तीर्थंकर के रूप में जन्म लेंगे। जिनके भाई अंतिम बलभद्र ने भी तपश्चरण के प्रभाव से स्वर्ग प्राप्त किया और आगे तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। उन भावी सोलहवें तीर्थंकर एवं बलभद्रचर भावी तीर्थंकर की हम वंदना करते हैं।

अब यहाँ चार अन्तराधिकारों में छियालीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम नामक इस द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से सर्वप्रथम नरकगति में तीन स्थलों के द्वारा बारह सूत्रों में नरकगति नाम के अन्तराधिकार का व्याख्यान किया जा रहा है। उसमें भी प्रथम स्थल में नरकगति के नारकियों की सामान्यरूप से स्पर्शन प्ररूपणा करने हेतु ''आदेसेण'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में प्रथम आदि छह पृथिवियों में नारकियों का स्पर्शनक्षेत्र बताने हेतु ''पढमाए'' इत्यारि चार सूत्र हैं। पुन: तृतीयस्थल में सातवीं पृथिवी के नारकियों का स्पर्श करने वाले ''सत्तमाए'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब नरकगति में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आदेश से गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।११।।

सूत्रं सुगमं। वर्तमानकालापेक्षया क्षेत्रवद्भंगो भवति।

एतदेव स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतैः नारकैः मिथ्यादृष्टिभिः अतीतकाले चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणः स्पृष्टः।

विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकक्षेत्राणि अतीतकाले तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्राणि किं न भवन्ति इति चेत्?

न भवन्ति, इन्द्रक-श्रेणीबद्ध-प्रकीर्णकैर्बिलैः रुद्धसर्वक्षेत्रस्य तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागमात्रत्वात्।

इन्द्रक-श्रेणीबद्ध-प्रकीर्णकेषु संचरद्भिः नारकमिथ्यादृष्टिभिः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः किं न स्पृश्यते?

न स्पृश्यते, नारकाणां परक्षेत्रगमनाभावात्।

तर्हि, परक्षेत्रगमनाभावे विहारवत्स्वस्थानपदस्य अभावः प्रसृज्यते इति चेत्? न प्रसृज्यते, एकस्मिन् इंद्रके श्रेणीबद्धे प्रकीर्णके च संस्थितग्रामागार-बहुविध-बिलगमनसंभवात् एतत् विहारवत्स्वस्थानं भवति। अन्यच्च-

---

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का कथन भी क्षेत्र के समान भंगवाला होता है।

अब इन्हीं मिथ्यादृष्टि नारकियों का स्पर्श बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१२।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—अतीतकाल की अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियों के विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातसंबंधी क्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग मात्र क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकबिलों से रुद्ध सर्वक्षेत्र तिर्यग्लोक का असंख्यातवाँ भागमात्र ही होता है।

शंका—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकों में संचार करने वाले नारकी मिथ्यादृष्टियों ने तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग क्यों नहीं स्पर्श किया है?

समाधान—नहीं स्पर्श किया है, क्योंकि नारकियों का स्वक्षेत्र को छोड़कर परक्षेत्र में गमन नहीं होता है।

शंका—तब तो नारकियों का परक्षेत्र में गमन का अभाव मानने पर विहारवत्स्वस्थान का अभाव प्राप्त होता है?

समाधान—ऐसा नहीं समझना क्योंकि एक ही इन्द्रक श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरक में विद्यमान ग्रामों के आकार वाले बहुत प्रकार के बिलों में गमन संभव होने से विहारवत्स्वस्थानपद बन जाता है।

असंख्यातयोजनायाम-श्रेणीबद्ध-प्रकीर्णकनारकबिलान्यपि तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागमात्राण्येव भवन्ति।

मारणान्तिक-उपपादगतनारकमिथ्यादृष्टिभिः अतीतकाले किंचित् न्यूनः षट् चतुर्दशभागः स्पृष्टः। अत्र किञ्चि न्यूनस्य प्रमाणं देशोनत्रिसहस्रयोजनमस्ति।

अधुना सासादनानां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१३।।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः।**

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतैः सासादनसम्यग्दृष्टिनारकैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। तद्यथा-नारकाणां बिलानि संख्यातयोजनविस्तृतान्यपि सन्ति, असंख्यातयोजनविस्तृतान्यपि च। तत्र यद्यपि चतुरशीतिलक्षनारकावासा असंख्यातयोजनविस्तृता भवन्ति, तर्हि अपि सर्वक्षेत्रसमासः तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागश्चैव यथा भवति, तथा कथयिष्यामो नारकावासाः केऽपि परिमंडलाकाराः, केऽपि चतुरस्राः केऽपि तिस्रा, केऽपि पंचस्रा, केऽपि षट्कोणा। एते सर्वेऽपि समीकरणे कृते चतुष्कोणाः आवासाः असंख्यातलोकविस्तृताः भवन्ति। सकलनारकराशिना घनांगुलस्य संख्यातभागे गुणिते वर्तमानकाले नारकैः रुद्धक्षेत्रं भवति। वर्तमाने

दूसरी बात यह है कि असंख्यात योजन आयाम वाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक भी तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग मात्र वाले ही होते हैं।

मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदवाले नारकी मिथ्यादृष्टियों ने अतीतकाल में कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं। सो यहाँ पर कुछ कम का प्रमाण देशोन तीन हजार योजन समझना चाहिए।

अब सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कहने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि नारकियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१३।।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम पाँच बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१४।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। इनमें विशेष यह है कि स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों ने सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकार से है-नारकियों के बिल संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं। उनमें यद्यपि नारकियों के चौरासी लाख आवास यदि असंख्यात योजन विस्तृत भी होते हैं, तो भी उन समस्त नारकआवासों के क्षेत्र का योग तिर्यग्लोक का असंख्यातवाँ भाग जिस प्रकार से होता है, उस प्रकार से कहते हैं—

नारकियों के आवास कितने ही तो गोल आकार वाले होते हैं, कितने ही चतुष्कोण, कितने ही त्रिकोण, कितने ही पंचकोण और कितने ही नारकावास षट्कोण होते हैं। इन सभी आकारों वाले नारकावासों के समीकरण करने पर वे चतुरस्र और असंख्यातयोजन विस्तृत हो जाते हैं। उसमें से सम्पूर्ण नारकराशि से

नारकरुद्धनरकबिलभागात् अरुद्धभागः संख्यातगुणः इति संख्यातरूपैः गुणिते नारकाणां अतीतस्वस्थानक्षेत्रं भवति। तेन तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागत्वं न विरुध्यते।

एवं 'वा' शब्दसूचितस्य अर्थस्य प्ररूपणा कृता भवति।

सासादनस्य नरकगतौ नास्ति उपपादः, सूत्रप्रतिषिद्धत्वात्। मारणान्तिकगतैः देशोना पंच चतुर्दशभागा स्पृष्टाः।

कुतः एतत्?

सप्तमपृथिवीतः सासादनानां मारणान्तिककरणाभावात्।

एतत्कुतो ज्ञायते?

एतस्माच्चैव सूत्राद् ज्ञायते।

संप्रति सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यां कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं इति प्रश्ने सति उच्यते आचार्यदेवेन-

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकगतैः सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यां

घनांगुल के संख्यातवें भाग को गुणित करने पर प्राप्त हुआ क्षेत्र वर्तमानकाल में नारकियों से रुद्ध क्षेत्र होता है तथा वर्तमानकाल में नारकों द्वारा रोके हुए नरकों के बिल भाग से अरुद्ध भाग-नहीं रोका हुआ भाग संख्यातगुणा होता है, इसलिए नारकियों द्वारा रुद्ध क्षेत्र को संख्यातरूपों से गुणा करने पर नारकों का अतीतकाल संबंधी स्वस्थान क्षेत्र का प्रमाण हो जाता है। अतः तिर्यग्लोक का असंख्यातवाँ भाग विरोध को नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार 'वा' शब्द से सूचित अर्थ की प्ररूपणा की गई है।

सासादन सम्यग्दृष्टि जीव का नरकगति में उपपाद नहीं होता है, क्योंकि उसका सूत्र में प्रतिषेध किया गया है। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त सासादन सम्यग्दृष्टियों ने कुछ कम पाँच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

प्रश्न—यह कैसे?

उत्तर—क्योंकि, सातवीं पृथिवी के नारक सासादनसम्यग्दृष्टियों का मारणान्तिक समुद्घात करना संभव नहीं है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—इसी ही सूत्र से जाना जाता है कि सातवीं पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ने कितने क्षेत्र का स्पर्श किया है? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यदेव सूत्र के द्वारा कहते हैं—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेष बात यह है कि स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,

वर्तमानकाले चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। कारणं क्षेत्रनुगमे सिद्धं। अतीतकालेऽपि एताभ्यां द्विगुणस्थानवर्तिभ्यां एतैः पदैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागश्चैव स्पृष्टः। ''असंखेज्जजोयणवित्थडा णेरइयसव्वावासा'' इति मनसा संकल्प्य एकावासक्षेत्रफलं चतुरशीतिलक्षरूपैः गुणिते तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागमात्रक्षेत्रफलोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मारणान्तिक-उपपादपदौ न स्तः।

असंयतसम्यग्दृष्टिभिः मारणान्तिकोपपादगतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः वर्तमानेऽतीतकाले च।

कुतः?

सर्वजीवानां अपक्रमषट्कनियमदर्शनात्। ऊर्ध्वं गच्छतां जीवानां अपि आत्मनः उत्पत्तिक्षेत्रं अप्राप्य अंतरकाले चैव दिग्विदिशानां गमनाभावात्। न च उत्पत्तिक्षेत्रसमान-क्षेत्रान्तरस्थितानां अपि जीवानां अनियतगमनमस्ति, एकदिशि नियतगमनात्। तिर्यग् गच्छतामपि जीवानामात्मनः उत्पद्यमानदिशं मुक्त्वा अन्यदिशां गमनाभावात्, उत्पद्यमानदिशं गच्छतामपि जीवानामात्मनः उत्पद्यमानक्षेत्रसमानस्थानमप्राप्य सर्वत्र अंतराले ऊर्ध्ववलनाभावात्। ततः सर्वनरकावासेभ्यः मानुषक्षेत्रमागच्छतां सम्यग्दृष्टीनां नरकावासप्रतिष्ठितनियतस्थानं स्पृष्टं चतुर्लोकानामसंख्यातभागश्चैव। एवमेव उपपादस्यापि वक्तव्यं।

एवं नरकगतौ चतुर्गुणस्थानवर्तिनारकाणां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रानुगम से सिद्ध है। अतीतकाल में भी इन दोनों ही गुणस्थानवर्ती नारकी जीवों ने इन्हीं पदों की अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि नारकियों के आवास असंख्यात योजन विस्तृत होते हैं। इस प्रकार मन से संकल्प करके एक नारकावास के क्षेत्रफल को चौरासी लाख रूपों से गुणित करने पर तिर्यग्लोक का असंख्यातवाँ भाग मात्र क्षेत्रफल पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकाल में और अतीतकाल में स्पर्श किया है।

प्रश्न—कैसे स्पर्श किया है?

उत्तर—क्योंकि उन सभी जीवों के अपक्रम षट्क का नियम देखा जाता है। ऊपर जाने वाले जीवों के भी अपने उत्पत्ति-क्षेत्र को नहीं प्राप्त करके अंतरालकाल में ही दिशा को छोड़कर अन्य दिशा या विदिशा में गमन करने का अभाव है और न उत्पत्ति क्षेत्र के समान अन्य क्षेत्र पर स्थित जीवों के भी अनियत गमनहोता है, क्योंकि उसका गमन एक दिशा में ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्र की ओर ही नियत हो चुका है। तिरछे गमन करने वाले भी जीवों के अपनी उत्पन्न होने वाली दिशा को छोड़कर अन्य दिशा को गमन नहीं होता है। उत्पन्न होने की दिशा को जाते हुए भी जीवों के अपने उत्पन्न होने के क्षेत्र के समान अन्य स्थान को नहीं प्राप्त करके अन्तराल में सर्वत्र ऊपर की ओर गमन का अभाव है। इसलिए सभी नारकावासों से मनुष्य क्षेत्र को आने वाले और नारकावास में प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्र की ओर प्रवर्तमान सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग ही है।

इसी प्रकार इन दोनों गुणस्थानवर्ती नारकियों के उपपाद क्षेत्र का कथन भी करना चाहिए।

इस प्रकार नरकगति में चारों गुणस्थानवर्ती नारकी जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति प्रथमपृथिव्यां नारकाणां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६।।

सूत्रं सुगमं।

द्वितीयादिषष्ठीपृथिवीगतनारकाणां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१७।।

एग वे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।।१८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—सूत्रे सुगमे स्तः।

विशेषेण तु द्वितीयपृथिव्यां उपपादगतमिथ्यादृष्टिनारकैः अतीतकाले चतुर्दशभागेषु एक भागः स्पृष्टः। तृतीयपृथिव्यां द्वौ चतुर्दशभागाः स्पृष्टौ। चतुर्थपृथिव्यां त्रयो भागाः स्पृष्टाः। पंचमपृथिवीगतैः चत्वारः चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। षष्ठपृथिवीगतैः पंच चतुर्दशभागाः वा स्पृष्टाः। अत्र सर्वत्र नरकाणां क्षेत्रं अगम्यक्षेत्रापेक्षया देशोनं वक्तव्यं। एवमेव सासादनानां क्षेत्रं, विशेषः तु तेषां उपपादपदं नास्ति।

अब प्रथम नरक पृथिवी के नारकियों की स्पर्शन प्ररूपणा बतलाने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रथम पृथिवी में नारकियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१६।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब द्वितीय नरक पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी तक के नारकियों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

द्वितीय पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के नारकियों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१७।।

उक्त जीवों ने अतीतकाल की अपेक्षा चौदह भागों में से कुछ कम एक, दो, तीन, चार और पाँच भाग स्पर्श किए हैं।।१८।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। दूसरी पृथिवी में उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों ने अतीतकाल में एक बटे चौदह (१/१४) भाग स्पर्श किया है। तीसरी पृथिवी के नारकी जीवों ने दो बटे चौदह (२/१४) भाग स्पर्श किया है, चौथी पृथिवी के नारकियों ने तीन बटे चौदह (३/१४) भाग स्पर्श किया है, पाँचवी पृथिवी के नारकियों ने चार बटे चौदह (४/१४) भाग और छठी पृथिवी के नारकियों ने पांच बटे चौदह (५/१४) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है। इन सभी पृथिवियों के नारकियों का यह क्षेत्र अगम्य क्षेत्र की

भोगभूमिरचनासंस्थिताः असंख्यातद्वीपसमुद्राः नारकैः कथं स्पृश्यन्ते?

न, तत्रापि नारकाणां निर्गमनप्रवेशौ प्रति विरोधाभावात्[1]। अस्यायमर्थः — मारणान्तिकसमुद्घातापेक्षया नारकाणां भोगभूम्यादिक्षेत्रे प्रवेशो निर्गमनं च संभवति।

द्वितीयादिषष्ठपृथिवीगतसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति —

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रं सुगममेतत्।**

एताभ्यां द्वयोः गुणस्थानयोः वर्तमानकाले स्वस्थानादिपंचपदस्थितानां मारणान्तिकपदस्थित-असंयतसम्यग्दृष्टीनां च प्ररूपणायां क्षेत्रवत्स्पर्शनं ज्ञातव्यं। द्वितीयादिषट्पृथिवीपर्यंतनरकेषु असंयत-सम्यग्दृष्टीनामुपपादो नास्ति।

एवं द्वितीयस्थले प्रथमादिषट्पृथिवीषु नारकाणां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

सप्तमपृथिवीगतनारकाणां मिथ्यादृष्टीनां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयं कथ्यते —

अपेक्षा देशोन कहना चाहिए। इसी प्रकार से सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है।

शंका — भोगभूमि की रचना से संस्थित असंख्यात द्वीप-समुद्र नारकियों के द्वारा कैसे स्पर्श किये जाते हैं?

समाधान — नहीं, क्योंकि वहाँ पर भी नारकियों का निर्गमन और प्रवेश होने में कोई विरोध नहीं है। अर्थात् मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा नारकी जीवों का उक्त क्षेत्र में प्रवेश और निर्गमन बन जाता है।

अब द्वितीय पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी को प्राप्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

द्वितीय पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१९।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानों के स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात इन पाँच पदों में स्थित नारकी जीवों की तथा मारणान्तिकपद में स्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की वर्तमानकाल में स्पर्शन की प्ररूपणा क्षेत्र प्ररूपणा के समान है।

द्वितीयादि छह पृथिवियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद नहीं होता है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक से नीचे नहीं जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथम आदि छह पृथिवियों में नारकियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सातवीं नरकपृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकियों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र कहे जाते हैं —

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, पृ. १८८।

सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२०।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।२१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकगतैः मिथ्यादृष्टिभिः अतीतानागतकालयोः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिकोपपादगताभ्यां अतीतानागतकालयोः षट् चतुर्दशभागाः, चित्रापृथिव्याः सहस्रयोजनन्यून-सप्तमपृथिव्याः अधः चतुःसहस्रयोजनानि सन्ति, तैः न्यूनाः स्पृष्टाः। न केवलं अधस्तनयोजनैः चैव न्यूना, किन्तु अन्यदपि क्षेत्रं लोकनाल्याः अभ्यन्तरे नारकैरस्पृष्टोऽस्ति।**

सप्तमपृथिव्यां सासादनादिनारकाणां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो।।२२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सप्तमपृथिव्यां त्रयाणामपि गुणस्थानानां मारणान्तिकोपपादपदे न स्तः। शेषपंचपदस्थितैः**

सूत्रार्थ—

सातवीं पृथिवी में नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२०।।

सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकियों ने अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।२१।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों ने अतीत और अनागत काल में सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद को प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों ने अतीत और अनागत काल में चित्रा पृथिवी के एक हजार योजन से कम जो सातवीं पृथिवी के नीचे के चार हजार योजन हैं उनसे कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है।

उन नारकियों में न केवल अधस्तन योजनों से न्यूनता है, किन्तु यहाँ पर लोकनाली के भीतर अन्य भी क्षेत्र नारकियों से अछूता है।

सातवीं नरकपृथिवी में सासादनसम्यग्दृष्टि आदि नारकियों का क्षेत्र स्पर्शन कहने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सातवीं पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२२।।

हिन्दी टीका—सातवीं पृथिवी में इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवों के मारणान्तिक और उपपाद ये दो पद नहीं होते हैं। शेष स्वस्थानादि पांच पदों पर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थान जीवों ने अतीत अनागत और

एतैः अतीतानागतवर्तमानकालेषु चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। कारणं पूर्ववत् वक्तव्यं।

एवं तृतीयस्थले सप्तमपृथिवीगतनारकाणां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि। एवं नरकगतिप्रतिपादनपरः प्रथमान्तराधिकारः समाप्तः।

अथ तिर्यग्गतौ स्थलद्वयेन एकादशसूत्रैः द्वितीयान्तराधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यतिरश्चां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनेन षट् सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियतिरश्चां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन पंच सूत्राणि कथ्यन्ते।

तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ओघं।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

त्रसजीवविरहितेषु असंख्यातेषु समुद्रेषु विहारवत्स्वस्थानपरिणततिरश्चां कथं संभवः?

नैतद् वक्तव्यं, तत्र पूर्ववैरिदेवानां प्रयोगतः विहारविरोधाभावात्।

अतीतकाले विहरमाणतिर्यग्भिः स्पृष्टक्षेत्रानयनविधानं उच्यते-पूर्ववैरिदेवप्रयोगात् उपरि लक्षयोजन-प्रमाणमेरु-कुलाचल-कुंडल-रुचक-मानुषोत्तर-नागेन्द्रवर-पर्वतादिरुद्धक्षेत्रं मुक्त्वा सर्वं स्पृश्यते इति। अतः

वर्तमान इन तीनों कालों में सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण पूर्व के समान ही जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सप्तम पृथिवी के नारकियों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस तरह से नरकगति के प्रतिपादन की मुख्यता वाला प्रथम अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अब तिर्यंचगति में दो स्थलों के द्वारा ग्यारह सूत्रों में द्वितीय अन्तराधिकार कहा जाता है। उसमें से प्रथम स्थल में सामान्य तिर्यंचों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन का कथन करने वाले छह सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का स्पर्शन बतलाने हेतु पाँच सूत्र कहेंगे।

अब तिर्यंच गति में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन कहने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? ओघ के समान अर्थात् सर्वलोक का स्पर्श किया है।।२३।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेष कथन शंका-समाधान द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।

शंका—त्रस जीवों से विरहित असंख्यात समुद्रों में विहारवत्स्वस्थान से परिणत हुए तिर्यंचों का अस्तित्व कैसे संभव है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पूर्वभव के बैरी देवों के प्रयोग से विहार होने में कोई विरोध नहीं है।

अतीतकाल में विहार करने वाले तिर्यंचों से स्पर्श किए गये क्षेत्र के निकालने के विधान को कहते हैं—पूर्वभव के वैरी देवों के प्रयोग से तिर्यंच ऊपर एक लाख योजन प्रमाण मेरु पर्यन्त, कुलाचल, कुंडलगिरि, रुचकगिरि, मानुषोत्तर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकों से रुद्ध क्षेत्र को छोड़कर सर्वद्वीप और समुद्रों का

लक्षयोजनबाहल्यं रज्जुप्रतरं स्थापयित्वा ऊर्ध्वं एकोनपंचाशत्खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रक्षेत्रं भवति।

वैक्रियिकसमुद्घातगतानां वर्तमानकाले क्षेत्रभंगसदृशं स्पर्शनं ज्ञातव्यं। अतीतानागतकालयोः त्रिलोकानाम् संख्यातभागः तिर्यग्मनुष्यलोकयोः असंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। कारणं, वायुकायिकजीवाः, पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः विक्रियमाणक्षमाः वर्तमानकाले भवन्ति, ते च पंचरज्जुबाहल्यं रज्जुप्रतरं अतीतकाले स्पृश्यते इति।

सासादनतिरश्चां क्षेत्रस्पर्शनाय सूत्रमवतरति—

सासण सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२४।।

सूत्रं सुगमं।

अस्यैव स्पष्टीकरणार्थं सूत्रमवतरति—

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।।२५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

विशेषेण तु स्वस्थानस्वस्थानगतसासादनसम्यग्दृष्टयः तिर्यञ्चः सर्वद्वीपान् लवणोद-कालोद-स्वयंभूरमण-समुद्रांश्च अतीतकाले स्पृशन्ति।

स्पर्श करते हैं। इसलिए एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतर को स्थापन कर ऊपर की ओर से उनंचास खंड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र हो जाता है। वैक्रियिक समुद्घातगत तिर्यंचों का स्पर्शन वर्तमान काल में क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए। अतीत और अनागतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक, इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र वायुकायिक जीव वर्तमानकाल में विक्रिया करने में समर्थ होते हैं और वे पांच राजु बाहल्यवाले एक राजुप्रतर प्रमाण क्षेत्र को अतीतकाल में स्पर्श करते हैं।

अब सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का क्षेत्र स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२४।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब उसी का स्पष्टीकरण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों ने भूतकाल की अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।२५।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। विशेष बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थानपद को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवों ने सभी द्वीपों और लवणसमुद्र, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्र को अतीत काल में स्पर्श किये हैं। यहाँ उन द्वीप-समुद्रों का किंचित् क्षेत्रफल कहते हैं—

अत्र किंचित् द्वीपसमुद्राणां क्षेत्रफलं कथ्यते-जंबूद्वीपस्य क्षेत्रफलप्रमाणं लवणसमुद्रे चतुर्विंशतिखण्डानि भवन्ति। लवणसमुद्रात् धातकीखण्डप्रमाणं षड्गुणितं भवति। कालोदसमुद्रः अष्टाविंशतिगुणा, पुष्करद्वीपः विंशत्यधिकशतगुणितः, पुष्करवरसमुद्रः षण्णवत्यधिकचतुःशतगुणितः इत्यादयः[1]।

विहारवत्स्वस्थानआदिशेषपदगतैः सासादनैः तिर्यग्भिः सर्वेऽपि द्वीपसमुद्राः पूर्ववैरिदेवसंबंधेन स्पृश्यन्ते, इति कृत्वा लक्षयोजनबाहल्यं तत्प्रायोग्यबाहल्यं वा रज्जुप्रतरं ऊर्ध्वं एकोनपंचाशत्खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति। इति सूत्रे प्रोक्तं 'वाशब्दस्य' अर्थो भवति।

मारणान्तिकगतैः तैः सप्त चतुर्दशभागाः देशोना स्पृष्टाः।

तिर्यक्सासादनाः मेरुमूलादधः मारणान्तिकं किं न कुर्वंति?

स्वभावादेव न कुर्वन्ति। ते नारकेष्वपि न उत्पद्यन्ते, स्वभावादेव एतदपि कथनं ज्ञातव्यं।

उपपादगतैः सासादनैः एकादश चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। अस्यायमर्थः—तिर्यक्सासादनाः एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यन्ते, किंतु तत्र मारणान्तिकं कुर्वन्ति, सासादनगुणस्थानाल्प कालत्वात् अतो एतत्स्पर्शनकालं घटते।

सम्यग्मिथ्यादृष्टितिरश्चां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति-

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२६।।

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल प्रमाण लवणसमुद्र में चौबीस खण्ड होते हैं। लवणसमुद्र से धातकीखण्ड का प्रमाण छह गुणा होता है। धातकीखण्ड से कालोदधि समुद्र अट्ठाईसगुणा होता है, कालोदसमुद्र से पुष्करद्वीप एक सौ बीस गुणा अधिक है, पुष्करवर समुद्र चार सौ छियानवे गुणा है.....इत्यादि।

विहारवत्स्वस्थानादि शेष पद स्थित तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियों के द्वारा समस्त द्वीप और समुद्र पूर्वभव के वैरी देवों के संबंध से स्पर्श किये जाते हैं, इसलिए एक लाख योजन बाहल्य वाले अथवा तत्प्रायोग्य बाहल्य वाले राजुप्रतर के ऊपर की ओर से उनंचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग हो जाता है। इस प्रकार से यह सूत्र में कथित 'वा' शब्द का अर्थ हुआ। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियों ने कुछ कम सात बटे चौदह (७/१४) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वत के मूलभाग से नीचे मारणान्तिक समुद्घात क्यों नहीं करते हैं?

समाधान—वे नारकियों में भी उत्पन्न नहीं होते हैं। स्वभाव से ही यह कथन भी जानना चाहिए।

उपपाद पद को प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियों ने ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग स्पर्श किये हैं। इसका अर्थ यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु वहाँ वे मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, क्योंकि सासादनगुणस्थान का काल अल्प है इसलिए उसका इतना ही स्पर्शनकाल घटित होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२६।।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, पृ. १९४, एतद्गणितप्रकरणं धवलाटीकायां द्रष्टव्यं भवति।

सूत्रं सुगमं। पर्यायार्थिकनयापेक्षया सासादनवदेषां स्पर्शनं ज्ञातव्यं।

असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२७।।

सूत्रं सुगमं।

अनयोः एव विशेषेण स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।२८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

असंयतसम्यग्दृष्टितिर्यञ्चः स्वस्थानपदे सर्वद्वीपेषु भवन्ति, लवणोद-कालोद-स्वयंभूरमणसमुद्रेषु च, तस्मात् शेषसमुद्रेभ्यः न्यूनं रज्जुप्रतरक्षेत्रं अत्र स्वस्थानक्षेत्रं भवति। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदेषु वर्तमानाः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागं, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणं च स्पृशन्ति।

कुतः?

पूर्ववैरिदेवप्रयोगात् लक्षयोजनबाहल्यं संख्यातयोजनबाहल्यं वा रज्जुप्रतरं सर्वमतीतकाले स्पृशन्ति।

सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेष बात यह है कि पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के समान ही इनका स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए।

अब असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों के स्पर्शन का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है–

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२७।।

सूत्र सुगम है।

अब उपर्युक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों का ही विशेषरूप से स्पर्शन कहने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।२८।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच स्वस्थानस्वस्थान पद पर सर्व द्वीपों में होते हैं तथा लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमणसमुद्र में भी होते हें। इसलिए शेष समुद्रों के क्षेत्र से हीन राजुप्रतर यहाँ पर स्वस्थानक्षेत्र होता है। विहार, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदों पर वर्तमान जीव अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं।

ऐसा क्यों? क्योंकि पूर्वभव के वैरी देवों के प्रयोग से एक लाख योजन बाहल्यवाला अथवा संख्यात

मारणान्तिकपदे स्थितैः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः देशोनाः।

कुतः?

अच्युतकल्पादुपरि तेषामुत्पत्तेरभावात् तत्र गमनाभावोऽस्ति। न च उत्पत्तिक्षेत्रमुल्लंघ्य गमनं संभवति, अति प्रसंगात्।

नवग्रैवेयकेषु मिथ्यादृष्टयो यदि उत्पद्यन्ते, तर्हि असंयतसम्यग्दृष्टीनां संयतासंयतानां चोत्पत्तिः किमिति न भवेत्? मिथ्यादृष्टयो दिगम्बरमुनिवेषेण द्रव्यलिंगेन उत्पद्यन्ते इति चेत्? तर्हि एतेऽपि द्रव्यलिंगेन चैव उत्पद्यन्तां, न कोऽपि दोषः। यदि ते द्रव्यलिंगिनः नवग्रैवेयकेषु उत्पद्यन्ते तर्हि पुनः तेषां स्पर्शनक्षेत्रं देशोनाः सप्त चतुर्दशभागाः भवेयुः?

नैष दोषः, ते यद्यपि द्रव्यलिंगेन दिगंबरवेषेण नवग्रैवेयकेषु मिथ्यादृष्टयः, असंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्चोत्पद्यन्ते तर्हि अपि सप्त चतुर्दशभागाः स्पर्शनक्षेत्रं न भवति। मानुषक्षेत्रादेव तत्रोत्पत्तेः[१], न च तिर्यग्लोकात्। तथा च मनुष्याः एव द्रव्यलिंगिनः उत्पद्यन्ते तत्र, न च तिर्यञ्चः इति ज्ञातव्याः भवद्भिः।

उपपादगतैः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणः स्पृष्टः। तद्यथा-तिर्यक्षु तिर्यग्देवनारकसम्यग्दृष्टयः न उत्पद्यन्ते।

कुतः?

स्वभावात्। तिर्यक्षु मनुष्यक्षायिकसम्यग्दृष्टयः चैव उत्पद्यन्ते। पूर्वं मिथ्यात्वसहितपरिणामैः बद्धतिर्यगायुष्कत्वात्। तेऽपि भोगभूमिषु चैवोत्पद्यन्ते, तेषां दानादिसकलदशधर्मे विद्यमानानुमोदान्। तेन स्वयंप्रभपर्वतस्योपरिम भागः सर्वश्चैव उपपादपरिणतसम्यग्दृष्टिभिः स्पृश्यते इति।

योजन बाहल्य वाला राजुप्रतररूप सर्वक्षेत्र अतीतकाल में स्पर्श करते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातपद पर वर्तमान जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह भाग (६/१४) स्पर्श किये हैं। कैसे? क्योंकि अच्युतकल्प से ऊपर उनकी उत्पत्ति का अभाव होने से वहाँ पर गमन का अभाव है और उत्पत्तिक्षेत्र को उल्लंघन करके गमन संभव नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त हो जायेगा।

शंका—यदि नवग्रैवेयकों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं, तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचों की उत्पत्ति क्यों नहीं होनी चाहिए? यदि कहा जाये कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंग दिगम्बर मुनिवेष से उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंग से ही उत्पन्न होवे, इसमें कोई दोष नहीं है। यदि कहा जाये कि वे द्रव्यलिंगी मुनि नवग्रैवेयकों में उत्पन्न होवें, सो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि फिर स्पर्शनक्षेत्र के देशोन सात बटे चौदह (७/१४) भाग प्रमाण होने का प्रसंग प्राप्त हो जाएगा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि, यद्यपि नवग्रैवेयकों में द्रव्यलिंगी दिगम्बर वेष से मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह (७/१४) भाग प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि उन नवग्रैवेयकों में मनुष्य क्षेत्र से ही उत्पत्ति होती है। अर्थात् उनमें द्रव्यलिंगी मुनि ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच नहीं, ऐसा जानना चाहिए। उपपादपद को प्राप्त जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकार से है-तिर्यंचों में सम्यग्दृष्टि तिर्यंच, सम्यग्दृष्टि देव अथवा सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्यों? क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है। केवल

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. २०९।

विशेषेण तु मारणान्तिकगतसंयतासंयतैः देशोनाः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यक्संयतासंयतानां अच्युतकल्पपर्यंतमेव मारणान्तिकेन गमनसंभवात्। एवं तिरश्चां सामान्येन स्पर्शनकथनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना त्रिविधानां तिरश्चां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२९।।

एतत्सूत्रं वर्तमानकालसंबंधि वर्तते। अतः क्षेत्रवत् स्पर्शनं ज्ञातव्यं।

पुनश्च एषां त्रिविधानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतार्यते—

सव्वलोगो वा।।३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**परिशेषात् एतत्सूत्रमतीतानागतसंबंधि अस्ति। विशेषेण तु असंख्यातेषु समुद्रेषु भोगभूमिप्रतिभागद्वीपानामन्तरेषु स्थितेषु स्वस्थानपदस्थितत्रिविधाः तिर्यञ्चाः न सन्ति, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकमिथ्यादृष्टिस्वस्थानक्षेत्रं भवति। पुनश्च मित्रामित्रदेववशेन सर्वद्वीपसमुद्रेषु**

क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्व में मिथ्यात्व से सहित परिणामों के द्वारा तिर्यंच आयु को बांध लिया था। सो वे भी जीव भोगभूमि के तिर्यंचों में ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टियों की दान आदि समस्त दश धर्मों में अनुमोदना विद्यमान रहती ही है। इसलिए स्वयंप्रभ पर्वत का उपरिम सर्वभाग उपपादपरिणत असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवों के द्वारा स्पर्श किया गया है।

विशेष बात यह है कि मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त तिर्यंच संयतासंयत जीवों के द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये गये हैं, क्योंकि संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घात से गमन संभव है।

इस प्रकार तिर्यंच जीवों का सामान्य से स्पर्शन कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के तिर्यंचों का गुणस्थान की अपेक्षा कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनियों में रहने वाले मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२९।।

यह सूत्र वर्तमानकाल संबंधी है, इसलिए इसका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए।

पुनश्च इन तीनों प्रकार के जीवों का स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच जीवों ने अतीत और अनागत काल में सर्वलोक स्पर्श किया है।।३०।।

हिन्दी टीका—परिशेष न्याय से यह सूत्र भूत एवं भविष्यत्काल संबंधी है। विशेषरूप से असंख्यात समुद्रों में और भोगभूमि के प्रतिभागरूप द्वीपों के अन्तरालों में स्थित क्षेत्रों में स्वस्थानपदस्थित तीनों प्रकार के तिर्यंच नहीं है, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक् (पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती

संचरणं प्रति विरोधाभावात्। शेषं पूर्ववत्।

विशेषतः—मारणान्तिकोपपादगतपंचेन्द्रियतिर्यग्भिः त्रिविधैः मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः।

कश्चिदाह—लोकनाल्याः बहिः त्रसकायिकानामसंभवात् 'सर्वलोकः' इति वचनं कथं घटते?

उच्यते—नैष दोषः, मारणान्तिकोपपादस्थितत्रसजीवान् मुक्त्वा शेषत्रसानां बहिः त्रसनाल्याः अस्तित्वप्रतिषेधात्।

शेषतिरश्चां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो।।३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अत्र शेषपदेन सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयताः गृहीतव्याः, अन्येषामसंभवात्। एतेषां प्ररूपणा तिर्यग्गतिस्पर्शनमिव ज्ञातव्या। विशेषेण तु तिरश्चीषु योनिनीषु असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादो नास्ति इति निश्चेतव्यं।**

अधुना अपर्याप्ततिर्यक्पंचेन्द्रियाणां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।३२।।

तिर्यंच) इन तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का स्वस्थान क्षेत्र होता है। पुनः पूर्वभव के मित्र या शत्रुरूप देवों के वश से सर्वद्वीप और समुद्रों में संसार (विहार) करने के प्रति कोई विरोध नहीं है। शेष कथन पूर्ववत् है।

विशेषरूप से मारणांतिक समुद्घात और उपपादपद को प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है।

शंका—लोकनाली के बाहर त्रसकायिक जीवों के असंभव होने से 'सर्वलोक स्पर्श किया है' यह वचन कैसे घटित होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद में स्थित त्रसजीवों को छोड़कर शेष त्रस जीवों का त्रसनाली के बाहर अस्तित्व का प्रतिषेध किया गया है।

अब शेष तिर्यंचों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

शेष तिर्यंचगति के जीवों का स्पर्शन क्षेत्र ओघ के समान है।।३१।।

हिन्दी टीका—यहाँ शेष पद से सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि इनके अतिरिक्त अन्य तिर्यंचों का ग्रहण करना असंभव है। इन चार गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों की प्ररूपणा तिर्यंचगति की ओघ स्पर्शन प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि योनिमती तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद नहीं है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

अब अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के स्पर्शन का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।३२।।

वर्तमानकालापेक्षया एतत्सूत्रं ज्ञातव्यं।

अग्रे पुनश्चैषां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सव्वलोगो वा।।३३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**'वा' शब्देन अत्र स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायपदगतैः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः।**

कुतः?

सार्धद्वयद्वीपसमुद्रेषु कर्मभूमिप्रतिभागे स्वयंप्रभपर्वतपरभागे च तेषां संभवात्। अतीतकाले स्वयंप्रभपर्वतपरभागं सर्वं ते स्पृशन्ति इति तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं क्षेत्रं भवति।

अंगुलासंख्यातभागावगाहनानां अपर्याप्तानां संख्यातांगुलोत्सेधः कथं घटते? न, मृतपंचेन्द्रियादित्र-सकलेवरेषु अंगुलस्य संख्यातभागं आदिं कृत्वा यावत् संख्यातयोजनानि इति क्रमवृद्ध्या स्थितशरीरेषु उत्पद्यमानानां अपर्याप्तानां संख्यातांगुलोत्सेधं प्रति विरोधाभावात्।

अथवा सर्वेषु द्वीपसमुद्रेषु पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ताः सन्ति, पूर्ववैरिदेवसंबंधेन एकबन्धनबद्धषड्जीवनिकायाः अवगाढकर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्नौदारिकदेहमहामत्स्यादीनां सर्वद्वीपसमुद्रेषु संभवोपलम्भात्।

महामत्स्यावगाहनायां एकबन्धनबद्धषड्जीवनिकायानां अस्तित्वं कथं ज्ञायते?

वर्तमानकाल की अपेक्षा यह सूत्र जानना चाहिए।

आगे इन्हीं तिर्यंचों का स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है।।३३।।

हिन्दी टीका—'वा' शब्द से यहाँ स्वस्थान स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदों को प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में तथा कर्मभूमि के प्रतिभाग वाले स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का होना संभव है। अतीतकाल में स्वयंप्रभ पर्वत के सम्पूर्ण परभाग को वे जीव स्पर्श करते हैं इसलिए वह क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मात्र होता है।

शंका—अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के संख्यात अंगुल प्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मृत पंचेन्द्रियादि त्रस जीवों के कलेवर में अंगुल के संख्यातवें भाग को आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमवृद्धि से स्थित शरीरों में उत्पन्न होने वाले लब्ध्यपर्याप्त जीवों के संख्यात अंगुल उत्सेध के प्रति कोई विरोध नहीं है।

अथवा सभी द्वीप और समुद्रों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि पूर्वभव के वैरी देवों के संबंध से एक बंधन में बद्ध षट्कायिक जीवों के समूह से व्याप्त और कर्मभूमि के प्रतिभाग में उत्पन्न हुए औदारिक देह वाले महामच्छादिकों की सर्वद्वीप और समुद्रों में संभावना पाई जाती है।

शंका—महामच्छ की अवगाहना में एक बंधन से बद्ध षट्कायिक जीवों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

वर्गणाखण्डे कथिताल्पबहुत्वानियोगद्वारात् ज्ञायते। तद्यथा—सर्वस्तोका: महामत्स्य शरीरे जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रा: त्रसकायिकजीवा:। तेजस्कायिका जीवा असंख्यातगुणा:। पृथिवीकायिका जीवा विशेषाधिका:। अप्कायिका जीवा विशेषाधिका:। वायुकायिका जीवा विशेषाधिका:। वनस्पतिकायिका जीवा अनंतगुणा इति। न च ते सर्वे पर्याप्ता: एव, त्रसापर्याप्तानामपि तेजस्कायिकानां च संभवात् तत्र महामत्स्यशरीरे।

तथा च मृतशरीरे एव पंचेन्द्रियापर्याप्तानां संभवोऽस्ति इति वक्तुं न युक्तं, तस्य विधायकसूत्राभावात्। किन्तु महामत्स्यादिदेहे तेषामपर्याप्तानामस्तित्वसूचकं पुन: इदं अल्पबहुत्वसूत्रं भवति।

त्रसपर्याप्तराशिभ्य: त्रसापर्याप्तराशि: असंख्यातगुणोऽस्ति। तेन यत्र त्रसजीवानां संभवो भवति, तत्र सर्वत्रापि पर्याप्तेभ्य: अपर्याप्ता: असंख्यातगुणा भवन्ति। तस्मात् संख्यातांगुलबाहल्यं तिर्यक्प्रतरं एकोनपंचाशत्-खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं पंचेन्द्रियतिर्यग-पर्याप्तस्वस्थान-वेदना-कषाय क्षेत्रं भवति। 'वा' शब्दस्यार्थो गत:। मारणान्तिकोपपादगतै: सर्वलोक: स्पृष्ट:, सर्वत्र गमनागमनं प्रति विरोधाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—इमे महामत्स्यादय: उत्कृष्टावगाहनासहिता जीवा: तिर्यञ्च:, तेषां शरीरेषु स्थिता:, वायुकायिक-तेजस्कायिकादिपर्याप्ता अपर्याप्ताश्च तिर्यञ्च:अत्र संक्षेपेण वर्णिता: सन्ति। अपर्याप्तजीवै: सर्वलोकोऽपि स्पृष्ट:। तदेतत् किमपि न कार्यकारि, यदि इमे महामत्स्यादय: कदाचित् जातिस्मरणनिमित्तेन

समाधान—वर्गणाखंड में कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वार से जाना जाता है। वह इस प्रकार है–'महामत्स्य के शरीर में सबसे कम जगत् प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक जीव होते हैं। उन त्रसकायिक जीवों के तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं। तेजस्कायिक जीवों से पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार से पृथिवीकायिक जीवों से अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। अप्कायिक जीवों से वायुकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवों से वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं। वे सभी पर्याप्त ही हों, ऐसा नहीं है। क्योंकि उस महामत्स्य के शरीर में त्रस अपर्याप्तक और तेजस्कायिक जीव संभव है। मृत शरीर में ही पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीव संभव है ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि इस बात के विधायक सूत्र का अभाव है। किन्तु महामच्छादि के देह में उन अपर्याप्त जीवों के अस्तित्व का सूचक यही उक्त अल्पबहुत्व सूत्र है। त्रसपर्याप्तराशि से त्रसअपर्याप्तराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहाँ पर त्रस जीवों की संभावना होती है वहाँ पर सर्वत्र पर्याप्त जीवों से अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे होते हैं ऐसा जानना चाहिए। अतएव संख्यात अंगुल बाहल्य वाले तिर्यक्प्रतर के उनंचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक के संख्यातवां भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों का स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है। इस प्रकार से 'वा' शब्द का अर्थ समाप्त हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद को प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि उनके सर्वलोक में गमनागमन के प्रति विरोध का अभाव है।

तात्पर्य यह है कि ये महामत्स्य आदि उत्कृष्ट अवगाहना से सहित जीव तिर्यंच होते हैं, उनके शरीरों में स्थित वायुकायिक, तेजस्कायिक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त तिर्यंचों का यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है। अपर्याप्त जीवों के द्वारा सम्पूर्ण लोक का भी स्पर्श किया गया है। किन्तु उनका वह स्पर्श किंचित् भी कार्यकारी नहीं है। यदि ये महामत्स्य आदि कदाचित् जातिस्मरण के निमित्त से, कदाचित् देवों के सम्बोधन

कदाचित् देवानां संबोधनेन सम्यग्दर्शनमुत्पादयन्ति कदाचित्संयतासंयत गुणस्थानेषु गत्वा अणुव्रतानि गृण्हन्ति त एव स्वर्गलोके गच्छन्ति अतएव संसारे सम्यग्दर्शनं अणुव्रतं महाव्रतमेव सारभूतं वर्तते। ततः सम्यग्दर्शनसहितमणुव्रतं महाव्रतं वा गृहीत्वा मनुष्यपर्यायं सफलीकर्तव्यम्। तथैव च एवं भावनीयं यत् कदाचिदपि मम तिर्यग्गतौ जन्म न भवेदिति एतद्ग्रन्थपठनस्य सारमिति।

एवं तिर्यग्गतिषु पंचेन्द्रिय भेदानां स्पर्शनकथनत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

इति तिर्यग्गतिनामद्वितीयान्तराधिकारः समाप्तः।

अथ मनुष्यगतिनामान्तराधिकारे त्रिभिरन्तरस्थलैः अष्टसूत्रैः व्याख्यानं स्पर्शनानुगमस्य क्रियते—तत्र प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्रपंचकं। तदनु द्वितीयस्थले सयोगिकेवलिनां स्पर्शनकथनपरत्वेन एकं सूत्रं। ततःपरं तृतीयस्थले अपर्याप्तमनुष्याणां स्पर्शननिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे इति समुदायपातनिका।

अधुना त्रिविधमनुष्याणां मिथ्यादृष्टिगुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो।।३४।।

सूत्रस्यार्थः क्षेत्रवत् कथयितव्यः।

से सम्यग्दर्शन को उत्पन्न कर लेते हैं अथवा कदाचित् संयतासंयत गुणस्थान में जाकर अणुव्रत ग्रहण कर लेते हैं, तब वे स्वर्गलोक में जाते हैं। इसलिए संसार में सम्यग्दर्शन, अणुव्रत और महाव्रत का पालन ही सारभूत है, ऐसा समझकर हम सभी को सम्यग्दर्शन सहित अणुव्रत अथवा महाव्रत ग्रहण करके मनुष्यपर्याय को सफल करना चाहिए तथा यह भावना भी करनी चाहिए कि मुझे कभी भी तिर्यंचगति में जन्म न लेना पड़े, यही इस ग्रंथ के पठन का सार है।

इस प्रकार तिर्यंचगति में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के भेदों में स्पर्शन का कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

यह तिर्यंचगति नाम का द्वितीय अंतराधिकार समाप्त हुआ।

अब मनुष्यगति नाम के अन्तराधिकार में तीन अन्तर्स्थलों में आठ सूत्रों द्वारा स्पर्शनानुगम का व्याख्यान किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों का स्पर्शन प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सयोगकेवलियों का स्पर्शन कहने हेतु एक सूत्र है। पुनः आगे तृतीय स्थल में अपर्याप्त मनुष्यों का स्पर्शन बतलाने के लिए दो सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।३४।।

इस सूत्र का अर्थ क्षेत्रप्ररूपणा के समान समझना चाहिए।

एषामेव विशेषस्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सव्वलोगो वा ।।३५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः त्रिविधमनुष्यैः मिथ्यादृष्टिभिः-चतुर्लोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः। अतीतानागतकालेषु वैरिदेवसंबंधेनापि मानुषोत्तरशैलात् परतः गमनाभावात्। मानुषक्षेत्रस्य पुनः संख्यातभागः स्पृष्टः, मिथ्यादृष्टीनां आकाशगमनादि-विशेषशक्तिविरहितानां लक्षयोजनबाहल्येन स्पर्शाभावात्। अथवा सर्वपदैः मानुषलोकः देशोनः स्पर्शितः पूर्ववैरिदेवसंबंधेन ऊर्ध्वं देशोनयोजनलक्षोत्पादनसंभवात्। मारणान्तिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, सर्वलोके गमनागमनयोः विरोधाभावात्।**

अत्र 'मणुसिणी' पदेन भावस्त्रीवेदिनः मुख्यरूपेण गृहीतव्याः।

सासादनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।।३६।।

एतस्य सूत्रस्यार्थः पूर्वं प्ररूपितः।

अब इन्हीं जीवों के विशेष स्पर्शन निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है।।३५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। उसमें जो विशेषता है उसे कहते हैं–

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात से परिणत उपर्युक्त तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि मनुष्यों ने सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है क्योंकि अतीत और अनागतकाल में वैरी देवों के संबंध से भी मानुषोत्तर पर्वत से परे मनुष्यों के गमन का अभाव है। किन्तु मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है, क्योंकि आकाशगमनादिरूप विशेष शक्ति से विरहित मिथ्यादृष्टि जीवों के एक लाख योजन के बाहल्य से सर्वत्र स्पर्श का अभाव है। अथवा, सर्व पदों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों ने देशोन मनुष्यलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि पूर्वभव के वैरी देवों के संबंध से ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उनका जाना–आना संभव है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद को प्राप्त उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि इन दोनों पदों की अपेक्षा सर्वलोक के भीतर जाने–आने में कोई विरोध नहीं है।

यहाँ ''मणुसिणी'' पद से मुख्यरूप से भावस्त्रीवेदी मनुष्यों को ग्रहण करना चाहिए।

अब सासादन गुणस्थानवर्ती मनुष्यों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।३६।।

इस सूत्र का अर्थ पूर्व में कहा जा चुका है, इसलिए यहाँ विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

एषामेव विशेषेण स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।।३७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकगतैः सासादनैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। अथवा विहारादिउपरिमपदैः मानुषक्षेत्रं देशोनं स्पृष्टं।**

केन न्यूनं?

चित्रापृथिवी-कुलपर्वत-मेरुपर्वत-ज्योतिष्कावासादिना हीनं ज्ञातव्यं।

मानुषैः अगम्यप्रदेशस्य कथं मानुषक्षेत्रव्यपदेशः?

नैतत्, लब्धिसंपन्नमुनीनामगम्यप्रदेशाभावात्।

मारणान्तिकगतैः सप्त चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। एतस्य कारणं एतत्- सासादनानां मारणान्तिकेन भवनवासिलोकात् अधः गमनाभावात् उपरि सर्वत्र मारणान्तिकेन गमनसंभवात्। उपपादगतैः त्रिविधैः मनुष्यैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः।

सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिमनुष्याणां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

इन्हीं मनुष्यों का विशेषरूप से स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है–

सूत्रार्थ—

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।३७।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। इसमें जो कुछ विशेष बात है उसका व्याख्यान किया जा रहा है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्यों ने सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है तथा मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अथवा विहारवत्स्वस्थानादि ऊपर के पदों की अपेक्षा देशोन मनुष्यक्षेत्र को स्पर्श किया है।

शंका—यहाँ देशोन पद से किससे कम क्षेत्र लेना चाहिए?

समाधान—चित्रापृथिवी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष्क आवास आदि से हीन की ओक्षा देशोन शब्द है।

शंका—मनुष्यों से अगम्य प्रदेश वाले इस कुलाचल आदि के क्षेत्र को 'मनुष्यक्षेत्र' यह संज्ञा कैसे प्राप्त है?

समाधान—नहीं, क्योंकि लब्धिसम्पन्न मुनियों के लिए (मनुष्यलोक के भीतर) अगम्य प्रदेश का अभाव है।

मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों ने कुछ कम सात बटे चौदह (७/१४) भाग स्पर्श किये हैं। इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टियों का मारणान्तिकसमुद्घात के द्वारा भवनवासियों के निवासलोक-खरभाग और पंक भाग से नीचे गमन नहीं होता है। किन्तु ऊपर सर्वत्र मारणान्तिकसमुद्घात के द्वारा गमन संभव है। उपपादगत उक्त तीनों प्रकार के सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों ने सामान्य लोक आदि तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है और तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि मनुष्यों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां वर्तमानकाले स्वकसर्वपदैः क्षेत्रवत्स्पर्शनं। अतीतानागत-वर्तमानकालेषु मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिवत् स्पर्शनं।**

मारणान्तिकसमुद्घातगतैः असंयतसम्यग्दृष्टिभिः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः कथं स्पृष्टः?

सम्यग्दृष्टिमनुष्याः देवेषु मारणान्तिकं कुर्वन्तः संख्यातमार्गवत्संख्यातविमानेषु चैव मारणान्तिकं कुर्वन्ति, वानव्यन्तर-ज्योतिष्कयोः तेषामुत्पत्तेः अभावात्। मनुष्याः पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्काः पश्चात् सम्यक्त्वं गृहीत्वा तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते, इदं क्षेत्रमत्र प्रधानं। विशेषेण ते भोगभूमिष्वेवोत्पद्यन्ते।

प्रमत्तसंयतादि-अयोगिकेवलिनां स्पर्शनं क्षेत्रवत् ज्ञातव्यं।

एवं त्रिविधमनुष्याणां स्पर्शनप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

सयोगिकेवलिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।।३९।।

सूत्रार्थ—

मनुष्यों में सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।३८।।

हिन्दी टीका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का वर्तमानकाल में स्पर्शनक्षेत्र अपने सर्वपदों की अपेक्षा क्षेत्र प्ररूपणा के समान है। अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों में असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों की स्पर्शनप्ररूपणा सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के समान है।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों ने तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग कैसे स्पर्श किया है?

समाधान—देवों में मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले सम्यग्दृष्टि मनुष्य संख्यात मार्ग वाले संख्यात विमानों में ही मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि उनकी वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में उत्पत्ति नहीं होती है। जिन्होंने पहले तिर्यंचों की आयु बांध ली है ऐसे मनुष्य बाद में सम्यक्त्व को ग्रहण करके तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं, यह क्षेत्र यहाँ पर प्रधान है। वे भोगभूमि के तिर्यंच होते हैं यह विशेष ध्यान रखने की बात है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनियों से लेकर अयोगिकेवली भगवन्तों तक का स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणा के समान समझना चाहिए।

इस प्रकार तीन प्रकार के मनुष्यों के स्पर्शन का प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब सयोगिकेवलियों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जिनों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक का स्पर्श किया है।।३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतस्य सूत्रास्यार्थ पूर्वं उक्तः। सामान्यमनुष्याणां क्षेत्रवत्स्पर्शनं। एवं पर्याप्तमनुष्याणां मानुषीणां च। विशेषेण तु-मानुषीषु असंयतसम्यग्दृष्टीनामुपपादो नास्ति। प्रमत्तगुणस्थाने तैजसाहारौ न स्तः। अत्र द्रव्यपुरुषाणां भावस्त्री वेदिनामेव ग्रहणं ज्ञातव्यं।**

एवं सयोगिकेवलिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अपर्याप्तमनुष्यस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यैः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। मारणांन्तिकउपपादगताभ्यां त्रिलोकानामसंख्यातभागः, द्वाभ्यां लोकाभ्यां असंख्यातगुणः स्पृष्टः।**

विशेषेण एषामेव स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सव्वलोगो वा।।४१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः, संख्यातबहुभागा वा अतीतकाले स्पृष्टाः। मारणांतिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, सर्वत्र गमनागमयोः विरोधाभावात्।**

हिन्दी टीका—इस सूत्र का अर्थ पूर्व में कह चुके हैं। सामान्य मनुष्यों की स्पर्शनप्ररूपणा को क्षेत्र प्ररूपणा के समान ही समझना चाहिए। इसी प्रकार से पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनियों का स्पर्शन क्षेत्र जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यिनियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद नहीं होता है और उनमें भावस्त्री वेदी प्रमत्तसंयत गुणस्थान में तैजस एवं आहारक समुद्घात नहीं होते हैं। यहाँ द्रव्य पुरुषवेदी जीवों में भावस्त्रीवेद अवस्था को ही ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार सयोगिकेवलियों के स्पर्शनक्षेत्र का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ। अब अपर्याप्त मनुष्यों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।४०।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों के द्वारा स्वस्थान स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात को प्राप्त करके चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है। मारणान्तिक और उपपाद पद को प्राप्त उन्हीं लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों ने तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और दोनों लोक-मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अब इन्हीं लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य का विशेषरूपसे स्पर्शन बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है-

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा सर्वलोक का स्पर्श किया है।।४१।।

हिन्दी टीका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों ने सामान्यलोक

तात्पर्यमेतत्—अहो आश्चर्यं? मनुष्यगतिनामकर्मोदये सत्यपि एषां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां जन्मानि तु पर्याप्ततिरश्चामपेक्षयापि निम्नानि एव। एषां क्षुद्रभवग्रहणे किं प्रयोजनं? न किमपि इति, एतज्ज्ञात्वा पर्याप्तमनुष्यपर्यायं संप्राप्य निष्प्रमादीभूय रत्नत्रयमेव आराधनीयं अस्माभिः विवेकिभिः इति।

एवं लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां स्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति मनुष्यगतिस्पर्शनानुगमः तृतीयान्तराधिकारः समाप्तः।

अथ चतुःस्थलै पंचदशसूत्रैः देवगतिनामान्तराधिकारः कथ्यते—तत्र प्रथमस्थले सामान्यदेवानां गुणस्थानापेक्षया ''देवगदीए'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले भवनत्रिकदेवानां स्पर्शनकथनत्वेन ''भवण''' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले सौधर्मादिदेवानां नवग्रैवेयकपर्यंतानां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनत्वेन ''सोधम्मी'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अनुदिशादिदेवानां सम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

अधुना देवानां द्विगुणस्थानवर्तिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयं कथ्यते—

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४२।।

आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग, मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग अथवा संख्यात बहुभाग अतीतकाल में स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मनुष्यों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है क्योंकि उनके सर्वत्र गमनागमन में कोई विरोध नहीं है।

तात्पर्य यह है कि-अहो! आश्चर्य की बात है कि मनुष्यगति नामकर्म का उदय होने पर भी इन लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का जन्म तो पर्याप्त तिर्यंचों की अपेक्षा भी निम्नकोटि का ही होता है। इनके क्षुद्रभव ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है? कोई भी प्रयोजन नहीं है, ऐसा जानकर पर्याप्त मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके अब हम सभी विवेकीजनों को निष्प्रमादी होकर रत्नत्रय की ही आराधना करना चाहिए। अर्थात् रत्नत्रय धारण करके अपने मनुष्य जन्म को सार्थक करना चाहिए।

इस प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का स्पर्शन कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार मनुष्यगति स्पर्शनानुगम नाम का तृतीय अंतराधिकार समाप्त हुआ।

अब चार स्थलों में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा देवगति नाम का अन्तराधिकार कहा जाता है-उसमें से प्रथम स्थल में सामान्यदेवों का गुणस्थानों की अपेक्षा कथन करने हेतु ''देवगदीए'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में भवनत्रिक देवों का स्पर्शन कथन करने वाले 'भवण' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में सौधर्म आदि देवों से लेकर नवग्रैवेयक पर्यन्त के देवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कहने हेतु ''सोहम्मी'' इत्यादि पाँच सूत्रों का वर्णन है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में अनुदिश विमानों के सम्यग्दृष्टि देवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र है। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब दो गुणस्थानवर्ती देवों के स्पर्शन क्षेत्र का निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का कथन करते हैं—

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।४२।।

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।।४३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोः अर्थः सुगमः। अतीतानागतप्ररूपणार्थं उच्यते—विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः मिथ्यादृष्टिदेवैः सासादनदेवैश्च अतीतकाले अष्ट चतुर्दशभागा देशोना स्पृष्टाः।**

केन ऊना?

तृतीयपृथिवी-अधस्तनतलसंबंधि-एकसहस्रयोजनेभ्यः अन्येभ्योऽपि देवानामगम्यप्रदेशेभ्यः ऊना ज्ञातव्याः।

मारणान्तिकमिथ्यादृष्टि-सासादनाभ्यां नव चतुर्दशभागा देशोना स्पृष्टाः, अधोभागे द्वौ रज्जू, उपरि सप्त रज्जवः इति। उपपादगताभ्यां आभ्यां पंच चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः सहस्रारकल्पादुपरि एताभ्यां उपपादाभावात्।

षट्कायक्रमनियमे सति पंचचतुर्दशभागस्पर्शनं न युज्यते इति चेत् ? नैतत् शंकनीयं, चतसृणां दिशां अधस्तनोपरिमदिशोः च गच्छद्भिः सासादनैः तत्-पंच चतुर्दशभागस्पर्शनं प्रति विरोधाभावात्।

का दिक् नाम?

स्वकस्थानात् वाणवत् ऋजुक्षेत्रं दिक् उच्यते। ताः षडेव, अन्यासामसंभवात्।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।४३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ विशेषरूप से अतीत और अनागतकाल संबंधी स्पर्शन प्ररूपणा कथन हेतु व्याख्यान किया जा रहा है–

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात इन पदों से परिणतमिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि इन दो गुणस्थानवर्ती देवों ने अतीतकाल में कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

शंका—यहाँ आठ बटे चौदह भाग किस क्षेत्र से कम हैं?

समाधान—तृतीय पृथिवी के अधस्तन तलसंबंधी एक हजार योजनों से तथा अन्य भी देवों के अगम्य प्रदेशों से कम हैं, ऐसा जानना चाहिए।

मारणान्तिक-समुद्घात को प्राप्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों ने मंदराचल से नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु, इस प्रकार कुछ कम नौ बटे चौदह (९/१४) भाग स्पर्श किए हैं। उपपादपद को प्राप्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों ने कुछ कम पाँच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किए हैं क्योंकि सहस्रारकल्प से ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों का उपपाद नहीं होता है।

शंका—षट्कअपक्रम-छहों दिशाओं में आने-जाने का नियम होने पर सासादनगुणस्थानवर्ती देवों का स्पर्शनक्षेत्र पाँच बटे चौदह भाग प्रमाण नहीं बनता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि चारों दिशाओं को और ऊपर तथा नीचे की दिशाओं को गमन करने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के पाँच बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श करने के प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका—दिशा किसे कहते हैं?

समाधान—अपने स्थान से बाण की तरह ऋजुक्षेत्र-सीधे क्षेत्र को दिशा कहते हैं। वे दिशाएँ छह ही होती हैं क्योंकि अन्य दिशाओं का होना असंभव है।

का विदिक् नाम?

स्वकस्थानात् कर्ण रेखायाः आकारेण स्थितक्षेत्रं विदिक् नाम उच्यते। मारणान्तिक-उपपादगतजीवाभ्यां षट्सु दिक्षु गमनागमननियमो भवति, किञ्च आभ्यां विदिक्षु गमनासंभवात्।

उक्तं च—''जेण सव्वे जीवा कण्णायारेण ण जांति तेण छक्कापक्कमणियमो जुज्जदे[1]।''

भवनवासिषु उत्पद्यमानतिरश्चां उपपादक्षेत्रे गृहीते पंच रज्जवः सातिरेकाः किन्न भवन्ति?

न भवन्ति, अधिकक्षेत्रात् ऊनक्षेत्रस्य बहुत्वोपदेशात्। अधस्तने दण्डाकारेण अवतीर्य विग्रहं कृत्वा भवनवासिषु उत्पन्नानां प्रथमद्वितीयदण्डाभ्यां अतीतकाले रुद्धक्षेत्रात् सहस्रारकल्पस्योपपादशय्यायाः उपरिमभागस्य संख्यातगुणत्वात्। अतो ज्ञायते अधस्तनाधिकक्षेत्रापेक्षया उपरिमहीनक्षेत्रं अत्र प्रधानतया विवक्षितमस्ति। देवानां विमानशिखरमुत्सेधयोजनप्रमाणं इति न स्तोकः उपरिमभागः, सहस्रारोपरिमपर्यवसानस्य लक्षप्रमाणयोजनेभ्यः बहुत्वात्।

तत्कुतः ज्ञायते?

देशोनपंच-चतुर्दशभागस्पर्शनस्य अन्यथानुपपत्तेः इति नियमात् ज्ञायते।

देवेषु सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनाय द्वे सूत्रे कथ्येते—

शंका—विदिशा किसे कहते हैं?

समाधान—अपने स्थान से कर्ण रेखा के आकार से स्थित क्षेत्र को विदिशा कहते हैं।

मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद को प्राप्त जीवों का छहों दिशाओं में गमनागमन का नियम होता है, क्योंकि इनके विदिशाओं में गमन की संभावना नहीं पाई जाती है। कहा भी है-चूँकि ये सभी जीव कर्ण रेखा के आकार से अर्थात् तिरछे मार्ग से नहीं जाते हैं इसलिए छह दिशाओं के अपक्रम अर्थात् गमनागमन का नियम बन जाता है।

शंका— भवनवासियों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंचों के उपपाद क्षेत्र को ग्रहण करने पर पाँच राजु से अधिक स्पर्शन क्षेत्र क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं होता है क्योंकि अधिक क्षेत्र की अपेक्षा कम क्षेत्र बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है। नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशों से उतरकर और विग्रह करके भवनवासियों में उत्पन्न होने वाले जीवों के प्रथम और द्वितीय दण्डों के द्वारा अतीतकाल में रुद्धक्षेत्र से सहस्रारकल्प की उपपादशय्या का उपरिमभाग संख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचे के अधिक क्षेत्र की अपेक्षा ऊपर का हीन क्षेत्र प्रधानतया विवक्षित है। देवों के विमानों का शिखर सहित माप उत्सेधयोजन के प्रमाण से है इसलिए उपपादशय्या से ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखर से लेकर उसी कल्प के अन्त तक का क्षेत्र स्तोक अर्थात् अल्प नहीं है क्योंकि मेरुतल से नीचे के एक लाख प्रमाणयोजनों की अपेक्षा सहस्रारकल्प के विमान शिखर से ऊपरी पर्यंत भाग का प्रमाण बहुत है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—अन्यथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवों का देशोन पाँच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्शनक्षेत्र बन नहीं सकता है इस अन्यथानुपपत्ति नियम से जाना जाता है।

देवों में सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र कहे जा रहे हैं-

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. २२६।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४४।।

अट्ठ चोद्दसभागा वा।।४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रे सुगमे। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकगतैः असंयतसम्यग्दृष्टिभिः अष्ट चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः। उपपादगतैः षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, अच्युतकल्पादुपरि मनुष्यव्यतिरिक्तानामुपपादाभावात्। एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि। केवलं-अस्मिन् गुणस्थाने मारणान्तिकोपपादगतौ न स्तः।

एवं प्रथमस्थले सामान्यदेवानां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना भवनत्रिकदेवानां द्विगुणस्थानापेक्षया द्वे सूत्रे अवतार्येते—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठी केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४६।।

अद्धुट्ठा वा, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।।४७।।

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।४४।।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने अतीत और अनागतकाल में कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।४५।।

हिन्दी टीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं। उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किए हैं, क्योंकि अच्युतकल्प से ऊपर मनुष्यों को छोड़कर अन्य जीवों के उत्पन्न होने का अभाव है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का भी स्पर्शन जानना चाहिए, केवल इस गुणस्थान में मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य देवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब भवनत्रिक देवों का दो गुणस्थानों की अपेक्षा स्पर्शन बताने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।४६।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा लोकनाली के चौदह भागों में से कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग और नौ भाग स्पर्श किए हैं।।४७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकगतैः भवनवासिभिः देवैः मिथ्यादृष्टिभिः देशोनाः सार्धत्रयः चतुर्दशभागाः अथवा अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः। ते भवनवासिनः सार्धत्रयरज्जुप्रमाणक्षेत्रं स्वयमेव विहरन्ति।**

सार्धत्रयरज्जवः कथं जाताः?

मंदराचलतलात् अधः तृतीयपृथिवीपर्यंतं द्वौ रज्जू, उपरि यावत् सौधर्मकल्पविमानशिखरध्वजदण्डः इति सार्धैकरज्जुः इति सार्धत्रयरज्जवः कथिताः। एभिरेव आरणाच्युतकल्पवासिदेवप्रयोगात् विहारवत्स्वस्थानपदैः अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। मारणान्तिकै नव चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, मंदराचलात् उपरि लोकान्तपर्यंतं सप्तरज्जवः अधस्तृतीयपृथिवीपर्यंतं द्वौरज्जू इति।

भवनवासिनां सासादनानां स्वस्थानादिपदानि मिथ्यादृष्टिदेववत् ज्ञातव्यानि।

मिथ्यादृष्टि-सासादनवानव्यन्तरदेवैः स्वस्थानाद्यपेक्षया त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्चेति स्पृष्टः।

व्यंतरेषु देवाः नारकाः एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाश्च नोत्पद्यन्ते, तत्र केवलं संज्ञिनोऽसंज्ञिनः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः मनुष्याश्चैवोत्पद्यन्ते। तिर्यग्लोकस्य बाह्ये स्थितसौधर्मादिकल्पेषु व्यन्तराणामावासाः न सन्ति, तथाविधो-पदेशाभावात्। लक्षयोजनबाहल्यतिर्यक्प्रतरेऽपि सर्वत्र न तेषामावासाः, अन्यथा सूर्यादिज्योतिष्क-देवानामावासानां पन्नगबेलंधरादि भवनवासिनामावासानां चाभावप्रसंगात। भूमौ एव व्यन्तरावासानां नियमोऽपि

हिन्दी टीका—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगतपदवाले उक्त देवों ने चौदह भागों में से देशोन साढ़े तीन भाग (७/१८) अथवा कुछ कम आठ भाग (८/१४) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी देव साढ़े तीन राजु प्रमाण क्षेत्र पर्यन्त स्वयं ही विहार करते हैं।

शंका—साढ़े तीन राजु कैसे हुए?

समाधान—मंदराचल के तलभाग से नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु और ऊपर सौधर्मकल्प के विमान के शिखर पर स्थित ध्वजादंड तक डेढ़ राजु इस प्रकार मिलाकर साढ़े तीन राजु कहा है।

आरण और अच्युत कल्पवासी देवों के प्रयोग से विहारवत्स्वस्थानपद को प्राप्त जीवों के द्वारा आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किया गया है। मारणान्तिक समुद्घातगत उन्हीं भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवों ने नौ बटे चौदह (९/१४) भाग स्पर्श किए हैं। मंदराचल से ऊपर लोक के अन्त तक सात राजु और नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु इस प्रकार नौ राजु होते हैं।

भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के स्वस्थानादि सभी पदों का स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवों के समान है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देवों ने स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

व्यंतरों में न तो देव अथवा नारकी जीव उत्पन्न होते हैं और न एकेन्द्रिय, न विकलेन्द्रिय जीव ही उत्पन्न होते हैं, वहाँ केवल संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंच और संज्ञी मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं तथा तिर्यग्लोक से बाहर स्थित सौधर्मादि कल्पों में भी व्यंतर देवों के आवास नहीं होते हैं, क्योंकि उस प्रकार के उपदेश का अभाव है। और एक लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतर में भी सर्वत्र व्यंतर देवों के आवास नहीं होते हैं, अन्यथा चन्द्रसूर्यादि ज्योतिष्क देवों के आवासों का और पन्नग, वेलंधर आदि भवनवासी देवों के आवासों के अभाव का प्रसंग प्राप्त हो

नास्ति, आकाशप्रतिष्ठितव्यन्तराणामपि संभवात्। तिर्यग्लोके एव तेषामावासानां अपि नियमो न, किंच् रत्नप्रभापृथिव्याः पंकबहुलभागेऽपि भूत-राक्षसानां आवासानामुपलम्भात्। अतः एषां स्पर्शनक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागप्रमाणबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति।

एवमेव ज्योतिष्कदेवानामपि आगमाविरोधेन वक्तव्यं।

संप्रति भवनत्रिक-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रे द्वे अवतरतः —

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४८।।

अद्धुट्ठा वा अट्ठ चोदसभागा वा देसूणा।।४९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रे सुगमे स्तः।**

स्वस्थानस्वस्थान भवनवासि-व्यंतर-ज्योतिष्कसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः त्रिलोकानाम-संख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विशेषतः-भावनदेवैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः, इति वक्तव्यं। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-पदपरिणतैः अनयोर्गुणस्थानयोः सार्धत्रयः चतुर्दश भागा देशोनाः स्वकप्रत्ययेन, परप्रत्ययेन तु अष्ट चतुर्दशभागा

जायेगा तथा भूमि में ही व्यंतर देवों के आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि आकाश में प्रतिष्ठित व्यंतरों के आवास संभव है और तिर्यग्लोक में ही व्यन्तर देवों के आवासों के अस्तित्व का नियम भी नहीं है, क्योंकि नीचे रत्नप्रभा पृथिवी के पंकबहुल भाग में भी भूत और राक्षस नाम के व्यन्तर देवों के आवास पाये जाते हैं।

इसलिए इन जीवों का स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण बाहल्यवाला जगत्प्रतर हो जाता है।

इसी प्रकार ज्योतिषी देवों का स्पर्शनक्षेत्र भी आगम के अविरोधपूर्वक जानना चाहिए।

अब भवनत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का स्पर्शनक्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं।

सूत्रार्थ —

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।४८।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।४९।।

हिन्दी टीका — ये दोनों सूत्र सुगम हैं। विशेष बात इनमें यह समझना चाहिए कि स्वस्थानस्वस्थान पद वाले भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिष्क सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विशेष बात यह है कि भवनवासियों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है, ऐसा कहना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात, इन पदों से परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत भवनत्रिक

देशोनाः स्पृष्टाः। केवलं सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां मारणान्तिकपदं नास्ति।

एवं द्वितीयस्थले भवनत्रिकदेवानां चतुर्गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना सौधर्मैशानदेवानां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति देवोघं।।५०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। विशेषेण तु-सर्वे इन्द्रकाः संख्यातयोजनविस्तृताः, श्रेणिबद्धाः असंख्यातयोजनविस्तृताः प्रकीर्णकाश्च मिश्राः। अत्र यद्यपि सर्वविमानानि संख्यातयोजनविस्तृतानि इति गृह्यन्ते, तथापि सर्वविमानक्षेत्रफलसमासः तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागश्चैव भवति।**

अत्रसर्वकल्पानां विमानसंख्याः क्रमेण निरूप्यन्ते—

बत्तीसं सोहम्मे, अट्ठावीसं तहेव ईसाणे।
वारह सणक्कुमारे, अट्ठेव य होंति माहिंदे।।१।।
बम्हे कप्पे बम्होत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं।
छसु कप्पेसु य एवं चउरासीदी सयसहस्सा।।२।।

देवों ने स्वप्रत्यय से कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह (७/२८) भाग स्पर्श किए हैं तथा परप्रत्यय से कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के मारणान्तिकपद नहीं होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भवनत्रिक देवों का चार गुणस्थानों में स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवों का स्पर्शनक्षेत्र देवों के ओघस्पर्शन के समान है।।५०।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेषता यह है कि सभी इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं, श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन विस्तृत और प्रकीर्णक विमान मिश्र अर्थात् संख्यात और असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं। यहाँ पर यद्यपि सभी विमान संख्यात योजन विस्तार वाले ही ग्रहण किये गये हैं, फिर भी सभी विमानों के क्षेत्रफल का योग तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है।

यहाँ पर सभी कल्पों के विमानों की संख्या क्रम से कहते हैं-

गाथार्थ—सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकार से ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमान, सनत्कुमार कल्प में बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्प में आठ लाख विमान होते हैं। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्प में दोनों कल्पों के मिलाकर चार लाख विमान हैं। इस प्रकार इन पूर्व में बताए गए छह कल्पों में विमानों की

पण्णासं तु सहस्सा लंतव-काविट्ठएसु कप्पेसु।
सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीसं सहस्साइं।।३।।
छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे।
सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेय।।४।।
एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मज्झिमेसु सत्तहियं।
एक्काणउदिविमाणा तिसु गेवज्जेसु वरिमेसु।।५।।
गेवज्जाणुवरिमया णव चेव अणुद्दिसा विमाणा ते।
तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए[१]।।६।।

यानि यावन्ति विमानानि, तेषु सर्वत्र जिनालयास्तावन्त एव ज्ञातव्याः।

एभिः सौधर्मैशानदेवैः विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। मारणान्तिकमिथ्यादृष्टिसासादनैः नव चतुर्दशभागाः। उपपादगतैः सार्धैकः चतुर्दशभागः। सौधर्मकल्पः धरणीतलात् सार्धैकरज्जुः उपरि स्थितः इति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः विहारवत्स्वस्थानादिभिः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। एवं असंयत-सम्यग्दृष्टीनामपि। येनेवं देवौघात् सौधर्मकल्पे न विशेषोऽस्ति तेन देवौघमिति सूत्रवचनं सुष्ठु सुघटमिति।

सानत्कुमारादिदेवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतरति—

संख्या चौरासी लाख होती है। शतार और सहस्रार कल्प में छह हजार विमान होते हैं। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्प में मिलाकर सात सौ विमान होते हैं।

अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन ग्रैवेयकों में एक सौ सात विमान और उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इक्यानवे विमान होते हैं। नव ग्रैवेयकों के ऊपर अनुदिश संज्ञा वाले नौ विमान होते हैं। उनके ऊपर अनुत्तर संज्ञा वाले पाँच विमान होते हैं। ये कुल मिलाकर जितने विमान हैं, सबमें जिनमंदिर माने गये हैं।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात इन पदों को प्राप्त सौधर्म-ईशान कल्प के देवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिक पद से परिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों ने नौ बटे चौदह (९/१४) भाग स्पर्श किये हैं, उपपादपरिणत उन्हीं जीवों ने डेढ़ बटे चौदह (३/२८) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि सौधर्मकल्प पृथ्वीतल से डेढ़ राजु ऊपर जाकर स्थित है।

विहारवत्स्वस्थान आदि पदों से सहित इन सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये गये हैं। इसी प्रकार से असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का भी स्पर्शन क्षेत्र जानना चाहिए। चूँकि देवों के ओघस्पर्शन से सौधर्मकल्प में कोई विशेषता नहीं है, इसलिए 'देवोघ' यह सूत्र वचन भलीप्रकार सुघटित होता है।

अब सानत्कुमार आदि देवों का स्पर्शन क्षेत्र बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. २३६।

साणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।।५१।।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।।५२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **अनयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः।**

पंचकल्पवासिचतुर्गुणस्थानवर्तिजीवैः स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणतैः अतीतकाले चतुर्लोकानाम-संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थानवेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। उपपादपरिणतैः सानत्कुमारमाहेन्द्रदेवैः त्रयः चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। ब्रह्मब्रह्मोत्तर-कल्पवासिदेवैः सार्धत्रयः चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। लांतवकापिष्ठदेवैः चत्वारः चतुर्दशभागाः देशोनाः, शुक्रमहाशुक्रदेवैः सार्धचत्वारः चतुर्दशभागाः देशोनाः, शतारसहस्रारदेवैः पंच चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। विशेषेण तु सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मारणान्तिकोपपादपदे न स्तः।

संप्रति आनतादिषोडशस्वर्गपर्यंतदेवानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति —

सूत्रार्थ —

सानत्कुमारकल्प से लेकर शतार सहस्त्रारकल्प तक के देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५१।।

सानत्कुमारकल्प से लेकर सहस्त्रारकल्प तक के मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवों ने अतीत और अनागतकाल में कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।५२।।

हिन्दी टीका — इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। जो विशेषता है उनका व्याख्यान किया जा रहा है। सानत्कुमार आदि पाँच कल्पों के चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थानपद से परिणत देवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात इन पदों से परिणत उक्त देवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपद से परिणत सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवों ने कुछ कम तीन बटे चौदह (३/१४) भाग स्पर्श किये हैं। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवों ने कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह (७/२८) भाग स्पर्श किये हें। लान्तव और कापिष्ठ कल्पवासी देवों ने कुछ कम चार बटे चौदह (४/१४) भाग स्पर्श किये हैं। शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देवों ने कुछ कम साढ़े चार बटे चौदह (९/२८) भाग स्पर्श किये हैं। शतार और सहस्रार कल्पवासी देवों ने कुछ कम पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

अब आनत आदि सोलहों स्वर्ग तक के देवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है —

आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५३।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।।५४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **अनयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। विशेषेण-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-परिणतैःषट् चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, चित्रापृथिव्याः उपरितलात् अधः तेषां गमनाभावात्। मिथ्यादृष्टि-सासादनानां उपपादः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणः।**

कुतः?

पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभ-संख्यातरज्जु-आयतमुपपादक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागं न प्राप्नोति इति। अतः मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः स्वस्थानस्वस्थानपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

असंयतसम्यग्दृष्टिभिः उपपादपदैः सार्धपंच चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः। आरणाच्युतकल्पदेवैः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टा देशोनाश्च।

किं कारणं?

सूत्रार्थ —

आनतकल्प से लेकर आरण-अच्युत तक कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५३।।

चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पवासी देवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।५४।।

हिन्दी टीका — इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। इनमें जो विशेषता है उसका व्याख्यान कर रहे हैं-विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात से परिणत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि चित्रा पृथिवी के उपरिम तल से नीचे इसके गमन का अभाव है, उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों का उपपाद की अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा है कैसे? क्योंकि पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाला और संख्यात राजुप्रमाण आयत उक्त देवों का उपपाद क्षेत्र भी तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग को नहीं प्राप्त होता है।

अतः स्वस्थानस्वस्थानपद से सहित मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

उपपादपद से परिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने कुछ कम साढ़े पाँच बटे चौदह (११/२८) भाग स्पर्श किये हैं। आरण और अच्युतकल्प में उक्त पदपरिणत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं।

प्रश्न — इसका क्या कारण है?

तिरश्चोः असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः वैरिदेवसंबंधेन सर्वद्वीपसागरेषु स्थितयोः तत्रोपपादोपलंभात्।

नवग्रैवेयकदेवानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्य सूत्रस्य वर्तमानातीतप्ररूपणासु स्पर्शनं क्षेत्रवत्। अत्र सर्वेऽपि देवा अहमिन्द्रा एव। विशेषेण तु-सुदर्शनामोघसुप्रबुद्ध-यशोधरसुभद्रविशाल-सुमन सौमनसप्रीतिंकराख्याः नवग्रैवेयकाः सन्ति, एष्वपि त्रयोऽधोग्रैवेयकाः, त्रयोमध्यमग्रैवेयकाः त्रयश्चोपरिमग्रैवेयकाः भवन्ति। एतेषु मिथ्यात्वादिचतुर्गुणस्थानानि विद्यन्ते। अत्र द्रव्यवेषेण दिगंबरमुनय एव, भावेन कदाचित् मिथ्यादृष्टयः केचित्, सासादनाः, सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः, असंयतसम्यग्दृष्टयोऽपि संयतासंयताः वा तत्र गंतुं शक्नुवन्ति। केचित् च द्रव्येण मुनयो भावेनापि षष्ठसप्तमादिगुणस्थानवर्तिनः तत्र उत्पद्यन्ते किन्तु तत्र देवगतौ चत्वार्येव गुणस्थानानि भवन्ति।**

एवं तृतीयस्थले सौधर्मादिनवग्रैवेयकपर्यन्तानां देवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

अधुना अनुदिशादिसम्यग्दृष्टिदेवानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उत्तर—इसका कारण यह है कि वैरी देवों के संबंध से सर्वद्वीप और सागरों में विद्यमान तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों का आरण-अच्युतकल्प में उपपाद पाया जाता है।

अब नवग्रैवेयक विमानों में रहने वाले देवों का स्पर्शन क्षेत्र बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

नवग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक विमान के गुणस्थानवर्ती देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५५।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र की वर्तमानकालीन और अतीतकालीन प्ररूपणाओं में स्पर्शन को क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए। इन नवग्रैवेयकों में सभी देव अहमिन्द्र ही होते हैं। विशेष बात यह है कि सोलह **स्वर्गों के ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, समुद्र, विशाल, सुमन, सौमनस और प्रीतिंकर नाम वाले नवग्रैवेयक विमान होते हैं।** उनमें तीन अधोग्रैवेयक हैं, तीन मध्यम ग्रैवेयक हैं और तीन उपरिम ग्रैवेयक हैं। इन सभी विमानों में रहने वाले देवों के मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयतसम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान पाये जाते हैं। द्रव्यवेष से दिगम्बर मुनि ही वहाँ जन्म लेते हैं, भाव से कदाचित् मिथ्यादृष्टि जीव भी वहाँ जन्म ले लेते है और भाव की अपेक्षा ही सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य भी वहाँ जन्म ले सकते हैं तथा कोई दिगम्बर भावलिंगी मुनि भी जो भाव से छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती हैं वे भी वहाँ उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु वहाँ पर देवगति होने के कारण सभी के आदि के चार गुणस्थान ही होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सौधर्म स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक पर्यन्त रहने वाले देवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनुदिश आदि विमानों में रहने वाले सम्यग्दृष्टि देवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

अणुद्दिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **सूत्रं सुगमं। अर्चि-अर्चिमालि-वैर-वैरोचन-सोम-सोमप्रभ-अंक-स्फटिक-आदित्याख्या इमे नव अनुदिशाः सन्ति। पुनश्च विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजित-सर्वार्थसिद्धि नामधेयाः पंच अनुत्तराः सन्ति। एषु चतुर्दशसु विमानेषु स्थिताः सर्वे अहमिन्द्राः सम्यग्दृष्टय एव, तत्र मिथ्यादृष्टीनामभावात्। अत एतेषु स्थितासंयतसम्यग्दृष्टिभिः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। नवग्रैवेयकादि-उपरिमदेवानां तिर्यक्षु च्यवनोपपादाभावात्। विशेषतः-पंचपदपरिणतैः सर्वार्थसिद्धिदेवैः मानुषलोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः।**

तात्पर्यमेतत्-अद्यत्वे पंचमकाले नवग्रैवेयकादिषु उत्पत्तेरभावोऽस्ति, तत्रस्थानां देवानामपि मध्यलोके असंख्यातद्वीपसमुद्रादिषु नंदीश्वरद्वीपे मेर्वादिषु अपि आगमनाभावात् सदाकालं। इमे अहमिन्द्राः तत्रत्यात् एव जिनेन्द्राणां पंचकल्याणकादिषु नमस्कुर्वन्ति। तथा च ''विजयादिषु द्विचरमाः'' इति सूत्रात्

सूत्रार्थ —

नव अनुदिश विमानों से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवों में असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५६।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। इसमें जो विशेषता है उसका व्याख्यान किया जा रहा है- **नवग्रैवेयकों के ऊपर अर्चि, अर्चिमालि, वैर, वैरोचन, सोम, सोमप्रभ, अंक, स्फटिक और आदित्य इन नामों वाले नौ अनुदिश विमान होते हैं पुनः उनके ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नाम के पाँच अनुत्तर विमान हैं।**

इन चौदह विमानों में रहने वाले सभी अहमिन्द्र सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, क्योंकि वहाँ मिथ्यादृष्टियों का अभाव है। अर्थात् नवग्रैवेयक विमानों तक तो चारों गुणस्थान होते हैं किन्तु नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान के देवों में केवल एक चतुर्थ गुणस्थान ही पाया जाता है। अतः इन नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद से परिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवों ने सामान्यलोक आदि चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि नवग्रैवेयकादि उपरिम कल्पवासी देवों का च्यवन होकर तिर्यंचों में उपपाद होने का अभाव है। विशेष बात यह है कि यह स्वस्थानादि पाँच पदों से परिणत सर्वार्थसिद्धि के देवों ने मनुष्यलोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।

तात्पर्य यह है कि आज इस पंचमकाल में नवग्रैवेयक आदि में उत्पत्ति का अभाव है, अर्थात् इस भरतक्षेत्र का कोई मनुष्य वर्तमान में मरण करके सोलह स्वर्गों तक ही जा सकता है उससे ऊपर जाने की आज योग्यता नहीं है। उन नवग्रैवेयक आदि देवों का भी मध्यलोक के असंख्यात द्वीप-समुद्रों में, नंदीश्वरद्वीप में एवं मेरु पर्वत आदि में आगमन का सदा काल अभाव है। अर्थात् वे कभी भी कहीं नहीं जाते हैं, सदाकाल अपने-अपने विमानों में ही रहते हुए तत्त्वचर्चा आदि में निमग्न रहते हैं। ये अहमिन्द्र देव वहीं से — अपने

विजयादिचतुर्विमानस्थिताः द्विभवावतारिणः, सर्वार्थसिद्धिस्थिताः सर्वे एकभवावतारिणः एव भवन्ति। इति ज्ञात्वा सम्यग्दर्शनबलेन स्वभवं एकभवावतारिणं कर्तुं प्रयत्नो विधेयः भवद्भिरिति।

एवं चतुर्थस्थले सम्यग्दृष्टि-अनुदिशादिस्थितदेवानां स्पर्शनकथनेन एकं सूत्रं गतं।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

विमान से ही जिनेन्द्र भगवन्तों के पंचकल्याणक आदि के समय नमस्कार करते हैं तथा "विजयादिषु द्विचरमाः" सूत्र के अनुसार पाँच अनुत्तरों में से विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित इन चार विमानों में रहने वाले देव दो भवावतारी होते हैं—मनुष्य के दो भव लेकर मोक्ष चले जाते हैं एवं अंतिम अनुत्तर-सर्वार्थसिद्धि विमान में रहने वाले सभी देव एक भवावतारी ही होते हैं। वहाँ से चयकर मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर नियम से संयम ग्रहण करके मोक्षपद प्राप्त कर लेते हैं। इन विशेषताओं को जानकर आप सभी को सम्यग्दर्शन के बल से अपने इस जन्म को आगे एक भवावतारी वाला जन्म बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिए। अर्थात् इस मनुष्य पर्याय में निर्दोष चारित्र एवं अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके सौधर्म इन्द्र अथवा लौकांतिक देव का पद प्राप्त करके मात्र एक भव मनुष्य का लेकर शीघ्र मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, उसी संभावित शक्ति को प्रगट करने की प्रेरणा यहाँ प्रदान की गई है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में सम्यग्दृष्टि अनुदिश आदि विमानों में स्थित देवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में गतिमार्गणा नामक प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः स्थलैः नवसूत्रैः इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''इंदिया'' इत्यादि त्रीणि सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियाणां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियपर्याप्तानां स्पर्शनकथनत्वेन ''पंचिंदियअपज्जत्त'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना सामान्यैकेन्द्रियाणां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।५७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**इन्द्रियमार्गणानुवादेन एकेन्द्रिय-एकेन्द्रियपर्याप्त-एकेन्द्रियापर्याप्त-बादरैकेन्द्रिय-बादरैकेन्द्रियपर्याप्त-बादरैकेन्द्रियापर्याप्त-सूक्ष्मैकेन्द्रिय-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्त-सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तैः नवविधैः एकेन्द्रियजीवैः कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं? सर्वलोकः स्पृष्टः इति ज्ञातव्यं।**

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः एकेन्द्रियजीवैः अतीतवर्तमानयोः सर्वलोकः स्पृष्टः। वैक्रियिकगतैः वर्तमाने काले चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मनुषलोकस्य प्रमाणं न ज्ञायते। तैरेवातीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकयोः असंख्यातगुणश्च स्पृष्टः, अतीतकाले पंचरज्जुबाहल्यं तिर्यक्प्रतरं विक्रियमाणाः स्पृशन्ति वायुकायिकाः जीवाः।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु ''इंदिया'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीयस्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शक्षेत्र बताने हेतु ''पंचिंदिय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः आगे तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का स्पर्श कथन करने वाले ''पंचिंदिय अपज्जत्त'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका है।

अब सामान्य एकेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त, एकेन्द्रियअपर्याप्त, बादरएकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक का स्पर्श किया है।।५७।।

हिन्दी टीका—सूत्र का संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि नौ प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों ने कितने क्षेत्र का स्पर्श किया है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर प्राप्त होता है कि सर्वलोक का स्पर्श उन जीवों ने किया है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों से परिणत एकेन्द्रिय जीवों ने अतीत और वर्तमानकाल में सर्वलोक का स्पर्श किया है। वैक्रियिक पदपरिणत एकेन्द्रिय जीवों ने वर्तमान काल में चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। इस विषय में मनुष्यक्षेत्र का प्रमाण ज्ञात नहीं है।

वादरैकेन्द्रियैः बादरैकेन्द्रियपर्याप्तैः स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः वर्तमानकाले त्रिलोकानां संख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। येन पंचरज्जुबाहल्यं रज्जुप्रतरप्रमाणं वायुकायिक-जीवैरापूरितं, बादरैकेन्द्रियजीवैः आपूरिता अष्टपृथिव्यश्च, तासां पृथिवीनां अधः स्थितविंशतिविंशति-सहस्रयोजनबाहल्यं त्रित्रिवातवलयान् लोकान्तस्थितवायुकायिकक्षेत्रं च एकत्रीकृते लोकस्य संख्यातभागो भवतीति। एतैः जीवैः अतीतकालेऽपि इयच्चैव क्षेत्रं स्पृष्टं, विवक्षितपदगतानामेतेषां सर्वकालं अन्यत्रावस्थानाभावात्। वैक्रियिकपदगतैः एभिरेव जीवैः वर्तमाने काले चतुर्लोकानामसंख्यातभागः मानुषक्षेत्रादज्ञातविशेषक्षेत्रं च स्पृष्टः। अतीतकाले त्रिलोकानाम् संख्यातभागः नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिकोपपादपरिणतैः जीवैः अतीतवर्तमानयोः सर्वलोकः स्पृष्टः। एवमेव एकेन्द्रियापर्याप्त जीवानां स्पर्शनक्षेत्रं वक्तव्यं। विशेषतया तेषां वैक्रियिकपदं नास्ति। सूक्ष्मैकेन्द्रिय-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्त-सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तैः त्रिभिरपि जीवैः त्रिकालेष्वपि सर्वलोकः स्पृष्टः।

''सुहुमा जलथलागासे सव्वत्थ होंति'' इति वचनात्।

तात्पर्यमेतत्—सूक्ष्मा जीवाः तिलेषु तैलवत् सर्वत्र त्रिलोकेषु निविडरूपेण भृताः सन्ति, सर्वे इमे पंचस्थावराः अपि इति ज्ञातव्यं।

उन्हीं जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक का असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि अतीतकाल में पाँच राजु बाहल्यप्रमाण तिर्यक्प्रतर को विक्रिया करने वाले वायुकायिक जीव निरन्तर स्पर्श करते हैं। स्वस्थान, वेदना और कषाय समुद्घात, इन पदों से परिणत बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

पांच राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्र वायुकायिक जीवों से परिपूर्ण है और बादर एकेन्द्रिय जीवों से आठों पृथिवियां व्याप्त हैं। उन पृथिवियों के नीचे स्थित बीस-बीस हजार योजन बाहल्यवाले तीन-तीन वातवलयों को और लोकांत में स्थित वायुकायिक जीवों के क्षेत्र को एकत्रित करने पर सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग हो जाता है।

इन्हीं उक्त जीवों ने अतीतकाल में भी इतना ही क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि विवक्षित पदपरिणत इन उक्त जीवों के सभी कालों में अन्यत्र रहने का अभाव है। वैक्रियिक समुद्घात से परिणत बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषक्षेत्र से अज्ञात विशेष प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकाल में उन्हीं जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवों ने अतीत और वर्तमानकाल में सर्वलोक का स्पर्श किया है।

इसी प्रकार से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके वैक्रियिकसमुद्घात नहीं होता है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि सूक्ष्मकायिक जीव जल, स्थल और आकाश में सर्वत्र होते हैं। ऐसा आगम का वचन है।

तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म जीव तिलों में तेल के समान तीन लोक में सर्वत्र निविडरूप से—सघनरूप से ठसाठस भरे हुए हैं, ये सभी पंचस्थावर भी हैं ऐसा जानना चाहिए।

द्वीन्द्रियादीनां स्पर्शनक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्त कवेडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५८।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

पुनरपि एषामेव स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सव्वलोगो वा।।५९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। विशेषतया-स्वस्थानस्वस्थानस्था विकलेन्द्रियाः स्वयंप्रभपर्वतस्य परभागे एव भवन्ति, अतः परभागे पूर्ववत् प्रतराकारेण स्थापिते विकलेन्द्रियस्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं भवति। शेषपदैः वैरिसंबंधेन विकलेन्द्रियाः सर्वत्र तिर्यक्प्रतरस्याभ्यंतरे भवन्तीति प्रतराकारेण स्थापिते इदमपि क्षेत्रं तावच्चैव भवति। मारणान्तिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।**

अब दो इन्द्रिय आदि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त, त्रीन्द्रियअपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५८।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। अतः विशेष कथन नहीं किया जा रहा है।

अब उन्हीं दो इन्द्रिय आदि जीवों का पुनः अन्य रीति से स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है।।५९।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। इसमें विशेषता यह है कि स्वस्थानस्वस्थान में स्थित विकलेन्द्रिय जीव स्वयंप्रभपर्वत के परभाग में ही होते हैं, इसलिए परभागवर्ती क्षेत्र को पूर्व के समान प्रतराकार से स्थापित करने पर विकलेन्द्रिय जीवों का स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग मात्र होता है। शेष पदों की अपेक्षा वैरी जीवों के संबंध से विकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यक्प्रतर के भीतर ही होते हैं, इसलिए प्रतराकार से स्थापित करने पर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग मात्र ही होता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद से परिणत उक्त जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है। उन्हीं अपर्याप्त विकलेन्द्रिय जीवों में से स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात परिणत अपर्याप्त जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग तथा अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपादपदपरिणत जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाते समय जिस प्रकार (उक्त क्षेत्र होने का जो) कारण कहा है, उसी

तैरेवापर्याप्तैः विकलेन्द्रियैः स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।

पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां यथा कारणमुक्तं, तथा अत्रापि पृथक्-पृथक् विकलेन्द्रियापर्याप्तानां वक्तव्यं।

एवं प्रथमस्थलेएकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां स्पर्शननिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

पंचेन्द्रियाणां मिथ्यादृष्टीनां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।६०।।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।।६१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। द्विविधपंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि-स्वस्थानपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। अत्र पूर्ववत् ज्योतिष्कव्यंतरावासरुद्धक्षेत्रं अतीतकाले पंचेन्द्रियतिर्यग्भिः स्वस्थानीकृतक्षेत्रं च गृहीत्वा तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो दर्शयितव्यः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, मेरुमूलादुपरि षट्, अधो द्विरज्जुक्षेत्रस्याभ्यन्तरे सर्वत्र पूर्वपदपरिणतद्विविधपंचेन्द्रिययोः उपलंभात्। मारणान्तिकोपपादपरिणताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, विवक्षिततीतकालत्वात्।**

प्रकार से यहाँ पर भी पृथक्-पृथक् द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का क्षेत्र बतलाते हुए उसी कारण को कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन निरूपित करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।६०।।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक का स्पर्श किया है।।६१।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है।

स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त इन दोनों ही प्रकार के पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहाँ पर पूर्व के समान ही ज्योतिष्क और व्यन्तर देवों के आवासों से रुद्ध क्षेत्र को तथा अतीतकाल में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के द्वारा स्वस्थानीकृत अर्थात् स्वस्थानस्वस्थानरूप से परिणत क्षेत्र को लेकर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग दिखाना चाहिए।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात से परिणत जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि मेरुपर्वत के मूलभाग से ऊपर छह राजु और नीचे दो राजु, इस प्रकार आठ राजु क्षेत्र के भीतर सर्वत्र पूर्वपदपरिणत दोनों प्रकार के पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घात

सासादनादीनां एषामेव स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।६२।।

सूत्रं सुगमं।

सयोगिकेवलिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारः क्रियते—

सजोगिकेवली ओघं।।६३।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं द्वितीयस्थले पंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रियपर्याप्तानां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं।

पंचेन्द्रियापर्याप्तानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

पंचिंदिय-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।।६४।।

एतस्यापि प्ररूपणा क्षेत्रवत् ज्ञातव्या।

पुनरपि एषामेव स्पर्शननिरूपणार्थं सूत्रमवतरति—

और उपपादपद से परिणत उक्त दोनों प्रकार के जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि यहाँ पर अतीतकाल की विवक्षा की गई है।

अब सासादनगुणस्थानवर्ती उपर्युक्त जीवों का ही स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।६२।।

सूत्र का अर्थ सुगम है, अतः विशेष कथन नहीं किया जा रहा है।

अब सयोगिकेवलियों का स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।६३।।

सूत्र का अर्थ सुगम है, इसलिए विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के स्पर्शनक्षेत्र का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के स्पर्शन को बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।६४।।

इस सूत्र की प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए।

पुनश्च इन्हीं अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन कहने हेतु सूत्र प्रगट हो रहा है—

सव्वलोगो वा।।६५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। अत्रापि मारणान्तिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, सर्वलोके एताभ्यां पदाभ्यां सह सर्वलब्ध्यपर्याप्तानां गमनागमनप्रतिषेधाभावात्।**

एवं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां स्पर्शनप्रतिपादनपरे द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे श्रीज्ञानमती-कृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारो समाप्तः।

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है।।६५।।

सूत्र सुगम है। यहाँ भी मारणान्तिक और उपपादपद को प्राप्त लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि संपूर्ण लोक में इन दोनों पदों के साथ सभी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवों के गमन और आगमन के प्रतिषेध का अभाव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवों का स्पर्शन क्षेत्र प्रतिपादित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थप्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में इन्द्रियमार्गणा नामक द्वितीय अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकार:

अथ स्थलद्वयेन अष्टसूत्रैः कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्थावरपंचकानां स्पर्शनकथनत्वेन षट्सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले त्रसाणां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे इति पातनिका।

अधुना स्थावरकायानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते—

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीर-तस्सेव अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।६६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**कायानुवादेन पृथिवीकायिक-अप्कायिक-तेजस्कायिक-वायुकायिक-बादरपृथिवीकायिक-बादराप्कायिक-बादरतेजस्कायिक-बादरवायुकायिक-बादरवनस्पतिकायिक-प्रत्येकशरीरजीवाः एषां पंचबादराणां अपर्याप्ताश्च जीवाः, सूक्ष्मपृथिवीकायिक-सूक्ष्म अप्कायिक-सूक्ष्मतेजस्कायिक-सूक्ष्मवायुकायिकाः एषां चतुर्विधसूक्ष्माणां पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च चतुश्चतुर्विधाः इमे**

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में आठ सूत्रों के द्वारा कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पंचस्थावर जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में त्रस जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाले दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब स्थावरकायिक जीवों का स्पर्शनक्षेत्र कहने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुवाद से पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव तथा इन्हीं पाँचों के बादर कायसंबंधी अपर्याप्तजीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक स्पर्श किया है।।६६।।

हिन्दी टीका—कायमार्गणा की अपेक्षा से सामान्य पृथिवी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवी, जल, अग्नि, वायुकायिक तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव एवं इन्हीं पाँचों के बादर जीवों के अपर्याप्त भेद, सूक्ष्म पृथिवी, जल, अग्नि, वायुकायिक और इन्हीं चार प्रकार के सूक्ष्म जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त से चार-चार भेद हैं अतः ये सभी १८+८=२६ (छब्बीस) भेद कहे हैं। इन छब्बीस भेदों से सहित स्थावरकाय जीवों ने कितने क्षेत्र को स्पर्श किया है? ऐसा प्रश्न होने पर उन जीवों ने संपूर्ण

सर्वे षड्विंशतिभेदाः जीवाः कथिताः। एभिः षड्विंशतिभेदसहितैः स्थावरकायैः कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं? सर्वलोकः इति ज्ञातव्यं।

इमे बादरपृथिवीकायिकादय जीवाः पृथिवीः आश्रित्यैव तिष्ठन्ति एवं सर्वाः पृथिव्यः सप्तरज्जुप्रमाणायताः सन्ति। प्रथमपृथिवी साधिकैकरज्जुरुंदा, बाहल्येन अशीतिसहस्राधिक-लक्षयोजनप्रमाणं भवति। द्वितीयपृथिवी षड्भिः सप्तभागैः अधिकएकरज्जुविष्कंभा, बाहल्येन द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनप्रमाणं। तृतीयपृथिवी पंच सप्तभागाधिकद्वयरज्जुरुंदा, अष्टाविंशतिसहस्रयोजनबाहल्या। चतुर्थपृथिवी चतुः सप्तभागाधिकत्रयरज्जुरुंदा, चतुर्विंशतिसहस्रयोजनबाहल्या। पंचमपृथिवी त्रि-सप्तभागाधिक चतुःरज्जुरुंदा, विंशतिसहस्रयोजनबाहल्या। षष्ठपृथिवी द्वौ सप्तभागादिकपंचरज्जुरुंदा, षोडश सहस्रयोजनबाहल्या। सप्तमपृथिवी एक-सप्तभागाधिक-षड्रज्जुरुंदा, अष्टसहस्रयोजनबाहल्या। इमाः सर्वाः भूमयः अधोलोके सन्ति।

अष्टमीपृथिवी सातिरेका एकरज्जुरुंदा अष्टयोजनबाहल्या ईषत्प्राग्भारनामधेया भवति। इयं लोकाग्रेऽस्ति।

एताः अष्टपृथिव्यः प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य बाहल्यात् संख्यातगुणबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति।

पृथिवीकायिकाप्कायिकजीवैः तयोः एव सर्वसूक्ष्मकायिकजीवैः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः-त्रिकालेष्वपि सर्वलोकः स्पृष्टः।

बादरपृथिवीकायिक-बादरजलकायिकैः एषामेव अपर्याप्तैः बादराग्निकायिकैः तेषां अपर्याप्तैः, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर-बादरनिगोदप्रतिष्ठितैः तेषामेवापर्याप्तैः एभिः सर्वैः जीवैः स्वस्थान-वेदना-

---

लोक का स्पर्श किया है, ऐसा जानना चाहिए।

ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवियों का आश्रय लेकर ही रहते हैं तथा सभी पृथिवियाँ सातराजू प्रमाण आयत—लम्बी हैं। प्रथम पृथिवी साधिक एक राजू चौड़ी है और एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण उसकी मोटाई है। द्वितीय पृथिवी छह बटे सात ($1\frac{6}{7}$) भागों से अधिक एक राजू चौड़ी है और उसकी मोटाई बत्तीस हजार योजन प्रमाण है। तृतीय पृथिवी पाँच बटे सात ($2\frac{5}{7}$) भागों से अधिक दो राजू चौड़ी है और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। चौथी पृथिवी चार बटे सात भागों से अधिक तीन राजू ($3\frac{3}{7}$)चौड़ी है और उसकी मोटाई चौबीस हजार योजनप्रमाण है। पाँचवीं पृथिवी तीन बटे सात भागों से अधिक चार राजू ($4\frac{6}{7}$) चौड़ी है तथा बीस हजार योजन मोटी है। छठी पृथिवी दो बटे सात भागों से अधिक पाँच राजू ($5\frac{2}{7}$) चौड़ी है और उसकी मोटाई सोलह हजार योजन है। सातवीं पृथिवी एक बटे सात भाग से अधिक छह राजू ($6\frac{1}{7}$) चौड़ी है और आठ हजार योजन मोटी है। ये सभी सातों नरक पृथिवियाँ अधोलोक में हैं।

आठवीं ईषत्प्राग्भार नाम की पृथिवी कुछ अधिक एक राजू चौड़ी है तथा आठ योजन मोटी है। यह पृथिवी लोक के अग्रभाग पर स्थित है।

इन आठों पृथिवियों को प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक की मोटाई से संख्यातगुणी मोटाई के प्रमाण वाला जगत् प्रतर होता है।

पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव तथा इन दोनों के सभी सूक्ष्मकायिक जीवों में स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपादपद से परिणत जीवों ने तीनों कालों में भी संपूर्ण लोक का स्पर्श किया है।

बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीव तथा इन्हीं अपर्याप्त जीवों ने, बादर अग्निकायिक और उन्हीं अपर्याप्त जीवों ने, वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर-बादरनिगोद प्रतिष्ठित तथा उन्हीं के अपर्याप्त भेद वाले सभी जीवों ने स्वस्थान, वेदना और कषाय समुद्घात से परिणत जीवों ने तीनों कालों में सामान्य लोक आदि तीनों

कषाय-समुद्घातपरिणतैः त्रिकालेषु सामान्यादित्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

उपर्युक्तजीवैः तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणं क्षेत्रं कथं स्पृष्टं?

इमे बादर पृथिवीकायिकादयः पृथिव्याधारेणैव तिष्ठन्ति, पृथिवीनां प्रमाणं उपरि कथितं वर्तते, अतएव संख्यातगुणंक्षेत्रं एव स्पृश्यते एभिः जीवैः।

उपर्युक्तजीवैः मारणान्तिकोपपादगताभ्यां त्रिकालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः।

कुतः?

तयोः स्वभावत्वात्।

वैक्रियिकसमुद्घातगतैः अग्निकायिकैः वर्तमानकाले पंचानां लोकानामसंख्यातभागः, भूतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागश्च स्पृष्टः। किंच, तेजस्कायिकपर्याप्ता एव वैक्रियिकशरीरं उत्पादयन्ति, अपर्याप्तेषु तदभावात्। ते च पर्याप्ताः कर्मभूमिष्वेव भवन्ति। स्वयंप्रभ-पर्वतपरभागक्षेत्रं जगत्प्रतरे बद्धे तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति। अथवा बादरतेजस्कायिकपर्याप्ताः कर्मभूमिषु उत्पन्नाः वायुसंबंधेन संख्यात योजनबाहल्यं तिर्यक्प्रतरं अतीतकाले सर्वमापूर्य विकुर्वन्ति इति गृहीते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागश्चैव भवति। बादरपृथिवीकायिकसदृशाः बादरतेजस्कायिका अपि सर्वपृथिवीषु तिष्ठन्ति। विशेषेण-वैक्रियिकपदस्य तेजस्कायिक-वैक्रियिकपदभंगवत्। वायुकायिकानां अतीतानागतयोः

लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा एवं मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

प्रश्न — उपर्युक्त सभी जीवों ने तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है?

उत्तर — ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवी के आधार से ही रहते हैं और सभी पृथिवियों का प्रमाण ऊपर कहा ही गया है, इसलिए इन जीवों ने संख्यातगुणे क्षेत्र को ही स्पर्श किया है।

उपर्युक्त जीवों में मारणान्तिक और उपपाद पद से सहित जीवों ने तीनोंकालों में संपूर्ण लोक का स्पर्श किया है।

कैसे?

क्योंकि उन दोनों प्रकार के जीव स्वभाव से ही समस्त लोक का स्पर्श करते देखे जाते हैं। अर्थात् स्वाभाविकरूप से इनका स्पर्श क्षेत्र सम्पूर्ण लोक समझना चाहिए।

वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त अग्निकायिक जीवों ने वर्तमानकाल में पाँचों प्रकार के लोकों का असंख्यातवां भाग तथा भूतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

दूसरी बात यह है कि तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैक्रियिकशरीर को उत्पन्न करते हैं, क्योंकि अपर्याप्त जीवों में वैक्रियिकशरीर के उत्पन्न करने की शक्ति का अभाव है और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमि में ही होते हैं, इसलिए स्वयंप्रभपर्वत के परभागवर्ती क्षेत्र को जगत्प्रतररूप से करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग होता है। अथवा कर्मभूमि में उत्पन्न हुए बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव वायु के संबंध से अतीतकाल में संख्यात योजन बाहल्यवाले सर्व तिर्यक् प्रतर को व्याप्त करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग ही होता है। बादर पृथिवीकायिक जीवों के समान बादर तेजस्कायिक जीव भी सभी पृथिवियों में रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकपद का स्पर्शन तेजस्कायिक जीवों के वैक्रियिकपद के भंगों के समान जानना चाहिए। वायुकायिक जीवों का स्पर्शनक्षेत्र अतीत और अनागतकाल में तेजस्कायिक

तेजस्कायिकवत् स्पर्शनं। केवलं, वैक्रियिकस्य वर्तमानकाले मानुषक्षेत्रगतविशेषः न ज्ञायते। अतीतकाले वैक्रियिकपदपरिणतैः वायुकायिकैः त्रिलोकानां संख्यातभागः, द्विलोकाभ्यां असंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। बादरवायुकायिकैः मारणान्तिकोपपादगतैः सर्वलोकः स्पृष्टः।

एवं बादरवायुकायिकापर्याप्तानां। केवलं वैक्रियिकपदं तत्र नास्ति। सूक्ष्मतेजस्कायिक-सूक्ष्मवायुकायिकैः तेषां पर्याप्तापर्याप्तैश्च स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः अतीतानागतवर्तमानकालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः।

बादरपृथिव्यादिचतुर्विधस्थावराणां स्पर्शननिरूपणाय द्वे सूत्रे अवतरतः—

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।६७।।

सव्वलोगो वा।।६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। स्वस्थानादि अपेक्षया असंख्यातभागः कथ्यते। मारणान्तिककोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः। विशेषेण—बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तैः स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः।**

जीवों के समान है। विशेष बात केवल यह है कि वर्तमानकाल में वैक्रियिक पद की मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है। अतीतकाल में वैक्रियिकपद परिणत वायुकायिक जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद से परिणत बादर वायुकायिक जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है। इसी प्रकार से बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन जानना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों ने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है।

अब बादर पृथिवीकायिक आदि चार प्रकार के स्थावर जीवों के स्पर्शन का निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।६७।।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा सर्वलोक का स्पर्श किया है।।६८।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। स्वस्थान आदि की अपेक्षा उपर्युक्त जीवों के द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है ऐसा कहा है। मारणांतिक समुद्घात और उपपादपद को प्राप्त जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है। विशेषबात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपद से परिणत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों ने सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।

किं कारणं?

सर्वपृथिवीषु बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः न सन्ति 'चित्ताए उवरिमभागे चेव अत्थि[1]' इति आचार्यवचनात्। अथवा प्रत्येकशरीरपर्याप्ताः तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृशन्ति।

कुतः?

बादरनिगोदप्रतिष्ठितपर्याप्तानां तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणस्पर्शनक्षेत्राभ्युपगमात्। न च प्रत्येकशरीर-पर्याप्तव्यतिरिक्तबादरनिगोदप्रतिष्ठितपर्याप्ताः सन्ति।

बादरनिगोदप्रतिष्ठिताः सर्वे प्रत्येकशरीरश्चैवेति कथं ज्ञायते?

बीजे जोणीभूदे, जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए।।[2]

इति सूत्रवचनात् ज्ञायते।

बादरनिगोद प्रतिष्ठित पर्याप्ताः सर्वासु पृथिवीषु सन्ति इति कथं ज्ञायते? सर्वपृथिवीषु विद्यमानपृथिवी-कायिकपर्याप्तस्पर्शनेन सह एकत्वेनोपदिष्ट-असंख्यातानि तिर्यक्प्रतराणि इति व्याख्यानवचनात् ज्ञायते। तस्मात् प्रत्येकशरीरपर्याप्तैः स्पर्शनक्षेत्रेण तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणेन भवितव्यमिति।

यथा प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकपर्याप्ताः सर्वासु पृथिवीषु भवन्ति, तथा बादराप्कायिकपर्याप्तैः अपि सर्वासु पृथिवीषु भवितव्यम्। अथवा बादरनिगोद-प्रतिष्ठितपर्याप्तप्रत्येकशरीराश्चैव सर्वपृथिवीषु भवन्ति।

शंका—इसका क्या कारण है?

समाधान—सर्वपृथिवियों में बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव नहीं होते हैं क्योंकि चित्रापृथिवी के उपरिम भाग में ही बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव होते हैं इस प्रकार आचार्यों का वचन है।

अथवा प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे क्षेत्र को स्पर्श करते हैं।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवों का तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र स्वीकार किया गया है तथा प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों को छोड़कर बादरनिगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त नाम के कोई अन्य जीव नहीं होते हें। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा बन जाता है।

शंका—बादर निगोद प्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीर ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—गाथार्थ—योनीभूत बीज में वही पूर्व पर्यायवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी जीव जन्म लेता है और जो बीज मूलादिक बादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक जीव हैं वे सब प्रथम अवस्था में प्रत्येक शरीर ही होते हैं।

शंका—बादरनिगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्वपृथिवियों में होते हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—सर्वपृथिवियों में विद्यमान पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों के स्पर्शन के साथ एकत्व से उपदिष्ट असंख्यात तिर्यक् प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है इस प्रकार के व्याख्यान वचन से जाना जाता है।

इसलिए प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों से स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा होना चाहिए। जिस प्रकार से प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियों में होते हैं, उसी प्रकार से बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियों में होना चाहिए। अथवा, बादरनिगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येक शरीर वाले जीव

१-२. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पु. ४, पृ. २५१।

बादरनिगोदानां अयोनिभूतप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः चित्रायां उपरिमभागे चैव भवन्ति, इति कृत्वा बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्ते बादरनिगोदानां अयोनिभूते चैव गृहीत्वा तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः इति गृहीतव्यं।

मारणान्तिकोपपादगताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः। एवं बादरतेजस्कायिकपर्याप्तानामपि वक्तव्यं। केवलं-वैक्रियिकस्य तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः।

बादरवायुकायिकानां स्पर्शनकथनाय द्वे सूत्रे अवतार्येते—

बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स संखेज्जदिभागो।।६९।।

सव्वलोगो वा।।७०।।

द्वयोरपि सूत्रयोरर्थः सुगमः।

वनस्पतिकायिकनिगोदानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

बणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।७१।।

ही सर्व पृथिवियों में होते हैं। बादरनिगोद के अयोनीभूत प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव चित्रा पृथिवी के उपरिम भाग में ही होते हैं, इसलिए बादर निगोदों के अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव ही ग्रहण करके अर्थात् उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग होता है ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद से परिणत जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है। इसी प्रकार से बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों का भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि तेजस्कायिक जीवों के वैक्रियिकसमुद्घात पद का स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग होता है।

अब बादरवायुकायिक जीवों के स्पर्शन का कथन करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।६९।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा सर्वलोक का स्पर्श किया है।।७०।।

दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है इसलिए विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

अब वनस्पतिकायिक निगोद जीवों के स्पर्शन का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक[१] जीव, निगोद[२] जीव, वनस्पतिकायिक बादर[३] जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म[४] जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त[५] जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त[६] जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त[७] जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त[८] जीव, निगोद बादर पर्याप्त[९] जीव, निगोद बादर अपर्याप्त[१०] जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त[११] जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त[१२] जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक का स्पर्श किया है।।७१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। वनस्पतिकायिक निगोद जीव बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तैः स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदपरिणतैः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः। बादरवनस्पतिकायिक बादरनिगोदैः तेषां पर्याप्तापर्याप्तैः स्वस्थान-वेदना-कषाय परिणतैः त्रिष्वपि कालेषु त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः, मानुषक्षेत्राद-संख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिक उपपादपरिणताभ्यां त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः इति।**

एवं प्रथमस्थले पंचविधस्थावरजीवभेदप्रभेदानां स्पर्शनकथनेन षट् सूत्राणि गतानि।

अधुना त्रसजीवानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

तसकाइय—तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगममेतत्।**

वर्तमानकालमतीतकालं चाश्रित्य यथा गुणस्थानेषु प्ररूपणा कृता तथैव अत्रापि ज्ञातव्या। मारणान्तिकोपपादपदे मुक्त्वा अन्यत्र सर्वलोकत्वाभावात्। इतो विस्तरः-केचित् त्रसाः त्रसनाड्याः बहिः मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति, केचित् च स्थावराः त्रसनाड्याः बहिः स्थित्वा एव तत्र मृत्वा त्रसनामकर्मोदयापेक्षया तत्र स्थावरलोकेऽपि त्रसस्यास्तित्वं लभन्ते, अतएव आभ्यां उभयपदाभ्यां त्रसजीवानां त्रसनाड्याः बहिरपि सर्वत्र लोकाकाशे अस्तित्वापेक्षया त्रसानां सर्वलोकः स्पर्शनक्षेत्रं भवतीति ज्ञातव्यं।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। विशेष बात यह है कि स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात से परिणत बादरवनस्पतिकायिक, बादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों ने तीनों ही कालों में तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणांतिक समुद्घात और उपपादपद से सहित जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथमस्थल में पाँच प्रकार के स्थावर जीवों के भेद-प्रभेदों का स्पर्शन कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसजीवों का स्पर्शन कहने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।७२।।

हिन्दी टीका—यह सूत्र सुगम है। इसमें विशेषता यह है कि वर्तमानकाल और अतीतकाल का आश्रय करके जिसप्रकार की प्ररूपणा गुणस्थानों में की गई है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद को छोड़कर अन्यत्र सर्वलोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र का अभाव है। विस्तृत कथन इस प्रकार है—कुछ त्रस जीव त्रसनाली के बाहर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं और कुछ स्थावर जीव त्रसनाली के बाहर स्थित होकर ही वहाँ मरकर त्रसनामकर्म के उदय की अपेक्षा से वहाँ स्थावरलोक में भी त्रस जीवों का अस्तित्व प्राप्त कर लेते हैं, अतएव इन दोनों पद से सहित त्रस जीवों का त्रसनाली के बाहर भी सर्वत्र लोकाकाश में अस्तित्व पाया जाता है इस अपेक्षा से त्रसजीवों का स्पर्शनक्षेत्र सर्वलोक होता है ऐसा जानना चाहिए।

त्रसापर्याप्तानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

तसकाइय—अपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो।।७३।।

त्रसकायिकापर्याप्तानां स्पर्शनं पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानामिव ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत्—स्थावरत्रसानां भेदप्रभेदैः स्पर्शनक्षत्रं ज्ञात्वा मनोवचनकायैः तेषां रक्षां कर्तव्याः। इदं अहिंसामहाव्रतमेव मोक्षस्य मूलं इति मत्वा सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दत्तं व्रतं रक्षणीयं यावन्मोक्षो न भवेत्तावदेव अस्माभिरिति।

एवं द्वितीयस्थले त्रसकायिकस्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कायमार्गणानाम
तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अब त्रस अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवों का स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवों के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग है।।७३।।

हिन्दी टीका—त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवों के समान ही जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि स्थावर और त्रस जीवों के भेद-प्रभेदों के द्वारा स्पर्शनक्षेत्र को जानकर मन, वचन, काय से उन सभी की रक्षा करनी चाहिए। यह अहिंसा महाव्रत ही मोक्ष का मूल है, ऐसा मानकर समस्त प्रयत्नों से गुरु के द्वारा दिये गये व्रत की हम सबको जब तक मोक्ष प्राप्त न हो, तब तक रक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का स्पर्शन कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथमखण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के चतुर्थ प्रकरण
में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धांतचिन्तामणि टीका में कायमार्गणा नाम का
तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकार:

अथ पंचस्थलैः अष्टाविंशतिसूत्रैः योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचमनोयोगपंचवचनयोगधारिणां स्पर्शननिरूपणत्वेन जोगाणुवादेण ''इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले काययोगिनां औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां स्पर्शनकथनेन ''कायजोगीसु'' इत्यादि द्वादश सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनेन ''वेउव्विय'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले आहारक-आहारकमिश्रकाययोगिनां षष्ठगुणस्थानवर्तिमुनीनां स्पर्शनक्षेत्रनिरूपणत्वेन ''आहारकाय'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनपरत्वेन ''कम्मइय'' इत्यादिसूत्राणि षट् इति समुदायपातनिका।

अधुना पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगिनां मिथ्यादृष्टिस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७४।।

अस्मिन् सूत्रे क्षेत्रानुयोगवत् स्पर्शनं ज्ञातव्यं।

पुनश्च एषामेव विशेष स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में अट्ठाईस सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच मनोयोग एवं पाँच वचन योग के धारी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में काययोगी जीवों में औदारिक एवं औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु ''कायजोगीसु'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोग एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन बतलाने हेतु ''वेउव्विय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में आहारक और आहारकमिश्रकाययोगी छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों का स्पर्शन क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''आहारकाय'' इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर पंचमस्थल में कार्मणकाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन बतलाने वाले ''कम्मइय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र कहने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।७४।।

इस सूत्र के अनुसार उपर्युक्त मनोयोगी एवं वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों की स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रानुयोग के समान जानना चाहिए।

पुनश्च इन्हीं जीवों का विशेष स्पर्शन निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।।७५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगिमिथ्यादृष्टिभिः स्वस्थानस्वस्थानपरिणतैः त्रिलोकानाम-संख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक परिणतैः अष्ट चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः। घनलोकमष्टभागोनत्रिचत्वारिंशद्रूपैः छिन्नैकभागः, अधोलोकं सार्धचतुर्विंशतिरूपैः छिन्नैकभागः, ऊर्ध्वलोकं अष्टभागोनसार्धाष्टादशरूपैः छिन्नैकभागः स्पृष्टः।**

एतेषामुदाहरणं— (१) घनलोकः-३४३÷३४३/८=८ रज्जुः।
(२) अधोलोकः-१९६ ÷ ४९/२=८ रज्जुः।
(३) ऊर्ध्वलोकः-१४७ ÷ १४७/८=८ रज्जुः।

नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणः स्पृष्टः इति। मारणान्तिकपदेन सर्वलोकः स्पृष्टः।

एषामेव मनोवचनयोगिनां सासादनादिपंचमगुणस्थानपर्यन्तानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह अथवा सर्वलोक का स्पर्श किया है।।७५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनाकार लोक को आठवें भाग से कम तेतालीस ($42\frac{7}{8}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग अथवा अधोलोक को साढ़े चौबीस ($24\frac{1}{2}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग अथवा ऊर्ध्वलोक को आठवें भाग से कम साढ़े अठारह ($18\frac{3}{8}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग स्पर्श किया है।

इन सभी के उदाहरण देखें— घनलोक–$३४३ \div \frac{३४३}{८}$=८ राजु

अधोलोक–$१९६ \div \frac{४९}{२}$=८ राजु

ऊर्ध्वलोक–$१४७ \div \frac{१४७}{८}$=८ राजु

इस प्रकार नरलोक तथा तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद से परिणत जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है।

अब उन्हीं मनोयोगी और वचनयोगी जीवों में सासादनगुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक के जीवों का स्पर्शन कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।।७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रस्यार्थः सुगमः। विशेषतया-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादो नास्ति, उपपादेन सार्धं पंचमनोयोगपंचवचनयोगानां सहानवस्थानलक्षणविरोधात्।**

एषामेव प्रमत्तादिसयोगिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतेषां अष्टानां गुणस्थानानां यथा स्पर्शनानुयोगस्य ओघे त्रिकालमाश्रित्य प्ररूपणा कृता तथैवात्र ज्ञातव्या। यद्येवं, तदा सूत्रे ओघमिति किन्न प्ररूपितं? न तथा प्ररूपणाया काययोगाविनाभाविसयोगि-चतुर्विधसमुद्घातक्षेत्रप्रतिषेधफलत्वात्।**

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम् ।

संप्रति काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगिकेवलिपर्यंतस्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतरति—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।७६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेषता यह है कि उपर्युक्त मनोयोगी और वचन योगी जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद नहीं है। क्योंकि उपपाद के साथ पाँचों मनोयोग और पाँचों वचनयोगों का सहानवस्थानलक्षण से विरोध देखा जाता है।

अब उन्हीं मनोयोगी और वचनयोगियों में प्रमत्तसंयत से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक के जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।७७।।

हिन्दी टीका—इन आठों गुणस्थानों की स्पर्शनानुयोगद्वार के ओघ में तीनों लोकों का आश्रय करके जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ पर भी करनी चाहिए।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्र में 'ओघ' ऐसा पद क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार की प्ररूपणा काययोग के अविनाभावी सयोगिकेवली के चारों प्रकार के समुद्घातक्षेत्र के प्रतिषेध करने के लिए है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले चार सूत्रों का कथन पूर्ण हुआ।

अब काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों से लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त गुणस्थानवर्ती भगवन्तों का स्पर्शन प्ररूपण करने हेतु तीन सूत्रों का अवतार हो रहा है—

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।७८।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग छदुमत्था ओघं।।७९।।

सजोगिकेवली ओघं।।८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्राणां त्रयाणामपि अर्थः सुगमः। सयोगिकेवलिनां सूत्रस्य पृथक्करणे सयोगिकेवलिनां चत्वारः समुद्घाताः काययोगाविना भाविनः इति मंदमेधावि-जनावबोधनफलत्वात्।**

एवं सामान्यकाययोगिस्पर्शननिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

औदारिककाययोगिस्पर्शनकथनाय मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया सूत्रमवतरति—

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।८१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अत्र द्रव्यार्थिकनयप्ररूपणया ओघत्वं, पर्यायार्थिनयप्ररूपणया अस्ति विशेषः- औदारिककाययोगे निरुद्धे विहार-वैक्रियिकयोः अष्ट-चतुर्दशभागत्वानुपलंभात्। ततोऽत्र भेदप्ररूपणा क्रियते- स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-परिणतैः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः। उपपादोऽत्र नास्ति, औदारिककाययोगोपपादयोः सहानवस्थानलक्षणविरोधात्। वर्तमानकाले वैक्रियिकपदपरिणतैः**

सूत्रार्थ—

काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।७८।।

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवों का स्पर्शन ओघ के समान है।।७९।।

काययोगी सयोगिकेवली का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है।।८०।।

हिन्दी टीका—तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। इनमें विशेष बात यह है कि सयोगकेवलियों का सूत्र पृथक्‌रूप से कहने का अभिप्राय यह है कि सयोगकेवलियों में चारों समुद्घात (दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण) काययोग के साथ अविनाभावीरूप से पाये जाते हैं, यह बात मंदमेधावी जनों को संबोधितकरने के लिए कही गई है।

इस प्रकार सामान्यकाययोगी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाले तीन सूत्रों का कथन पूर्ण हुआ। अब औदारिक काययोगियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिक काययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।८१।।

हिन्दी टीका—यहाँ द्रव्यार्थिक नय की प्ररूपणा की अपेक्षा से उक्त जीवों में ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनय की प्ररूपणा की अपेक्षा कुछ विशेषता है—

औदारिक काययोग के निरुद्ध करने पर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदों के स्पर्शन का क्षेत्र आठ बटे चौदह (८/१४) भाग नहीं पाया जाता है। इससे यहाँ पर भेदप्ररूपणा की जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और मारणान्तिकपद से परिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है। यहाँ पर उपपादपद नहीं है, क्योंकि औदारिक काययोग और उपपादपद, इन

चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। अतीतानागतयोः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, द्वाभ्यां लोकानामसंख्यातगुणः, किंचात्र वायुकायिकवैक्रियिकस्पर्शनस्य प्राधान्यविवक्षास्ति। विहारपरिणतौदारिककाययोगिमिथ्यादृष्टिभिः वर्तमानकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपाद, संख्यातगुणश्च स्पृष्टः। अतीतानागतयोः एवमेव।

सासादनानां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८२।।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।।८३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रे सुगमे स्तः। विशेषतया—मारणान्तिकपरिणतैः सप्त चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। अत्र ईषत्प्राग्भारपृथिव्याः उपरिमबाहल्येण ऊनाः ज्ञातव्याः।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८४।।

दोनों का सहानवस्थानलक्षण विरोध है। वर्तमानकाल में वैक्रियिकपद से परिणत उक्त जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत और अनागत इन दोनों कालों में सामान्यलोक आदि तीनों लोकों का संख्यातवाँ भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि यहाँ पर वायुकायिक जीवों के वैक्रियिक पद संबंधी स्पर्शनक्षेत्र की प्रधानता से विवक्षा की गई है। विहारवत्स्वस्थानपद से परिणत औदारिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। उन्हीं जीवों ने अतीतकाल और अनागतकाल में इसी प्रकार से सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

औदारिक काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।८२।।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।८३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्र सुगम हैं। विशेषरूप से यह जानना है कि मारणान्तिक पद से परिणत उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा कुछ कम सात बटे चौदह (७/१४) भाग स्पर्श किए गये हैं। यहाँ ईषत्प्राग्भार पृथिवी के उपरिम भाग के बाहल्यप्रमाण-मोटाई से कुछ कम क्षेत्र जानना चाहिए।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।८४।।

सूत्रं सुगमं।

असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः औदारिककाययोगे स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठिहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८५।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।८६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—शेषं पूर्ववत् ज्ञातव्यं। केवलं तु मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, अच्युतकल्पादुपरि असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः उपपादाभावात्।

प्रमत्तादिसयोगिकेवलिपर्यंतानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं वर्तते। केवलं तु—सयोगिकेवलिनि भगवति अस्मिन् औदारिकयोगे कपाट-प्रतर-लोकपूरणसमुद्घाताः न सन्ति एतदपि ज्ञातव्यं।

सूत्र का अर्थ सरल है, इसलिए इसमें विशेष व्याख्यान नहीं किया है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिककाययोगी, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।८५।।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।८६।।

हिन्दी टीका—इन सूत्रों की अपेक्षा सम्पूर्ण कथन पूर्ववत् समझना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि मारणान्तिक समुद्घात से सहित उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों के द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किए गये हैं। क्योंकि अच्युतकल्प से ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों का उपपाद नहीं पाया जाता है। अर्थात् उससे ऊपर द्रव्यलिंगी मुनि ही उत्पन्न होते हैं।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली तक के जिनों का स्पर्शन बतानेहेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।८७।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। इसमें केवल विशेष यह है कि सयोगकेवली गुणस्थान में औदारिककाययोग में कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात नहीं होते हैं यह भी जानना चाहिए। वहाँ केवल एक दण्ड समुद्घात ही

एवं औदारिककाययोगे सप्त सूत्राणि गतानि।

अधुना औदारिकमिश्रकाययोगे स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।८८।।

सूत्रं सुगमं। विशेषेण तु विहारवत्स्वस्थानवैक्रियिकपदयोरत्र योगे अभावोस्ति इति ज्ञातव्यं।

सासादनादित्रिगुणस्थानेषु अस्मिन् योगे स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। एतेषां वर्तमानप्ररूपणायां क्षेत्रवत् स्पर्शनं अस्ति। अतीतकाले स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-उपपादपरिणतौदारिकमिश्रसासादनैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः कथं?

देवनारकमनुष्यतिर्यक्सासादनैः तिर्यग्मनुष्ययोरुत्पद्य शरीरं गृहीत्वा औदारिकमिश्रकाययोगेन सह सासादनगुणस्थानमुद्वहद्भिः अतीतकाले संख्यातांगुलबाहल्यरज्जुप्रतरं मध्यस्थितसमुद्रवर्ज्यं सर्वं येन स्पृश्यते

होता है। इस प्रकार औदारिक काययोग का वर्णन करने वाले सात सूत्रों का व्याख्यान पूर्ण हुआ।

अब औदारिकमिश्रकाययोग में स्पर्शन का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।८८।।

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है। विशेषरूप से यहाँ यह जानना चाहिए कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात इन दोनों पदों का इन औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में अभाव पाया जाता है।

अब सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का इस औदारिकमिश्रकाययोग में स्पर्शन का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।८९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इन तीन ही गुणस्थान के स्पर्शन की वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्र के समान है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपद से परिणत औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग कैसे कहा?

समाधान—चूँकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने (यथासंभव) तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होकर शरीर को ग्रहण करके औदारिकमिश्रकाययोग के साथ सासादनगुणस्थान को धारण करते हुए अतीतकाल में बीच के समुद्र को छोड़कर संख्यात अंगुल बाहल्य वाले संपूर्ण राजुप्रतररूप

तेन तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः इति वचनं युज्यते। अत्र विहार-वैक्रियिक-मारणान्तिक-पदानि न सन्ति, एतेषामौदारिकमिश्रकाययोगेन सहानवस्थानविरोधात्।

उपपादपदमस्त्यपि, सासादनगुणस्थानेन सह अक्रमेण उपात्तभवशरीरप्रथमसमये उपपादोपलम्भात्।

मिथ्यादृष्टीनां पुनः मारणान्तिकोपपादपदे लभ्येते, अनंतः औदारिकमिश्रैकेन्द्रियापर्याप्तराशिः स्वस्थाने परस्थाने च अपक्रमणोपक्रमणं कुर्वन् लभ्यते इति।

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-उपपादपरिणतैः असंयतसम्यग्दृष्टिभिः औदारिकमिश्रकाययोगिभिः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

कथं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागत्वं?

नैतत्, पूर्वं तिर्यग्मनुष्ययोः आयुः बंधयित्वा पश्चात् सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा बद्धायुष्केण भोगभूमिसंस्थानासंख्यातद्वीपेषु उत्पन्नैः भवशरीरग्रहणप्रथमसमये वर्तमानैः औदारिकमिश्रकाय-योगासंयतसम्यग्दृष्टिभिः अतीतकाले स्पर्शिततिर्यग्लोकस्य संख्यातभागोपलम्भात्।

कपाटगतैः सयोगिकेवलिभिः औदारिकमिश्रकाययोगे वर्तमानैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, अतीतेन तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः स्पृष्टः। अत्र कपाटक्षेत्रात् जगत्प्रतरोत्पादनविधानं ज्ञात्वा वक्तव्यं।

एवं काययोगि-औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगिनां गुणस्थानेषु स्पर्शनप्रतिपादनपराणि द्वादश सूत्राणि गतानि।

क्षेत्र का स्पर्श किया है, इसलिए तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग यह वचन युक्तियुक्त है।

यहाँ पर विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद नहीं होते हैं, क्योंकि इन पदों का औदारिकमिश्रकाययोग के साथ अवस्थान का विरोध है। किन्तु उपपादपद होता है, क्योंकि सासादनगुणस्थान के साथ अक्रम से (युगपत्) उपात्त भवशरीर के प्रथम समय में उपपाद पाया जाता है। मिथ्यादृष्टि जीवों के भी मारणान्तिक और उपपादपद पाये जाते हैं क्योंकि अनन्तसंख्या वाले औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थान में अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, जाती-आती पाई जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपद से परिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका — तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग कैसे कहा?

समाधान — नहीं, क्योंकि पूर्व में तिर्यंच और मनुष्यों में आयु को बांधकर पीछे सम्यक्त्व को ग्रहण कर और दर्शनमोहनीय का क्षय करके बांधी हुई आयु के वश से भोगभूमि की रचना वाले असंख्यात द्वीपों में उत्पन्न हुए तथा भव-शरीर के ग्रहण करने के प्रथम समय में वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा अतीतकाल में स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग पाया जाता है।

कपाटसमुद्घात को प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान सयोगिकेवलियों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकाल की अपेक्षा से तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहाँ पर कपाटसमुद्घातगत क्षेत्र की अपेक्षा से स्पर्शनक्षेत्र संबंधी जगत्प्रतर के उत्पादन का विधान जान करके कहना चाहिए।

इस प्रकार काययोगी, औदारिककाययोग एवं औदारिकमिश्रकाययोग वाले जीवों का गुणस्थानों में स्पर्शन का प्रतिपादन करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना वैक्रियिककाययोगिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९०।।

अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।।९१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उभयसूत्रयोरर्थः सुगमः।**

स्वस्थानस्वस्थानपरिणतवैक्रियिकमिथ्यादृष्टिभिः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहारवत्-स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। उपपादो नास्ति। मारणान्तिकपरिणतैः त्रयोदश चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, अधोलोके षट्, उपरि सप्त रज्जवः। घनलोकमेकरूपस्य अष्टत्रयोदश भागोनसप्तविंशतिरूपैः खण्डितैकखंडं स्पृश्यन्ते इति प्रोक्तं भवति।

सासादनानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।९२।।

अब वैक्रियिककाययोगी का स्पर्शन निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९०।।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों कालों की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।९१।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थानपद से परिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और ढाईद्वीप मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। यहाँ पर उपपादपद नहीं होता है, मारणान्तिकसमुद्घातपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम तेरह बटे चौदह (१३/१४) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुतल से नीचे छहराजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए। घनाकार लोक को एक रूप के आठ बटे तेरह ($\frac{8}{13}$) भाग से कम सत्ताइस ($26\frac{5}{13}$) रूपों से खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिक काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शन के समान है।।९२।।

सूत्रं सुगमं, केवलं तु-मारणान्तिकसमुद्घातापेक्षया द्वादश चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः इति ज्ञातव्यं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।।९३।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

अधुना वैक्रियिकमिश्रयोगिस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। अस्मिन् योगेषु विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदानि न सन्ति। सासादनसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनं एवमेव वक्तव्यं। असंयतसम्यग्दृष्टीनां वानव्यन्तर-ज्योतिष्क-भवनवासिसु उत्पादो नास्ति अतः एषां वैक्रियिकमिश्रकायो नास्ति। सम्यग्दृष्टीनां उपपादपदयोग्य सौधर्मादिविमानानां तिर्यग्लोकस्यासंख्यातभागश्चैवावस्थानमस्ति।**

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेष बात केवल यह है कि मारणांतिक समुद्घात की अपेक्षा उक्त जीवों ने बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग स्पर्श किये हैं ऐसा जानना चाहिए।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन ओघ के समान है।।९३।।

सूत्र सरल है, इसलिए विशेष कथन नहीं किया जा रहा है।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९४।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। इस योग वाले जीवों के विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पद नहीं होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन भी इसी प्रकार जानना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का वानव्यंतर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवों में उपपाद नहीं होता है अतः उनके वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि जीवों के उपपादपद के योग्य सौधर्म आदि विमानों का तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में ही अवस्थान देखा जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना आहारकाययोगिस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। एतयोः सूत्रयोः वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः आहारककाययोगिप्रमत्तसंयतैः अतीतकाले चतुर्णां लोकानाम-संख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। अस्मिन् उपपादवैक्रियिकपदे न स्तः। मारणान्तिकपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणः। आहारकमिश्रकाययोगिप्रमत्तसंयतैः स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रात् संख्यातभागश्च स्पृष्टः।

एवं चतुर्थस्थले आहारक-आहारकमिश्रयोगिस्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

कार्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टिस्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।९६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-उपपादपरिणतकार्मण काययोगिमिथ्यादृष्टिभिः त्रिष्वपि कालेषु येन सर्वलोकः स्पृष्टः, तेन सूत्रे ओघमिति उक्तं। अत्र

अब आहारककाययोगी जीवों का स्पर्शन कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों में प्रमत्तसंयतों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इस सूत्र की वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात से परिणत आहारककाययोगी प्रमत्तसंयत जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। इन आहारककाययोगियों में उपपाद और वैक्रियिक पद नहीं होते हैं। मारणान्तिक पद से परिणत आहारककाययोगी जीवों ने चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदों से परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी मुनियेंके स्पर्शन का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरितहोता है—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों की स्पर्शनप्ररूपणा ओघ के समान है।।९६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपद से परिणत कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में चूँकि सर्वलोक का स्पर्श किया है, इसलिए सूत्र में

विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदानि न सन्ति।

सासादनानां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९७।।

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा।।९८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रद्वयं सुगमं। विशेषेण तु—उपपादव्यतिरिक्तशेषपदानि न सन्ति। कार्मणकाययोगिविवक्षातः। उपपादे वर्तमानैः सासादनैः अधः पंच, उपरि षट् रज्जवः स्पृश्यन्ते इति एकादश चतुर्दशभागाः स्पर्शनक्षेत्रं भवति।

असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९९।।

छ चोद्दसभागा देसूणा।।१००।।

'ओघ' ऐसा पद कहा है। यहाँ कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियों के विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात इतने पद नहीं होते हैं।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन प्ररूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है–

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९७।।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने तीनों कालो ंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।९८।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। विशेष बात यह है कि यहाँ पर उपपाद पद को छोड़कर शेष पद नहीं है, क्योंकि कार्मणकाययोग की विवक्षा की गई है। उपपादपद में वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरु के मूलभाग से नीचे पांच राजु और ऊपर अच्युतकल्प तक छह राजु प्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन करते हैं, इसलिए ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है।

अब असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।९९।।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने तीनों कालों की अपेक्षा से कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए है।।१००।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे। अत्रापि उपपादपदमेकमेव। तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टयः येनोपरि षट् रज्जून् गत्वा उत्पद्यन्ते, तेन स्पर्शनक्षेत्रप्ररूपणं षट्-चतुर्दशभागमात्रं भवति। अधः स्पर्शनं पञ्चरज्जुप्रमाणं न लभ्यते, नारकासंयतसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु उत्पादाभावात्।**

संप्रति सयोगिकेवलिषु कार्मणयोगापेक्षया स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारः क्रियते—

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जाभागा सव्वलोगो वा।।१०१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। प्रतरगतकेवलिभिः लोकस्य असंख्याता भागाः स्पृष्टाः, लोकपर्यंतस्थितवातवलयेषु अप्रविष्टजीवप्रदेशत्वात्। लोकपूरणे सर्वलोकः स्पृष्टः, वातवलयेष्वपि प्रविष्टजीवप्रदेशत्वात्।**

तात्पर्यमेतत्—''जोगा पयडिपदेसा ठ्ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।'' इति नियमेन योगनिमित्तेन यानि कर्माण्यास्त्रवन्ति तेषां संवरः कथं भवेत्तेषां निर्जराकरणार्थं यानि यानि कार्याणि तानि सर्वाणि गृहीतव्यानि सन्ति। यथा-''स गुप्तिसमिति धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः।।२।। तपसा निर्जरा च।।३।।''[1]

हिन्दी टीका—दोनों सूत्र सुगम हैं।

यहाँ पर भी केवल उपपादपद ही होता है, तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूँकि मेरुतल से ऊपर छह राजु जाकर के उत्पन्न होते हैं इसलिए स्पर्शनक्षेत्र की प्ररूपणा छट बटे चौदह (६/१४) भाग प्रमाण होती है। मेरुतल से नीचे पाँच राजु प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का तिर्यंचों में उपपाद नहीं होता है।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों में कार्मणकाययोग की अपेक्षा स्पर्शन का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।।१०१।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है।

प्रतरसमुद्घात को प्राप्त केवलियों ने लोक के असंख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि प्रतरसमुद्घात के समय लोकपर्यंत स्थित वातवलयों में केवली भगवान के आत्मप्रदेश प्रवेश नहीं करते हैं। लोकपूरणसमुद्घात में सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि लोक के चारों ओर व्याप्त वातवलयों में भी केवली भगवान के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि ''योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होता है एवं कषाय के निमित्त से स्थिति और अनुभागबंध होते हैं'' द्रव्यसंग्रह ग्रंथ में कथित इस नियम से योग के निमित्त से जिन कर्मों का आश्रव होता है उनका संवर कैसे हो सकता है? उनकी निर्जरा करने के लिए जो-जो कार्य करने आवश्यक हों उन सभी को ग्रहण करना चाहिए।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ९, सूत्र २-३।

जैसे — ''वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।।२।। तथा ''तप के द्वारा निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।।३।।'' इन दोनों सूत्रों के अनुसार हम सभी को उसी प्रकार का आचरण करना चाहिए, यही इस मार्गणा के पढ़ने का सार है।

विशेषार्थ — इस योगमार्गणा अधिकार में प्रमुखरूप से यद्यपि प्रत्येक योग वाले जीवों का स्पर्शन क्षेत्र यहाँ बतलाया गया है और कुल १७ योगों के वर्णन में एक सामान्य मनोयाग और एक सामान्य वचनयोग को लिया है जिसके अंदर चारों-चारों भेद समाविष्ट रहते हैं तथा काययोग के सात भेद बताये हैं, इसीलिए यहाँ १७ भेद हैं। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस स्पर्शनानुगम की योगमार्गणा का उपसंहार करते हुए बताया है कि योग के निमित्त प्रकृति-प्रदेश नाम के कर्मबंध होते हैं और कषाय के निमित्त से स्थिति-अनुभाग बंध होते हैं। द्रव्यसंग्रह की टीका में श्री ब्रह्मदेवसूरि ने इसका और भी स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि —

''निश्चयेन निष्क्रियाणामपि शुद्धात्मप्रदेशानां व्यवहारेण परिस्पन्दनहेतुर्योगः, तस्मात्प्रकृतिप्रदेशबन्धद्वयं भवतीति.........।'' अर्थात् निश्चयनय से क्रियारहित शुद्ध आत्मा के प्रदेश हैं, व्यवहारनय से उन आत्मप्रदेशों के जो परिस्पंदन (चलायमान करने का) कारण है, उसको योग कहते हैं। उस योग से प्रकृति तथा प्रदेश नामक दो प्रकार का कर्म बंध होता है। दोष रहित परमात्मा की भावना (ध्यान) के प्रतिबंध करने वाले जो क्रोध आदि कषाय हैं उनके उदय से स्थिति और अनुभाग ये दो बंध होते हैं। यहाँ कोई शंका करता है कि आस्रव और बंध के होने में मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान हैं। इसलिए आस्रव और बंध में क्या भेद है? उसका उत्तर दिया है कि यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम क्षण में जो कर्मस्कंधों का आगमन है, वह तो आस्रव है और कर्मस्कंधों के आगमन के पीछे द्वितीयक्षण में जो उन कर्मस्कंधों का जीव के प्रदेशों में स्थित होना है सो बंध है। यह भेद आस्रव और बंध में है क्योंकि योग और कषायों से प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग नामक चार बंध होते हैं इस कारण बंध का नाश करने के लिए योग तथा कषाय का त्याग करके अपनी शुद्ध आत्मा में भावना करनी चाहिए।

पुनः इन कर्मों के संवर के प्रकरण में तत्त्वार्थसूत्र के दो सूत्रों द्वारा कहा गया है कि ३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा, २२ परीषहजय और ५ प्रकार के चारित्ररूप, ६ प्रकार के सान्तर भेद वाले संयमरूप परिणामों के द्वारा कर्मागमन का निरोधरूप संवर होता है। सूत्र में आया हुआ ''स'' शब्द यह बतलाता है कि वह संवर गुप्ति आदि के द्वारा ही होता है और जल में डूबना, कपाल को ग्रहण करना, सिरमुण्डन, शिखाधारण आदि दीक्षा के चिन्हों को धारण करना, मस्तकछेदन, कुदेव आदि की पूजा आदि के द्वारा संवर नहीं हो सकता है क्योंकि जो कर्म राग, द्वेष आदि से उपार्जित होते हैं उनकी निवृत्ति विपरीत कारणों से हो सकती है।

यद्यपि दस प्रकार के धर्मों में तप का ग्रहण किया है और उसी से तप, संवर और निर्जरा का कारण सिद्ध हो जाता है लेकिन यहाँ पृथक्‌रूप से तप का ग्रहण इस बात को बतलाता है कि तप नवीन कर्मों के संवरपूर्वक कर्मक्षय का कारण होता है तथा तप संवर का प्रधान कारण है। परमात्म प्रकाश में कहा भी है —

दाणे लब्भइ भोउ पर, इंदत्तणु वि तवेण।
जम्मणमरणविवज्जियउ, पउ लब्भइ णाणेण।।

एतयोः सूत्रयोः अनुसारेण तथैवाचरणं विधातव्यमेतदेव एतद्मार्गणापठनस्यसारं वर्तते।

**इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिन्तामणि टीकायां योगमार्गणानाम
चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।**

अर्थात् दान से भोग प्राप्त होते हैं, तप से परम इन्द्रत्व तथा ज्ञान से जन्म-जरा-मरण से रहित मोक्षपद प्राप्त होता है।

एक ही तप इन्द्रादि पद को भी देता है और संवर तथा निर्जरा का कारण भी होता है, इसमें कोई विरोध नहीं है। एक पदार्थ भी अनेक कार्य करता है। जैसे-एक ही छत्र छाया भी करता है तथा धूप और पानी से भी बचाता है क्योंकि एक ही कारण के अनेक कार्य दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे-एक ही अग्नि क्लेदन (चावल को पकाना) आदि करने के कारण पावक कहलाती है, वस्तु को भस्मसात् करने से उसे दाहक कहते हैं उसी प्रकार एक ही तपश्चरण भी अभ्युदय और कर्मक्षय का कारण होता है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

अर्थात् यहाँ तात्पर्य यह है कि योगों के निरोध से कर्मों का आना बंद हो जाता है इसलिए तप-संयम आदि के द्वारा योग के परिस्पन्दन को रोककर अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हुए परम्परा से मोक्षप्राप्ति का लक्ष्य बनाना ही इस मार्गणा के पढ़ने का सार है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकार:

अथ त्रिभिस्थलैः अष्टादशसूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्त्रीपुरुषवेदयोः गुणस्थानापेक्षया स्पर्शननिरूपणत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिनवसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले नपुंसकवेदे गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनत्वेन ''णउंसय-'' इत्यादि सप्त सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले अपगतवेदानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे इति समुदायपातनिका।

अधुना वेदमार्गणायां स्त्री-पुरुषवेदयोः मिथ्यादृष्टिस्पर्शनकथनाय सूत्रावतारः क्रियते—

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१०२।।

सूत्रं सुगमं।

पुनरपि तेषां एव स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।।१०३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। अत्र वानव्यन्तर-ज्योतिष्कावासे संख्यातयोजनबाहल्यं रज्जुप्रतरं च गृहीत्वा तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः साधयितव्यः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में अठारह सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में स्त्री और पुरुष वेदी जीवों गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि नौ सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में नपुंसकवेदी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाले ''णउंसय'' इत्यादि सात सूत्र हैं पुनः आगे तृतीय स्थल में अपगतवेदी अरिहंतों और सिद्धों का स्पर्शन बतलाने वाले दो सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब वेदमार्गणा में मिथ्यादृष्टि स्त्री–पुरुष वेदी जीवों का स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों में मिथ्यादृष्टियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१०२।।

सूत्र का अर्थ सरल है। इसलिए कोई विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

अब आगे भी उन्हीं स्त्री–पुरुषवेदियों का स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है।।१०३।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

यहाँ पर वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के आवासों को तथा संख्यात योजन प्रमाण बाहल्यवाले

अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, अष्टरज्जुबाहल्यं रज्जुप्रतरप्रमाण-परिभ्रमणशक्तियुक्तदेवस्त्री-पुरुष-वेदमिथ्यादृष्टीनामुपलंभात्। मारणान्तिकोपपादपरिणतैः सर्वलोकः स्पृष्टः, एतद्द्विपदपरिणतमिथ्यादृष्टीनामगम्यप्रदेशाभावात्।

सासादनैः स्पर्शितक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१०४।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

पुनरपि एभिः स्पर्शितक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।।१०५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सामान्येन सुगमोऽर्थः, विशेषेण तु वक्ष्यते—विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः (८/१४) अष्टरज्जुबाहल्यरज्जुपदस्याभ्यन्तरे देवस्त्री-पुरुषसासादनानां गमनागमनं प्रति प्रतिषेधाभावात् 'मारणान्तिकपरिणतैः नव चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः (९/१४)।**

राजुप्रतर को ग्रहण करके तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग साध लेना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात परिणत उक्त जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि आठ राजु बाहल्यवाले राजु प्रतर प्रमाण क्षेत्र में परिभ्रमण की शक्ति से युक्त देव, स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद से परिणत उक्त जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि मारणान्तिक और उपपादपद इन दोनों पदों से परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के अगम्यप्रदेश का अभाव है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा स्पर्शित क्षेत्र का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होात है—

सूत्रार्थ—

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१०४।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

पुनरपि उपर्युक्त उन्हीं जीवों से स्पर्शित क्षेत्र का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१०५।।

हिन्दी टीका—सामान्यरूप से सूत्र का अर्थ सुगम है और विशेषरूप से वर्णन इस प्रकार है–विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातपरिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि आठ राजु बाहल्य वाले राजुप्रतर के भीतर देव–स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के गमनागमन के प्रति प्रतिषेध का अभाव है। मारणान्तिक समुद्घातपरिणत उक्त जीवों ने कुछ कम नौ बटे चौदह (९/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

अधः पंच रज्जुस्पर्शनं किन्न लभ्यते?

न, नारकेभ्यः स्त्री-पुरुषवेदतिर्यग्मनुष्ययोः मारणान्तिकपरिणतसासादनानां अभावात्। तथा च नरकगतिं प्रति मारणान्तिकपरिणत स्त्री-पुरुषवेदितिर्यक्-सासादनानां अभावात्।

उपपादपरिणतसासादनैः एकादश चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। नारकेभ्यः आगच्छद्भिः पंच-रज्जवः, देवेभ्यः आगच्छद्भिः षट् रज्जवः स्पृष्टाः, इति एकादश चतुर्दशभागाः स्पर्शनक्षेत्रं भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१०६।।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।।१०७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। विशेषतया-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकमारणान्तिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। केवलं-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मारणान्तिकं नास्ति। उपपादपरिणतैः षट्चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां उपपादो नास्ति। स्त्रीवेदेषु असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादो नास्तीति।**

शंका—मेरुतल से नीचे पाँच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियों से स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यंचों और मनुष्यों में मारणान्तिक समुद्घात करने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का अभाव है तथा नरकगति के प्रति मारणान्तिक समुद्घात करने वाले स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवों का भी अभाव है।

उपपादपद स्त्रे परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग स्पर्श किये हैं। नरकगति से आने वाले जीवों की अपेक्षा पाँच राजु और देवगति से आने वाले जीवों की अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये हैं। इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग उपपाद का स्पर्शनक्षेत्र है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के स्पर्शनक्षेत्र का निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१०६।।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१०७।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेषरूप से विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। केवल विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के मारणान्तिकसमुद्घातपद नहीं होता है। उपपादपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं। विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के उपपादपद नहीं होता है। स्त्रीवेदी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का उपपाद नहीं होता है।

अनयोः द्वयोः वेदयोः पंचमगुणस्थानवर्तिनोः स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयं अवतरति—

संजदासंजदेहिकेवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१०८।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१०९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रे सुगमे। सर्वं पूर्ववद्ज्ञातव्यं यः कश्चिद् विशेषः स एवोच्यते—मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, अच्युतकल्पादुपरि तिर्यक्संयतासंयतानामुपपादाभावात्।

अनयोः वेदयोः प्रमत्तसंयताद्यनिवृत्तिकरणपर्यंतानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि उवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतस्य सूत्रस्य वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। अतीतकाले एतैः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। प्रमत्तसंयते तैजसाहारौ अपि चैव एवं वक्तव्यं। केवलं-स्त्रीवेदे तैजसाहारो न स्तः। मारणान्तिकपदेन

उपर्युक्त इन दोनों वेदों में पंचमगुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१०८।।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवों ने अतीत और अनागतकाल की विवक्षा से कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१०९।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्र सुगम हैं। सम्पूर्ण कथन पूर्ववत् जानना चाहिए। जो कुछ विशेषता है उसे कहते हैं-मारणान्तिकपद से परिणत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि अच्युतकल्प से ऊपर तिर्यंच संयतासंयत जीवों का उपपाद नहीं होता है।

इन दोनों वेदों में प्रमत्तसंयत से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यंत जीवों का स्पर्शननिरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।११०।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शन प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। अतीतकाल में स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात परिणत इन्हीं उक्त जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, इन दोनों ही पदों में इसी प्रकार से

चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

अत्र भाववेदिस्त्रीवेदानामेव ग्रहणं ज्ञातव्यं, द्रव्यस्त्रीवेदेभ्यः पंचमगुणस्थानादुपरि गमनाभावात्।

एवं प्रथमस्थले भावस्त्री-पुरुषवेदयोः स्पर्शनकथनेन नव सूत्राणि गतानि।

अधुना नपुंसकवेदमिथ्यादृष्टिस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।१११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। स्वस्थानाद्यपेक्षया त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः, विहारवत्स्वस्थानगतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। तेनेदं ओघत्वं युज्यते। किन्तु वैक्रियिकपदं तु वर्तमानकाले तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं, अत्र घनतिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागमात्रं। अतीतकाले ओघादेशयोरपि अष्ट चतुर्दशभागाः, पंच चतुर्दशभागाः ज्ञातव्याः।**

अस्मिन् वेदे सासादनस्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।।११२।।

स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। केवल विशेष बात यह है कि स्त्रीवेद में तैजस और आहारकसमुद्घात, ये दोनों पद नहीं होते हैं। मारणान्तिकपद से परिणत उक्त जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

यहाँ भाव स्त्रीवेदी जीवों का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि द्रव्यस्त्रीवेदी जीवों में पंचम गुणस्थान से ऊपर गमन का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भावस्त्री और भावपुरुष वेदी जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियों का स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।१११।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थान आदि की अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा तीनों ही कालों में सम्पूर्ण लोक स्पर्शित है एवं विहारवत्स्वस्थान पद से परिणत उक्त जीवों ने तीनों ही कालों में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए सूत्र में कहा गया ओघपना घटित हो जाता है।

वैक्रियिकपद तो वर्तमानकाल में तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भागमात्र है और यहाँ पर घन तिर्यग्लोक का असंख्यातवां भाग है। अतीतकाल में दोनों ही स्थलों पर अर्थात् ओघप्ररूपणा में और आदेशप्ररूपणा के अन्तर्गत, वेदप्ररूपणा में आठ बटे चौदह (८/१४) तथा पाँच बटे चौदह (५/१४) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए।

इसी नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।११२।।

बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।।११३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। स्वस्थानादिपरिणत-नपुंसकवेदिसासादनैः अतीतानागतयोः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः, प्रधानीकृततिर्यक्सासादनराशित्वात्। उपपाद परिणतैः एकादश चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, नपुंसकवेदतिर्यक्-सासादनेषु उत्पद्यमानदेवनाकाणां षट्पंचरज्जुबाहल्यतिर्यक्प्रतरस्पर्शनोपलंभात्। मारणान्तिकपरिणतैः द्वादश चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, नारकाणां पंचरज्जवः, तिरश्चां सप्तरज्जवः, एतत्पंच-सप्तरज्जुबाहल्यरज्जुप्रतर-स्पर्शनोपलंभात्।**

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।।११४।।

सूत्रं सुगमं। वर्तमानातीतयोः प्ररूपणा क्षेत्रवत् ज्ञातव्यं। विशेषेण मारणान्तिकोपपादौ न स्तः।

असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतस्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयं अवतरति—

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।११३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्र सुगम हैं। स्वस्थानादि पदों से परिणत नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि यहाँ पर तिर्यंच सासादन जीवराशि की प्रधानता है। उपपादपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग स्पर्श किये हैं। क्योंकि, नपुंसकवेदी तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों में उत्पन्न होने वाले देवों की अपेक्षा छह राजु और नारकियों की अपेक्षा पांच राजु, इस प्रकार मिलकर ग्यारह राजु बाहल्य वाले तिर्यक्प्रतर प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। मारणान्तिकपद से परिणत उक्त जीवों ने बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि नारकियों के पाँच राजु और तिर्यंचों के सात राजु इस प्रकार बारह राजु बाहल्य वाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।११४।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। वर्तमान और अतीतकाल की प्ररूपणा क्षेत्रवत् जानना चाहिए। विशेषरूप से उनके मारणान्तिक और उपपाद ये दोनों पद नहीं होते हैं।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि एवं संयतासंयत जीवों का स्पर्शन निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११५।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।११६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रे सुगमे स्तः। सामान्येन पूर्ववत्। विशेषेण तु मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, अच्युतकल्पादुपरि तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः गमनाभावात्। उपपादपदं नास्ति। केवलं असंयतसम्यग्दृष्टिभिः उपपादपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यात भागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणपर्यन्तानां अस्मिन् वेदे स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।११७।।

सूत्रं सुगमं। प्रमत्ते तैजसाहारसमुद्घातौ न स्तः, नपुंसकवेदेषु इति ज्ञातव्यं। अत्रापि भाववेदापेक्षया कथनं ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले नपुंसकवेदवतां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।११५।।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।११६।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्यरूप से सम्पूर्ण कथन पूर्ववत् है। विशेषरूप से मारणान्तिक पद से परिणत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि अच्युतकल्प से ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचों के गमन का अभाव है। यहाँ पर उपपादपद नहीं होता है। विशेष बात यह है कि उपपादपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक के मुनियों का इस वेद के अन्तर्गत स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त नपुंसकवेदी जीवों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग है।।११७।।

हिन्दी टीका—यह सूत्र सरल है। प्रमत्त गुणस्थान में नपुंसकवेदी जीवों के तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं। यहाँ भी भाववेद की अपेक्षा ही कथन जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में नपुंसकवेदी जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अपगतवेदानां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शननिरूपणाय सूत्रे द्वे अवतरतः—

अपगतवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।११८।।

सजोगिकेवली ओघं।।११९।।

द्वयोरपि सूत्रयोरर्थः सुगमः।

अत्र एकमेव सूत्रं कर्तव्यमासीत्?

न, पूर्वक्षेत्रेण सयोगिक्षेत्रस्य अतीतवर्तमानकालयोः तुल्यत्वाभावात् एकसूत्रत्वानुपपत्तेः।

तात्पर्यमेतत्—येन केनापि प्रकारेण द्रव्यपुरुषवेदं संप्राप्य षष्ठसप्तमादिगुणस्थानानि प्राप्तव्यानि अस्माभिः इति वेदमार्गणापठनस्य सारं, अथवा द्रव्यस्त्रीवेदेऽपि उपचारमहाव्रतानि लब्ध्वा सिद्धान्तग्रन्थानभ्यस्याभ्यस्य सम्यक्त्वरत्नं महता प्रयत्नेन रक्षणीयमस्माभिरिति।

एवं तृतीयस्थले अपगतवेदस्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रे द्वे गते।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां वेदमार्गणानाम-
पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अब अपगतवेदी जिनों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

अपगतवेदी जीवों में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन क्षेत्र ओघ के समान है।।११८।।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।११९।।

हिन्दी टीका—दोनों ही सूत्रों का अर्थ सरल है।

प्रश्न—यहाँ एक सूत्र का ही कथन करना चाहिए था?

उत्तर—नहीं, क्योंकि पूर्व क्षेत्र के साथ—प्रमत्तसंयतादि के क्षेत्र से सयोगिकेवली के क्षेत्र का अतीत और वर्तमानकाल में समानता का अभाव होने से दोनों सूत्रों का एक योगपना नहीं बन सकता है।

तात्पर्य यह है कि जिस किसी भी प्रकार से द्रव्य पुरुषवेद को प्राप्त करके हम लोगों को छठे-सातवें गुणस्थान को प्राप्त करना चाहिए, यही वेदमार्गणा को पढ़ने का सार है।

अथवा द्रव्य स्त्रीवेद में भी उपचार महाव्रतों को—आर्यिका पद को प्राप्त करके सिद्धान्त ग्रंथों का बारम्बार अभ्यास कर-करके महान पुरुषार्थ के द्वारा सम्यक्त्वरत्न की रक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में अपगतवेदियों का स्पर्शन बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में वेदमार्गणा नामक पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकार:

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कषायसहितानां स्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे। ततः परं द्वितीयस्थले अकषायानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं इति पातनिका।

अधुना चतुर्विधकषायसहितानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।१२०।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

लोभगतविशेषावबोधनाय सूत्रमवतार्यते—

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।।१२१।।

एतदपि सूत्रं सुगमं।

एवं प्रथमस्थले कषायसहितानां स्पर्शनकथनेन द्वे सूत्रे गते।

कषायरहितस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा कषाय मार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उसमें से प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों के स्पर्शन का कथन करने वाले दो सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाला एक सूत्र है। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चार प्रकार की कषाय सहित जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२०।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। इसलिए विशेष कथन नहीं किया जा रहा है।

लोभकषाय को प्राप्त जीवों का ज्ञान कराने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवों में सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपक जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है।।१२१।।

यह सूत्र भी सरल है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का स्पर्शन बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायरहित जीवों का स्पर्शन बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

अकसाईसु चतुट्ठाणमोघं।।१२२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। नामैकदेशग्रहणेऽपि नामवतां संप्रत्ययो भवति, इति चतुःस्थानशब्देन वीतरागाणां चतुर्णां गुणस्थानानां ग्रहणं भवति। तेषां प्ररूपणा सुगमा, ओघसमानत्वात्।**

एवं द्वितीयस्थले कषायरहितानां स्पर्शनकथनेन एकं सूत्रं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कषायमार्गणानाम
षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवालों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२२।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। ''किसी भी नाम के एक देश के ग्रहण करने पर भी नाम वालों का सम्प्रत्यय हो जाता है'' इस न्याय के अनुसार ''चतुःस्थान'' शब्द से उपशान्तकषाय आदि वीतरागी चारों गुणस्थानों का ग्रहण हो जाता है। उनके स्पर्शन की प्ररूपणा ओघ के समान होने से सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के
चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में
कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकार:

अथ स्थलद्वयेन नवसूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अज्ञानिनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन पंचसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले ज्ञानिनां स्पर्शनकथनेन चत्वारि सूत्राणि इति पातनिका।

अधुना कुमतिकुश्रुतज्ञानिनोः स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।१२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। येन स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणत-मिथ्यादृष्टिभिः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः। विहार-वैक्रियिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तेन ओघत्वमिति युज्यते।**

सासादनानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठीहि ओघं।।१२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**शेषं पूर्ववत्। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदेषु अष्ट चतुर्दशभागाः,**

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अज्ञानी—मिथ्याज्ञानी जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु पाँच सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में ज्ञानी—सम्यग्ज्ञानी जीवों के स्पर्शनक्षेत्र का कथन करने वाले चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२३।।

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है। चूँकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद से परिणत मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातपद से परिणत जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिए सूत्रोक्त ओघ यह वचन घटित हो जाता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के स्पर्शन का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों प्रकार के अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२४।।

हिन्दी टीका—इसमें शेष सभी कथन पूर्ववत है। विशेषता केवल यह है कि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदों में आठ बटे चौदह (८/१४) भाग तथा मारणान्तिक और उपपाद, इन दो

मारणान्तिकोपपादयोः क्रमेण द्वादश चतुर्दशभागाः, एकादश चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।

अधुना विभंगज्ञानिनां प्रथमगुणस्थानवर्तिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतरति—

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१२५।।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।।१२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः।**

स्वस्थानपदे पूर्ववत्। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः देशोनाः, मारणान्तिकपदेन सर्वलोकः स्पृष्टः।

सासादनानां विभंगज्ञानिषु स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।१२७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। विशेषेण-विहारवत्स्वस्थानादिषु देशोनं अष्ट चतुर्दशभागमात्रं। मारणान्तिकपदे द्वादश चतुर्दशभागमात्रं इति।**

पदों में क्रमशः बारह बटे चौदह (१२/१४) और ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग प्रमाण स्पर्शन का क्षेत्र पाया जाता है। यह अर्थ पद सर्वत्र कहना चाहिए।

अब विभंगज्ञानी–कुअवधिज्ञानी जीवों में प्रथमगुणस्थानवर्तियों का स्पर्शन कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१२५।।

विभंगज्ञानी जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक का स्पर्श किया है।।१२६।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। विशेष बात यह है कि स्वस्थान पद में पूर्ववत् कथन जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पद से सहित जीवों के द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिक पद से परिणत जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया गया है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती विभंगज्ञानियों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२७।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। विशेषरूप से स्वस्थानादि पद से सहित इन द्वितीयगुणस्थानवर्ती विभंगज्ञानी जीवों में कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है तथा मारणान्तिक पद में बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग मात्र स्पर्शन रहता है, ऐसा अभिप्राय है।

एवं प्रथमस्थले मतिश्रुतावधिअज्ञानिनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

संप्रति त्रिविधज्ञानिनां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१२८।।

सूत्रं सुगममेतत्।

मनःपर्ययज्ञानिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१२९।।

अत्रातीतवर्तमानकालयोः सर्वपदानां ओघसर्वपदैः सदृशत्वोपलंभात्, ओघत्वं युज्यते।

केवलिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयं अवतरति—

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।।१३०।।

अजोगिकेवली ओघं।।१३१।।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कुमति-कुश्रुत-कुअवधिज्ञानी जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीनों प्रकार के सम्यग्ज्ञानी जीवों का गुणस्थानों की अपेक्षा स्पर्शन प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२८।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब मनःपर्ययज्ञानियों का स्पर्शन कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है-

सूत्रार्थ—

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१२९।।

यहाँ अतीत और वर्तमानकाल में उक्त जीवों में सर्वपदों के स्पर्शन की ओघवर्णित सर्वपदों के स्पर्शन के समान व्यवस्थान होने से ओघपना बन जाता है।

अब केवलज्ञानी भगवन्तों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानियों में सयोगकेवली जिनों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३०।।

केवलज्ञानियों में अयोगिकेवली जिनों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**केवलज्ञानव्यतिरिक्तसयोगि-अयोगिकेवलिनामभावात् ओघवत् प्ररूपणा ज्ञातव्या।**

तात्पर्यमेतत्—मिथ्यात्वनिमित्तेन त्रिविधाज्ञानानि भवन्ति कटुकालाबुमध्ये निक्षिप्तमधुरदुग्धवत्। अतो मिथ्यात्वं त्यक्त्वा सम्यक्त्वप्रभावेण मतिश्रुतावधिज्ञानानि प्राप्तव्यानि। पुनः सम्यक्चारित्रं गृहीत्वा मनःपर्ययकेवलज्ञाने अपि साधनीये, किंच-सर्वं दीक्षाशिक्षादिग्रहणं नानाविधतपश्चरणं केवलं केवलज्ञानोपलब्धये एव इति।

एवं द्वितीयस्थले समीचीनज्ञानवतां स्पर्शनकथनेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

हिन्दी टीका—केवलज्ञान को छोड़कर सयोगि और अयोगिकेवलियों का अभाव पाया जाता है अर्थात् तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान के सिवाय केवलज्ञान चूँकि किन्हीं भी गुणस्थानवर्ती जीवों में संभव नहीं होता है, इसलिए उनकी स्पर्शन प्ररूपणा दोनों गुणस्थानों की व्यवस्था के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि कड़वी तूमड़ी में रखे मीठेदूध के समान मिथ्यात्व के निमित्त से तीन प्रकार के अज्ञान होते हैं, अर्थात् आत्मा में मिथ्यात्व के उदय से सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप से परिणत हो जाते हैं। इसलिए मिथ्यात्व का त्याग करके हम सभी को सम्यक्त्व के प्रभाव से सच्चे मति-श्रुत-अवधिज्ञान को प्राप्त करना चाहिए। पुनः सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके मनःपर्यय एवं केवलज्ञान को भी सिद्ध करना चाहिए। क्योंकि दीक्षा-शिक्षा आदि का ग्रहण एवं नाना प्रकार का तपश्चरण आदि मात्र केवलज्ञान की उपलब्धि के लिए ही किया जाता है ऐसा अभिप्राय है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में समीचीनज्ञानियों का स्पर्शन कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि नाम की टीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकार:

अथ स्थलत्रयेण अष्टभि: सूत्रै: संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकार: प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामायिकादिपंचसंयमिनां स्पर्शनकथनेन ''संजमा'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनु द्वितीयस्थले संयतासंयतस्पर्शन-प्रतिपादनत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत: परं तृतीयस्थले असंयतस्पर्शननिरूपणत्वेन ''असंजदेसु'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका।

संप्रति सामान्यसंयमिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१३२।।

सजोगिकेवली ओघं।।१३३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोरर्थ: सुगम:। संयमोऽस्यास्तीति इति संयता:, न च संयमसामान्यविरहिता: संयता: तेषामसंयतत्वप्रसंगात्।**

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयतयो: स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में आठ सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा नामक आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामायिक आदि पाँचों संयमियों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने हेतु ''संजमा'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में संयतासंयतों का स्पर्शनकथन करने वाला ''संजदासंजदा'' इत्यादि एक सूत्र है। पुन: आगे तृतीय स्थल से असंयत जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाला ''असंजदेसु'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम सामान्य संयमी मुनियों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३२।।

संयतों में सयोगिकेवली का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। जिन जीवों के संयम होता है वे संयत कहलाते हैं। क्योंकि संयम सामान्य से रहित संयत होते नहीं हे। यदि संयम के बिना भी संयमी होने लगे, तो फिर उनके असंयतपने का प्रसंग प्राप्त हो जायेगा।

अब सामायिक और छेदोपस्थापना संयमधारी मुनियों के स्पर्शन का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।१३४।।

सूत्रं सुगमं।

परिहारविशुद्धिसंयतस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं?

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१३५।।

सूत्रं सुगममस्ति। केवलं-प्रमत्तसंयते तैजसाहारौ न स्तः, लब्ध्याः उपरि लब्ध्यभावात्।

सूक्ष्मसांपरायस्पर्शनकथनाय सूत्रस्यावतारः क्रियते—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओघं।।१३६।।

एतदपि सूत्रं सुगमं।

यथाख्यातसंयमस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।।१३७।।

सूत्रार्थ—

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३४।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब परिहारविशुद्धिसंयतों का स्पर्शन बतलाने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

परिहारविशुद्धिसंयतों में प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१३५।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। केवल विशेषता यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थान में तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होता है, क्योंकि लब्धि के ऊपर दूसरी लब्धियाँ नहीं होती हैं।

अब सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्ती मुनियों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३६।।

यह सूत्र भी सरल है।

अब यथाख्यातसंयमी मुनियों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतों में अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३७।।

एतदपि सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं प्रथमस्थले संयमिनां स्पर्शनप्ररूपणत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

संप्रति संयतासंयतस्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

संजदासंजदा ओघं।।१३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

संयमानुवादेन संयमासंयम-असंयमयोः ग्रहणं कथं भवति?

नैषदोषः, संयमानुवादः संयममेव प्ररूपयति इति नास्ति, किन्तु संयमं संयमासंयमं असंयमं च। तेनैतेषामपि ग्रहणं भवति।

यदि एवं, तर्हि एतस्याः मार्गणायाः संयमानुवादव्यपदेशो न युज्यते?

नैतत्, आम्रवनं, निम्बवनं वा एतत् प्राधान्यपदमाश्रित्य कथनमिवात्रापि संयमानुवादव्यपदेशयुक्तियुक्तमेव।

एवं द्वितीयस्थले संयतासंयतस्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

असंयतानां स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।।१३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतदपि सुगमं। ओघे मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुणस्थानप्ररूपणायां प्ररूपितत्वात्।**

एवं तृतीयस्थले असंयतस्पर्शनप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

यह सूत्र भी सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संयमियों का स्पर्शन प्ररूपित करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३८।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

शंका—संयममार्गणा के अनुवाद से संयमासंयम और असंयम, इन दोनों का ग्रहण कैसे होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संयममार्गणा के अनुवाद से न केवल संयम का ही ग्रहण होता है, किन्तु संयम, संयमासंयम और असंयम इन तीनों का ग्रहण होता है।

शंका—यदि ऐसा है तो इस मार्गणा को संयमानुवाद का नाम देना ठीक नहीं है?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि "आम्रवन" वा "निम्बवन" के समान प्राधान्यपद का आश्रय लेकर संयमानुवाद से यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में संयतासंयत जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब असंयत जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

असंयत जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१३९।।

यह सूत्र भी सरल है। क्योंकि ओघ में मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानों की प्ररूपणाओं का निरूपण

तात्पर्यमेतत्—असंयमं त्यक्त्वा संयतासंयतमवलम्ब्य संयमग्रहणाय पुरुषार्थः कर्तव्यः। पुनश्चान्तिम-यथाख्यातसंयमप्राप्तये भावना भावयितव्या निरन्तरमिति।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्त-चिन्तामणिटीकायां संयमामार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

किया गया है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में असंयत जीवों का स्पर्शन बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

तात्पर्य यह है कि असंयम को छोड़कर संयमासंयम का अवलम्बन लेकर हम सभी को संयम ग्रहण करने का पुरुषार्थ करना चाहिए, पुनश्च अंतिम यथाख्यात संयम की प्राप्ति के लिए निरन्तर भावना भाते रहना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में संयममार्गणा नामक आठवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकार:

अथ स्थलद्वयेन षट्सूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुःस्पर्शनप्रतिपादनाय ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले अवधिकेवल-दर्शनस्पर्शनकथनत्वेन ''ओधि'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

संप्रति चक्षुर्दर्शनवतां मिथ्यात्वे स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१४०।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।।१४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोर्द्वयोरर्थः सुगमोऽस्ति। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः देशोनाः अष्ट चतुर्दशभागाः, मारणान्तिकोपपादपरिणताभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।**

अस्यैव सासादनादीनां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतार्यते—

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षु और अचक्षु दर्शन वाले जीवों का स्पर्शन बतलाने के लिए ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में अवधि और केवलदर्शन वालों का स्पर्शन कथन करने हेतु ''ओधि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम चक्षुदर्शन वालों का मिथ्यात्व गुणस्थान में स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र प्रगट हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१४०।।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक का स्पर्श किया है।।१४१।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है।

अब इन्हीं चक्षु-अचक्षुदर्शन वाले सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनकथन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्रं सुगमं। किंच, चक्षुर्दर्शनव्यतिरिक्तसासादनादिगुणस्थानानामभावात्। ओघत्वमिति सुष्ठु युज्यते।

संप्रति अचक्षुर्दर्शनिनां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति —

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१४३।।

सूत्रं सुगमं (अत्रापि मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायपर्यंतगुणस्थानानि अचक्षुर्दर्शनविरहितानि न सन्ति, अतस्तेषां प्ररूपणायां अपि ओघत्वं युज्यते।

एवं प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुर्दर्शनिनोः स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अवधिदर्शनिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति —

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।१४४।।

सुगममेतत्सूत्रं।

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१४२।।

हिन्दी टीका — सूत्र सुगम है। चूँकि चक्षुदर्शन से रहित जीवों में सासादन आदि गुणस्थानों का अभाव है, इसलिए "ओघ" यह पद भली भांति घटित हो जाता है।

अब अचक्षुदर्शन वाले जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१४३।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ भी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थान वाले जीव अचक्षुदर्शन से रहित नहीं होते हैं अतः उनकी प्ररूपणा में भी ओघपना घटित हो जाता है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में चक्षु-अचक्षु दर्शन वाले जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अवधिदर्शन सहित जीवों के स्पर्शन को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अवधिदर्शनी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियों के समान है।।१४४।।

यह सूत्र सुगम है।

केवलिदर्शनिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।१४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं केवलिनां भगवतां केवलदर्शनज्ञानयोः युगपत् उत्पत्तेः, उभयोः सदृशत्वात् सदृशमेव स्पर्शनम्।**

इत्थं दर्शनमार्गणां पठित्वा स्वात्मदर्शनकरणार्थं प्रयत्नो विधेयः।

एवं द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनिनोः स्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अब केवलदर्शन समन्वित भगवन्तों का स्पर्शन प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

केवलदर्शनी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियों के समान है।।१४५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। केवली भगवान के केवलदर्शन और केवलज्ञान युगपत् उत्पन्न होते हैं। इन दोनों की उनमें सदृशता होने से स्पर्शनक्षेत्र भी उनके सदृश ही होता है। इस दर्शनमार्गणा को पढ़कर स्वात्मदर्शन करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वालों का स्पर्शन बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थप्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में दर्शनमार्गणा नामक नवमां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकार:

अथ स्थलचतुष्टयेन एकोनविंशतिसूत्रैः लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यायां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनेन ''लेस्साणु'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले तेजोलेश्यायां गुणस्थानापेक्षया स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''तेउलेस्सिएसु'' इत्यादिसप्तसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले पद्मलेश्यायां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''पम्मलेस्सिएसु'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यावतां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''सुक्क-'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना लेश्यात्रिकाशुभसहितमिथ्यादृष्टिस्पर्शनसूचनाय सूत्रमवतरति—

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी ओघं।।१४६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः तिसृषु लेश्यासु मिथ्यादृष्टिभिः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः। विहारपरिणतैः अतीतवर्तमानकालयोः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः। वर्तमानकाले वैक्रियिकपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः,**

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में उन्नीस सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नाम का दशवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन अशुभ लेश्याओं में गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन का कथन करने वाले ''लेस्साणु'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में तेजोलेश्या में गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन बतलाने हेतु ''तेउलेस्सिएसु'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उससे आगे तृतीय स्थल में पद्मलेश्या में स्पर्शन का कथन करने हेतु ''पम्मलेस्सिएसु'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में शुक्ललेश्या वालों का स्पर्शन निरूपण करने की मुख्यता से ''सुक्क....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ सर्वप्रथम तीन अशुभलेश्या सहित मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन सूचित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१४६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद से परिणत कृष्ण, नील और कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है, विहारवत्स्वस्थानपद से परिणत उक्त जीवों ने अतीत और वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है तथा वर्तमानकाल में वैक्रियिकपद से परिणत उक्त जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का

अतीते पंच चतुर्दशभााः स्पृष्टाः।

अन्यत्रापि उक्तं-''लेश्यानुवादेन सप्तनरकेषु तावत् प्रथमे नरके कापोतीलेश्या। द्वितीये च नरके कापोती लेश्या। तृतीयनरके उपरि कापोती अधो नीला। चतुर्थनरके नीलैव लेश्या। पञ्चमे नरके उपरि नीला, अधः कृष्णा। षष्ठे नरके कृष्णलेश्या। सप्तमे नरके परमकृष्णलेश्या। तत्र लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यैः मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः[१]।''

सासादनानां अशुभत्रिकलेश्यासु स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१४७।।

पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा।।१४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अशुभत्रिकलेश्यासहितसासादनैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः,**

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है तथा अतीतकाल में उक्त जीवों ने पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किये हैं।

अन्यत्र-तत्त्वार्थवृत्ति में भी कहा है—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से सात नरकों में से प्रथम और द्वितीय नरक में कापोत लेश्या होती है। तृतीय नरक के उपरिम भाग में कापोत लेश्या और नीचे के भाग में नील लेश्या होती है। चतुर्थ नरक में नील लेश्या ही होती है। पंचमनरक के उपरितन भाग में नील लेश्या और अधस्तन भाग में कृष्ण लेश्या होती है। छठे नरक में कृष्ण और सातवें नरक में परमकृष्ण लेश्या होती है।

लेश्या के अनुवाद से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों के द्वारा सर्वलोक का स्पर्श किया जाता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के तीन अशुभ लेश्याओं में स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओं वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१४७।।

तीनों अशुभलेश्याओं वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम पाँच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१४८।।

हिन्दी टीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत कृष्ण, नील, और कापोतलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १, सूत्र ८।

सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। कल्पवासिदेवान् मुक्त्वा नारकेषु अपर्याप्तभवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवेषु तिर्यक्षु चैव एतस्य क्षेत्रस्योपलंभात् तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागत्वमुपपन्नं।

मारणान्तिकोपपादपरिणतकृष्णलेश्यासासादनैः देशोनाः पंच चतुर्दशभागाः, एतत्द्वयपदसहितनील-लेश्यासासादनैः देशोनाः चत्वारः चतुर्दशभागाः, एतद्द्वयपदपरिणतकापोतलेश्यायुतसासादनैः देशोनाः द्वौ चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। नारकेभ्यः तिर्यक्षु उत्पद्यमानसासादनान् दृष्ट्वा एषा स्पर्शनप्ररूपणा कृता।

भवनत्रिकदेवेषु अपर्याप्तकाले एव इमाः तिस्रः अशुभलेश्याः भवन्ति, पश्चात् नियमेन शुभलेश्याः जायन्ते।

अन्यत्रापि उक्तं—''सासादनसम्यग्दृष्टिभिः कृष्णनीलकापोतलेश्यैः लोकस्यासंख्येयभागः पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागाः वा देशोनाः स्पृष्टाः।

तत्कथं?

षष्ठ्यां पृथिव्यां कृष्णलेश्यैः सासादनसम्यग्दृष्टिभिः मारणान्तिकोत्पादापेक्षया पंच रज्जवः स्पृष्टाः। पंचमपृथिव्यां कृष्णलेश्याया अविवक्षया नीललेश्यैः चतस्रो रज्जवः स्पृष्टाः। तृतीयपृथिव्यां नीललेश्याया अविवक्षया कापोतलेश्यैः द्वे रज्जू स्पृष्टे। सप्तमपृथिव्यां यद्यपि कृष्णलेश्या वर्तते तथापि मारणान्तिकावस्थायां सासादनस्य नियमेन मिथ्यात्वग्रहणादिति नोदाहृता। अत्र पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः।

भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। कल्पवासी देवों को छोड़कर नारकी तथा अपर्याप्त भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यंचों में ही यह उक्त क्षेत्र पाये जाने से तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र का कथन युक्तिसंगत है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद से परिणत छठी पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवों ने कुछ कम पांच बटे चौदह (५/१४) भाग, नीललेश्या वाले पांचवी पृथिवी के नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कुछ कम चार बटे चौदह (४/१४) भाग और कापोत लेश्यावाले तीसरी पृथिवी के नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कुछ कम दो बटे चौदह (२/१४) भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है। नरक से निकलकर तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों को देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षा से यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है।

भवनत्रिक देवों में तीनों अशुभलेश्या अपर्याप्तकाल में ही होती हैं, पश्चात् नियम से शुभ लेश्या हो जाती हैं।

अन्यत्र भी कहा है–कृष्ण, नील, कापोतलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का और लोकनाड़ी के चौदह भागों में से क्रमशः कुछ कम पाँच भाग, चार भाग और कुछ कम दो भाग का स्पर्श करते हैं।

प्रश्न — यह कैसे घटित होता है?

उत्तर — छठी नरकपृथिवी के कृष्णलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों के द्वारा मारणान्तिक और उत्पाद की अपेक्षा कुछ कम पाँच राजू स्पर्श किया जाता है। पंचम नरक में कृष्ण लेश्या की अविवक्षा होने से पंचम नरक के नारकी नीललेश्या के द्वारा कुछ कम चार राजू और तीसरे नरक के कापोत लेश्या से कुछ कम दो राजू स्पर्श करते हैं। यद्यपि सातवें नरक में कृष्ण लेश्या होती है अतः छह राजू भी स्पर्श हो सकता है। परन्तु सातवें नरक के नारकी मारणान्तिक समुद्घात के समय सासादन गुणस्थान छोड़कर नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान में चले जाते हैं, सासादन गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते अतः सासादन गुणस्थान में कृष्णलेश्या के द्वारा छह राजू स्पर्श नहीं होता है अतः पाँच, चार, दो राजू से कुछ कम कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टीनामादित्रिलेश्यानां दत्ता द्वादश भागाः कस्मान्न लभ्यन्त इति चेत् ? ''षष्ठीतो मध्यलोकं यावत् पंच लोकाग्रं यावत् सप्त इति द्वादशभागाः कुतो न दत्ताः? इति चेत् पृच्छसि? तत्र षष्ठनरके अवस्थितलेश्यापेक्षया पञ्चैव रज्जवः स्पृष्टाः भवन्ति, यतो मध्यलोकादुपरि कृष्णलेश्या नास्ति।'' पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु[1]।' इति वचनात्। अथवा येषां मते सासादनसम्यग्दृष्टिरेकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ता[2]।'''

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१४९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अशुभत्रिकलेश्यैः सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः असंयतसम्यग्दृष्टिभिश्च त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।**

कुतः?

प्रधानीकृततिर्यग्राशित्वात्।

प्रश्न—आदि की तीन लेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों के द्वारा त्रसनाली के १४ भागों में से १२ भागों का स्पर्श क्यों नहीं होता? बारह राजू घटित तो हो सकता है क्योंकि छठे नरक से राजू है और मध्यलोक से लोक का अग्रभाग सात राजू, मध्यलोक पाँच राजू है?

उत्तर—यहाँ छठे नरक में अवस्थित लेश्या की अपेक्षा पाँच राजू स्पर्श होता है क्योंकि मध्यलोक से ऊपर कृष्णलेश्या नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा भी है-''पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वित्रिशेषेसु'' पीत, पद्म और शुक्ललेश्या क्रमशः दो युगल, तीन युगल और शेष युगलों में होती है। यद्यपि सासादन सम्यग्दृष्टि मानव और तिर्यंच मरकर लोक के अग्रभाग में बादर वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो सकते हैं, उनकी अपेक्षा इनके द्वारा बारह राजू का स्पर्श होता है परन्तु जिनके मत में सासादनसम्यग्दृष्टि एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं उनकी अपेक्षा से बारह राजू स्पर्श नहीं कहा है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों अशुभलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१४९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तीनों अशुभलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग (तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग) और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

प्रश्न—क्यों?

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ४, सूत्र २२। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सू. ८।

मारणान्तिकोपपादपरिणत-कृष्णनीललेश्यायुत-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, षष्ठपंचमपृथिवीभ्यां मानुषेषु आगच्छतामसंयतसम्यग्दृष्टीनां पंचचत्वारिंशल्लक्ष-योजनविष्कंभपंच-चतुःरज्जु-आयत क्षेत्रोपलंभात्। मारणान्तिकोपपादपरिणतकापोतलेश्यैः असंयत-सम्यग्दृष्टिभिः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, कापोतलेश्यया सह असंख्यातेषु द्वीपेषु प्रथमपृथिव्यां च उत्पद्यमान क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शितक्षेत्रग्रहणात्।

अन्यत्रापि उक्तं-''सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिः कृष्णनीलकापोतलेश्यैः लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः[1]।''

एवं अशुभत्रिकलेश्यायुत स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

तेजोलेश्यायां मिथ्यादृष्टिसासादन-स्पर्शनप्रतिपादनाय द्वे सूत्रे अवतार्येते —

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५०।।

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।।१५१।।

उत्तर — क्योंकि यहाँ पर तिर्यंच राशि की प्रधानता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद परिणत कृष्ण और नील लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। क्योंकि छठी और पंचमी पृथिवी से मनुष्यों में आने वाले क्रमशः कृष्ण और नील लेश्या के धारक असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवों के पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विष्कम्भ वाला, छठी पृथिवी की अपेक्षा पाँच राजु एवं पाँचवीं पृथिवी की अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शन क्षेत्र पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदपरिणत कापोतलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है इसका तात्पर्य यह है कि यहाँ पर कापोतलेश्या के साथ असंख्यात द्वीपों में और प्रथम पृथिवी में उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों से स्पर्शित क्षेत्र का ग्रहण किया गया है।

अन्यत्र-तत्त्वार्थवृत्ति में भी कहा है — कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का स्पर्श किया है।

इस प्रकार तीन अशुभ लेश्याओं से युक्त जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन क्षेत्र कहने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तेजोलेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५०।।

तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१५१।।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सू. ८।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। स्वस्थानपदपरिणतैः तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टि-सासादनैः अतीते काले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागाः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एषः 'वाशब्दस्यार्थः'। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-परिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः, मारणान्तिकोपपादपरिणतैः क्रमेण नव चतुर्दशभागाः, सार्धैकः चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।**

अस्यामेव लेश्यायां सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिस्पर्शननिरूपणाय द्वे सूत्रे अवतरतः—

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंयतसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५२।।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। स्वस्थानपरिणतैः एतद्द्वयगुणस्थानवर्तिजीवैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातःगुणः। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः देशोनअष्ट-चतुर्दशभागाः। उपपादपरिणतैः देशोन-सार्धैकचतुर्दशभागाः, स्पृष्टाः। विशेषेण-सम्यग्मिथ्यादृष्टेः मारणान्तिकोपपादौ न स्तः।**

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान पद से परिणत तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह "वा" शब्द का अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग, मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवों ने नौ बटे चौदह (९/१४) भाग और उपपादपद परिणत उन्हीं जीवों ने डेढ़ बटे चौदह (३/२८) भाग स्पर्श किया है।

अब उसी तेजोलेश्या में सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५२।।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१५३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है।

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्या वाले जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक- पद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवों ने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (३/२८) भाग स्पर्श किये है। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद ये दो पद नहीं होते हैं।

संयतासंयततेजोलेश्यावतां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५४।।

दिवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रयोरर्थः सुगमः।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः तेजोलेश्यैः संयतासंयतैः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिकपरिणतैः सार्धैकचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। उपपादो नास्ति एषां।

अन्यत्र चोक्तं-''तेजोलेश्यैः संयतासंयतैः प्रथमस्वर्गे मारणान्तिकोत्पादापेक्षया अध्यर्धचतुर्दशभागः सार्धरज्जुः स्पृष्टाः[१]।''

प्रमत्ताप्रमत्तयोः स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं।।१५६।।

सूत्रं सुगमं। ओघे प्ररूपितत्वात्।

अब संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्या वाले जीव का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५४।।

तेजोलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१५५।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत तेजोलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने अतीतकाल में तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातपद से परिणत उक्त जीवों ने (कुछ कम) डेढ़ बटे चौदह (३/२८) भाग स्पर्श किये है। इन जीवों के उपपादपद नहीं होता है।

अन्यत्र-तत्त्वार्थवृत्ति में भी कहा है—

''तेजोलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने प्रथम स्वर्ग में मारणान्तिक और उत्पाद की अपेक्षा चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ राजु क्षेत्र का स्पर्श किया है।''

अब प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है-

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या वाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१५६।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। ओघ-गुणस्थान में इसका प्ररूपण किया जा चुका है।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १ , सू. ८।

एवं द्वितीयस्थले तेजोलेश्यायां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

संप्रति पद्मलेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रे द्वे अवतरतः—

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५७।।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रयोरर्थः सुगमः। विशेषेण-विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः देशोनाः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। उपपादपरिणतैः देशोनपंच-चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।

अस्यामेव संयतासंयतस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतरति—

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५९।।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।।१६०।।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तेजोलेश्या वाले जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब पद्मलेश्या में मिथ्यादृष्टि से लेकर चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन कहने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५७।।

पद्मलेश्या वाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१५८।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। विशेषरूप से विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियक और मारणान्तिकपद से परिणत पद्मलेश्यावाले उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपद से परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

इसी पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५९।।

पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम पाँच बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१६०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः। अत्रापि मारणान्तिकसमुद्घातापेक्षया देशोनाः पंच चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।**

अन्यत्र चोक्तं-''पद्मलेश्यैः संयतासंयतैः सहस्रारे मारणान्तिकादिविधानात् पञ्च रज्जवः स्पृष्टाः[1]।''

अस्यामेव लेश्यायां प्रमत्ताप्रमत्तयोः स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं।।१६१।।

सूत्रं सुगमं।

एवं तृतीयस्थले पद्मलेश्यावतां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादिपंचगुणस्थानवर्तिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६२।।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।।१६३।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ भी मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा से उक्त जीवों ने कुछ कम पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

अन्यत्र भी कहा है—

पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीवों ने सहस्रार स्वर्ग में मारणान्तिक आदि समुद्घातों की अपेक्षा पाँच राजु क्षेत्र का स्पर्श किया है।

इसी पद्मलेश्या में प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१६१।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पद्मलेश्या वाले जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्या में मिथ्यादृष्टि से लेकर देशसंयत तक पाँच गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१६२।।

शुक्ललेश्या वाले उक्त जीवों ने अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किए हैं।।१६३।।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १, सू. ८।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे सुगमे स्तः।**

स्वस्थानपरिणतशुक्ललेश्यायुक्तमिथ्यादृष्ट्यादिअसंयतसम्यग्दृष्टिभिः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। उपपादपरिणतशुक्ललेश्यायुतमिथ्यादृष्टिभिः सासादनैश्च चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। तिर्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनयोः शुक्ललेश्यया सह देवेषु उपपादाभावात्। पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभेन पंचरज्ज्वायामेन स्थितक्षेत्रमापूर्य शुक्ललेश्यायुत मिथ्यादृष्टि-सासादनमनुष्ययोश्चैव शुक्ललेश्यायुतदेवेषु उपपादोपलंभात्।

शुक्ललेश्यायुततिर्यञ्चः शुक्ललेश्यादेवेषु नोत्पद्यन्ते इति कथं ज्ञायते?

पंच चतुर्दशभागोपदेशाभावात् ।

उपपादपरिणतासंयतसम्यग्दृष्टिभिः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टीनां शुक्ललेश्यया सह देवेषूपपादोपलंभात्। स्वस्थान-विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणत शुक्ललेश्या-संयतासंयतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यक् संयतासंयतानां शुक्ललेश्यया सह अच्युतकल्पे उपपादोपलम्भात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः मारणान्तिकोपपादौ न स्तः।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। स्वस्थानपदपरिणत शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किए हैं। उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का शुक्ललेश्या के साथ देवों में उपपाद नहीं होता है। पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ से और पाँच राजु आयाम से स्थित क्षेत्र को व्याप्त करके शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का ही शुक्ललेश्या वाले देवों में उपपाद पाया जाता है।

शंका—शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच, शुक्ललेश्या वाले देवों में नहीं उत्पन्न होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—चूँकि, पाँच बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र के उपदेश का अभाव है, इससे जाना जाता है कि शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच जीव मरकर शुक्ललेश्या वाले देवों में नहीं उत्पन्न होते हैं।

उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह भाग (६/१४) स्पर्श किए हैं क्योंकि तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का शुक्ललेश्या के साथ देवों में उपपाद पाया जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत शुक्ललेश्या वाले संयतासंयतों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत उक्त जीवों ने छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किए हैं क्योंकि तिर्यंच संयतासंयतों का शुक्ललेश्या के साथ अच्युतकल्प में उपपाद पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि शुक्ललेश्या वालों के मारणान्तिक और उपपाद ये दो पद नहीं होते हैं।

प्रमत्तादिसयोगिकेवलिनां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रमवतार्यते—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१६४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं, ततः न किंचिद् वक्तव्यमस्ति।**

अन्यत्र चोक्तं—''मारणान्तिके सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिस्तु तद्गुणस्थानस्यागात् विहारापेक्षया षट्रज्जवः स्पृष्टाः।

अष्टावपि कस्मान्न स्पृष्टाः?

इति नाशंकनीयं, शुक्ललेश्यानामधो विहाराभावात्।

तदपि कस्मात् ?

यथा कृष्णनील-कापोतलेश्यात्रयापेक्षया अवस्थितलेश्या नारकाः वर्तन्ते तथा तेजःपद्मशुक्ल-लेश्यात्रयापेक्षया देवा अपि अवस्थितलेश्या वर्तन्ते।

''तेऊ तेऊ य तहा तेऊ पउमा य पउमशुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाणं।।

अस्यायमर्थः—भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्केषु जघन्या तेजोलेश्या। सौधर्मैशानयोः मध्यमा तेजोलेश्या। सनत्कुमार-माहेन्द्रयोरुत्कृष्टा तेजोलेश्या। जघन्यपद्मलेश्याया अविवक्षया। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तर-लांतवकापिष्ट-शुक्रमहाशुक्रेषु मध्यमा पद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्यायाः अविवक्षया। शतारसहस्रारयोः जघन्या शुक्ललेश्या उत्कृष्टपद्मलेश्याया अविवक्षतत्वात्। आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकेषु मध्यमा शुक्ललेश्या। नवानुदिशपञ्चानुत्तरेषु उत्कृष्टा शुक्ललेश्या।

अब प्रमत्तसंयत से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के भगवन्तों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्या वाले जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१६४।।

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है, इसलिए यहाँ किंचित् भी विशेष कथन के योग्य विषय नहीं है। अन्यत्र कहा है—मारणांतिक समुद्घात में सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों ने उस गुणस्थान का त्याग कर देने से विहार की अपेक्षा छह राजु क्षेत्र स्पर्श किया है।

प्रश्न—शुक्ललेश्या वालों ने आठ राजु स्पर्श क्यों नहीं किया?

उत्तर—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शुक्ल लेश्या वाले देव नीचे विहार नहीं करते हैं।

प्रश्न—ऐसा भी क्यों हैं? अर्थात् वे नीचे विहार क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर—जिस प्रकार कृष्ण, नील, कापोत इन तीन लेश्या की अपेक्षा से अवस्थित लेश्या वाले नारकी होते हैं, उसी प्रकार पीत, पद्म और शुक्ललेश्या की अपेक्षा अवस्थित लेश्या वाले देव भी होते हैं, कहा भी है–

गाथार्थ—भवनवासी आदि देवों के क्रमशः तेजो लेश्या, तेजोलेश्या, तेजपद्म, पद्म, पद्मशुक्ल, शुक्ल और परमशुक्ल लेश्या होती हैं।

इसका अर्थ यह है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के जघन्य पीत लेश्या होती है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में मध्यम पीत लेश्या है। सनत्कुमार और माहेन्द्रस्वर्ग में उत्कृष्ट पीतलेश्या तथा जघन्य पद्मलेश्या है परन्तु उसकी विवक्षा नहीं है। ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र में मध्यम

तथा चोक्तं—

तिण्हं दोण्हं दुण्हं च्छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं।।

ततोऽन्यत्र तिर्यङ्मनुष्येषु लेश्यानियमाभावः।

प्रमत्तादिसयोगिकेवल्यन्तानां अलेश्यानाञ्च सामान्योक्तं स्पर्शनम्[1]। तात्पर्यमेतत्—कृष्णनीलकापोतलेश्याः विहाय पीतपद्मशुक्ललेश्याबलेन धर्मध्याने स्थिरीभूय परंपरया शुक्लध्यानं प्राप्तव्यम्। पुनः शुक्लध्यानाग्निना कर्मेन्धनानि दग्ध्वा केवलज्ञानमयः परमात्मसूर्यः प्रकटीकर्तव्यः। अतो ''नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे[2]'' इति वचनात् तस्मै श्रीऋषभदेवाय पुनः पुनः नमस्कारो विधातव्यः तदवस्थालब्धये इति।

एवं चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यावतां स्पर्शनकथनेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

पद्मलेश्या है, जघन्य शुक्ललेश्या की यहाँ विवक्षा नहीं है। शतार, सहस्रार में जघन्य शुक्ललेश्या और अविवक्षितरूप से उत्कृष्ट पद्मलेश्या है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और नवग्रैवेयक में मध्यम शुक्ललेश्या है। नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

कहा भी है—

गाथार्थ—तीन (भवनत्रय), दो (सौधर्म-ईशान), दो (सानत्कुमार-माहेन्द्र), छह (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र), दो (शतार-सहस्रार), तेरह (आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-नवग्रैवेयक), चौदह (नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर) इनमें लेश्या का क्रम जानना चाहिए।

देव, नारकी को छोड़कर तिर्यंच और मनुष्यों में लेश्याओं के नियम का अभाव है। प्रमत्तसंयत आदि सयोगिकेवली तक के शुक्ललेश्या वालों का और लेश्यारहित जीवों का स्पर्श ओघ के समान है।

तात्पर्य यह है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले अशुभ परिणामों को छोड़कर पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यारूप शुभ परिणामों के बल से धर्मध्यान में स्थिर होकर परम्परा से शुक्ल ध्यान को प्राप्त करना चाहिए। पुनः शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्म ईंधन को दग्ध करके केवलज्ञानमय परमात्मसूर्य को प्रगट करना चाहिए। अतः ''उन अलेश्य-लेश्यारहित है, फिर भी उपचार से शुक्ल लेश्या के अंश को स्पर्श करने वाले हैं ऐसे भगवान जिनेन्द्र को मेरा नमस्कार होवे।'' इस सहस्रनाम स्तोत्र के वचनानुसार उन श्रीऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर भगवान को उनके सदृश अवस्था की प्राप्ति करने के लक्ष्य से पुनः पुनः नमस्कार करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों के स्पर्शन का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के
चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में
लेश्या मार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १, सू. ८। २. सहस्रनामस्तोत्र, श्लोक २९।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ सूत्रद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले भव्यजीवानां स्पर्शनकथनेन ''भविया-''इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले अभव्यजीवस्पर्शननिरूपणत्वेन ''अभव'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका।

अधुना भव्यजीवस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१६५।।

सूत्र सुगममस्ति। एवं प्रथमस्थले भव्यजीवस्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अभव्यजीवस्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।१६६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः अभव्यजीवैः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः। विहार-वैक्रियिकपरिणतैः वर्तमानकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः,

---

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में भव्यजीवों का स्पर्शनकथन करने हेतु "भविया" इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु "अभव...." इत्यादि एक सूत्र है। यह पातनिका है।

अब सर्वप्रथम भव्यजीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिक जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१६५।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

इस तरह से प्रथम स्थल में भव्यजीवों के स्पर्शन का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्य जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्धिक जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक का स्पर्श किया है।।१६६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपद से परिणत अभव्यसिद्धिक

तिर्यग्लोकस्यापि असंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, असंख्यातराशिषु तेषामसंख्यातभागमात्रः तत्र तत्र अभव्यराशिः इति उपदेशात्। अतीतकालेन अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः इति।

तात्पर्यमेतत्—'वयं भव्याः' इति श्रद्धानं कृत्वा निजशुद्धपरमात्मानं ध्यात्वा भेदाभेदरत्नत्रयबलेन सिद्धिकान्ता परिणेतव्या भवद्भिः इति।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यजीवस्पर्शनप्रतिपादनपरं एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खंडागमस्य प्रथमखंडे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का भी असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि असंख्यात प्रमाण वाली पंचेन्द्रियादि राशियों में उन-उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण वहाँ-वहाँ पर अर्थात् उन-उन विवक्षित राशियों में अभव्यराशि होती है, इस प्रकार आचार्यों का उपदेश पाया जाता है। उक्त जीवों ने अतीतकाल में आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं।

तात्पर्य यह है कि "हम भव्य हैं" ऐसा श्रद्धान करके निज शुद्ध परमात्मा का ध्यान करते हुए भेदाभेद रत्नत्रय के बल से हम आप सभी को सिद्धिकान्ता का परिणय करना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन दशभिःसूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते-तत्र प्रथमस्थले सामान्यसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वधारिजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन ''सम्मत्ता'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''वेदगसम्मा-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''उवसम-'' इत्यादि सूत्रद्वयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले सासादनादीनां स्पर्शनकथनेन ''सासण-'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना सामान्यसम्यग्दृष्टिस्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१६७।।

सूत्रं सुगमं वर्तते। ओघे त्रीनपि कालान् आश्रित्य प्ररूपितत्वात्।

अधुना क्षायिकसम्यग्दृष्टेःचतुर्थगुणस्थानस्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।।१६८।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में दश सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य सम्यक्त्व एवं क्षायिकसम्यक्त्व को धारण करने वाले जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु "सम्मत्ता" इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बताने हेतु "वेदगसम्मा" इत्यादि एक सूत्र है। उससे आगे तृतीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन निरूपण करने की मुख्यता से "उवसम" इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवों का स्पर्शन बताने वाले "सासण" इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१६७।।

यह सूत्र सुगम है। क्योंकि तीनों ही कालों का आश्रय लेकर ओघ में इनका प्ररूपण किया जा चुका है।

अब क्षायिक सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतस्य वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। स्वस्थानपरिणतैः क्षायिकासंयतसम्यग्दृष्टिभिः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। उपपादपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः।**

तत्कथं लभ्यते?

पूर्व तिर्यग्बद्धायुष्काः मनुष्याः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातद्वीपेषु तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते। तत्र भोगभूमिभ्यः निर्गत्य सौधर्मैशानकल्पयोः उत्पद्यमानक्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शितक्षेत्रं मनुष्येषूत्पद्यमानक्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शितक्षेत्रं च गृहीत्वा लभ्यते। एतस्मिन् क्षेत्रे आनीयमाने देशोन योजनलक्षबाहल्यं रज्जुप्रतरं ऊर्ध्वं सप्तवर्गेण छित्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य बाहल्यात् संख्यातभागबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति।

एवं संजाते ओघत्वं कथं युज्यते?

न उपपादविरहितशेषपदक्षेत्रैः तुल्यत्वमपेक्ष्य ओघत्वोपपत्तेः।

संयतासंयतादिअयोगिकेवलिपर्यंतानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति—

हिन्दी टीका—इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्र के समान है। स्वस्थान-स्वस्थानपद से परिणत असंयत क्षायिक सम्यग्दृष्टियों ने तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपद से परिणत उक्त जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किए हैं। उपपादपद से परिणत असंयत क्षायिक-सम्यग्दृष्टियों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा और तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका—उपपादपद को प्राप्त असंयत क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण कैसे पाया जाता है।

समाधान—तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले बद्धायुष्क अर्थात् जिन्होंने पहले तिर्यंच आयु का बंधकर लिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य असंख्यात द्वीपों में तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं वहाँ भोगभूमि से मरण करके सौधर्म और ईशान कल्पों में ही उत्पन्न होते हैं उन क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से स्पर्शित क्षेत्र को तथा वहाँ से चयकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के स्पर्शित क्षेत्र को ग्रहण करके तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है।

इस उक्त क्षेत्र के निकालने पर कुछ कम एक लाख योजन बाहल्य वाले राजुप्रतर को ऊपर से सात के वर्ग (४९) द्वारा छेदकर प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक के बाहल्य से संख्यातवें भाग बाहल्यवाला जगत् प्रतर होता है।

शंका—ऐसा होने पर ओघपना कैसे घटित होगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपपादपद को छोड़कर शेष पदों में क्षेत्रों के साथ समानता देखकर ओघपना बन जाता है।

अब संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —एतस्य वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। स्वस्थान-विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-परिणतैः क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः, संख्यातबहुभागा वा स्पृष्टाः, क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतानां तिर्यक्षु असंभवात्। मारणान्तिकपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः अतीतकाले स्पृष्टः, पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभेन संख्यातरज्जु-आयत स्पर्शनक्षेत्रोपलंभात्। प्रमत्तादिगुणस्थानानां ओघवत्स्पर्शनं, विशेषाभावात्। अन्यत्र चोक्तं—

''क्षायिकसम्यक्त्वयुक्तानां देशसंयतानां षडपि रज्जवः कुतो न? इति नाशंकनीयं, तेषां नियत क्षेत्रत्वात्। कर्मभूमिजो हि मनुष्यः सप्तप्रकृतिक्षयप्रारम्भको भवति। क्षायिकसम्यक्त्वलाभात् पूर्वमेव तिर्यक्षु बद्धायुष्कस्तु संयतासंयतत्वं न लभते।

''अणुवदमहव्वदाइं ण लभइ देवाउगं मोत्तुं।[1] '' इत्यभिधानात् तिर्यगल्पतरास्थितिं परिहर्तुं न शक्नोति इत्यर्थः[2]।''

सयोगिकेवलिस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।१६९।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद से परिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों ने चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यक्षेत्र का संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभाग स्पर्शकिए हैं क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों का तिर्यंचों में होना असंभव है। मारणान्तिक पद से परिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकाल में स्पर्श किया है, क्योंकि पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ के साथ संख्यात राजुप्रमाण आयत स्पर्शक्षेत्र पाया जाता है। प्रमत्तादि गुणस्थानों की स्पर्शनप्ररूपणा ओघ के समान है, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अन्यत्र भी कहा है—

प्रश्न—क्षायिक सम्यक्त्व से सहित देशसंयत जीवों के छह राजु का भी स्पर्श क्यों नहीं संभव है?

उत्तर—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके स्पर्शन का क्षेत्र निश्चित है। कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही सात प्रकृतियों को क्षय करने का प्रारंभीकरण करते हैं। तिर्यंचों में क्षायिक सम्यक्त्व के लाभ से पूर्व ही जो बद्धायुष्क होते हैं वे संयतासंयतपने को नहीं प्राप्त करते हैं।

''देवायु को छोड़कर किसी आयु का बंध हो जाने पर मानव अणुव्रत-महाव्रत को धारण नहीं कर सकता है।'' इस कथन से तिर्यंच जीवों की कम से कम स्थिति का परिहार करने में समर्थ नहीं हैं ऐसा अभिप्राय निकलता है।

अब सयोगिकेवलियों का स्पर्शन कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड, गा. ३३४। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

सजोगिकेवली ओघं।।१७०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**क्षायिकसम्यग्दृष्टिसयोगिकेवलिनां स्पर्शनं ओघवत्।**

एवं प्रथमस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शनकथनपरत्वेन सूत्रचतुष्टयं।

वेदकसम्यग्दृष्टिगुणस्थानापेक्षया स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति—

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।।१७१।।

सूत्रं सुगमं। एवं द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टिस्पर्शनकथनेन सूत्रमेकं गतं।

उपशमसम्यग्दृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।।१७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**कश्चिदाह—वर्तमानप्ररूपणायां सर्वपदानां ओघत्वं भवतु नाम। अतीतप्ररूपणायां अपि स्वस्थानस्य तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रक्षेत्रोपलम्भात्। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदानां अपि देशोनाष्ट-चतुर्दशभागमात्रक्षेत्रोपलम्भात् ओघत्वं युज्यते। किन्तु मारणान्तिकोपपादपरिणतयोः ओघत्वं**

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जिनों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७०।।

सूत्र का अभिप्राय यह है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि सयोगि केवली भगवन्तों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान जानना चाहिए।

इस तरह से प्रथम स्थल में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र कहा जाता है—

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७१।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औपशमिकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७२।।

हिन्दी टीका—यहाँ कोई शंका करता है कि वर्तमानकालिक स्पर्शन को प्ररूपणा में सर्वपदों के ओघपना भले ही रहा आवे, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है। अतीतकालिक प्ररूपणा में भी सर्वपदों के ओघपना रहा आवे, क्योंकि अतीत प्ररूपणा में भी स्वस्थानपद का स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवां भागमात्र पाया जाता है तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदों का स्पर्शनक्षेत्र भी कुछ कम

नास्ति। ओघे उक्तं अष्टचतुर्दशभागमात्रं मुक्त्वा चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रात् असंख्यातगुणमात्र-स्पर्शनक्षेत्रोपलम्भात्।

कुतः?

मनुष्यगतिं मुक्त्वा अन्यत्र उपशम सम्यक्त्वेन सह मरणानुपलंभात्? आचार्यः प्राह-नैष दोषः, मारणान्तिकोपपादौ मुक्त्वा शेषपदैः सदृशत्वमस्तीति ओघत्वोपपत्तेः।

संयतासंयतादिउपशान्तानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१७३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। स्वस्थान-विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक परिणतोपशमसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतैः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः, मनुष्यगतौ चैव मारणान्तिकदर्शनात्। शेषसर्वगुणस्थानानामोघवत्। अन्यत्र चोक्तं—''औपशमिक-सम्यकत्वयुक्तानां देशसंयतानां कुतो लोकस्य-असंख्येयभागः?**

आठ बटे चौदह (८/१४) भाग प्रमाण पाये जाने से ओघपना बन जाता है। किन्तु मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद से परिणत जीवों के ओघपना नहीं बनता है, क्योंकि ओघ में कहा गया आठ बटे चौदह (८/१४) भाग प्रमाण क्षेत्र छोड़कर सामान्य लोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणे प्रमाण वाला स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। क्यों? तो इसका कारण यह है कि मनुष्यगति को छोड़कर अन्यत्र उपशमसम्यक्त्व के साथ मरण नहीं पाया जाता है?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदों को छोड़कर शेष पदों के साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है।

अब यहाँ संयतासंयत से उपशान्तमोह गुणस्थान तक के जीवों का स्पर्शनक्षेत्र प्रतिपादित करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर उपशांतकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१७३।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सरल है। इसकी वर्तमान प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों ने अतीतकाल में तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मनुष्यगति में ही उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों के मारणान्तिक समुद्घात देखा जाता है। शेष सर्व गुणस्थानों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।

अन्यत्र भी कहा है—

औपशमिक सम्यग्दृष्टि देशसंयमी का लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श कैसे होता है? यदि ऐसा पूछते हो तो देशसंयमी औपशमिक सम्यग्दृष्टियों के लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श मनुष्यों में ही संभव है।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ.१, सू. ८।

इति यदि पृच्छसि, मनुजेष्वेतत्संभवात्। वेदकपूर्वकौपशमिकयुक्तो हि श्रेण्योरोहणं विधाय मारणान्तिकं करोति, मिथ्यात्वपूर्वकौपशमिक-युक्तानां मारणान्तिकासंभवात् लोकस्यासंख्येयभागः[१]।''

एवं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।१७४।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।१७५।।

मिच्छादिट्ठी ओघं।।१७६।।

एतानि त्रीण्यपि गुणस्थानानि अवगतार्थानि, गुणस्थानेषु प्ररूपितत्वात्। ततः एतेषां प्ररूपणा न क्रियते।

तात्पर्यमेतत्—मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानानि मुक्त्वा सम्यक्त्वं गृहीत्वा क्षायिकसम्यग्दर्शनार्थं प्रयत्नो विधेयः यावन्न लभेत तावत् पुरुषार्थेन पंचविंशतिसम्यक्त्वदोषान् परिहर्तुं सावधानैः भवितव्यम्।

एवं चतुर्थस्थले सासादनादिस्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां सम्यक्त्वप्ररूपणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

क्योंकि वेदक पूर्वक औपशमिक सम्यग्दर्शन युक्त मानव श्रेणी–आरोहण करके मारणान्तिक समुद्घात करता है। मिथ्यात्वपूर्वक औपशमिक सम्यग्दर्शन सहित (प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन सहित) मानव का मरण और मारणान्तिक समुद्घात नहीं है इसलिए इनके लोक का असंख्यातवां भाग ही स्पर्श है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में उपशम सम्यग्दृष्टियों का स्पर्शनक्षेत्र बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७४।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७५।।

मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७६।।

हिन्दी टीका—ये तीनों ही सूत्र चूँकि गुणस्थानों में प्ररूपित हो चुके हैं, इसलिए इनके अर्थ अवगत—ज्ञात हैं। इसलिए इनकी प्ररूपणा यहाँ नहीं की जा रही है।

तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्वादि तीनों प्रारंभिक गुणस्थानों को छोड़कर सम्यक्त्व को ग्रहण करके क्षायिकसम्यग्दर्शन की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए और वह जब तक नहीं प्राप्त होवे, तब तक पुरुषार्थ के द्वारा सम्यक्त्व के पच्चीस मलदोषों को सावधानीपूर्वक दूर करना चाहिए।

इस तरह से चतुर्थस्थल में सासादन आदि गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन बताने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलेद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रत्रयं, तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिनां स्पर्शनकथनेन ''असण्णीहि'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका।

अधुना संज्ञिनां मिथ्यादृष्टिस्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतरति—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।।१७७।।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।।१७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति।

स्वस्थानपरिणतैः संज्ञिमिथ्यादृष्टिभिः अतीतकाले त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागा, मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का स्पर्शननिरूपण करने हेतु ''सण्णिया'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु ''असण्णीहि'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणा के अनुवाद से संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।१७७।।

संज्ञी जीवों ने अतीत और वर्तमानकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।।१७८।।

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थानपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीतकाल में तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों ने आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद से परिणत संज्ञी जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है।

एषामेव सासादनादीनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।।१७९।।

सूत्रं सुगममस्ति, ओघात् न कोऽपि भेदोऽस्ति, संज्ञिरहितसासादनादीनामभावात्।

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवस्पर्शनकथनेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

असंज्ञिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रावतारो भवति—

असण्णीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।।१८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणतैः असंज्ञिभिः त्रिष्वपि कालेषु सर्वलोकः स्पृष्टः। विहारपरिणतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य, संख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च त्रिष्वपि कालेषु स्पृष्टः। वैक्रियिकपरिणतैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणः वर्तमाने स्पृष्टः। अतीते पंच चतुर्दशभागा इति गृहीतव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—संज्ञित्वमवाप्य मनसा पंचमेर्वादिवंदनां कृत्वा सातिशयपुण्यं समुपार्ज्य मनुष्यपर्यायः

अब उन्हीं संज्ञी जीवों का सासादन आदि गुणस्थानों की अपेक्षा स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

संज्ञी जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१७९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। इन गुणस्थानों में जीवों की स्पर्शनप्ररूपणा का ओघस्पर्शनप्ररूपणा से कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि संज्ञित्व से रहित सासादनादि गुणस्थानों का अभाव है। अर्थात् असंज्ञी जीवों में मात्र एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है, अन्य कोई भी गुणस्थान उनमें नहीं होता है।

इस तरह से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का स्पर्शन क्षेत्र बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए। अब असंज्ञी जीवों के स्पर्शन का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक का स्पर्श किया है।।१८०।।

हिन्दी टीका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय मारणान्तिक और उपपादपदपरिणत असंज्ञी जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानपद से परिणत जीवों ने तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालों में स्पर्श किया है। वैक्रियिकपद से परिणत असंज्ञी जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकाल में स्पर्श किया है। अतीतकाल में पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्श किये हैं। ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सफलीकर्तव्यः अस्माभिरिति।

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिस्पर्शनज्ञापनत्वेन एकं सूत्रं गतं।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

तात्पर्य यह है कि हम सभी को संज्ञी अवस्था को प्राप्त करके मन से पंचमेरु आदि पर्वतों की वंदना करके सातिशय पुण्य का उपार्जन करते हुए अपनी मनुष्य पर्याय को सफल करना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकार:

अथ स्थलद्वयेन पंचसूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारो निगद्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारकजीवानां स्पर्शनक्षेत्रप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारजीवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे, इति समुदायपातनिका।

आहारमार्गणायां मिथ्यादृष्टिस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।१८१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

उपपादस्य रज्जु-आयामः आहारनिरुद्धे न लभ्यते, तेन सर्वलोकस्पर्शनाभावान्न ओघत्वं युज्यते?

न, शरीरगृहीतप्रथमसमये वर्तमानजीवैः आपूरितसर्वलोकोपलंभात्।

आहारसहितसासादनादिसंयतासंयतस्पर्शननिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।।१८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। एतेषां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत्। अतीतकालेऽपि यथा कथितं**

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बतलाने वाले तीन सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु दो सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम आहारमार्गणा में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारकजीवों में मिथ्यादृष्टियों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१८१।।

हिन्दी टीका—

प्रश्न—उपपादपद का राजुप्रमाण आयाम आहार के निरुद्ध हो जाने पर नहीं पाया जाता है, इसलिए सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र के स्पर्शन का अभाव होने से ओघपना नहीं बनता है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय में वर्तमान जीवों के द्वारा व्याप्त सर्वलोक के पाये जाने से ओघपना घटित हो जाता है।

अब आहारसहित सासादनसम्यग्दृष्टि आदि संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवों तक का स्पर्शन बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारकजीवों का स्पर्शनक्षेत्र ओघ के समान है।।१८२।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्र प्ररूपणा के

एतेषु गुणस्थानेषु पूर्वं तथैव वक्तव्यं। केवलं-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यां उपपादपदेन त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

प्रमत्तादिसयोगिकेवल्यन्तानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतार्यते—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१८३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रस्यार्थः सुगमः। अतीतवर्तमानयोः स्पर्शनमोघतुल्यं। केवलं-सयोगिकेवलिनां प्रतरलोकपूरणे न स्तः।**

अन्यत्र चोक्तं—''सयोगकेवलिनां आहारानुवादेन लोकस्यासंख्येयभागः।

तत्कथं?

आहारकावस्थायां समचतुरस्त्ररज्ज्वादिव्याप्तेरभावात्। दण्डकपाटावस्थायां कपाटप्रतरावस्थायां च सयोगिकेवली औदारिक-औदारिकमिश्रशरीरयोग्य पुद्गलादानादाहारकः। तथा चोक्तं—

समान है। अतीतकाल की प्ररूपणा कहने पर स्पर्शन के ओघ में जैसा कि इन चारों गुणस्थानों का स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकार से जानना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि उपपादपद से परिणत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के भगवन्तों का स्पर्शन बतलाने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ-

आहारक जीवों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१८३।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। इस सूत्र की प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन दोनों कालों की अपेक्षा ओघप्ररूपणा के समान है। विशेष बात केवल यह है कि सयोगिकेवली भगवन्तों के प्रतर और लोकपूरण समुद्घात नहीं होता है।

अन्यत्र भी कहा है—''आहारमार्गणा के अनुवाद से सयोगिकेवली भगवन्तों का स्पर्शनक्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

प्रश्न—ऐसा कैसे है?

उत्तर—क्योंकि आहारक अवस्था में समचतुरस्त्र राजु आदि की व्याप्ति का अभाव पाया जाता है। सयोगिकेवली भगवान दण्ड-कपाट-प्रतर समुद्घातों की अवस्था में तथा कपाट और प्रतर समुद्घात की अवस्था में औदारिक एवं औदारिकमिश्र शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाओं के ग्रहण करने के कारण आहारक होते हैं। कहा भी है—

''दंडजुगे ओरालं कवाडजुगले य पयरसंवरणे।
मिस्सोरालं भणियं कम्मइओ सेस तत्थ अणहारी।।[1]''

दण्डकपाटयोश्च पिण्डिते अल्पक्षेत्रतया समचतुरस्त्ररज्ज्वादिव्याप्तेरभावात् सिद्धो लोकस्यासंख्येयभागः[2]।

एवं प्रथमस्थले आहारजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अनाहारकानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो।।१८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। कार्मणकाययोगिषु सर्वेषु अनाहारकोपलम्भात्।**

अन्यत्र चोक्तं—''अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः स्पृष्टाः।

तत्कथं?

गाथार्थ—केवली समुद्घात के आठ समयों में से दण्डद्विक् अर्थात् पहले और आठवें समय के दोनों दण्डसमुद्घातों में औदारिक काययोग होता है। कपाटयुगल में अर्थात् विस्तार और संवरणगत दोनों कपाटसमुद्घातों में तथा संवरणगत प्रतरसमुद्घात में यानी दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिक मिश्र काययोग होता है, ऐसा परमागम में कहा गया है। शेष समयों में अर्थात् तीसरे, चौथे और पांचवे समय में कार्मणकाययोग होता है और उस समय केवली भगवान अनाहारक रहते हैं।

दण्ड और कपाट के संवरण अथवा प्रसरण में अल्प क्षेत्र होने से समचतुष्कोण में व्याप्ति होने का अभाव होने से आहारक अवस्था में सयोगकेवलियों के लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श सिद्ध होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का स्पर्शनक्षेत्र बताने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने के लिए सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

अनाहारक जीवों में संभवित गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शनक्षेत्र कार्मणकाययोगियों के क्षेत्र के समान है।।१८४।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इसका कारण यह है कि सभी कार्मणकाययोगियों के अनाहारकपना पाया जाता है।

अन्यत्र भी कहा है—अनाहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टियों के द्वारा सारे लोक का स्पर्श किया जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टियों ने लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का और लोकनाड़ी के चौदह भागों में से कुछ कम ग्यारह भाग क्षेत्र का स्पर्श किया है।

प्रश्न—अनाहारक सासादन गुणस्थानवर्ती ग्यारह राजू का स्पर्श कैसे करता है?

---

१. पंचसंग्रह १, पृ. १९९। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

अनाहारकेषु सासादनस्य षष्ठपृथिवीतो निःसृत्य तिर्यग्लोके प्रादुर्भावात् पंचरज्जवः, अच्युतादागत्य तिर्यग्लोके प्रादुर्भावात् षडित्येकादश।

ननु पूर्वं द्वादशोक्ताः इदानीं त्वेकादश पूर्वापरविरोध इति चेत्? न, मारणान्तिकापेक्षया पूर्वं तथाभिधानात्। न च मारणान्तिकावस्थायामनाहारकत्वं किन्तूत्पादावस्थायां। सासादनश्च मारणान्तिकमेवैकेन्द्रियेषु करोति नोत्पादं, उत्पादावस्थायां सासादनत्वत्यागात्। अनाहारकेषु असंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येय भागः, षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः स्पृष्टाः। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा।[1]''

अधुना अनाहारकायोगिनां स्पर्शननिरूपणार्थं उत्तरसूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलि भट्टारकेण—

णवरि विसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१८५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एष विशेषोऽत्र अयोगिकेवलिभिः भगवद्भिः कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं? लोकस्यासंख्यातभागः इति ज्ञातव्यं भवद्भिः।**

उत्तर—अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि छठी नरक पृथिवी से निकलकर मध्यलोक में उत्पन्न होते हैं। छठे नरक से लेकर मध्य लोक तक पांच राजू है तथा सासादनसम्यग्दृष्टि १६वें अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर मध्यलोक में उत्पन्न होते हैं १६वें स्वर्ग से मध्यलोक छह राजु है अतः दोनों को मिलाने से ग्यारह राजू स्पर्श होता है। अर्थात् मेरुतल से नीचे कुछ कम पांच राजू और ऊपर छह राजु स्पर्श उपपाद पद की अपेक्षा है क्योंकि अनाहारक उपपाद में ही रहता है।

प्रश्न—पूर्व में सासादनगुणस्थानवर्ती के द्वारा १२ राजू स्पर्श कहा है, यहाँ ग्यारह राजू कहा है, अतः यह पूर्वापर विरोध है?

उत्तर—इसमें पूर्वापर विरोध नहीं है, क्योंकि पूर्व में १२ राजु स्पर्श मारणन्तिक समुद्घात की अपेक्षा से है और यहाँ पर उपपाद की अपेक्षा से है, क्योंकि मारणान्तिक अवस्था में अनाहारक नहीं होता, किन्तु उपपाद अवस्था में ही अनाहारकत्व है। सासादन वाला मारणान्तिक समुद्घात एकेन्द्रियों में करता है, उपपाद में नहीं, क्योंकि उपपाद अवस्था में सासादन गुणस्थान छूट जाता है। असंयत सम्यग्दृष्टि अनाहारकों के द्वारा लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का और त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग क्षेत्र का स्पर्श किया जाता है।

अनाहारक सयोगकेवलियों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पर्शित किया जाता है।

अब अनाहारक अयोगकेवलियों का स्पर्शन निरूपण करने के लिए श्री भूतबली भट्टारक द्वारा सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।।१८५।।

हिन्दी टीका—यहाँ विशेष बात यह है कि अयोगकेवली भगवन्तों ने कितने क्षेत्र का स्पर्श किया है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर यह है कि उन चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली भगवन्तों ने लोक का

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति।

तात्पर्यमेतत्—इमां मार्गणां पठित्वा आहारानाहारकव्यतिरिक्तनिजशुद्धनित्यनिरञ्जनपरमात्मपदप्राप्त्यर्थं एव पुरुषार्थः कर्तव्यः।

एवं द्वितीयस्थले अनाहारकस्पर्शनकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमे गणिनीज्ञानमती-
कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां आहारमार्गणानाम
चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र स्पर्श किया है, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि इस आहारमार्गणा को पढ़कर आहारक और अनाहारक इन दोनों अवस्थाओं से रहित अपने शुद्ध-नित्य-निरंजन परमात्मपद को प्राप्त करने का ही पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस तरह से द्वितीयस्थल में अनाहारक जीवों का स्पर्शन बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नामक
चतुर्थ प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में
आहारमार्गणा नामक चौदहवां अधिकार समाप्त हुआ।

उपसंहारः

अस्मिन् चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगमनाम्नि चतुर्थप्रकरणे मार्गणाप्ररूपकमहाधिकारे चतुर्दशमार्गणाः उपसंह्रियन्ते। आसु गत्यादिमार्गणासु अनादिकालात् भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा कथमपि मया जिनधर्ममयं सर्वश्रेष्ठरत्नं लब्धम्। अतोऽधुना आभ्यो मार्गणाभ्यः निर्गत्य पंचमगति-अनिन्द्रियत्व-अकायत्व-अयोगत्व-अवेदत्व-अकषायत्व-केवलज्ञान-यथाख्यातसंयम-केवलदर्शन-अलेश्यत्व-भव्याभव्यव्यतिरिक्त-क्षायिकसम्यक्त्व-संज्ञि-असंज्ञिव्यतिरिक्तत्व-अनाहारत्वावस्थास्वरूपस्वशुद्धपरमात्मपदं प्राप्तव्यमिति।

तथा च एभिरिदं पदं प्राप्तं तस्मै पुनः पुनः नमस्कर्तव्यम्। यथा श्रीभगवज्जिनसेनाचार्येण कथितं महापुराणग्रन्थे —

नमः सुगतये तुभ्यं, शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने।।१।।
कायबन्धननिर्मोक्षा-दकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्य-मयोगाय योगिनामधियोगिने।।२।।
अवेदाय नमस्तुभ्य-मकषायाय ते नमः।
नमः परमयोगीन्द्र-वन्दितांघ्रिद्वयाय ते।।३।।

उपसंहार

इस चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम नाम के चतुर्थ प्रकरण में मार्गणाप्ररूपक नामक महाधिकार में चौदह मार्गणाओं का उपसंहार किया जा रहा है। इन गति आदि मार्गणाओं में अनादिकाल से भ्रमण कर-करके मैंने किसी प्रकार से जिनधर्मरूपी श्रेष्ठ रत्न को प्राप्त किया है। अतः अब इन मार्गणाओं से निकलकर पंचमगति-सिद्धगति, अनिन्द्रियपना, अकायत्व — कायरहित अवस्था, योगरहित अवस्था, वेदरहित अवस्था, कषायरहितपना, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवलदर्शन, लेश्यारहित अवस्था, भव्यत्व-अभव्यत्व से रहित अवस्था, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञी-असंज्ञीपने से रहित अवस्था तथा अनाहारी अवस्थास्वरूप शुद्ध परमात्म पद को प्राप्त करना चाहिए तथा जिन महापुरुषों ने इस परमपद को प्राप्त कर लिया है, उन्हें बारम्बार नमस्कार करना चाहिए।

जैसा कि महापुराण ग्रंथ में श्रीमद् भगवज्जिनसेनाचार्य ने कहा है —

श्लोकार्थ — हे भगवन्! आप मोक्षरूपी उत्तमगति को प्राप्त होने वाले हैं इसलिए सुगति हैं अतः आपको नमस्कार हो, आप अतीन्द्रियज्ञान और सुख से सहित हैं तथा इन्द्रियों से रहित अथवा इन्द्रियों के अगोचर हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।१।।

आप शरीररूपी बंधन के नष्ट हो जाने से अकाय कहलाते हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप योगरहित हैं और योगियों अर्थात् मुनियों में सबसे उत्कृष्ट हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो।।२।।

आप वेदरहित हैं, कषायरहित हैं और बड़े-बड़े योगिराज भी आपके चरणयुगल की वंदना करते हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।३।।

नमः परमविज्ञान! नमः परमसंयम!
नमः परमदृग्दृष्ट - परमार्थाय तायिने[१]।।४।।
नमस्तुभ्य-मलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे।।५।।
संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था-व्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये।।६।।
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे।।७।।
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य-मचलायाक्षरात्मने।।८।।
अलमास्तां गुणस्तोत्र-मनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे।।९।।
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्त्रं पापशान्तये।।१०।।

एवं मध्यलोकस्थिताकृत्रिम-अष्टपंचाशदुत्तरचतुःशतजिनालयेभ्यो नमः।

हे परमविज्ञान! अर्थात् उत्कृष्ट केवलज्ञान को धारण करने वाले! आपको नमस्कार हो, हे परमसंयम! अर्थात् उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र को धारण करने वाले प्रभो! आपको नमस्कार हो। हे भगवन्! आपने उत्कृष्ट केवलदर्शन के द्वारा परमार्थ को देख लिया है तथा आप सबकी रक्षा करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।४।।

आप यद्यपि लेश्याओं से रहित हैं तथापि उपचार से शुद्ध-शुक्ललेश्या के अंशों का स्पर्श करने वाले हैं, भव्य तथा अभव्य दोनों ही अवस्थाओं से रहित हैं और मोक्षरूप हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।५।।

आप संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित निर्मल आत्मा को धारण करने वाले हैं, आपकी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चारों संज्ञाएं नष्ट हो गई हैं तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन को धारण कर रहे हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।६।।

आप आहार रहित होकर भी सदा तृप्त रहते हैं, परमदीप्ति को प्राप्त हैं, आपके समस्त दोष नष्ट हो गये हैं और आप संसाररूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।७।।

आप बुढ़ापा रहित हैं, जन्मरहित हैं, मृत्युरहित हैं, अचलरूप हैं और अविनाशी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।८।।

हे भगवन्! आपके गुणों का स्तवन दूर रहे, क्योंकि आपके अनन्तगुण हैं उन सबका स्तवन होना कठिन है इसलिए केवल आपके नामों का स्मरण करके ही हम लोग आपकी उपासना करना चाहते हैं।।९।।

इस प्रकार सुधी-विद्वान्जनों को परम भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की स्तुति करके अपने पापों की शांति के लिए एक हजार आठ नाम मंत्रों को पढ़ना चाहिए।।१०।।

इस तरह से मध्यलोक में स्थित चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम चैत्यालयों को मेरा नमस्कार होवे। उनमें

---

१. ते नमः इति पाठांतरं।

तेषां स्थितसर्वजिनप्रतिमाभ्योऽपि नमो नमः। अत्र इन्द्रध्वजविधान-मध्यस्थित-सर्वजिनमंदिरजिनबिम्बेभ्यो पुनः पुनः नमोऽस्तु।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थ-ग्रन्थे श्रीमद्भूतबलिसूरिविरचितस्पर्शनानुगमनाम्नि चतुर्थप्रकरणे श्रीमद्वीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्था-धारेण अस्मिन् विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्य श्री चारित्रचक्रवर्ति शांतिसागरस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्ता-मणिटीकायां द्वितीयोमहा-धिकारः समाप्तः।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

स्थित समस्त जिनप्रतिमाओं को भी मेरा नमस्कार होवे। यहाँ (मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर) हो रहे इन्द्रध्वज विधान के मण्डल पर विराजमान सम्पूर्ण (४५८) जिनमंदिर एवं जिनबिम्बों को मेरा पुनः पुनः नमस्कार होवे।

भावार्थ—ग्रंथ की टीकाकर्त्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् १९९६ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर ससंघ वर्षायोग स्थापित किया था। उसी प्रवास के मध्य वहाँ भगवान पार्श्वनाथ जिनमंदिर में चल रहे इन्द्रध्वज विधान के अन्तर्गत श्रावण शुक्ला एकादशी रविवार (वीर निर्वाण संवत् २५२२ में) इस स्पर्शनानुगम महाधिकार को लिखकर पूर्ण किया था, इसीलिए यहाँ प्रसंगानुसार उन्होंने तेरहद्वीपों के अकृत्रिम जिनमंदिरों एवं सिद्ध भगवन्तों को नमन करते हुए अधिकार का समापन किया है। उनकी जिनेन्द्रभक्ति सदा जयशील होवे तथा उन्हें शीघ्र मोक्षप्राप्ति में निमित्त बने यही स्वयंसिद्ध प्रतिमाओं के चरणों में प्रार्थना है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदन्त और भूतबली आचार्यप्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में श्रीमत् भूतबली आचार्य द्वारा विरचित स्पर्शनानुगम नामक चतुर्थ प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य की शिष्या गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ कालानुगमः

(तृतीयो महाधिकारः)

मंगलाचरणं

स्तुमः ऋषभसेनादि-वीराङ्गजान्तिमान् सदा।
यत्प्रसादादयं मार्गो, यास्यत्यक्षुण्णतामिह।।१।।
चतुर्विंशतितीर्थेशां, सिद्धाः गणभृतः पृथक्।
चतुर्दशशतानि द्वि - पञ्चाशत्तानपि स्तुवे।।२।।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे कालानुगमनाम्नि पंचमप्रकरणे तृतीयचतुर्थनामधेयौ द्वौ महाधिकारौ स्तः। तत्र तावत् तृतीयमहाधिकारे गुणस्थानानां कालप्ररूपकानि द्वात्रिंशत्सूत्राणि सन्ति। पुनश्च चतुर्थमहाधिकारे मार्गणाधिकारे प्रथमगतिमार्गणायां चतुरन्तराधिकारेषु चतुःसप्ततिसूत्राणि, तदनु इन्द्रियमार्गणायां द्वात्रिंशत्सूत्राणि, कायमार्गणाधिकारे त्रयोविंशतिः, योगे पंचषष्टिः, वेदे त्रयोविंशतिः, कषायमार्गणायां दश, ज्ञाने नव, संयमे सप्त, दर्शनाधिकारे सप्त, लेश्यायां षड्विंशतिः, भव्यमार्गणायां अष्टौ, सम्यक्त्वमार्गणायां त्रयोदश, संज्ञित्वेऽधिकारे सप्त, आहारमार्गणायां षडिति चतुर्थमहाधिकारे चतुर्दशाधिकारेषु दशोत्तरत्रिशतसूत्राणि भवन्ति। एवं महाधिकारद्वयेन कालानुगमे समुदायपातनिका कथितास्ति।

तत्रापि तावत् तृतीयमहाधिकारो दशभिरन्तरस्थलैः द्वात्रिंशत्सूत्रैः प्रारभ्यते। तस्मिन् प्रथमस्थले कालानुगमकथनस्य प्रतिज्ञारूपेण ''कालाणु'' इत्यादिना सूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिकाल प्रतिपादनत्वेन ''ओघेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले सासादनानां कालकथनत्वेन ''सासण''

अथ कालानुगम अधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — श्री ऋषभसेन गणधर महामुनि से लेकर अंतिम वीरांगज मुनि तक समस्त मुनिराजों की हम स्तुति करते हैं, जिनकी कृपा प्रसाद से मोक्षमार्ग की अक्षुण्ण परम्परा पंचमकाल के अन्त तक चलेगी।।१।।

चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों के तीर्थकाल में सिद्धपद को प्राप्त हुए चौदह सौ बावन (१४५२) गणधरों की भी हम स्तुति करते हैं।।२।।

इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम नाम के पंचम प्रकरण में तृतीय और चतुर्थ नाम से दो महाधिकार हैं। उनमें से तृतीय महाधिकार में गुणस्थानों का कालप्ररूपण करने वाले बत्तीस (३२) सूत्र हैं। पुन: मार्गणाअधिकार नामक चतुर्थ महाधिकार में सर्वप्रथम गति मार्गणा का कथन करने वाले चार अन्तराधिकारों में चौहत्तर (७४) सूत्र हैं, उसके बाद इन्द्रिय मार्गणा में बत्तीस (३२) सूत्र हैं, कायमार्गणा अधिकार में तेईस (२३) सूत्र हैं, योगमार्गणा में पैंसठ (६५) सूत्र हैं, वेदमार्गणा में तेईस (२३) सूत्र हैं, कषायमार्गणा में दश (१०) सूत्र हैं, ज्ञानमार्गणा में नौ (९) सूत्र हैं, संयममार्गणा में सात (७) सूत्र हैं, दर्शनमार्गणा में सात (७) सूत्र हैं, लेश्यामार्गणा में छब्बीस (२६) सूत्र हैं, भव्यमार्गणा में आठ (८) सूत्र हैं, सम्यक्त्व मार्गणा में तेरह (१३) सूत्र हैं, संज्ञी मार्गणा में सात (७) सूत्र हैं तथा आहारमार्गणा में छह (६) सूत्र हैं। इस प्रकार चतुर्थ महाधिकार के चौदह अन्तराधिकारों में कुल तीन सौ

इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां समयप्रतिपादनपरत्वेन ''सम्मामिच्छा'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले असंयतसम्यग्दृष्टीनां समयप्ररूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं षष्ठस्थले संयतासंयतजीवानां कालकथनत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तदनु सप्तमस्थले प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां साधूनां समयनिरूपणत्वेन ''पमत्त'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। अनंतरं अष्टमस्थले अपूर्वकरणादिचतुरूपशामकानां श्रेण्यारोहकानां कालप्ररूपणत्वेन ''चउण्हं'' इत्यादिचत्वारि सूत्राणि। ततः परं ''नवमस्थले क्षपकश्रेण्यारोहणपराणां महायतीनां समयप्रतिपादनपरत्वेन ''चदुण्हं खवगा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। पुनश्च दशमस्थले सयोगिकेवलिनां सकलपरमात्मनां समयकथनत्वेन ''सजोगि'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति तृतीयमहाधिकारस्य समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना कालानुगमस्य द्विविधत्वनिर्देशनाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण—

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रस्यार्थः सुगमः। कालश्चतुर्विधः नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात्। तत्र 'कालः' इतिशब्दः नामकालो निगद्यते।**

दश (३१०) सूत्र हैं। दो महाधिकारों के द्वारा यह कालानुगम के सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

उसमें भी दश अन्तर स्थलों एवं बत्तीस सूत्रों के द्वारा तृतीय महाधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में कालानुगम को कहने की प्रतिज्ञारूप से ''कालाणु'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले ''ओघेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीयस्थल में सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों का काल बतलाने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का समय प्रतिपादन करने की मुख्यता वाले ''सम्मामिच्छा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पंचमस्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का समय प्ररूपण करने हेतु ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं।

उससे आगे छठे स्थल में संयतासंयत जीवों का काल बतलाने वाले ''संजदासंजदा'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद सातवें स्थल में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत मुनियों का समय निरूपण करने हेतु ''पमत्त'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः आठवें स्थल में अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणी आरोहण करने वाले जीवों का काल प्ररूपण करने वाले ''चउण्हं'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद नवमें स्थल में क्षपक श्रेणी आरोहण करने वाले महामुनियों का समय बतलाने हेतु ''चदुण्हं खवगा'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। पुनः दशवें स्थल में सयोगिकेवली भगवन्तों अर्थात् अरिहंत परमेष्ठियों का समय बतलाने वाले ''सजोगि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं।

इस प्रकार तृतीय महाधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब कालानुगम के दो प्रकार का निर्देश बतलाने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्य के द्वारा सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

कालानुगम से दो प्रकार का निर्देश है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।।१।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल इस

शब्दः कथं स्वात्मानं प्रतिपादयति?

नैष दोषः, स्वपरप्रकाशकप्रमाणप्रतिपादिशब्दानामुपलम्भात्।

'स एषः' इति अन्यस्मिन् वस्तुनि बुद्ध्या अन्यारोपणं स्थापना निक्षेपः उच्यते। सा द्विविधा-सद्भावासद्भावभेदेन। पल्लवितांकुरितपुष्पितादिवनखण्डे वसंतकालोऽयं इति सद्भावस्थापनाकालः। गैरिकमृत्तिकादिषु वसंतः इति बुद्धिबलेन स्थापना असद्भावस्थापनाकालः। द्रव्यकालो द्विविधः-आगमतो नोआगमतश्च। आगमतः कालप्राभृतज्ञायकः अनुपयुक्तः। नोआगमतो द्रव्यकालः-ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्त-भेदेन त्रिविधः। तत्र ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकालः भाविवर्तमानत्यक्तभेदेन त्रिविधः। भाविनोआगमद्रव्यकालः भविष्यत्काले कालप्राभृतज्ञायकः जीवः। व्यपगतद्विगंध-पंचरस-अष्टस्पर्श-पंचवर्णः कुम्भकारचक्राधस्तनकीलकमिव वर्तनालक्षणो लोकाकाशप्रमाणः पदार्थः तद्व्यतिरिक्तनो-आगमद्रव्यकालो नाम।

उक्तं च पंचास्तिकायप्राभृते—

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।।

प्रकार से काल चार प्रकार का है। उसमें से 'काल' इस प्रकार का शब्द नामकाल कहलाता है।

शंका — शब्द अपना प्रतिपादन कैसे करता है?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि शब्द के स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाण के प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं। 'वह यही है' इस प्रकार से अन्य वस्तु में बुद्धि के द्वारा अन्य का आरोपण करना स्थापना निक्षेप है। वह स्थापना सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकार की है।

उनमें से पल्लवित, अंकुरित, पुष्पित आदि वनखण्ड में 'यह बसन्तकाल है' ऐसा कहना सद्भावना निक्षेपकाल कहलाता है। गैरिक (गेरु), मिट्टी आदि में 'यह बसंत है' इस प्रकार बुद्धि बल से स्थापना करने को असद्भावस्थापनाकाल कहते हैं।

आगम और नोआगम के भेद से द्रव्यकाल दो प्रकार का है। कालविषयक प्राभृत का ज्ञायक किन्तु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित जीव आगमद्रव्यकाल है। ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त के भेद से नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार है। उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और व्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है। भविष्यकाल में जो जीव कालप्राभृत का ज्ञायक होगा, उसे भावीनोआगम द्रव्यकाल कहते हैं।

जो दो प्रकार के गंध, पांच प्रकार के रस, आठ प्रकार के स्पर्श और पाँच प्रकार के वर्ण से रहित है, कुम्भकार के चक्की अधस्तन शिला या कील के समान है, वर्तना ही जिसका लक्षण है और जो लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थ को तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं।

पंचास्तिकायप्राभृत में कहा भी है—

गाथार्थ — 'काल' इस प्रकार का यह नाम सत्तारूप निश्चयकाल का प्ररूपक है और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है। दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रध्वंस होने वाला है तथा आवली, पल्य, सागर आदि के रूप से दीर्घकाल तक स्थायी है।।१।।

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया दु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा[1]।।

तह य आयारंगे वि वुत्तं—

पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि[2]।।

तह गिद्धपिंछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य। इति द्रव्यकाल: प्ररूपित:।

जीवस्थानादिषु द्रव्यकालो नोक्त: इति तस्याभाव: वक्तुं न शक्यते। अत्र षड्द्रव्यप्रतिपादने अधिकाराभावात्। तस्मात् 'द्रव्यकालोऽस्ति' इति गृहीतव्य:। जीवाजीवादि अष्टभंगद्रव्यं वा नोआगमद्रव्यकाल:।

भावकालो द्विविध:-आगम-नोआगमत:। कालप्राभृतज्ञायक: उपयुक्त: जीव: आगमभावकाल:। द्रव्यकालजनितपरिणामो नोआगमभावकालो भण्यते।

पुद्गलादिपरिणामस्य कथं कालव्यपदेश:?

नैष दोष:, कार्ये कारणोपचारनिबन्धनत्वात्।

उक्तं च पंचास्तिकायप्राभृते व्यवहारकालस्यास्तित्वं। तद्यथा—

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान जो एक-एक रूप से स्थित है, वे कालाणु जानना चाहिए।।२।।

इसी प्रकार आचारांग में भी कहा है—

गाथार्थ—पंच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्र के उपदेश से ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्मध्यान से संचय करता है, अर्थात् श्रद्धान करता है तथा गृद्धपिच्छाचार्य—श्री उमास्वामी आचार्य द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्र में भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये कालद्रव्य के उपकार हैं, इस प्रकार से कालद्रव्य प्ररूपित है। जीवस्थान आदि ग्रंथों में द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं, क्योंकि यहाँ जीवस्थान में छह द्रव्यों के प्रतिपादन का अधिकार नहीं है। इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अथवा जीव और अजीव आदि के योग से बने हुए आठ भंगरूप द्रव्य को नोआगमद्रव्यकाल कहते हैं।

आगम और नोआगम के भेद से भावकाल दो प्रकार का है। काल-विषयक प्राभृतक का ज्ञायक और वर्तमान में उपयुक्त जीव आगमभावकाल है। द्रव्यकाल से जनित परिणाम या परिणमन नोआगमभावकाल कहा जाता है।

शंका—पुद्गल आदि द्रव्यों के परिणाम के 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कार्य में कारण के उपचार के निमित्त से पुद्गलादि द्रव्यों के परिणाम के भी 'काल' संज्ञा का व्यवहार हो सकता है।

पंचास्तिकाय प्राभृत में व्यवहारकाल का अस्तित्व कहा भी गया है—

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) , पृ. ३१५। २. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३१६।

णत्थि चिरं वा खिप्पं वुत्तारहिदं तु सा वि खलु वुत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पहुच्च भवो।।[१]

अत्र केन कालेन प्रयोजनम्?

नोआगमभावकालेन प्रयोजनमस्ति। अस्य कालस्य समय-आवली-क्षण-लव-मुहूर्त-दिवस-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सर-युगपूर्व-पर्व-पल्योपम-सागरोपमादिरूपत्वात्। कल्यन्ते संख्यायन्ते कर्मभव-कायायु:स्थितयोऽनेनेति कालशब्दस्य व्युत्पत्तेः। कालः समय अद्धा इत्येकोऽर्थः।

समयादीनामर्थः उच्यते —

अणोरण्वन्तरव्यतिक्रमकालः समयः। चतुर्दशरज्ज्वाकाशप्रदेशातिक्रमणमात्रकालेन यः चतुर्दशरज्जुव्यतिक्रमणक्षमः परमाणुः तस्य एकपरमाणुव्यतिक्रमणकालः समयो नाम। असंख्यातसमयानामेका आवलिः। तत्प्रायोग्यसंख्यातावलिभिः एकः उच्छ्वासनिःश्वासो भवति। सप्तोच्छ्वासैः एकः स्तोकः, सप्तस्तोकैः एकोलवः, सार्धाष्टत्रिंशल्लवैः एका नाली नाम कालो भवति, द्वाभ्यां नालीभ्यां एक मुहूर्तो भवति।

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च।
त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्त्तो ह्येक इष्यते।। (३७७३)।।१।।
निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा।
दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः।। (५११०)।।२।।

गाथार्थ — वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्र की, अर्थात् परत्व और अपरत्व की कोई सत्ता नहीं है। वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्य के बिना नहीं होती है इसलिए कालद्रव्य पुद्गल के निमित्त से हुआ कहा जाता है।

शंका — ऊपर वर्णित अनेक प्रकार के कालों में से यहाँ पर किस काल से प्रयोजन है?

समाधान — नोआगम भावकाल से प्रयोजन है।

वह काल-समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदिरूप है।

जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयु की स्थितियाँ कही जाती हैं अर्थात् संख्यारूप से वर्णित की जाती हैं, उसे काल कहते हैं इस प्रकार की काल शब्द की व्युत्पत्ति है। काल, समय और अद्धा ये सब एकार्थवाची नाम हैं।

समय आदि का अर्थ कहते हैं — एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रम करने में जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं। चौदह राजु आकाश प्रदेशों के अतिक्रमण मात्र काल से जो चौदह राजु अतिक्रमण करने में समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु द्वारा अतिक्रमण — गमन करने के काल का नाम समय है। असंख्यात समयों की एक आवली होती है। तत्प्रायोग्य संख्यात आवलियों से एक उच्छ्वास-निःश्वास निष्पन्न होता है। सात उच्छ्वासों से एक स्तोकसंज्ञिक काल निष्पन्न होता है। सात स्तोकों से एक लव नाम का काल निष्पन्न होता है। साढ़े अड़तीस लवों से एक नाली नाम का काल निष्पन्न होता है। दो नालिका — घड़ी का एक मुहूर्त होता है।

गाथार्थ — उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त कहा जाता है।।१।। विद्वानों ने एक मुहूर्त में पाँच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं।।२।। तीस मुहूर्तों का एक दिन अर्थात् अहोरात्र होता है। मुहूर्तों के नाम इस प्रकार हैं-

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३१७।

त्रिंशन्मुहूर्तो दिवसः। मुहूर्तानां नामानि—

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा।।३।।
रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च।
वारुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पंचदशो दिने (१५)।।४।।
सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि।।५।।
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च।
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्तोऽन्योऽरुणो मतः। (१५)।।६।।
समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्ताश्च समाः स्मृताः।
षण्मुहूर्ताः दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा।।७।।

पंचदशदिवसाः पक्षः। दिवसानां नामानि—

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात्।
देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च।।८।।

द्वौ पक्षौ मासः। ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः। द्वादशमासं वर्षं। पंचभिर्वर्षैर्युगः एवमुपर्यपि वक्तव्यं यावत्कल्प इति[1]।

अत्रपर्यंतं नामादिचतुर्विधनिक्षेपेण कालो व्याख्यातः।

अधुना ''निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः'' इत्यनेन सूत्राधारेण षड्भिः पुनः कालो

गाथार्थ—१. रौद्र, २. श्वेत, ३. मैत्र, ४. सारभट, ५. दैत्य, ६. वैरोचन, ७. वैश्वदेन, ८. अभिजित्, ९. रोहिण, १०. बल, ११. विजय, १२. नैऋत्य, १३. वारुण, १४. अर्यमन् और १५. भाग्य। ये पन्द्रह मुहूर्त दिन में होते हैं।।३-४।।

१. सावित्र, २. धुर्य, ३. दात्रक, ४. यम, ५. वायु, ६. हुताशन, ७. भानु, ८. वैजयन्त, ९. सिद्धार्थ, १०. सिद्धसेन, ११. विक्षोभ, १२. योग्य, १३. पुष्पदंत, १४. सुगन्धर्व और १५. अरुण। ये पन्द्रह मुहूर्त रात्रि में होते हैं, ऐसा माना गया है।।५-६।।

रात्रि और दिन का समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं। हाँ, कभी दिन को छह मुहूर्त जाते हैं और कभी रात्रि को छह मुहूर्त जाते हैं।।७।।

पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है। दिनों के नाम इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा इस प्रकार क्रम से पांच तिथियाँ होती हैं। इनके देवता क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं।।८।।

दो पक्षों का एक मास होता है। वे मास श्रावण आदिक के नाम से प्रसिद्ध हैं। बारह मास का एक वर्ष होता है। पाँच वर्षों का एक युग होता है। इस प्रकार ऊपर-ऊपर भी कल्प संज्ञा उत्पन्न होने तक कहते जाना चाहिए।

यहाँ तक नाम आदि चार प्रकार के निक्षेपों के द्वारा काल का व्याख्यान किया गया है।

अब ''निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान'' इस सूत्र के आधार से पुनः छह

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, पृ. ३१८ से ३२०।

वण्यते-उपर्युक्त प्रकारेण कालस्य कथनं कालनिर्देशः, कस्यायं कालः? जीवपुद्गलयोःकालः-इमौ द्वौ कालस्य स्वामिनौ इति।

कुतः?

तत्परिणामत्वात्। अथवा अयं सूर्यमण्डलस्य परिवर्तनलक्षणस्य, तदुदयास्तमनाभ्यां दिवसादीनामुत्पत्तेः।

केन कालः क्रियते?-कालस्य साधनं किं?

परमार्थकालेनाऽयं व्यवहारकालो निष्पन्नो भवति।

कुत्र कालः?-कालस्याधिकरणं किं?

त्रिकालगोचरानन्तपर्यायैरापूरिते मानुषक्षेत्रैकसूर्यमंडले कालः स्थितो भवति।

यदि मानुषक्षेत्रैकसूर्यमण्डले कालः स्थितो भवति, तर्हि सर्वपुद्गलानामनन्तगुणेन प्रदीप इव स्वपर प्रकाशकारणेन यवराशिरिव समयभावेनावस्थितेन षड्द्रव्यपरिणामाः कथं प्रकाश्यन्ते?

नैष दोषः, माप्यमानद्रव्येभ्यः पृथग्भूतेन मागधप्रस्थेन इव माप्यविरोधाभावात्। न चानवस्था, प्रदीपेन व्यभिचारात्।

देवलोके कालाभावे तत्र कथं काल व्यवहारः?

न, अत्रस्थेनैव कालेन तेषां व्यवहारात्।

प्रकार के काल का वर्णन किया जा रहा है-उपर्युक्त प्रकार से काल का कथन करना कालनिर्देश कहलाता है।

प्रश्न—यह काल किसका है, अर्थात् काल का स्वामी कौन है?

उत्तर—जीव और पुद्गलों का, अर्थात् ये दोनों काल के स्वामी हैं।

क्यों?

क्योंकि काल तत्परिणामात्मक—परिणमनशील है, क्योंकि काल के निमित्त से जीव और पुद्गल दोनों द्रव्य परिणमन करते हैं। अथवा परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षण वाले इस सूर्य मंडल के उदय और अस्त होने से दिन और रात्रि आदि की उत्पत्ति होती है।

शंका—काल किससे किया जाता है, अर्थात् काल का साधन क्या है?

समाधान—परमार्थकाल से काल, अर्थात् व्यवहारकाल निष्पन्न होता है।

शंका—काल कहाँ पर है, अर्थात् काल का अधिकरण क्या है?

समाधान—त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायों से परिपूरित एक मात्र मानुषक्षेत्र संबंधी सूर्यमंडल में ही काल है, अर्थात् काल का आधार मनुष्यक्षेत्र संबंधी सूर्यमंडल है।

शंका—यदि एक मात्र मनुष्यक्षेत्र के सूर्यमंडल में ही काल अवस्थित है, तो सर्व पुद्गलों से अनन्तगुणे तथा प्रदीप के समान स्व-परप्रकाशन के कारणरूप और यवराशि के समान समयरूप से अवस्थित उस काल के द्वारा छह द्रव्यों के परिणमन कैसे प्रकाशित किये जाते हैं?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मापे जाने वाले द्रव्यों से पृथग्भूत मागध (देशीय) प्रस्थ के समान मापने में कोई विरोध नहीं है। न इसमें कोई अनवस्था दोष ही आता है, क्योंकि प्रदीप के साथ व्यभिचार आता है।

शंका—देवलोक में तो दिन-रात्रिरूप काल का अभाव है, फिर वहाँ पर काल का व्यवहार कैसे होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहाँ के काल से देवलोक में काल का व्यवहार होता है।

यदि जीवपुद्गलपरिणामः कालो भवति, तर्हि सर्वेषु जीवपुद्गलेषु संस्थितेन कालेन भवितव्यं, तदा मानुषक्षेत्रैकसूर्यमण्डलस्थितः कालः इति न घटते? नैष दोषः निरवद्यत्वात्। किन्तु न तथा लोके समये वा संव्यवहारोऽस्ति। अनादिनिधनरूपेण सूर्यमण्डलक्रियापरिणामेषु चैव कालसंव्यवहारः प्रवृत्तः। तस्मादेतस्यैव ग्रहणं कर्तव्यं।

कियच्चिरं कालः?

अनादिः अपर्यवसितः।

कतिविधः काल?

सामान्ये एकविधः । अतीतोऽनागतो वर्तमान इति त्रिविधः। अथवा गुणस्थितिकालः भवस्थितिकालः कर्मस्थितिकालः कायस्थितिकालः उपपादकालः भावस्थितिकालश्चेति षड्विधः। अथवा अनेकविधः परिणामेभ्यः पृथग्भूतकालाभावात्, परिणामानां च आनंतिकोपलम्भात्।

अणुगमेण—यथार्थमवबोधः अनुगमः। कालस्यानुगमः कालानुगमः, तेन कालानुगमेन। णिद्देसो—निर्देशः कथनं प्रकाशनं अभिव्यक्तिजननमिति एकार्थः। स च दुविहो, ओघेण आदेसेण चेदि—तत्र ओघनिर्देशः द्रव्यार्थिकनयप्रतिपादकः संगृहीतार्थत्वात्। आदेशनिर्देशः, पर्यायार्थिकनयप्रतिपादनः, अर्थभेदावलम्बनत्वात्।

वृषभसेनादिगणधरदेवैः द्विविधः निर्देशः किमर्थं क्रियते?

शंका—यदि जीव और पुद्गलों का परिणमन ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलों में काल को संस्थित होना चाहिए। तब ऐसी दशा में 'मनुष्यक्षेत्र के एक सूर्यमंडल में ही काल स्थित है' यह बात घटित नहीं होती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है। किन्तु लोक में या शास्त्र में उस प्रकार से संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिधन स्वरूप से सूर्यमंडल की क्रिया के परिणमन में ही काल का संव्यवहार प्रवृत्त है। इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए।

शंका—काल कितने समय तक रहता है?

समाधान—काल अनादि और अपर्यवसित—अनंत है। अर्थात् काल का न आदि है, न अंत है।

शंका—काल कितने प्रकार का होता है?

समाधान—सामान्य से एक प्रकार का काल होता है। अतीत, अनागत और वर्तमान की अपेक्षा तीन प्रकार का होता है। अथवा गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कालस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल इस प्रकार काल के छह भेद हैं। अथवा काल अनेक प्रकार का है, क्योंकि परिणामों—परिणमन से पृथग्भूत काल का अभाव है तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं।

अनुगम-यथार्थ अवबोध को अनुगम कहते हैं, काल के अनुगम को कालानुगम कहते हैं। उस कालानुगम से। निर्देश-निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम है। वह निर्देश दो प्रकार का है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उक्त दोनों प्रकार के निर्देशों में से ओघनिर्देश द्रव्यार्थिकनय का प्रतिपादन करने वाला है, क्योंकि उसमें समस्त अर्थ संग्रहीत हैं। आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनय का प्रतिपादन करने वाला है, क्योंकि उसमें अर्थभेद का अवलंबन किया गया है।

शंका—वृषभसेनादि गणधरदेवों ने दो प्रकार का निर्देश किसलिए किया है?

नैष दोषः, उभयनयमवलम्ब्य स्थितसत्त्वानुग्रहार्थं तथोपदेशात्।

एवं प्रथमस्थले कालस्य निर्देशप्ररूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना मिथ्यादृष्टीनां कालप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। 'केवचिरं होंति। इति पृच्छावचनं जिनप्रज्ञप्तमिदं सूत्रमिति प्रतिपादनफलं। नानाजीवान् प्रतीत्य मिथ्यादृष्टीनां व्युच्छेदः सर्वकालं नास्तीति भणितं भवति।**

एक जीवापेक्षया कालप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो। जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो। जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

अभव्यसिद्धिकजीवानां प्रतीत्य मिथ्यात्वकालः अनाद्यपर्यवसितः। अभव्यमिथ्यात्वस्य आदिमध्यान्ताभावात्। भव्यसिद्धिकमिथ्यात्वकालः अनादिः सपर्यवसितः, यथा वर्द्धनकुमारस्य मिथ्यात्वकालः। अन्यैको

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयों को अवलम्बन करके स्थित प्राणियों के अनुग्रह के लिए दो प्रकार के निर्देश का उपदेश किया है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में काल का निर्देश प्ररूपित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्ररूपित करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

ओघ से मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२।।

हिन्दी टीका—सूत्र सुगम है। "कितने काल तक होते हैं?" ऐसा पृच्छारूप वचन जिनप्रज्ञप्त सूत्र यही बतलाने के लिए है। "नाना जीव" इस प्रकार का कथन बतलाता है कि मिथ्यादृष्टि जीवों का व्युच्छेद सर्वकाल नहीं पाया जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा काल तीन प्रकार का है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है-एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवों का सादि-सान्तकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है।।३।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

अभव्यसिद्धिक जीवों की अपेक्षा उनका मिथ्यात्वकाल अनादि-अनन्त है, क्योंकि अभव्य जीव के मिथ्यात्व का आदि, मध्य और अन्त का अभाव पाया जाता है। भव्यसिद्धिक जीव के मिथ्यात्व का काल एक

मिथ्यात्वकालः सादिः सपर्यवसितः, यथा नारायणकृष्णमिथ्यात्वकालः। तत्र यः सः सादिसपर्यवसितो मिथ्यात्वकालस्तस्यायं निर्देशः। स द्विविधः-जघन्यः उत्कृष्टश्चेति। तत्र जघन्यकालप्ररूपणाज्ञापनार्थं जघन्येनेति उक्तं। मुहूर्तस्यान्तोऽन्तर्मुहूर्तं, एष मिथ्यात्वजघन्यकालनिर्देशः। तद्यथा—

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः वा असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टिः वा संयतासंयतो वा प्रमत्तसंयतो वा परिणामनिमित्तेन मिथ्यात्वं गतः। सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनरपि सम्यग्मिथ्यात्वं वा असंयमेन सह सम्यक्त्वं वा प्रतिपन्नस्य सर्वजघन्यो मिथ्यात्वकालो भवति।[१]

सासादनेन मिथ्यात्वं किं न प्रापितं?

सासादनसम्यक्त्वप्रत्यागतमिथ्यादृष्टेः अतितीव्रसंक्लेशस्य मिथ्यातृष्णा विडम्बितस्य सर्वजघन्यकालेन गुणस्थानान्तरसंक्रमणाभावात्।

''मुहूर्तस्यान्तरन्तर्मुहूर्तः-समयाधिकामवलिकामादिं कृत्वा समयोनमुहूर्तं यावत्। स च अंतर्मुहूर्तं इत्थमसंख्यातभेदो भवति[२]।''

अधुना उत्कृष्टकालप्रतिपादनार्थं सूत्रावतारो भवति—

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।४।।

तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि वर्द्धनकुमार का मिथ्यात्व काल तथा एक और प्रकार का भव्यसिद्धिक जीवों का मिथ्यात्व काल है, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे — कृष्ण का मिथ्यात्वकाल। उनमें से जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है। वह दो प्रकार का है — जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल। उनमें से जघन्यकाल की प्ररूपणा की जाती है, यह बतलाने के लिए 'जघन्यकाल से' ऐसा पद कहा। मुहूर्त के भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुर्हूतकाल कहते हैं। इस पद से मिथ्यात्व के जघन्यकाल का निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है–

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकरके फिर भी सम्यग्मिथ्यात्व को, अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है।

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त कराया गया?

समाधान — क्योंकि, सासादनसम्यक्त्व से पीछे आने वाले, अतितीव्र संक्लेश वाले मिथ्यात्वरूपी तृष्णा से विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीव के सर्वजघन्यकाल से गुणान्तर संक्रमण का अभाव है, अर्थात् सासादनगुणस्थान से आया हुआ मिथ्यादृष्टि अति शीघ्र अन्य गुणस्थान को प्राप्त नहीं हो सकता।

मुहूर्त के अन्दर का काल अन्तर्मुहूर्त कहलाता है–एक समय से अधिक आवली काल को आदि में करके एक समय कम एक मुहूर्त तक का जो काल है, वह अन्तर्मुहूर्त होता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात भेद होते हैं।

अब उत्कृष्ट काल को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन है।।४।।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३२४। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकजीवापेक्षया सादिसान्तमिथ्यात्वस्य उत्कृष्टकालः किञ्चिदूनं अर्द्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाणं भवति।**

अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तनं किमिति चेत्?

उच्यते—अनादिसंसारे परिभ्रमतां जीवानां द्रव्यपरिवर्तनं क्षेत्रपरिवर्तनं कालपरिवर्तनं भवपरिवर्तनं भावपरिवर्तनमिति पञ्चपरिवर्तनानि भवन्ति। यत्तद् द्रव्यपरिवर्तनं तद् द्विविधं—नोकर्म पुद्गलपरिवर्तनं कर्मपुद्गलपरिवर्तनं च। तत्र नोकर्म पुद्गल परिवर्तनं वक्ष्यामः। तद्यथा—

यद्यपि पुद्गलानां गमनागमनं प्रति विरोधो नास्ति, तर्हि अपि कमपि विवक्षित-पुद्गलपरमाणुपुञ्जं बुद्ध्या आदिं कृत्वा नोकर्म पुद्गलपरिवर्तने भण्यमाने विवक्षितपुद्गल-परिवर्तनस्याभ्यन्तरे सर्वपुद्गलराशौ एकोऽपि परमाणु न भुक्तः, इति मत्वा सर्वपुद्गलानामगृहीतसंज्ञा पुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमये कर्तव्या। अतीतकालेऽपि सर्वजीवैः सर्वपुद्गलानामनन्तिमभागः सर्वजीवराशिभ्योऽनन्तगुणः, सर्वजीवराशिउपरिमवर्गात् अनंतगुणहीनः पुद्गलपुञ्जः भुक्तोज्झितः।

कुतः?

अभव्यसिद्धिकैः अनंतगुणेन सिद्धानामनन्तिमभागेन गुणितातीतकालमात्र सर्वजीवराशिसमान भुक्तोज्झितपुद्गलपरिणामोपलम्भात्।

उक्तं च—

सव्वे वि पुग्गला खलु एग्गे भुत्तुज्झिदा हु जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अभिप्राय यह है कि एक जीव की अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण वाला होता है।

शंका—अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं?

समाधान—इस अनादिसंसार में भ्रमण करते हुए जीवों के द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, काल परिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं। इसमें से जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकार का है-नोकर्म पुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन। उनमें से पहले नोकर्म पुद्गलपरिवर्तन को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

यद्यपि पुद्गलों के गमनागमन के प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धि से किसी विवक्षित पुद्गल परमाणुपुंज को आदि करके नोकर्म पुद्गल परिवर्तन के कहने पर विवक्षित पुद्गल परिवर्तन के भीतर सर्वपुद्गलराशि में से एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर पुद्गल परिवर्तन के प्रथम समय में सर्व पुद्गलों की अगृहीत संज्ञा करना चाहिए। अतीतकाल में भी सर्व जीवों के द्वारा सर्वपुद्गलों का अनन्तवांभाग, सर्वजीवराशि से अनन्तगुणा और सर्वजीवराशि के उपरिमवर्ग से अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है।

प्रश्न—ऐसा क्यों?

उत्तर—इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्ध जीवों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग से गुणित अतीतकाल प्रमाण सर्व जीवराशि के समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलों का परिणमन पाया जाता है। कहा भी है-

गाथार्थ—इस पुद्गल परिवर्तनरूप संसार में समस्त पुद्गल इस जीव ने एक-एक करके पुनः-पुनः अनन्तबार भोग करके छोड़े हैं।।

अनया सूत्रगाथया सह विरोधः किं न भवति?

न भवति, किञ्च, गाथायां स्थितसर्वशब्दस्य प्रवृत्तिः सर्वैकदेशे वर्तते सर्वस्मिन् शब्दे प्रवर्तमानस्य सर्वशब्दस्य एकदेशप्रवृत्तिः असिद्धा न, ''ग्रामो दग्धः, जनपदो दग्धः' इत्यादिषु ग्रामजनपदयोः एकदेशप्रवृत्तशब्दस्योपलंभात्।

तेन पुद्गलपरिवर्तनादिसमये अगृहीतसंज्ञिताश्चैव पुद्गलान् त्रयाणां औदारिकादिशरीराणां एकतरशरीरनिष्पादनार्थं अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणान् सिद्धानामनन्तिमभागमात्रान् गृण्हाति। तान् च गृण्हन् आत्मनः अवगाढक्षेत्रस्थितान् चैव गृण्हाति, न पृथक्क्षेत्रस्थितान् ।

उक्तं च—

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चावि।।

द्वितीयसमयेऽपि अर्पितपुद्गलपरिवर्तनाभ्यन्तरे अगृहीतांश्चैव गृण्हाति। एवमुत्कृष्टेण अनंतकालमगृहीतांश्चैव गृण्हाति। जघन्येन द्वयोः समययोः चैवागृहीतान् गृण्हाति, प्रथमसमयगृहीतपुद्गलानां द्वितीयसमये निर्जीर्य अकर्मभावं गतानां पुनः तृतीयसमये तस्मिन् चैव जीवे नोकर्मपर्यायेण परिणतानामुपलम्भात्।

तत्कथं ज्ञायते?

नोकर्मणः अबाध या बिना उदयादिनिषेकोपदेशात्।

प्रश्न—इस सूत्रगाथा के साथ विरोध क्यों नहीं होगा?

समाधान—उक्त सूत्रगाथा के साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि गाथा में स्थित सर्व शब्द की प्रवृत्ति सर्व के एक भाग में की गई है तथा सर्व के अर्थ में प्रवर्तित होने वाले शब्द की एक देश में प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं हैं, क्योंकि ग्राम जल गया, जनपद जल गया, इत्यादिक वाक्यों में उक्त शब्द ग्राम और जनपद पदों के एक देश में प्रवृत्त हुए भी पाये जाते हैं। अतएव पुद्गल परिवर्तन के आदि-प्रथम समय में औदारिक आदि तीन शरीर में से किसी एक शरीर के निष्पादन करने के लिए जीव अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भाग मात्र अगृहीत संज्ञा वाले पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। उन पुद्गलों को ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्र में स्थित पुद्गलों को ही ग्रहण करता हैं, किन्तु पृथक् क्षेत्र में स्थित पुद्गलों को नहीं ग्रहण करता है। कहा भी है-

गाथार्थ—यह जीव एक क्षेत्र में अवगाढ़रूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य पुद्गलपरमाणुओं को यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओं से सर्वप्रदेशों के द्वारा बांधता है। वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं और उभयरूप भी होते हैं।।

द्वितीय समय में भी विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर अगृहीत पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। इस प्रकार उत्कृष्टकाल की अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। किन्तु जघन्यकाल की अपेक्षा दो समयों में ही अगृहीत पुद्गलों को ग्रहण करता है, क्योंकि प्रथम समय में ग्रहण किये गये पुद्गलों की द्वितीय समय में निर्जरा करके अकर्मभाव (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुनः तृतीय समय में उसी ही जीव में नोकर्म पर्याय से परिणत हुए पाये जाते हैं।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—क्योंकि, आबाधाकाल के बिना ही नोकर्म के उदय आदि के निषेकों का उपदेश पाया जाता

एष पुद्गलपरिवर्तनकालः त्रिविधो भवति। अगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धा चेति।[1]

अस्यैव परिवर्तनस्य लक्षणं सरलभाषया गोम्मटसारजीवकाण्डे जीवतत्त्व-प्रदीपिकाटीकायां वर्तते, तदेवात्र उच्यते-

''परिवर्तनं परिभ्रमणं संसारः इत्यनर्थान्तरम्। तत् द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेदात्पञ्चधा। तत्र द्रव्यपरिवर्तनं कर्मनोकर्मभेदाद्द्वेधा। तत्रनोकर्मपरिवर्तनं नाम शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीनां च योग्याः पुद्गलाः केनचिज्जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरुक्षवर्णगन्धादिभिः तीव्रमन्दमध्यमभावेन यथावस्थिताः द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः, अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकाननन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताननन्तवारानतीत्य त एव पुद्गलाः तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावं गच्छेयुस्तावान् समुदितकालो नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं भवति। तद्यथा—तत्पुद्गलपरिवर्तनकालोऽगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धेति त्रिविधः। तत्र अगृहीत-ग्रहणकालः अगृहीतग्रहणाद्धा। गृहीतग्रहणकालो गृहीतग्रहणाद्धा, युगपदुभयग्रहणकालो मिश्रग्रहणाद्धा। तेषां परिवर्तनक्रमोऽयं विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयादारभ्य निरंतरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं, पुनः निरंतरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं पुनः निरंतरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं। एवमनन्तानि मिश्रग्रहणानि।

ततः निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृत् गृहीतग्रहणं। एवं गृहीतेष्वपि अनन्तेषु जातेषु प्रथमपरिवर्तनं

है। यह पुद्गल परिवर्तनकाल तीन प्रकार का होता है–अगृहीत ग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल और मिश्रग्रहणकाल।

इसी परिवर्तन का लक्षण सरलभाषा में गोम्मटसार जीवकाण्ड की जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका में है, उसी को यहाँ बतलाते हैं—

परिवर्तन, परिभ्रमण और संसार ये शब्द एकार्थक हैं। परिवर्तन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के भेद से पाँच प्रकार का है। उनमें से द्रव्यपरिवर्तन कर्म और नोकर्म के भेद से दो प्रकार का है। नोकर्म परिवर्तन इस प्रकार होता है–तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल किसी जीव ने एक समय में ग्रहण किये। स्निग्ध–रूक्षवर्ण गंध आदि तथा तीव्र, मंद या मध्यम भाव से जैसे ग्रहण किये दूसरे आदि समयों में उनकी निर्जरा हो गयी। उसके पश्चात् अनन्त बार अग्रहीत को ग्रहण करके छोड़े, अनन्त बार मिश्र को ग्रहण करके छोड़े। मध्य में अनन्त बार गृहीत को ग्रहण करके छोड़े। तब वे ही पुद्गल उसी प्रकार से उसी जीव के नोकर्म भाव को जब प्राप्त हों, उतना सब काल नोकर्म द्रव्य परिवर्तन होता है। उस पुद्गल परिवर्तन का काल, अगृहीत ग्रहणाद्धा, गृहीत ग्रहणाद्धा और मिश्र ग्रहणाद्धा के भेद से तीन प्रकार है। अगृहीत ग्रहण के काल को अगृहीत ग्रहणाद्धा कहते हैं। गृहीतग्रहण के काल को गृहीत ग्रहणाद्धा कहते हैं और एक साथ गृहीत और अगृहीत के ग्रहणकाल को मिश्रगृहणाद्धा कहते हैं। उनके परिवर्तन का क्रम इस प्रकार है–विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तन के प्रथम समय से लेकर निरन्तर अनन्तबार अगृहीत को ग्रहण करके एक बार मिश्र को ग्रहण करता है पुनः निरन्तर अनन्तबार अगृहीत को ग्रहण करके एक बार मिश्र को ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर अनंतबार अगृहीत को ग्रहण करके एकबार मिश्र को ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्तबार मिश्र को ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर अनन्तबार अगृहीत को ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है। इस प्रकार गृहीत का भी ग्रहण अनन्तबार होने पर प्रथम परिवर्तन होता है।

आगे निरन्तर अनन्तबार मिश्र को ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर मिश्र

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३२५ से ३२८।

भवति। ततोऽग्रे निरंतरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं। पुनः निरंतरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं। एवमनन्तानि अगृहीतग्रहणानि। ततः निरंतरं मिश्रकानन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणं। एवं गृहीतेष्वप्यनंतेषु जातेषु द्वितीयपरिवर्तनं भवति। ततोऽग्रे निरंतरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणं। पुनः निरंतरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणं। एवं गृहीतग्रहणानि अनन्तानि। ततः निरंतरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं। एवमगृहीतग्रहणेष्वप्यनन्तेषु जातेषु तृतीयपरिवर्तनं भवति।

ततोऽग्रे निरन्तरं गृहीताननंतवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं। पुनः गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं। एवं मिश्रग्रहणानि अनन्तानि। ततः निरंतरं गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं। एवमगृहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु चतुर्थपरिवर्तनं भवति। तदनंतरसमये विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयगृहीताः अनन्ता द्वितीयादिसमयनिर्जीर्णा ये नोकर्मसमयप्रबद्धपुद्गलास्त एव तादृशा एव शुद्धा आगत्य आश्रयन्ति तदेतत्सर्वं मिलितं नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति।

कर्मपुद्गलपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये केनचिज्जीवेन अष्टविधकर्मभावेन ये गृहीताः समयाधि-कावलिकालमतीत्य द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तक्रमेणैव त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य कर्मभावं प्राप्नुवन्ति तावत्कालं कर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति। शेषसर्वविशेषो नोकर्मपरिवर्तनवत् ज्ञातव्यः। अनयोः कालौ समानौ।[1]''

विशेषेण तु—नोकर्मपुद्गला आहारवर्गणातः आगच्छन्ति। कर्मपुद्गलाः पुनः कार्मणवर्गणातः आगच्छन्ति।

को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करता है। इस तरह अनन्तबार अगृहीत का ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर मिश्र को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्तबार गृहीत का ग्रहण होने पर द्वितीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर मिश्र को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है पुनः निरन्तर मिश्र को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार गृहीत को ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्तबार गृहीत को ग्रहण करता है। फिर निरन्तर मिश्र को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करता है। इस प्रकार अगृहीत का ग्रहण अनन्तबार होने पर तृतीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर गृहीत को अनन्त बार ग्रहण करके एक बार मिश्र को ग्रहण करता है। पुनः गृहीत को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार मिश्र को ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्तबार मिश्र को ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर गृहीत को अनन्तबार ग्रहण करके एक बार अग्रहीत का ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्तबार अगृहीत का ग्रहण करने पर चतुर्थ परिवर्तन होता है। उसके अनन्तर समय में विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तन के प्रथम समय में जो अनन्त नोकर्म समय प्रबद्ध पुद्गल ग्रहण किये थे और द्वितीयादि समय में जिनकी निर्जरा कर दी गई थी, वे ही नोकर्म पुद्गल उसी रूप में ग्रहण किये जाते हैं तो यह सब मिलकर नोकर्म पुद्गल परिवर्तन होता है।

अब कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहते हैं–एक समय में किसी जीव ने आठ कर्मरूप से जो पुद्गल ग्रहण किये और एक समय अधिक आवली के बीतने पर द्वितीयादि समयों में उनकी निर्जरा कर दी। पूर्वोक्त क्रम से वे ही पुद्गल उसी प्रकार से उसी जीव के कर्मपने को प्राप्त हों, तब तक का काल कर्मपुद्गलपरावर्तन कहलाता है। शेष सब विशेष कथन नोकर्म परिवर्तन की तरह जानना चाहिए। इन दोनों का काल समान है।

विशेष बात यह है कि नोकर्म पुद्गल आहारवर्गणा से आते हैं। किन्तु कर्म पुद्गल कार्मणवर्गणा से

---

१. गोम्मटसारजीवकाण्ड, गाथा ५६०।

नोकर्मपुद्गलानां मिश्रग्रहणकालः तृतीयसमये चैव भवति। कर्मपुद्गलानां पुनः त्रिसमयाधिकावलिकाले व्यतीते भवति। बंधावलिव्यतीतानां समयाधिकावलिकया अपकर्षणवशेन प्राप्तोदयानां द्विसमयावलिकायां अकर्मभावंगतानां कर्मपुद्गलानां त्रिसमयाधिकावलिकया कर्मपर्यायेण परिणम्य अन्यपुद्गलैः सह जीवे बंधं गतानामुपलंभात्। विशेषतया—द्वयोरपि पुद्गलपरिवर्तनयोः सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्तेन प्रथमसमयतद्भवस्थेन प्रथमसमयाहारकेन जघन्योपपादेन योगेन गृहीतकर्म-नोकर्मद्रव्यं गृहीत्वा परिवर्तनारब्धः कर्तव्यः। एवं द्रव्य पुद्गलपरिवर्तनं गतं।[१]''

उक्तं च—

सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु, एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन।
ह्यसकृत्त्वनन्तकृत्वा, पुद्गलपरिवर्तसंसारे।।

क्षेत्रपरिवर्तनमपि स्वपरभेदाद्द्वेधा-तत्र स्वक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—

कश्चिद्जीवः सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनेनोत्पन्नः स्वस्थितिं जीवित्वा मृतः, पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्नः। एवं द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमेण महामत्स्यावगाहनपर्यन्ताः संख्यातघनांगुल-प्रमितावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः, तत् सर्वं समुदितं स्वक्षेत्रपरिवर्तनं भवति।

परक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते-सूक्ष्मनिगोदः अपर्याप्तकः सर्वजघन्यावगाहनशरीरः लोकमध्याष्टप्रदेशान् स्वशरीरमध्याष्टप्रदेशान् कृत्वा उत्पन्नः। क्षुद्रभवकालं जीवित्वा मृतः। स एव पुनस्तेनैव अवगाहनेन द्विवारं

आते हैं। नोकर्म पुद्गलों के मिश्रग्रहण का काल तृतीय समय में ही होता है। किन्तु कर्म पुद्गलों के मिश्रग्रहण का काल तीन समय अधिक आवली प्रमाणकाल के व्यतीत होने पर होता है, क्योंकि जो बन्धावली से अतीत हैं, एक समय अधिक आवली के द्वारा अपकर्षण के वश से जो उदय को प्राप्त हुए हैं और दो समय अधिक आवली के रहने पर जो अकर्मभाव को प्राप्त हुए हैं, ऐसे कर्म पुद्गलों का तीन समय अधिक आवली के द्वारा कर्मपर्याय से परिणमन होकर अन्य पुद्गलों के साथ जीव में बंध को प्राप्त होना पाया जाता है। विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों में प्रथम समय में तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए तथा प्रथम समय में ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीव के द्वारा जघन्य उपपादयोग से गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्य को ग्रहण करके आदि अर्थात् परिवर्तन का प्रारंभ करना चाहिए। इस प्रकार द्रव्य पुद्गल परिवर्तन पूर्ण हुआ।

कहा भी है—

गाथार्थ—इस जीव ने इस पुद्गल परिवर्तनरूप संसार में एक-एक करके पुनः अनन्तबार संपूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं।।

क्षेत्र परिवर्तन भी स्व और पर के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से स्वक्षेत्र परिवर्तन को कहते हैं-कोई जीव सूक्ष्मनिगोद की जघन्य अवगाहना से उत्पन्न हुआ। अपनी स्थितिश्वास के अठारहवें भाग प्रमाण जीवित रहकर मर गया। पुनः एक प्रदेश अधिक उसी अवगाहना से उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार दो आदि प्रदेश अधिक अवगाहना के क्रम से महामत्स्य की अवगाहना पर्यन्त संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के विकल्प उसी जीव ने जब तक धारण किये वह सब मिलकर स्वक्षेत्र परिवर्तन होता है।

अब परक्षेत्र परिवर्तन को कहते हैं-सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्त सबसे जघन्य अवगाहना वाले शरीर

---

१. षट्खण्डागम पु. ४, पृ. ३३२।

तथा त्रिवारं तथा चतुर्वारं एवं यावत् घनांगुलासंख्येयभागः तावद्वारं तत्रैवोत्पन्नः, पुनः एकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वलोकं स्वस्वजन्मक्षेत्रभावं नयति। तदेतत्सर्वं परक्षेत्रपरिवर्तनं भवति। अत्रोपयोगिआर्यावृत्तं—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जन्तुनाऽक्षुण्णः
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे।।

क्षेत्रसंसारे बम्भ्रमता जीवेन जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रे स्वशरीरावगाहनरूपेणास्पृष्टप्रदेशो नास्ति। अवगाहनानि बहुबारं यानि न स्वीकृतानि तानि न सन्ति।

कालपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिद् जीवः उत्सर्पिणीप्रथमसमये जातः स्वायुः परिसमाप्तौ मृतः, पुनर्द्वितीयोत्सर्पिणी द्वितीयसमये जातः स्वायुः परिसमाप्त्या मृतः। पुनः तृतीयोत्सर्पिणीतृतीयसमये जातः तथा मृतः, पुनः चतुर्थोत्सर्पिणीचतुर्थसमये जातः। अनेन क्रमेण उत्सर्पिणीं समाप्नोति तथैवावसर्पिणी-मपि समाप्नोति एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं। मरणस्याप्येवं नैरन्तर्यं ग्राह्यं। तदेतत् सर्वं कालपरिवर्तनं भवति। अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु।
जातो मृतश्च बहुशः, परिभ्रमन् कालसंसारे।।

उत्सर्पणावसर्पणयोः सर्वसमयमालायां क्रमेण उत्पन्नः मृतश्च अनन्तवारकालसंसारे परिभ्रमन् जीवः।

के साथ लोक के आठ मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के मध्य आठ प्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ। क्षुद्रभव काल तक जीवित रहकर मरा। वही पुनः उसी अवगाहना के साथ दुबारा, तिबारा, चौबारा उत्पन्न हुआ। इस प्रकार घनांगुल के असंख्यातवें भाग बार वहीं उत्पन्न हुआ। पुनः एक-एक प्रदेश बढ़ाते-बढ़ाते समस्त लोक को अपना जन्म क्षेत्र बना लेता है। यह सब परक्षेत्र परिवर्तन है।

यहाँ उपयोगी आर्याछंद के द्वारा भी वर्णन करते हैं-

गाथार्थ—इस समस्त लोकरूप क्षेत्र में एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्र परिवर्तनरूप संसार में क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुत बार नाना अवगाहनाओं से इस जीव ने न छुआ हो।

क्षेत्र संसार में भ्रमण करते हुए इस जीव ने बहुत सी अवगाहनाओं के द्वारा समस्त जगत् के क्षेत्रों को अपना जन्मस्थान बनाया। कोई क्षेत्र उत्पन्न होने से शेष नहीं रहा। ऐसी कोई अवगाहना नहीं रही जो अनेक बार धारण नहीं की।

अब काल परिवर्तन को कहते हैं-कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होने पर मर गया। पुनः दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होने से मर गया। पुनः तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में उत्पन्न हुआ उसी प्रकार आयु समाप्त होने पर मरा। पुनः चतुर्थ उत्सर्पिणी के चतुर्थ समय में उत्पन्न हुआ। इसी क्रम से उत्सर्पिणी के सब समयों में उत्पन्न होकर उत्सर्पिणी को समाप्त करता है। इसी प्रकार से अवसर्पिणी को भी समाप्त करता है। इस प्रकार निरन्तर जन्म लेने का कथन किया। इसी प्रकार क्रम से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सब समयों में मरण का भी निरन्तर काल ग्रहण करना चाहिए। यह सब काल परिवर्तन है।

यहाँ उपयोगी आर्याछंद भी वर्णन करते हैं—

गाथार्थ—काल परिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सर्व समयों की आवलियों में निरंतर बहुत बार उत्पन्न हुआ और मरा है।

इस जीव ने अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की सम्पूर्ण समयमाला में परिभ्रमण करते हुए

भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सर्वजघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः संसारे भ्रान्त्वा तेनैव आयुषा तत्रैवोत्पन्नः। एवं दशसहस्रवर्षसमयवारं तत्रैवोत्पन्नो मृतः। पुनः एकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते। पश्चात् तिर्यग्गतौ अन्तर्मुहूर्तायुषा उत्पन्नः प्राग्वत् अन्तर्मुहूर्तसमय-वारमुत्पन्नः उपरिसमयाधिकभावेन त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते। एवं मनुष्यगतावपि त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते। नरकगतिवद्देवगतावपि दशसहस्रवर्षसमयसमाप्तेरुपरि समयोत्तरक्रमेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते। एवं भ्रान्त्वागत्य पूर्वोक्तजघन्यस्थितिको नारको जायते। तदा तदेतत्सर्वं भव परिवर्तनं भवति। अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः।।

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानायुष्या स्थितौ मिथ्यात्वोदयाश्रितजीवेन भवस्थितियोऽनुभविता बहुवारं स्फुटम्।

भावपरिवर्तनमुच्यते—कश्चित्पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वयोग्यसर्वजघन्यां ज्ञानावरण-प्रकृतिस्थितिं अन्तःकोटाकोटिप्रमितां बध्नाति। सागरोपमैककोट्या उपरि द्विवारकोट्या मध्यं अन्तःकोटा-कोटिरित्युच्यते। तस्य जीवस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि

अनन्तबार जन्म और मरण किया है।

अब भवपरिवर्तन का वर्णन करते हैं–नरक गति में सबसे जघन्य आयु दस हजार वर्ष है। उस आयु से नरक में उत्पन्न हुआ। पुनः संसार में भ्रमण करके उसी आयु से वहीं उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दस हजार वर्ष के समयों की जितनी संख्या है उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ और मरा। पुनः एक–एक समय बढ़ाते–बढ़ाते तैंतीस सागर पूर्ण किये। फिर तिर्यंचगति में अन्तर्मुहूर्त की आयु लेकर उत्पन्न हुआ। पहले की तरह अन्तर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी बार अन्तर्मुहूर्त की आयु लेकर उत्पन्न हुआ। फिर एक–एक समय की आयु बढ़ाते–बढ़ाते उसी जीव ने तीन पल्य तक सब आयु भोग डाली। इसी प्रकार मनुष्यगति में भी उसी जीव ने तीन पल्य तक की सब आयु भोगकर समाप्त की। नरकगति की तरह देवगति में भी दस हजार वर्ष के समयप्रमाण दस हजार वर्ष की आयु से उत्पन्न होकर उसे भोगने के पश्चात् एक–एक समय की आयु क्रम से बढ़ाते–बढ़ाते इकतीस सागर की आयु पूर्ण की। इस प्रकार भ्रमण करने के पश्चात् आकर पुनः पूर्वोक्त जघन्यस्थिति वाला नारकी होकर नया भवपरिवर्तन प्रारंभ करता है। तब यह सब भवपरिवर्तन होता है।

इस विषय में उपयोगी आर्या छंद को कहते हैं—

गाथार्थ—भवपरिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्व के वश से जघन्य नारकायु से लगाकर तिर्यंच, मनुष्य और उपरिम ग्रैवेयक तक की भवस्थिति को बहुत बार प्राप्त हो चुका है।।

मिथ्यात्व के उदय से जीव ने नरक की जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक की आयु प्रमाण भवस्थितियाँ अनेक बार भोगी हैं।

अब भावपरिवर्तन को कहते हैं–कोई पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य सबसे जघन्य ज्ञानावरणकर्म की अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति का बंध करता है। एक कोटि सागर के ऊपर और कोटाकोटी सागर के मध्य को अन्तः कोटा–कोटी सागर कहते हैं। उस जीव के जघन्यस्थिति बंध के योग्य छह प्रकार की हानिवृद्धि को लिए असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान होते हैं तथा सर्वजघन्य कषायाध्यवसाय

जघन्यस्थितियोग्यानि।तत्र सर्वजघन्य कषायाध्यवसायस्थाननिमित्तानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि। एवं सर्वजघन्यस्थितिं सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यानुभाग-बन्धाध्यवसायस्थानं च प्राप्तस्य तद्योग्यसर्वजघन्यं योगस्थानं भवति। तेषामेव स्थितिकषायाध्यवसायानु-भागस्थानानां द्वितीयं असंख्येयभागयुक्तं योगस्थानं भवति।

एवमसंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्ध्याख्य चतुःस्थानवृद्धि-पतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योग्यस्थानानि भवन्ति। तथा तामेव स्थितिं तदेव कषायाध्यवसाय-स्थानमास्कन्दतो द्वितीयमनुभागबन्धाध्यवसायस्थानं भवति। तस्यापि योगस्थानानि पूर्वोक्तान्येव ज्ञातव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि अनुभागाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्यन्तेषु प्रत्येकं योगस्थानानि नेतव्यानि। एवं तामेव स्थितिं बध्नतो द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति। तस्यापि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च प्राग्वत् ज्ञातव्यानि। एवं तृतीयादिकषायाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रपरि-समाप्तिपर्यन्तेषु आवृत्तिक्रमो ज्ञातव्यः। ततः समयाधिकस्थितेरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि प्राग्वत् असंख्येयलोकमात्राणि भवन्ति। एवं समयाधिक क्रमेण उत्कृष्टस्थितिपर्यन्तं त्रिंशत्सागरोपमकोटी-कोटिप्रमितस्थितेरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च ज्ञातव्यानि। एवं मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो ज्ञातव्यः। तदेतत्समुदितं भावपरिवर्तनं भवति।[१]''

स्थान में निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होते हैं। इस प्रकार सबसे जघन्यस्थिति, सबसे जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान को प्राप्त जीव के उसके योग्य सबसे जघन्य योगस्थान होता है। पुनः उन्हीं स्थिति, कषायाध्यवसाय और अनुभागस्थानों का असंख्यात भागवृद्धि को लिए हुए दूसरा योगस्थान होता है। इस प्रकार असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि नामक चतुःस्थान वृद्धि को लिए हुए श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते हैं। इन समस्त योग स्थानों के समाप्त होने पर वही स्थिति, वही कषायाध्यवसाय स्थान को प्राप्त जीव के द्वितीय अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान होता है। उसके भी योगस्थान पूर्वोक्त ही जानना चाहिए। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थानों के भी समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक अनुभागस्थान के साथ सब योगस्थान लगाना चाहिए। इसी प्रकार उसके भी समाप्त होने पर उसी स्थिति का बंध करने वाले जीव के द्वारा कषायाध्यवसायस्थान होता है। उसके भी अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान और योगस्थान पूर्व की तरह जानना चाहिए। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानों की समाप्ति पर्यन्त अनुभागस्थानों और योगस्थानों की आवृत्ति करना चाहिए। इस प्रकार सबसे जघन्य स्थिति के साथ सबकी आवृत्ति होने पर एक समय अधिक अन्तःकोटाकोटी की स्थिति बांधता है। उसके भी कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान योगस्थान जानना चाहिए। इस प्रकार एक-एक समय अधिक के क्रम से उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तीस कोटा-कोटीसागर प्रमाण स्थिति के भी स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान जानना चाहिए। इसी प्रकार आठों मूल कर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियों का भी परिवर्तनक्रम जानना चाहिए। यह सब मिलकर भाव परिवर्तन होता है। अतीतकाल में एक जीव के सबसे कम भावपरिवर्तन के बार-संख्या हैं। भवपरिवर्तन के बार भावपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। कालपरिवर्तन के बार भवपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। क्षेत्रपरिवर्तन के बार काल परिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। पुद्गलपरिवर्तन के बार क्षेत्रपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५६० (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)।

अतीतकाले एकस्य जीवस्य सर्वस्तोकाः भावपरिवर्तनवाराः। भवपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। कालपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। क्षेत्रपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। पुद्गलपरिवर्तनवाराः अनंतगुणाः।

सर्वस्तोकः पुद्गलपरिवर्तनकालः। क्षेत्रपरिवर्तनकालः अनंतगुणः। कालपरिवर्तनकालोऽनन्तगुणः। भवपरिवर्तनकालोऽनन्तगुणः। भावपरिवर्तनकालः अनंतगुणः।

एतेषु परिवर्तनेषु अत्र पुद्गलपरिवर्तनेन प्रयोजनं वर्तते।

कर्मनोकर्मभेदेन पुद्गलपरिवर्तनं द्विविधं, तत्र केनात्र प्रयोजनम्?

द्वाभ्यामपि प्रयोजनं, द्वयोः कालभेदाभावात्।

एतत्कुतोऽवगम्यते?

पुद्गलपरिवर्तनाल्पबहुत्वकथने द्वे अपि पुद्गलपरिवर्तने एकत्रीकृत्य कालाल्पबहुत्वविधानात्।

अत्र अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनेन एतस्य पुद्गलपरिवर्तनकालस्य अर्द्धं देशोनं सादिसनिधनमिथ्यात्वस्य कालो भवति।

तत्कथं?

एकः अनादिमिथ्यादृष्टिः अपरीतसंसारी अधःप्रवृत्तकरणं अपूर्वकरणं अनिवृत्तिकरणमिति एतानि त्रीणि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वगृहीतप्रथमसमये चैव सम्यक्त्वगुणेन पूर्ववर्तिअपरीतसंसारं अपहाय परीतसंसारी भूत्वा पुद्गलपरिवर्तनस्य अर्द्धमात्रो भूत्वा उत्कृष्टेन संसारे तिष्ठति। जघन्येन अंतर्मुहूर्तः। अत्र पुनः जघन्यकालेन नास्ति प्रयोजनं। उत्कृष्टस्य अधिकारात्।

पुद्गलपरिवर्तन का काल सबसे कम है। क्षेत्र परिवर्तन का काल पुद्गलपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। काल परिवर्तन का काल क्षेत्रपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। भवपरिवर्तन का काल कालपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। भावपरिवर्तन का काल भवपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है।

इन ऊपर बतलाये गये पाँचों परिवर्तनों में से यहाँ पर पुद्गलपरिवर्तन से प्रयोजन है।

शंका—कर्म और नोकर्म के भेद से पुद्गल परिवर्तन दो प्रकार का है, उनमें से यहाँ पर किससे प्रयोजन है?

समाधान—यहाँ दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों से प्रयोजन है, क्योंकि दोनों के काल में भेद नहीं है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—पुद्गल परिवर्तनकाल के अल्पबहुत्व बताते समय दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों को इकट्ठा करके काल का अल्पबहुत्व विधान किया गया है। इससे जाना जाता है कि दोनों पुद्गलपरिवर्तनों के काल में भेद नहीं हैं।

इस पुद्गलपरिवर्तनकाल का कुछ कम अर्धभाग सादि-सान्त मिथ्यात्व का काल होता है।

शंका—वह सादि-सान्त मिथ्यात्व का काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कैसे होता है?

समाधान—एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीतसंसारी (जिसका संसार बहुत शेष है ऐसा) जीव, अधः प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इस प्रकार इन तीनों ही करणों को करके सम्यक्त्व ग्रहण के प्रथम समय में ही सम्यक्त्वगुण के द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत-असीमित संसारीपना हटाकर व परीतसंसारी हो करके अधिक से अधिक पुद्गलपरिवर्तन के आधे काल प्रमाण ही संसार में ठहरता है तथा सादि-सान्त मिथ्यात्व का काल कम से कम अन्तर्मुहूर्तमात्र है। किन्तु यहाँ पर जघन्यकाल से प्रयोजन नहीं है, क्योंकि उत्कृष्टकाल का अधिकार है।

सम्यक्त्वगृहीतप्रथमसमये नष्टो मिथ्यात्वपर्यायः।

कथं उत्पत्तिविनाशयोः एकः समयः?

न, एकस्मिन् समये पिण्डाकारेण विनष्टस्य घटाकारेणोत्पन्नमृत्तिकाद्रव्यस्योपलम्भात्। तथैव कश्चित् जीवः सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तकालं उपशमसम्यक्त्वकाले स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः। ततः मिथ्यात्वेन सादिः जातः, विनष्टः सम्यक्त्वपर्यायेण। ततः मिथ्यात्वपर्यायेण देशोनार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणसंसारे परिभ्रमणं कृत्वा अन्तिमभवग्रहणे मनुष्येषु उत्पन्नः। (१)

पुनः अंतर्मुहूर्तावशेषे संसारे त्रीण्यपि करणानि कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः(२)। ततः वेदकसम्यग्दृष्टिः जातः (३)। अंतर्मुहूर्तेन अनंतानुबन्धिनो विसंयोजनं कृत्वा (४) ततः दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा (५) पुनः अप्रमत्तो जातः (६)। प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (७) क्षपकश्रेणिमारूह्यमाणः अप्रमत्तसंयतस्थाने अधःप्रवृत्तविशुद्ध्या विशुद्धिं संप्राप्य (८)अपूर्वकरणक्षपकः (९) अनिवृत्तिक्षपकः (१०) सूक्ष्मसांपरायक्षपकः (११) क्षीणकषाय (१२) सयोगी (१३) अयोगी भूत्वा सिद्धो जातः (१४) एवं एतैः चतुर्दशभिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तनं सादिसपर्यवसितमिथ्यात्वकालो भवति।

कश्चिदाशंकते—मिथ्यात्वं नाम पर्यायः। स च उत्पादविनाशलक्षणः, स्थितेरभावात्। यदि तस्य स्थितिरपि इष्यते, तर्हि मिथ्यात्वस्य द्रव्यत्वं प्रसज्यते, ''उप्पादट्ठिदिभंगा हंदि दवियलक्खणं'' इत्यार्षात् ? आचार्यः प्राह-नैष दोषः, यद् अक्रमेण त्रिलक्षणं तद् द्रव्यं, यत् पुनः ''कमेण उप्पाद-ट्ठिदि-भंगिल्लं सो

सम्यक्त्व के ग्रहण करने के प्रथम समय में ही मिथ्यात्व पर्याय नष्ट हो जाती है।

शंका—सम्यक्त्व की उत्पत्ति और मिथ्यात्व का विनाश इन दोनों विभिन्न कार्यों का एक समय कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जैसे एक ही समय में पिण्डरूप आकार से विनष्ट हुआ और घटरूप आकार से उत्पन्न हुआ मृतिकारूप द्रव्य पाया जाता है, उसी प्रकार कोई जीव सबसे कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपशमसम्यक्त्व के काल में रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इसलिए मिथ्यात्व से वह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्याय से विनष्ट हुआ। तत्पश्चात् मिथ्यात्वपर्याय से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसार में परिभ्रमण कर, अन्तिम भव के ग्रहण करने पर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ (१)। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल संसार के अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणों को करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (२)। पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हुआ (३)। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा अनंतानुबंधी कषाय का विसंयोजन करके (४), उसके बाद दर्शनमोहनीय का क्षय करके (५), पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। फिर प्रमत्त और अप्रमत्त इन दोनों गुणस्थानों संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (७), क्षपक श्रेणी पर चढ़ता हुआ अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धि से शुद्ध होकर (८), अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११), क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली होता हुआ सिद्ध हो गया (१४)। इस प्रकार इन चौदह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण सादि और सान्त मिथ्यात्व का काल होता है।

शंका—यहाँ कोई शंका करता है कि मिथ्यात्व नाम पर्याय का है। वह पर्याय उत्पाद और विनाश लक्षण वाली है, क्योंकि उसमें स्थिति का अभाव है और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं तो मिथ्यात्व के द्रव्यपना प्राप्त होता है, क्योंकि 'उत्पाद, स्थिति और भंग, अर्थात् व्यय ही द्रव्य का लक्षण है' इस प्रकार आर्ष वचन है?

समाधान—तब आचार्य समाधान देते हैं कि यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जो अक्रम से (युगपत्)

पज्जाओ त्ति जिणोवदेसादो।''

पुनः कश्चिदाह—यद्येवं, तर्हि पृथिव्यप्तेजोवायूनामपि पर्यायत्वं प्रसज्यते? भवतु तेषां पर्यायत्वं, इष्टत्वात्।

तेषु द्रव्यव्यवहारो लोके दृश्यते इति चेत् ?

न, तस्य शुद्धाशुद्धात्मक-संग्रहव्यवहाररूप-द्विनयनिमित्तकनैगमनयनिबन्धनत्वात्। शुद्धेद्रव्यार्थिकनयावलम्बिते षट् चैव द्रव्याणि, अशुद्धे द्रव्यार्थिकनयावलम्बिते पृथिव्यादीनि अनेकानि द्रव्याणि भवन्ति, व्यञ्जनपर्यायस्य द्रव्यत्वाभ्युपगमात्। शुद्धे पर्यायार्थिकनये अर्पिते पर्यायस्य उत्पादविनाशौ द्वौ चैव लक्षणे स्तः। अशुद्धे चाश्रिते क्रमेण त्रीण्यपि लक्षणानि, उत्पन्नपर्यायस्य वज्रशिलास्तंभादिषु व्यञ्जनसंज्ञितस्य अवस्थानोपलम्भात्। मिथ्यात्वमपि व्यञ्जनपर्यायः, तस्मात् एतस्य उत्पादस्थितभंगाः क्रमेण त्रयोऽपि अविरुद्धाः इति गृहीतव्यं।

यदुक्तं—

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।।

एषा अपि गाथा न विरुद्धयते, शुद्धद्रव्य-पर्यायार्थिकनयौ अवलम्ब्य स्थिततत्वात्।

कश्चिदाशंकते—''भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा[1]।''इति वचनात् सर्वेषां भव्यजीवानां

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों लक्षणों वाला होता है, वह द्रव्य है और जो क्रम से उत्पाद, स्थिति और व्यय वाला होता है वह पर्याय है। इस प्रकार से जिनेन्द्र का उपदेश है।

शंका—पुनः कोई शंका करता है कि यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायु के पर्यायपने का प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान—इसका समाधान करते हैं कि भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे, क्योंकि वह हमें इष्ट है।

शंका—किन्तु उन पृथिवी आदि को तो द्रव्य का व्यवहार लोक में दिखाई देता है?

समाधान—नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय निमित्त वाले नैगमनय के निमित्त से होता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि व्यंजनपर्याय के द्रव्यपना माना गया है। किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनय की विवक्षा करने पर पर्याय के उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं। अशुद्ध पर्यायार्थिकनय के आश्रय करने पर क्रम से तीनों ही पर्याय के लक्षण होते हैं, क्योंकि वज्रशिला, स्तम्भादि में व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्याय का अवस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग ये तीनों ही लक्षण क्रम से अविरुद्ध हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

गाथार्थ—जैसा कि कहा भी है पर्यायनय के नियम से पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्यय को भी प्राप्त होते हैं किन्तु द्रव्यार्थिकनय के नियम से सर्व-वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् ध्रौव्यात्मक है।।

यह गाथा भी विरोध को नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि इसमें किया गया व्याख्यान शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनय को अवलम्बन करके स्थित है।

शंका—यहां कोई शंका करता है कि 'जिन जीवों की सिद्धि भविष्यकाल में होने वाली है, वे जीव भव्य सिद्ध कहलाते हैं' इस वचन के अनुसार सर्व भव्य जीवों का व्युच्छेद होना चाहिए अन्यथा भव्यसिद्धों

---

१. गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५५७।

व्युच्छेदेन भवितव्यं, अन्यथा तल्लक्षणविरोधात्। न च सव्ययो न नश्यति, अन्यत्र तथानुपलंभात् ?

आचार्य आह—नैषदोषः, तस्यानन्तत्वात्। स अनन्तो निगद्यते, यः संख्यातासंख्यातराशिव्यये सति अनन्तेनापि कालेन न नश्यति।

उक्तं च—

संते वए ण णिट्ठादि, कालेणाणंतएण वि।
जो रासी सो अणंतो त्ति, विणिद्दिट्ठो महेसिणा।।

यद्येवं तर्हि, अर्धपुद्गलपरिवर्तनादिराशीनां सव्ययानां अनन्तत्वं नश्यति?

नश्यतु नाम, को दोषः।

तेषु अनन्तव्यवहारः सूत्राचार्य व्याख्यानप्रसिद्धः उपलभ्यते इति चेत् ?

न, तस्य उपचारनिबन्धनत्वात्। तद्यथा—प्रत्यक्षेण प्रमाणेन उपलब्धः यः स्तंभः, स यथा उपचारेण प्रत्यक्षः इति लोके उच्यते, तथा अवधिज्ञानविषयमुल्लंघ्य स्थितराशयः केवलस्य अनन्तस्य विषयाः इति उपचारेण ते अनन्ताः उच्यन्ते। तस्मात् तेषु सूत्राचार्यव्याख्यानप्रसिद्धेन अनंतव्यवहारेण नेदं व्याख्यानं विरुध्यते। अथवा व्यये सत्यपि अक्षयः कोऽपि राशिरस्ति, सर्वस्य सप्रतिपक्षस्योपलम्भात्। एषोऽपि भव्यराशिरनन्तः, तस्मात् सत्यपि व्यये अनंतेनापि कालेन न समाप्यते इति सिद्धम्।[१]

के लक्षण में विरोध आता है तथा जो राशि व्यय सहित होती है वह भी नष्ट नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता है?

समाधान—आचार्य समाधान देते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि भव्यसिद्ध जीवों का प्रमाण अनन्त है और अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या असंख्यातप्रमाण राशि के व्यय होने पर भी अनन्तकाल तक भी नहीं समाप्त होता है। कहा भी है—

गाथार्थ—व्यय के होते रहने पर भी अनन्तकाल के द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियों ने 'अनन्त' इस नाम से विनिर्दिष्ट किया है।।

शंका—यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियों का अनन्तत्व नष्ट हो जाता है?

समाधान—उनका अनन्तपना नष्ट हो जाये, इसमें कोई दोष नहीं है?

शंका—किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकों में अनन्त का व्यवहार सूत्र तथा आचार्यों के व्याख्यान से प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उन पुद्गलपरिवर्तन आदि में अनन्तत्व का व्यवहार उपचारनिमित्तक है। अब इसी को स्पष्ट करते हैं-जो पाषाणादि का स्तम्भ प्रत्यक्षप्रमाण के द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचार से 'प्रत्यक्ष' है ऐसा लोक में कहा जाता है, उसी प्रकार से अवधिज्ञान के विषय का उल्लंघन करके जो राशियाँ स्थित हैं, वे सब अनन्त प्रमाण वाले केवलज्ञान के विषय हैं, इसलिए उपचार से 'अनन्त हैं', इस प्रकार से कही जाती हैं। अतएव सूत्र और आचार्यों के व्याख्यान से प्रसिद्ध अनन्त के व्यवहार से यह व्याख्यान विरोध को प्राप्त नहीं होता है। अथवा व्यय के होते रहने पर भी सदा अक्षय रहने वाली कोई राशि है जो कि क्षय होने वाली सभी राशियों के प्रतिपक्ष सहित पाई जाती है।

इसी प्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, व्यय के होते रहने पर भी अनन्तकाल द्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३३९।

तात्पर्यमेतत्—पंचपरिवर्तनस्वरूपसंसारं ज्ञात्वा तेभ्यः भीत्वा संसारशरीरभोगनिर्विण्णो भूत्वा पंचगुरुचरणशरणं गृहीतव्यं। पुनश्च निजशुद्धपरमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानानुचरणरूपं भेदाभेदरत्नत्रयं आदाय कारणसमयसारबलेन कार्यसमयरूपानंतचतुष्टयं प्रकटीकर्तव्यमिति।

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिजीवानां कालप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना सासादनजीवानां कालनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं। अत्र एकसमयनिरूपणा क्रियते—**

द्वौ वा त्रयो वा एकोत्तरवृद्ध्या यावत् पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा वा उपशमसम्यग्दृष्टयः उपशमसम्यक्त्वकाले एकः समयोऽस्ति इति सासादनगुणस्थानं प्रतिपन्नाः एकसमयं दृष्टाः। द्वितीयसमये सर्वेऽपि मिथ्यात्वं गताः, त्रिष्वपि लोकेषु सासादनानामभावो जातः इति लब्धः एकसमयः नानाजीवापेक्षयापि।

एषामेव नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।६।।

तात्पर्य यह है कि पंचपरिवर्तनस्वरूप संसार की स्थिति को जानकर, संसार के दु:खों से भयभीत होकर, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर पंचमहागुरुओं की शरण लेनी चाहिए। पुनश्च निजशुद्धात्मक स्वरूप परमात्मतत्त्व का श्रद्धान, ज्ञान और आचरणरूप भेदाभेद रत्नत्रय को ग्रहण करके कारणसमयसार के बल से कार्यसमयसाररूप अनंतचतुष्टय को प्रकट करना चाहिए। इस प्रकार द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों के काल प्रतिपादन की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का कालनिरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है-

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक होते हैं।।५।।

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है। यहाँ एक समय का निरूपण किया जा रहा है-

दो अथवा तीन इस प्रकार एक अधिक वृद्धि से बढ़ते हुए पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समयमात्र काल अवशिष्ट रह जाने पर एक साथ सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए एक समय में दिखाई दिये। दूसरे समय में सबके सब मिथ्यात्व को प्राप्त हो गये। उस समय तीनों ही लोकों में सासादनसम्यग्दृष्टियों का अभाव हो गया। इस प्रकार एक समय प्रमाण काल नाना जीवों की अपेक्षा सासादनगुणस्थान का प्राप्त हुआ।

अब नाना जीवों की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रं सुगमं।**

द्वौ वा त्रयो वा एवं एकोत्तर वृद्ध्या यावत् पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा वा उपशमसम्यग्दृष्ट्यः एकसमयमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन षट् आवलिकाः उपशमसम्यक्त्वकाले सन्तीति सासादनत्वं प्रतिपन्नाः। यावत्ते मिथ्यात्वं न गच्छन्ति तावदन्येऽपि अन्येऽपि उपशमसम्यग्दृष्टयः सासादनगुणस्थानं प्रतिपद्यन्ते। एवं ग्रीष्मकालवृक्षछाया इव उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रं कालं जीवैः अशून्यं भूत्वा सासादनगुणस्थानं लभ्यते।

पुनः स कालः कियान्?

स्वकसासादनगुणस्थानवर्तिराशिभ्यः असंख्यातगुणःकालः ज्ञातव्यः। यद्यपि अस्मिन् सूत्रे नास्तीति एतत्कथनं, तथापि एतद्व्याख्यानं सूत्रमिव श्रद्धातव्यं।[1]

अस्मिन्नेव गुणस्थाने एकजीवस्य जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः उपशमसम्यग्दृष्टिः उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशिष्टे सासादन-गुणस्थानं गतः।**

यदि उपशमसम्यक्त्वेऽधिककालोऽवशिष्टो भवेत् तर्हि का हानिः? सासादनगुणस्थानकालस्याधिकत्व-प्रसंगात्। किंच-यावति उपशमसम्यक्त्वेऽवशिष्टे काले जीवः सासादनं प्रतिपद्यते, तावांश्चैव सासादनगुणस्थान-

---

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

दो अथवा तीन, अथवा चार इस प्रकार एक-एक अधिक वृद्धि द्वारा पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समय को आदि करके उत्कर्ष से छह आवलियों प्रमाण उपशमसम्यक्त्व का काल अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होते हैं, तब तक अन्य-अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थान को प्राप्त होते रहते हैं। इस प्रकार से ग्रीष्मकाल के वृक्ष की छाया के समान उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल तक जीवों से अशून्य (परिपूर्ण) होकर सासादनगुणस्थान पाया जाता है।

शंका—तब वह काल कितना है?

समाधान—अपनी, अर्थात् सासादनगुणस्थानवर्ती राशि से असंख्यातगुणा है। यद्यपि इस विषय में कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्र के समान श्रद्धान करने योग्य है।

अब उसी सासादनगुणस्थान में एक जीव का जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि का जघन्यकाल एक समय है।।७।।

हिन्दीटीका—एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ।

शंका—यदि उपशमसम्यक्त्व का काल अधिक हो, तो क्या दोष है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्व का काल अधिक मानने पर सासादनगुणस्थान काल के भी बहुत्व का प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थान का काल अधिक मानना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्व काल के शेष रहने पर जीव सासादनगुणस्थान को प्राप्त होता है, उतना ही

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३४१।

कालो भवति इति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

एवं एकसमयं सासादनेन सह दृष्टः, द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गतः। इत्थं अस्य गुणस्थानस्य एकसमयो लब्धः।

अस्यैव उत्कृष्टेन कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण छ आवलिआओ।।८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उत्कृष्टेन षडावलिकाशेषे सासादनं प्राप्यते, साधिकासु षडावलिकासु शेषासु सासादनगुणस्थानप्राप्त्यभावात्।**

एवं तृतीयस्थले सासादनजघन्योत्कृष्टकालप्ररूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिनानाजीवजघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मोहनीयकर्मणः अष्टाविंशतिकर्मप्रकृतिसत्ताकः मिथ्यादृष्टिः, वेदकसम्यक्त्वसहितअसंयतः, संयतासंयतः, प्रमत्तसंयतः सप्ताष्टजनाः वा आवल्यसंख्यातभागमात्रा वा जीवाः, पल्योपमस्यअसंख्यातभागमात्रा वा परिणामनिमित्तेन सम्यग्मिथ्यात्वं गताः। तत्र सर्वलघुमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा**

सासादनगुणस्थान का काल होता है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेश है।

इस प्रकार से उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थान के साथ अर्थात् उस गुणस्थान में दिखाई दिया और द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार सासादनगुणस्थान का एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय प्रमाण उपलब्ध हुआ।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल छह आवली प्रमाण है।।८।।

हिन्दी टीका—उत्कृष्टरूप से एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियों के शेष रहने पर सासादनगुणस्थान में गया। उस सासादनगुणस्थान में छह आवली रह करके मिथ्यात्व में गया, क्योंकि साधिक छह आवलियों के शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होने का अभाव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के जघन्य और उत्कृष्टकाल का प्ररूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती नाना जीवों का जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं।।९।।

हिन्दी टीका—मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले सात-आठ जन, अथवा आवली के असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र जीव, परिणामों के

मिथ्यात्वं वा असंयमेन सह सम्यक्त्वं व प्रतिपन्नाः, नष्टं सम्यग्मिथ्यात्वं। एवं सम्यग्मिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तकालः सिद्धः।

अप्रमत्तसंयतः सम्यग्मिथ्यात्वं किमिति न गच्छति?

न, तस्य संक्लेशविशुद्धिभ्यां सह प्रमत्तापूर्वकरणगुणस्थाने मुक्त्वा गुणस्थानांतरगमनाभावात्। अप्रमत्तस्य मृतस्यापि असंयतसम्यग्दृष्टिव्यतिरिक्तगुणस्थानांतरगमनाभावात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः जीवः स्वकालं व्यतीत्य पश्चात् संयमं संयमासंयमं वा किं न प्राप्नोति?

न, अयं सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवः मिथ्यात्वसहितो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं सम्यक्त्वसहितः सम्यग्दृष्टिअसंयत-गुणस्थानं मुक्त्वा अन्यस्मिन् गुणस्थाने न गच्छति।

कथं न गच्छति?

स्वभावादेव, न हि स्वभावः परपर्यनुयोगार्हो, विरोधात्।

एषामेव उत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**पूर्वोक्तजीवाः सम्यग्मिथ्यात्वं गत्वा तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा यावत्ते मिथ्यात्वं असंयमसहितसम्यक्त्वं वा न प्रतिपद्यन्ते, तावदन्येऽपि अन्येऽपि पूर्वोक्तजीवाः सम्यग्मिथ्यात्वं प्रापयितव्याः**

निमित्त से सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त हुए। वहाँ पर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण रह करके मिथ्यात्व को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ।

शंका—यहाँ पर अप्रमत्तसंयत जीव को सम्यग्मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि अप्रमत्तसंयत जीव के संक्लेश की वृद्धि हो, तो प्रमत्तसंयत गुणस्थान को और यदि विशुद्धि की वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थान में गमन का अभाव है। यदि अप्रमत्तसंयत जीव का मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थानों में गमन नहीं होता है।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा करके पीछे के संयम को अथवा संयमासंयम को क्यों नहीं प्राप्त करते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्यात्व सहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को अथवा सम्यक्त्वसहित असंयतगुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थानों में गमन का अभाव है।

शंका—अन्य गुणस्थानों में नहीं जाने का क्या कारण है?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है और स्वभाव दूसरे के प्रश्न के योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

अब उन्हीं तृतीय गुणस्थानवर्ती जीवों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

नाना जीवों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।१०।।

हिन्दी टीका—पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होकर और वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर जब तक वे मिथ्यात्व को अथवा असंयमसहित सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य-

यावत् सर्वोत्कृष्टो नानाजीवापेक्षया पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालो जातः इति। स पुनः कालः स्वराशिभ्यः असंख्यातगुणः। पश्चात् नियमेन अंतरो भवति।

एकजीवापेक्षया अस्य कालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**एकः मिथ्यादृष्टिः विशुद्ध्यमानः सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। सर्वलघु अंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा विशुद्ध्यमानश्चैव सासंयमं सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः।**

संक्लेशपरिणामेन असौ मिथ्यात्वं किं न गतः?

न, विशुद्धेः सर्वकालपर्यंतं स्वगुणस्थाने स्थित्वा संक्लेशेन मिथ्यात्वं गम्यमान सम्यग्मिथ्यात्वकालस्य बहुत्वप्रसंगात्। अतः वृद्धिंगतविशुद्धिसहितसम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवः मिथ्यात्वं न गच्छति। अथवा वेदकसम्यग्दृष्टिः संक्लिश्यमानः सम्यग्मिथ्यात्वं गतः, सर्वलघु अंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा अविनष्ट संक्लेशः मिथ्यात्वं गतः। एवं द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां सम्यग्मिथ्यात्वस्य जघन्यकालप्ररूपणा गता।

अधुना उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१२।।

अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त कराते जाना चाहिए, जब तक कि सर्वोत्कृष्ट नाना जीवों की अपेक्षा रखने वाला पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग मात्र काल पूरा हो। वह काल अपने गुणस्थानवर्ती जीवराशि से असंख्यातगुणा होता है। उसके पश्चात् नियम से अन्तर हो जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा उसका काल निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।११।।

हिन्दी टीका—एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर विशुद्ध होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ।

शंका—संक्लेश को पूरित करके अर्थात् संक्लेशपरिणामी होकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त हुआ?

समाधान—नहीं क्योंकि, विशुद्धि के संपूर्णकाल तक अपने गुणस्थान में रह करके और संक्लेश धारण करके मिथ्यात्व को जाने वाले जीव के सम्यग्मिथ्यात्व संबंधी काल के बहुत का प्रसंग हो जायेगा। अर्थात् इसका कारण यह है कि एक भी विशुद्धि के काल से संक्लेश और विशुद्धि इन दोनों का ही काल, दोनों के अन्तराल में स्थित प्रतिभाग कालसहित निश्चय से संख्यातगुणा होता है, इस प्रकार के अभिप्राय से वह वर्धमान विशुद्धि वाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त करता है। अथवा संक्लेश को प्राप्त होने वाला वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्लेशी हुआ ही मिथ्यात्व को चला गया। इस तरह दो प्रकारों से सम्यग्मिथ्यात्व के जघन्यकाल की प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब उपर्युक्त जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एक जीवापेक्षया उत्कृष्टेन तृतीयगुणस्थानस्य कालः अंतर्मुहूर्तमेव। एकः विशुद्ध्यमानः मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यात्वं गतः, सर्वोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा संक्लिष्टो भूत्वा मिथ्यात्वं गतः। पूर्वोक्तजघन्यकालात् एष उत्कृष्टकालः संख्यातगुणः, सर्वोत्कृष्टत्रिकालसमूहत्वात्। अथवा वेदकसम्यग्दृष्टिः संक्लिश्यमाणः सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा असंयतसम्यग्दृष्टिर्जातः। अत्रापि कारणं पूर्ववत् वक्तव्यं।**

एवं चतुर्थस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टिकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना असंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**अतीतानागतवर्तमानकालेषु असंयतसम्यग्दृष्टीनां व्युच्छेदो नास्ति।**

कुतः?

स्वभावात्।

एकजीवापेक्षया कालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अभिप्राय यह है कि एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टरूप से तृतीय गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त ही है।

एक विशुद्धि को प्राप्त होता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और संक्लेशयुक्त हो करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पहले बतलाये गये इसी गुणस्थान के जघन्यकाल से यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है, क्योंकि, वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकाल के समूहात्मक है। अथवा संक्लेश को प्राप्त होने वाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। यहाँ पर भी कारण पूर्व के समान ही कहना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१३।।

हिन्दी टीका—अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का व्युच्छेद नहीं है।

शंका—यह व्युच्छेद क्यों नहीं होता?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अष्टाविंशतिमोहकर्मप्रकृतिसत्त्वसहितमिथ्यादृष्टिर्वासम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा संयतासंयतो वा प्रमत्तसंयतो वा पूर्वं असंयमसहितसम्यक्त्वे बहुवारं परिवर्तमानः असंयतसम्यग्दृष्टिर्जातः। सर्वलघु अंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा मिथ्यात्वं वा सम्यग्मिथ्यात्वं वा संयमासंयमं वा अप्रमत्तभावेन संयमं वा प्रतिपन्नः। उपरिमगुणस्थानेभ्यः संक्लेशेन ये असंयतसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः, ते अविनष्टेन तेन संक्लेशेन सह मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा नेतव्याः। ये अधस्तनगुणस्थानेभ्यः विशुद्ध्या सासंयमं सम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः, ते चैव तदविनष्टविशुद्ध्या सह संयमासंयमं अप्रमत्तभावेन संयमं वा नेतव्याः, अन्यथा जघन्यकालानुपपत्तेः।**

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा चतुर्णामुपशामकानामेकतरो वा समयोन-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु अनुत्तरविमानवासिदेवेषु उपपन्नः। एवं असंयमसहितसम्यक्त्वस्य आदिर्जातः। ततः च्युत्वा पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। तत्र असंयतसम्यग्दृष्टिः भूत्वा तावत् स्थितः यावत् अंतर्मुहूर्तमात्रायुष्कं शेषमिति।**

ततोऽप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपन्नः (१)। ततः प्रमत्ताप्रमत्तसहस्रपरावर्तं कृत्वा (२) क्षपकश्रेणिप्रायोग्य-विशुद्ध्या विशुद्धः अप्रमत्तो जातः (३)। अपूर्वक्षपकः (४) अनिवृत्तिक्षपकः (५) सूक्ष्मसांपरायक्षपकः (६) क्षीणकषायः (७) सयोगी (८) अयोगी (९) भूत्वा सिद्धो जातः। एतैः नवभिः अंतर्मुहूर्तैः

हिन्दी टीका—जिसने पहले असंयतसहित सम्यक्त्व में बहुत बार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला मिथ्यादृष्टि जीव अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ फिर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा संयमासंयम अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। ऊपर के गुणस्थानों से संक्लेश के साथ जो असंयतसम्यक्त्व को प्राप्त हुए हैं उन जीवों को उसी अविनष्टसंक्लेश के साथ मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त कराना चाहिए। जो अधस्तन गुणस्थानों से विशुद्धि के साथ असंयमसहित सम्यक्त्व को प्राप्त हुए हैं, उन जीवों को उसी अविनष्ट विशुद्धि के साथ संयमासंयम को अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को ले जाना चाहिए अन्यथा असंयतसम्यक्त्व का जघन्यकाल नहीं बन सकता है।

अब एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्टकाल सातिरेक तेतीस सागरोपम है।।१५।।

हिन्दी टीका—एक प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत अथवा चारों उपशामकों में से कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयु कर्म की स्थिति वाले अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न हुआ और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्व की आदि हुई। इसके पश्चात् वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु के शेष रह जाने तक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा। तत्पश्चात् अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में सहस्रों परिवर्तन करके (२), क्षपकश्रेणी के प्रायोग्य विशुद्धि से विशुद्ध अप्रमत्त हुआ (३), पुनः अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिवृत्तिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्परायक्षपक (६), क्षीणकषायवीतराग-

ऊनपूर्वकोटिकालेन अतिरिक्तानि समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालो भवति।

समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु किमर्थं उत्पादितः?

न, अन्यथा असंयतकालस्य दीर्घत्वानुपलंभात्।

कुतः?

यदि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पादयिष्यति, तर्हि वर्ष पृथक्त्वावशेषे आयुषि निश्चयेन संयमं प्रतिपद्यते। किन्तु यः पुनः समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः स्थितिकेषु देवेषु उत्पद्य मनुष्येषु उत्पन्नः, स अंतर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिकालं असंयमेन सह स्थित्वा पुनः निश्चयेन संयतो भवति, तेनैव समयोनत्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पादितः।

एवं पंचमस्थले असंयतसम्यग्दृष्टिजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना संयतासंयतकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१६।।

सूत्रं सुगमं।

एक जीवापेक्षया कालप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

छद्मस्थ (७), सयोगिकेवली (८), और अयोगिकेवली (९), होकर के सिद्ध हो गया। इन नौ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि काल से अधिक तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल होता है।

शंका—उक्त जीव को एक समय कम तेतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले देवों में ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है?

समाधान—नहीं, अन्यथा अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में यदि उत्पन्न न कराया जाये, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के काल में दीर्घता नहीं पाई जा सकती है।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न कराया जायेगा तो वर्षपृथक्त्व प्रमाण आयु के अवशेष रहने पर निश्चय से वह संयम को प्राप्त हो जायेगा। किन्तु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर मनुष्यों में उत्पन्न होगा वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असंयम के साथ रहकर पुनः निश्चय से संयत होगा। इसलिए एक समय कम तेतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले अनुत्तरविमानवासी देवों में उत्पन्न कराया गया है।

इस प्रकार पंचमस्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल प्रतिपादित करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१६।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

एकजीवं पडुच्च जहण्णेणंतोमुहुत्तं।।१७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः अष्टाविंशतिकर्मप्रकृतिसत्त्वसहितमिथ्यादृष्टिः, असंयतसम्यग्दृष्टिः प्रमत्तसंयतो वा पूर्वमपि बहुशः संयमासंयमगुणस्थाने परिवर्तनं कृत्वा पुनः परिणामप्रत्ययेन संयमासंयमं प्रतिपन्नः। सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा प्रमत्तसंयतचरः मिथ्यात्वं वा सम्यग्मिथ्यात्वं वा असंयतसम्यक्त्वं वा प्रतिपन्नः। अथवा ते यदि संयतासंयतात्पूर्वं मिथ्यादृष्टयः असंयतसम्यग्दृष्टयो वा आसन्, तर्हि अप्रमत्तभावेन सह संयमं प्राप्नुवन्ति।**

कुतः?

अन्यथा संयतासंयतकालस्य जघन्यत्वानुपपत्तेः।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः संयमासंयमगुणस्थानं कथं न नीतः?

न, तस्य देशविरतिपर्यायेण परिणमनशक्त्या असंभवात्।

उक्तं च—

ण य मरइ णेव संजम-मुवेइ तह देस संजमं वावि।
सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ।।

संप्रति संयतासंयतस्य उत्कृष्टकालप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१८।।

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा संयतासंयत का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१७।।

हिन्दी टीका—कोई एक मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा प्रमत्तसंयत जीव जिसने पूर्व में भी कई बार संयमासंयम गुणस्थान में परिवर्तन किया है पुनः परिणामों के निमित्त से संयमासंयम गुणस्थान को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है अर्थात् प्रमत्तसंयतगुणस्थान से संयतासंयत गुणस्थान को प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा असंयतसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। अथवा यदि वे संयतासंयत होने के पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न— क्यों?

उत्तर— क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाये तो संयतासंयत गुणस्थान का जघन्यकाल नहीं बन सकता।

शंका— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थान को किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया?

समाधान— नहीं, क्योंकि देशविरतिरूप पर्याय से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के परिणमन की शक्ति का होना असंभव है। कहा भी है—

गाथार्थ— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयम को प्राप्त होता है, न देशसंयम को भी प्राप्त होता है तथा उसके मारणान्तिकसमुद्घात भी नहीं होता है।

अब संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीव का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।।१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वयुतः मिथ्यादृष्टिः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्संमूर्छिमपर्याप्तेषु मत्स्य-कच्छप-मंडूकादिषु उत्पन्नः। सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तकालेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको जातः (१)। विश्रान्तः (२) विशुद्धो (३) भूत्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः। पूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतः, सौधर्मादि-आरणाच्युतान्तेषु देवेषु उत्पन्नः। नष्टः संयमासंयमः। एवं आदित्रि-अंतर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणं संयमासंयमकालो भवति।**

एवं संयतासंयतजीवानां जघन्योत्कृष्टकालकथनपराणि त्रिसूत्राणि गतानि।

प्रमत्ताप्रमत्तयोः नानाजीवापेक्षया कालकथनाय सूत्रमवतरति—

पमत्त-अपमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—प्रमत्ताप्रमत्तसंयतैः विरहितः एकोऽपि समयो नास्तीति ज्ञातव्यं।

एकजीवस्य जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**प्रमत्तस्य तावदेकसमयः उच्यते। एको अप्रमत्तोऽप्रमत्तकाले क्षीणे एकसमयं**

हिन्दी टीका—एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक ऐसे संमूर्च्छन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मेंढक आदि में उत्पन्न हुआ, सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ (१)। पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयम को पालन करके मरा और सौधर्मकल्प आदि से आरण अच्युतपर्यन्त कल्पों के देवों में उत्पन्न हुआ। तब संयमासंयम नष्ट हो गया। इस प्रकार आदि के तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयम का काल होता है।

इस प्रकार संयतासंयत जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनियों के नाना जीवों की अपेक्षा काल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१९।।

हिन्दी टीका—प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत मुनियों से रहित एक भी समय नहीं है ऐसा जानना चाहिए। अर्थात् तीनों ही कालों में छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती महामुनियों का सद्भाव पाया जाता है, अतः उनसे विरहित एक भी समय नहीं रहता है, वे सर्वकाल होते हैं यही इस सूत्र का अभिप्राय है।

अब उपर्युक्त एक जीव का जघन्यकाल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत का जघन्यकाल एक समय है।।२०।।

हिन्दी टीका—यहाँ सर्वप्रथम प्रमत्तसंयत का एक समय कहते हैं। एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकाल

जीवितमस्तीति प्रमत्तो जातः। प्रमत्तगुणस्थानेन एकसमयं स्थितः द्वितीयसमये मृतो देवो जातः, नष्टः प्रमादविशिष्टसंयमः। एवं प्रमत्तस्य एकसमयप्ररूपणा गता। एवमेव एकः प्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानकाले क्षीणे सति एकसमयं जीवितमस्तीति अप्रमत्तो जातः, अप्रमत्तगुणस्थानेन एकसमयं स्थितः द्वितीयसमये मृतो देवो जातः, नष्टमप्रमत्तगुणस्थानं। अथवा उपशमश्रेण्याः अवतरन् अपूर्वकरणः एकसमयं जीवितमस्तीति अप्रमत्तो जातः, द्वितीयसमये मृतः देवेषु उत्पन्नः। एवं द्विप्रकाराभ्यां अप्रमत्तस्य एकसमयप्ररूपणाकृता।

अनयोः एव उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः अप्रमत्तः प्रमत्तपर्यायेण परिणम्य सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः। तथैव एकः प्रमत्तमुनिः अप्रमत्तो भूत्वा सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा प्रमत्तो जातः। एवं प्रमत्ताप्रमत्त-योरुत्कृष्टकालप्ररूपणा कथिता।**

एवं प्रमत्ताप्रमत्तसाधूनां जघन्योत्कृष्टकालकथनेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति चतुरुपशामकानां नानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतार्यते—

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एकसमयं।।२२।।

के क्षीण हो जाने पर तथा एक समय मात्र जीवित रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। प्रमत्तगुणस्थान के साथ एक समय रहा और दूसरे समय में मरकर देव हो गया। तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया। इस प्रकार से प्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा हुई। उसी प्रकार एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्त गुणस्थानकाल के क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवन के शेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। तब अप्रमत्तगुणस्थान के साथ एक समय रहा और दूसरे समय में मरकर देव हो गया। पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया। अथवा उपशमश्रेणी से उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समय मात्र जीवन के शेष रहने पर अप्रमत्त हुआ और द्वितीय समय में मरकर देवों में उत्पन्न हो गया। इस तरह दोनों प्रकारों से अप्रमत्तसंयत के साथ एक समय की प्ररूपणा की गई।

अब दोनों गुणस्थानवर्तियों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।२१।।

हिन्दी टीका—एक अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत पर्याय से परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण रह करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार एक प्रमत्तसंयत मुनि अप्रमत्तसंयत होकर वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत के उत्कृष्ट काल की प्ररूपणा कही गई है।

अब उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले चार गुणस्थानवर्ती उपशामक अनेकानेक महामुनियों का काल प्ररूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

चारों उपशम जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।२२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **उपमशमश्रेण्याः अवतरन्तः द्वौ वा त्रयो वा अनिवृत्तिकरणोपशामकाः एकसमयमात्रजीवनशेषे सति अपूर्वकरणोपशामकाः जाताः। एकसमयमपूर्वकरणेन सह दृष्टा द्वितीयसमये मृता देवा जाताः। एवं अपूर्वकरणस्य एकसमयप्ररूपणा कृता।**

प्रमत्तमपूर्वकरणं कृत्वा द्वितीयसमये कालं कारयित्वा अपूर्वकरणस्यैक समयप्ररूपणा किं न कृता?

न, अपूर्वकरणप्रथमसमयात् यावत् निद्राप्रचलाप्रकृत्योः बन्धव्युच्छेदो न भवेत्तावत् अपूर्वकरण-गुणस्थानवर्तिनां मरणाभावात्। एवं त्रयाणां उपशामकानां एकसमयप्ररूपणा नानाजीवानाश्रित्य कर्तव्या। विशेषेण तु — अनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशामकानां आरुह्यमाणावरुह्यमाणजीवान् आश्रित्य द्विप्रकाराभ्यां एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या। उपशान्तकषायस्य च आरुह्यमाणजीवान् आश्रित्य एकसमयप्ररूपणा विधातव्या।

एषामेवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति —

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **सप्त अष्टप्रभृति चतुःपंचाशत् वा अप्रमत्ताः अपूर्वकरणोपशामका जाताः यावत्ते अनिवृत्तिगुणस्थानं न प्राप्नुवन्ति तावदन्येऽपि अन्येऽपि अप्रमत्ताः अपूर्वकरणगुणस्थानं प्रापयितव्याः। एवं अवतीर्यमाणानिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनोऽपि अपूर्वकरणं प्रापयितव्याः। एवं आरुह्यमाणावरुह्यमाणजीवैः परिपूर्णं भूत्वा अपूर्वकरणगुणस्थानं तिष्ठति यावत् तत्प्रायोग्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तमिति। ततः निश्चयेन विरहः।**

हिन्दी टीका — उपशमश्रेणी से उतरने वाले दो अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन के शेष रहने पर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थान के साथ दिखें पुनः द्वितीय समय में मरे और देव हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामक के एक समय की प्ररूपणा की है।

शंका — अप्रमत्तसंयत को अपूर्वकरणगुणस्थान में ले जा करके और द्वितीय समय में मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थान के एक समय की प्ररूपणा क्यों नहीं की?

समाधान — इसलिए नहीं की है कि अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती संयतों का मरण नहीं होता है।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा नाना जीवों का आश्रय करके करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवों के एक समय की प्ररूपणा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवों को आश्रय करके दोनों प्रकारों से करना चाहिए। किन्तु उपशान्तकषाय उपशामक के एक समय की प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवों को ही आश्रय करके करना चाहिए।

अब उन्हीं उपशामकों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

चारों उपशामकों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।२३।।

हिन्दी टीका — सात-आठ से लेकर चौवन तक अप्रमत्तसंयत जीव एक साथ अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक अनिवृत्तिकरणगुणस्थान को नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य-अन्य भी अप्रमत्तसंयत मुनि को अपूर्वकरणगुणस्थान को प्राप्त कराना चाहिए। इसी प्रकार से उपशमश्रेणी से उतरने वाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशामक को भी अपूर्वकरणगुणस्थान को प्राप्त कराना चाहिए। इस प्रकार

एवमेव त्रयाणामुपशामकानामुत्कृष्टकालप्ररूपणा कर्तव्या। विशेषेण तु—उपशान्तकषायस्योत्कृष्टकाले भण्यमाने एकः उपशान्तकषायः आरूह्य यावत् नावतरति तावदन्ये सूक्ष्मसांपरायिकाः उपशान्तकषायगुणस्थानं आरोहयितव्याः। एवं पुनः पुनः संख्यातवारं आरोहणं कारयित्वा उपशान्तकालः वर्धयितव्यः यावत् तत्प्रायोग्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तं प्राप्तः इति।

एषामेव उपशामकानां एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः अनिवृत्त्युपशामकः एकसमयं जीवितमस्ति इति अपूर्वोपशामकः जातः एकसमयं दृष्टः द्वितीयसमये मृतः उत्तमोऽनुत्तरविमानवासी देवो जातः। एवं त्रयाणामुपशामकानामेक-समयप्ररूपणा वक्तव्या। केवलं तु-अनिवृत्ति-सूक्ष्तसांपरायोपशामकयोः आरोहणावरोहणविधानाभ्यां द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां, आरोहणमाश्रित्य उपशान्तकषायस्य एकप्रकारेण एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।**

एषामेवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकोऽप्रमत्तोऽपूर्वकरणोपशामको जातः। तत्र सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा**

चढ़ते और उतरते हुए जीवों से अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा होने तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चय से विरह (अन्तराल) हो जाता है। इसी प्रकार से तीनों ही उपशामकों के उत्कृष्टकाल की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामक के उत्कृष्टकाल को कहने पर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य-अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत को उपशान्तकषायगुणस्थान में चढ़ाना चाहिए। इस प्रकार से पुनः-पुनः संख्यातबार जीवों को चढ़ाकर उपशान्तकाल के योग्य अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए, यही सूत्र का अभिप्राय है।

अब उन्हीं उपशामकों में एक उपशामक मुनि का जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा चारों उपशामकों का जघन्यकाल एक समय है।।२४।।

हिन्दी टीका—एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिखा और द्वितीय समय में मरण को प्राप्त हुआ तथा उत्तम अनुत्तरविमानवासी देव हो गया। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकों के चढ़ने और उतरने के विधान की अपेक्षा दोनों प्रकारों से तथा आरोहण का आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामक की एक प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

अब इन्हीं उपशामक जीव का ही उत्कृष्ट काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा चारों उपशामकों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२५।।

हिन्दी टीका—एक अप्रमत्तसंयत मुनि अपूर्वकरण गुणस्थान में पहुँचकर उपशामक हुआ। वहाँ पर

अनिवृत्तिगुणस्थानं प्रतिपन्नः। एवं त्रयाणामुपशामकानां वक्तव्यं।

एवं अष्टमस्थले उपशमश्रेण्यारोहकानां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

संप्रति चतुःक्षपकानां अयोगिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रावतारो भवति—

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्त अष्टौ जनाः अष्टोत्तरशतजनाः वा अप्रमत्ताः अप्रमत्तकाले क्षीणे अपूर्वकरणक्षपकाः जाताः। अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अनिवृत्तिगुणस्थानं गता। एवं चैव चतुर्णां क्षपकानां ज्ञात्वा कथयितव्यं।**

एषामेव उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सप्ताष्टौ जना वा बहुकाः वा अप्रमत्तसंयताः अपूर्वक्षपका जाताः। ते तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अनिवृत्तिकरणा जाताः। तस्मिंश्चैव समये अन्येऽप्रमत्ताः अपूर्वकरणक्षपकाः जाताः। एवं पुनः पुनः संख्यातवारं आरोहणक्रियायां कृतायां नानाजीवानाश्रित्य अपूर्वकरणोत्कृष्टकालो भवति। एवमेव चतुर्णां क्षपकानां ज्ञात्वा वक्तव्यं।**

सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार से तीनों उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा कहना चाहिए।

इस प्रकार आठवें स्थल में उपशम श्रेणी चढ़ने वाले महामुनियों का जघन्य और उत्कृष्टकाल निरूपित करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब चारों गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले महामुनियों तथा अयोगिकेवली भगवन्तों का नाना जीव की अपेक्षा जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं।।२६।।

हिन्दी टीका—सात-आठ जीव अथवा अधिक से अधिक एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकाल के क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुए। इसी प्रकार से अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली इन चारों क्षपकों के जघन्य काल की प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

चारों क्षपकों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।२७।।

हिन्दी टीका—सात-आठ जीव अथवा बहुत से अप्रमत्तसंयत मुनि अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए। वे वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये। उसी ही समय में अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकार पुनः पुनः संख्यातबार आरोहणक्रिया के करने पर नाना जीवों का आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपक का उत्कृष्ट काल होता है। इसी प्रकार से चारों क्षपकों का काल जान करके कहना चाहिए।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका–**एकोऽप्रमत्तोऽपूर्वकरणः क्षपकः जातः, अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अनिवृत्तिक्षपकः जातः। एवमेव चतुःक्षपकानां जघन्य कालप्ररूपणा कर्तव्या।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२९।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**एकोऽप्रमत्तः अपूर्वक्षपकः जातः। तत्र सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अनिवृत्तिगुणस्थानं प्रतिपन्नः। एकजीवमाश्रित्य अपूर्वकरण उत्कृष्टकालो जातः। एवमेव चतुःक्षपकानां ज्ञात्वा वक्तव्यं। अत्र जघन्योत्कृष्टकालौ द्वावपि सदृशौ, अपूर्वकरणादिपरिणामानामनुकृष्टेः अभावात्।**

एवं नवमस्थले चतुःक्षपकानां जघन्योत्कृष्टकालकथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना सयोगिनां नानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३०।।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा चारों क्षपकों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२८।।

हिन्दी टीका—एक अप्रमत्तसंयत मुनि अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ। इसी प्रकार से चारों क्षपकों के जघन्यकाल की प्ररूपणा करना चाहिए।

अब उत्कृष्ट काल का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा चारों क्षपकों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।२९।।

हिन्दी टीका—एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुआ। यह एक जीव को आश्रय करके अपूर्वकरण का उत्कृष्ट काल हुआ। इसी प्रकार से चारों क्षपकों का काल जान करके कहना चाहिए। यहाँ पर जघन्य और उत्कृष्ट ये दोनों ही काल सदृश हैं, क्योंकि अपूर्वकरण आदि के परिणामों की अनुकृष्टि का अभाव होता है।

इस प्रकार नवमें स्थल में चारों क्षपक श्रेणी वाले महामुनियों का जघन्य और उत्कृष्ट काल का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का नाना जीवों की अपेक्षा काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **त्रिष्वपि कालेषु येन एकोऽपि समयः सयोगिविरहितः नास्ति, तेन सर्वकालत्वं युज्यते।**

एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतार्यते —

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **एकः क्षीणकषायः सयोगी भूत्वा अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा समुद्घातं कृत्वा पश्चात् योगनिरोधं कृत्वा अयोगी जातः। एवं सयोगिनः जघन्यकालप्ररूपणा एकजीवमाश्रित्य गता।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — **एकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः देवो वा नारको वा पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। सप्तमासे गर्भे स्थित्वा गर्भप्रवेशनजन्मना अष्टवार्षिको जातः। अप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपन्नः (१)। पुनः प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वां (२) अप्रमत्तस्थाने अधः प्रवृत्तकरणं कृत्वा (३) अपूर्वकरणः (४) अनिवृत्तिकरणः (५) सूक्ष्मक्षपकः (६) क्षीणकषायः (७) भूत्वा सयोगी जातः। अष्टवर्षैः सप्तभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनपूर्वकोटिकालं विहरमाणः अयोगी जातः (८)। एवं अष्टभिः वर्षैः अष्टभिरन्तर्मुहूर्तैश्च ऊनपूर्वकोटिप्रमाणं सयोगिकेवलिकालं भवति।**

हिन्दी टीका — चूँकि तीनों ही कालों में एक भी समय सयोगिकेवली भगवान् से विरहित नहीं है, इसलिए सर्वकालपना बन जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३१।।

हिन्दी टीका — एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संयत मुनि सयोगिकेवली होकर अन्तर्मुहूर्त काल रहकर समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ। इस प्रकार सयोगिजिन के जघन्य काल की प्ररूपणा एक जीव का आश्रय करके कही गई है।

अब उत्कृष्ट काल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्व कोटि है।।३२।।

हिन्दी टीका — एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। सात मास गर्भ में रह करके गर्भ में प्रवेश करने वाले जन्म दिन से आठ वर्ष का हुआ, आठ वर्ष का होने पर अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (२), अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अधःप्रवृत्तकरण को करके (३), क्रमशः अपूर्वकरण (४), अनिवृत्तिकरण (५), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ होकर (७), सयोगिकेवली हुआ। पुनः वहाँ पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी काल प्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८), इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयोगिकेवली का काल होता है।

तात्पर्यमेतत्—सयोगिकेवलिनां भगवतां यः कालः स एव महिमावान् एतज्ज्ञात्वा मिथ्यात्वासंयम-कषायादिकालं परिहृत्य स्वात्मनि स्थिरीभवितुं प्रयत्नो विधेयः। तथा च श्रीशुभचन्द्राचार्यवाक्यं प्रत्यहं स्मर्तव्यं—

''क्षणिकत्वं वदन्त्यार्या घटीघातेन भूभृताम्।
क्रियतामात्मनः श्रेयः गतेयं नागमिष्यति[१]।।

किञ्च—यत्कालो व्यतीतः, स त्रैलोक्यसम्पद्भिरपि न प्रत्यागच्छति, इत्थं अमूल्यं कालं विज्ञाय एकापि कालस्य कलिका प्रमादेन न गमयितव्या।

एवं दशमस्थले सयोगिभगवतां नानाजीवैकजीवापेक्षया च जघन्योत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे श्रीभूतबलि-सूरिविरचिते कालानुगमनाम्नि पंचमप्रकरणे धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विंशति-शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ति श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरः तस्याशिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां गुणस्थानेषु कालानुगम-प्ररूपकः तृतीयो महाधिकारः समाप्तः।

तात्पर्य यह है कि सयोगिकेवली भगवन्तों का जो काल है उसकी अचिन्त्य महिमा है ऐसा जानकर मिथ्यात्व, असंयम, कषाय आदि काल को (नष्ट) समाप्त करके अपनी शुद्ध आत्मा में स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिए तथा श्रीशुभचन्द्राचार्य के ये वाक्य प्रतिक्षण स्मरण करना चाहिए।

श्लोकार्थ—राजाओं के यहाँ जो घंटा बजता है, वह कहता है कि हे आर्यों! समय क्षणिक है। अतः शीघ्र ही आत्मा का कल्याण करो, क्योंकि बीती हुई काल की कला वापस नहीं आएगी।

अर्थात् जो काल बीत गया है, वह तीनों लोकों की सम्पत्ति देने पर भी पुनः वापस नहीं प्राप्त हो सकता है इस प्रकार समय की अमूल्यता जानकर काल-समय की एक भी घड़ी (पल) प्रमाद में व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

इस प्रकार दशवें स्थल में सयोगिकेवली भगवन्तों के नाना जीवों की अपेक्षा और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्टकाल का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत और भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड के चतुर्थ ग्रंथ में श्रीभूतबली आचार्य विरचित कालानुगम नाम के पंचम प्रकरण में धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्त चिंतामणि टीका में गुणस्थानों में कालानुगम का प्ररूपण करने वाला तृतीय महाधिकार पूर्ण हुआ।

---

१. ज्ञानार्णव।

अथ चतुर्थोमहाधिकार:

मंगलाचरणं

उपजातिछंद—

सिद्धिप्रदाः षोडशभावना याः, तीर्थंकरैः प्राक् खलु भवितास्ताः।
प्रवर्तयन्ते भुवि धर्मतीर्थं, तास्तांश्च नित्यं प्रणुमः स्वसिद्ध्यै।।१।।

अथ स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धगतिविरहित-चतुर्गतिप्रतिपादकः चतुःसप्तति सूत्रैः कालानुगमे चतुर्थो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र शारीरिक-मानसिक-आगन्तुक-दुःखपराकाष्ठालक्षणनरकगतिनामान्तराधिकारे षड्भिरन्तरस्थलैः चतुर्दशसूत्रैः व्याख्यानं क्रियते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येन नारकमिथ्या-दृष्टिकालप्रतिपादनत्वेन ''आदेसेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सासादनमिश्रनारक-कालकथनमुख्यत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु तृतीयस्थले असंयतनारकाणां कालप्रतिपादनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले पृथिवीसप्तसु मिथ्यादृष्टिनारकाणां कालनिरूपणत्वेन ''पढमाए'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले आसामेव पृथिवीनां सासादनमिश्रगुणस्थानकालप्ररूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं षष्ठस्थले सर्वासु पृथिवीषु असंयतनारकाणां सम्यक्त्वकालप्ररूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अथ चतुर्थ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—सिद्धि पद को प्रदान करने वाली सोलहकारण भावनाएं हैं, इन भावनाओं को तीर्थंकर भगवान् पूर्व जन्म में भावित करके तीर्थंकर अवस्था में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। ऐसी उन सोलहकारण भावनाओं को तथा उनकी भावना भाने वाले तीर्थंकर भगवन्तों को हम स्वात्मा की सिद्धि के लिए नमस्कार करते हैं।।१।।

स्वात्मा की उपलब्धि लक्षण वाली सिद्धगति से विरहित चतुर्गति का प्रतिपादन करने वाला चौहत्तर (७४) सूत्रों के द्वारा कालानुगम नाम का चतुर्थ महाधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से जहाँ शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक आदि दुःख पराकाष्ठा–चरमसीमा को प्राप्त हैं ऐसी नरक गति नाम के प्रथम अन्तराधिकार में छह अन्तर्स्थलों के द्वारा चौदह सूत्रों में व्याख्यान करेंगे। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु "आदेसेण" इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती नारकियों का काल बतलाने वाला "सासण" इत्यादि एक सूत्र है। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का काल कथन करने हेतु "असंजद" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में सात नरकपृथिवियों में मिथ्यादृष्टि नारकियों का काल निरूपण करने वाले "पढमाए" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में इन्हीं सातों नरक पृथिवियों के नारकियों का सासादन और मिश्रगुणस्थान में काल का प्ररूपण करने वाला "सासण" इत्यादि एक सूत्र है। उसके आगे छठे स्थल में सभी पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का सम्यक्त्वकाल प्ररूपण करने की मुख्यता वाले "असंजद" इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अधुना मार्गणायां तावन्नरकगतौ मिथ्यादृष्टिकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३३।।

नरकगतौ सर्वकालं मिथ्यादृष्टिव्युच्छेदाभावात्।

एकजीवापेक्षया सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—

एकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा पूर्वमपि बहुवारान् मिथ्यात्वपरिणतः संक्लेशं पूरयित्वा मिथ्यादृष्टिर्जातः। सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा प्रतिपन्नः। एवं मिथ्यादृष्टेर्जघन्यकालः गतः।

उत्कृष्टकालापेक्षया सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।।३५।।

एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा सप्तमपृथिव्यां उत्पन्नः। तत्र मिथ्यात्वेन सह त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि स्थित्वा नरकान्निर्गतः।

अब मार्गणा के अन्तर्गत सर्वप्रथम नरकगति में मिथ्यादृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आदेश की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३३।।

हिन्दी टीका—नरकगति में सर्वकाल मिथ्यादृष्टि जीवों के व्युच्छेद का अभाव पाया जाता है। अर्थात् वहाँ मिथ्यादृष्टि जीवों का सद्भाव सदैव पाया जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा कथन करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३४।।

हिन्दी टीका—एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव जो कि पहले भी बहुत बार मिथ्यात्व को परिणत हो चुका है, संक्लेश को पूरित करके मिथ्यादृष्टि हो गया। वहाँ पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रहकर, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से मिथ्यादृष्टि के जघन्यकाल की प्ररूपणा हुई।

अब उत्कृष्टकाल की अपेक्षा सूत्र अवतरित किया जाता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल तेंतीस सागरोपम है।।३५।।

हिन्दी टीका—एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर मिथ्यात्व के साथ

लब्धोऽत्रोत्कृष्टकालः। एवं प्रथमस्थले सामान्यनारकमिथ्यादृष्टिकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति नारकसासादन-मिश्रकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।३६।।

एतयोः कालप्ररूपणा गुणस्थानवत् ज्ञातव्या।

एवं द्वितीयस्थले सासादनमिश्रनारककालकथनेन एकं सूत्रं गतं।

नारकासंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३७।।

नरकगतौ असंयतसम्यग्दृष्टिविरहितकालाभावात्।

एकजीवापेक्षया कालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३८।।

यः कश्चित् पूर्वं बहुवारं सम्यक्त्वे परिवर्तनं कृत्वा स एव जीवः पुनः मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा

तेंतीस सागरोपम काल रहकर बाहर निकला। इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टि के तेंतीस सागरोपम उत्कृष्ट काल उपलब्ध हुआ।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य नारकियों का मिथ्यात्वकाल कथन करने की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती नारकियों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों का एक और नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघ के समान है।।३६।।

हिन्दी—इन दोनों गुणस्थानवर्ती नारकियों की कालप्ररूपणा गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती नारकियों का काल बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों में नाना जीवों की अपेक्षा काल का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है।

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३७।।

हिन्दी टीका—नरकगति में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से विरहित काल का अभाव है। अर्थात् सातों नरकों में सम्यग्दर्शन के निमित्त उपस्थित रहने के कारण वहाँ सदैव कोई न कोई सम्यग्दृष्टि रहते ही हैं इसीलिए कोई काल सम्यग्दृष्टियों से रहित नहीं होता है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल का प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३८।।

हिन्दी टीका—एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव जो सम्यक्त्व में पहले बहुत बार

विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। तत्र सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा सम्यग्मिथ्यात्वं मिथ्यात्वं वा गतः। एवं नरकगति सम्यग्दृष्टिजघन्यकालप्ररूपणा कृता।

अस्यैव उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—

एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्कर्मी मिथ्यादृष्टिः सप्तमायां पृथिव्यां उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धो (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। पुनः अंतर्मुहूर्तावशेषायुःस्थित्यां मिथ्यात्वं गतः ( ) आयुर्बन्धं कृत्वा (५) अंतर्मुहूर्तं विश्राम्य (६) ततः निर्गतः। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालः।

एवं तृतीयस्थले सामान्यनारकसम्यग्दृष्टिकालप्ररूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति सप्तस्वपिपृथिवीषु मिथ्यादृष्टिनानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।४०।।

सूत्रं सुगममेतत्।

परिवर्तन कर चुका है पुनः विशुद्ध हो करके सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से नरकगति में असंयतसम्यग्दृष्टि के जघन्यकाल की प्ररूपणा हुई।

अब उन्हीं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नारकियों का उत्कृष्ट काल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी का उत्कृष्ट काल कुछ कम तेंतीस सागरोपम है।।३९।।

हिन्दी टीका—एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला सातवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ। पुनः छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण आयुकर्म की स्थिति के अवशेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४), वहाँ आगामी भव की आयु को बांधकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विश्राम लेकर (६), निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपम प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सामान्य नारकी और सम्यग्दृष्टि नारकियों का काल प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सातों ही पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि नाना जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

प्रथम पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।४०।।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**यः कश्चित् पूर्वं बहुवारं मिथ्यात्वं गतः एष मिथ्यात्वचरो जीवः स्व-स्वपृथिवीषु स्थितासंयतसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा पुनः परिणामनिमित्तेन मिथ्यात्वं गतः। सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पूर्वोक्तगुणस्थानयोरन्यतरगुणस्थानं गतः। एवं सप्तानां पृथिवीनां मिथ्यादृष्टिजीवस्य जघन्यकालो गतः।**

अस्यैवोत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि।।४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—

प्रथमपृथिव्यां एकं सागरोपमं, द्वितीयपृथिव्यां त्रीणि सागरोपमाणि, तृतीयपृथिव्यां सप्त, चतुर्थ्यां दश, पंचम्यां सप्तदश, षष्ठ्यां द्वाविंशतिः, सप्तम्यां च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टकालः। एतेभ्योऽधिकायुर्बन्धाभावात्।

एवं चतुर्थस्थले सप्तपृथिवीषु मिथ्यादृष्टिकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

सासादनमिश्रयोः कालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

अब उपर्युक्त जीवों का जघन्यकाल निरूपित करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त पृथिवियों के नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।४१।।

हिन्दी टीका—अपनी-अपनी पृथिवियों में स्थित तथा जिसने पहले भी बहुत बार मिथ्यात्व को प्राप्त किया है ऐसा कोई असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से सातों पृथिवियों के प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीव के जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल की प्ररूपणा की गई है।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्ट काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त सातों पृथिवियों के मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल क्रमशः एक सागरोपम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम प्रमाण है।।४२।।

हिन्दी टीका—प्रथम पृथिवी में एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवी में तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवी में सात सागरोपम, चौथी पृथिवी में दश सागरोपम, पांचवी पृथिवी में सत्तरह सागरोपम, छठी पृथिवी में बाईस सागरोपम और सातवीं पृथिवी में तेंतीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकों का उत्कृष्टकाल है, क्योंकि इनसे अधिक आयु बंध का अभाव है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सातों पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि नारकियों का काल कथन करने की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवों का कालप्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।४३।।

सूत्रं सुगमं एतत्।

एवं पंचमस्थले सप्तपृथिवीगतसासादनमिश्रकालकथनेन एकं सूत्रं गतं।

सप्तपृथिवीनां असंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।४४।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्तसु पृथिवीषु स्थितः बहुशः सम्यक्त्वचरः अष्टाविंशतिसत्कर्मी मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा प्रतिपन्नः। एष सप्तसु पृथिवीसु असंयतसम्यग्दृष्टिजघन्यकालः प्ररूपितः।**

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

सातों पृथिवियों के सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का नाना और एक जीव संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघ के समान है।।४३।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार पंचमस्थल में सातों नरक पृथिवियों के सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्तियों का काल बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सातों पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सातों पृथिवियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।४४।।

सूत्र सरल है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा सातों पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।४५।।

हिन्दी टीका—सातों ही पृथिवियों में स्थित पूर्व में अनेक बार सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व को प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः मिथ्यात्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। यह सातों ही पृथिवियों में असंयतसम्यग्दृष्टि का जघन्य काल प्ररूपण किया गया।

अब एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

उक्कस्सं सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।४६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मसहितः मिथ्यादृष्टिः प्रथमायां पृथिव्यां वा एवं यावत्सप्तम्यां वा उत्पन्नः। षट्पर्याप्तैः पर्याप्तगतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धो (३) वेदसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४)। सम्यक्त्वेन स्व-स्वोत्कृष्टायुःस्थितिं स्थित्वा निर्गत्य ततः मनुष्येषु उत्पन्नः। एवं त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनः स्वस्वोत्कृष्टायुःस्थितिप्रमाणं असंयतसम्यग्दृष्टिउत्कृष्टकालो भवति।**

केवलं-सप्तम्यां षट्अंतर्मुहूर्तैः ऊना उत्कृष्टस्थितिरिति वक्तव्यं, तत्र मिथ्यात्वगुणेन विना निर्गमनाभावात्।

असंयतसम्यग्दृष्टौ आगामिभवायुः बंधं कृत्वा विश्रान्तः भूत्वा मिथ्यात्वं गत्वा सप्तमपृथिव्याः निःसृते सम्यक्त्वकालो बहुको लभ्यते?

न, सप्तमपृथिवीनारकाणां मनुष्येषूपपादाभावात्। तथा असंयतसम्यग्दृष्टीनामपि नरकतिर्यगायु-र्बंधाभावात्। येन गुणस्थानेनायुर्बन्धस्य संभवोऽस्ति, तेनैव गुणस्थानेन निर्गमनाच्च।

एवं षष्ठस्थले असंयतसम्यग्दृष्टिकालनिरूपणमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि। इति नरक-गतिनामान्तराधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

सातों पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों का उत्कृष्टकाल क्रमशः कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम है।।४६।।

हिन्दी टीका—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहली पृथिवी में अथवा दूसरी पृथिवी में, इस प्रकार से लगाकर सातवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) सम्यक्त्व के साथ अपनी-अपनी पृथिवी की उत्कृष्ट आयुकर्म की स्थिति प्रमाण रह करके वहाँ से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार से तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी पृथिवी की उत्कृष्ट आयु स्थिति ही उस-उस पृथिवी के असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल होता है। विशेष बात केवल यह है कि सातवीं पृथिवी में छह अन्तर्मुहूर्तों से कम उत्कृष्ट स्थिति होती है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ से मिथ्यात्व गुणस्थान के बिना निर्गमन का अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्व के अतिरिक्त अन्य गुणस्थानों से निकलना नहीं हो सकता है।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में आगामी भव की आयु को बांधकर विश्रान्त होता हुआ मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सातवीं पृथिवी से निकलने पर सम्यक्त्व का काल बहुत प्राप्त होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि सातवीं पृथिवी के नारकों का मनुष्यों में उत्पाद नहीं होता है तथा असंयतसम्यग्दृष्टियों के भी नारक और तिर्यंच आयु के बंध का अभाव है। दूसरी बात यह भी है कि जिस गुणस्थान से आयु का बंध संभव है, उस ही गुणस्थान से उसका निर्गमन भी होता है।

इस प्रकार छठे स्थल में असंयत सम्यग्दृष्टि नारकियों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए। यह नरकगति नाम का अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अथ चतुर्भिः स्थलैः एकविंशतिसूत्रैः कुटिलपरिणामेन प्राप्ततिर्यग्गतिनामान्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यतिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादित्रयगुणस्थानवर्तिनां कालनिरूपणत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले असंयतसंयतासंयतजीवानां कालप्रतिपादमुख्यत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं तृतीयस्थले त्रिविधतिरश्चां कालनिरूपणपरत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादि सूत्राणि अष्टौ। तदनंतरं चतुर्थस्थले पंचेन्द्रियापर्याप्ततिर्यक्कालप्रतिपादनत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टिनानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।४७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मिथ्यादृष्टिभिर्विना सर्वकालं तिर्यग्गतेरनुपलंभात्।**

एकजीवापेक्षया कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**कश्चित् बहुशः मिथ्यात्वचरः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतो वा मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पूर्वोक्तगुणस्थानेषु अन्यतरगुणस्थानं गतः। एवं जघन्य कालप्ररूपणा गता।**

अथ तिर्यञ्चगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा कुटिल परिणामों से प्राप्त होने वाली तिर्यंचगति नाम का अन्तराधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य तिर्यंच जीवों मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानों का काल निरूपण करने वाले "तिरिक्ख गदीए" इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंयत एवं संयतासंयत तिर्यंचों का काल प्रतिपादन करने वाले "असंजद" इत्यादि छह सूत्र हैं। उससे आगे तृतीय स्थल में तीन प्रकार के तिर्यंचों का काल निरूपण करने वाले "पंचिंदिय" इत्यादि आठ सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंचों का काल प्रतिपादन करने हेतु "पंचिंदिय" इत्यादि तीन सूत्र हैं।

यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब तिर्यंचगति में मिथ्यादृष्टि नाना जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में, तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।४७।।

हिन्दी टीका—मिथ्यादृष्टि जीवों के बिना किसी काल में तिर्यंच गति नहीं पाई जाती है। अर्थात् तिर्यंचगति में सदाकाल मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं इसीलिए उनसे विरहित तिर्यंचगति कभी भी नहीं रहती है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।४८।।

हिन्दी टीका—पहले बहुत बार मिथ्यात्व में भ्रमण किया हुआ एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत जीव मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल

तस्यैव उत्कृष्टकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं।।४९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एको मनुष्यो देवो नारको वा अनादिषड्विंशतिमोहनीयकर्मप्रकृतिसत्त्वसहितः मिथ्यादृष्टिः तिर्यक्षु उत्पन्नः। तत्र आवलिकायाःअसंख्यातभागमात्राणि पुद्गलपरिवर्तनानि परिवर्त्य अन्यगतिं गतः। कश्चिदाह—'असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनानि' इति वचनात् अनन्तोपलब्धिर्भवति इति सूत्रे अनंतपदग्रहणं किमर्थं क्रियते?**

न, अनन्तपदग्रहणमन्तरेण पुद्गलपरिवर्तनस्य अनन्तत्वोपलब्धेः उपायाभावात्।

पुनः तिर्यग्गतिप्राप्तानां मिथ्यादृष्टीनां पुद्गलपरिवर्तनानि आवलिकायाः असंख्यातभागमात्राणि चैवेति कथं ज्ञायते?

न, आचार्यपरंपरागतव्याख्यानात् तदवगतेः।

सासादनमिश्रयोः कालनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।५०।।

रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से तिर्यंच मिथ्यादृष्टि के जघन्यकाल की प्ररूपणा हुई।

अब उपर्युक्त जीवों का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्टकाल अनन्तकाल प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है।।४९।।

हिन्दी टीका—मोहनीयकर्म की छब्बीस प्रकृतियों की सत्ता वाला एक मनुष्य, देव अथवा नारकी अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तनों को परिवर्तित करके अन्य गति को चला गया।

यहाँ कोई शंका करता है कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन इस प्रकार के वचन से अनन्तता की उपलब्धि होती है, इसलिए सूत्र में से 'अनन्त' पद का ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाये?

उसका समाधान देते हैं कि ऐसी बात नहीं है, क्योंकि अनन्तपद के ग्रहण किए बिना पुद्गलपरिवर्तन के अनंतता की उपलब्धि का और कोई उपाय नहीं है।

शंका—पुनः तिर्यंच मिथ्यादृष्टि के बताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन आवली के असंख्यातवें भाग मात्र ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—नहीं, क्योंकि आचार्य पराम्परागत व्याख्यान से उक्त बात का ज्ञान होता है।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का काल बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है-

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवों का काल ओघ के समान है।।५०।।

सूत्रं सुगमं।

एवं मिथ्यादृष्ट्यादित्रिगुणस्थानवर्तितिरश्चां कालनिरूपणत्वेन प्रथमस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं।

तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।५१।।

टीका—अतीतानागतवर्तमानेषु असंयतसम्यग्दृष्टिविरहिततिर्यग्गतेरभावात्।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकोमिथ्यादृष्टिर्वा सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा संयतासंयतो वा परिणामप्रत्ययेन असंयतसम्यग्दृष्टिः जातः। सर्वलघु अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा विशुद्ध्या वृद्धिंगतः संयमासंयमं गतः, संक्लेशेन वृद्धिंगतो मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा गतः। एवं जघन्यकालप्ररूपणा गता।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

सूत्र सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों के काल का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है–

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।५१।।

हिन्दी टीका—अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों ही कालों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से रहित तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है। अर्थात् चतुर्थगुणस्थान को प्राप्त करने वाले तिर्यंचों का हमेशा सद्भाव रहता है। जैसे–हाथी और सिंह के जीव मुनियों के सम्बोधन से सम्यग्दृष्टि बनकर क्रमशः भव–भवान्तर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं महावीर बने हैं। इसी प्रकार हमेशा तीनों कालों में तिर्यंचगति में कोई न कोई तिर्यंच जीव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अवश्य पाये जाते हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।५२।।

हिन्दी टीका—एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच जीव परिणामों के निमित्त से असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहाँ सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि से बढ़ता हुआ संयमासंयम को प्राप्त हो गया। पुनः संक्लेश से बढ़ता हुआ मिथ्यात्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्यकाल की प्ररूपणा हुई।

अब उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि।।५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एको मनुष्यो बद्धतिर्यगायुष्कः सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा देवकुरूत्तरकुरुभोगभूमितिरश्चोः उत्पन्नः। त्रीणि पल्योपमानि तत्र सम्यक्त्वेन सह स्थित्वा मृतो देवो जातः। एवं तिर्यक्षु असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालः प्ररूपितः।**

संयतासंयतनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।५४।।

टीका—त्रिष्वपि कालेषु संयतासंयतविरहिततिरश्चां अभावात्।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अष्टाविंशतिसत्कर्मसहितमिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा परिणामनिमित्तेन संयमासंयमं गतः। सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पूर्वोक्तगुणस्थानानामेकतरं गतः।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच का उत्कृष्टकाल तीन पल्योपम है।।५३।।

हिन्दी टीका—बद्ध तिर्यगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्व को ग्रहण करके और दर्शनमोहनीय का क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरु के तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर तीन पल्योपम कालप्रमाण सम्यक्त्व के साथ रहकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार से तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल रहा।

अब संयतासंयत नाना जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत तिर्यंच कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।५४।।

हिन्दी टीका—तीनों ही कालों में संयतासंयतों से रहित तिर्यंचों का अभाव है। अर्थात् तिर्यंचगति में सदैव संयतासंयत गुणस्थान पाया जाता है, क्योंकि कोई न कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्यग्दर्शन के साथ-साथ अणुव्रतों को धारणकर देवगति प्राप्त करते रहते हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंच का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।५५।।

हिन्दी टीका—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परिणामों के निमित्त से संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हो गया।

अब उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वसहितः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्संमूर्छिम-पर्याप्तमंडूक-मत्स्य-कच्छपादिषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) संयमासंयमं प्रतिपन्नः। एतत्त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनपूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः।**

एवं द्वितीयस्थले चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तितिरश्चां कालप्ररूपणमुख्यत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना त्रिविधतिरश्चां मिथ्यादृष्टिनानाजीवानां कालकथनाय सूत्रमवतरति—

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।५७।।

टीका—त्रिष्वपि कालेषु पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिविधमिथ्यादृष्टिविरहितपंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकानुपलम्भात्।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतो वा दृष्टमार्गः मिथ्यात्वं**

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंच का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।।५६।।

हिन्दी टीका—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस कर्मप्रकृतियों की सत्ता वाला एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि संज्ञी, पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक मेंढक, मछली, कछुआ आदि तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होता हुआ (१), विश्राम लेकर (२) और विशुद्ध होकर (३) संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इन तीन अन्तर्मुहूर्तों से कर्म पूर्वकोटि कालप्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हो गया।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का प्ररूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि नाना जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है-

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियें में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।५७।।

हिन्दी टीका—तीनों ही कालों में तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों से रहित उक्त तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल को बतलाने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।५८।।

हिन्दी टीका—जिसने मिथ्यात्व का मार्ग पहले कई बार देखा है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा

गतः। सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पूर्वोक्तगुणस्थानानामन्यतरं गतः। तेन अंतर्मुहूर्तमिति सूत्रे प्रोक्तं।

उत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि।।५९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एको देवो नारको मनुष्यो वा अर्पितपंचेन्द्रियतिर्यक्व्यतिरिक्ततिर्यङ् वा अर्पितपंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पन्नः। संज्ञि-स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु क्रमेण अष्टाष्टपूर्वकोटिकालप्रमाणं भ्रमित्वा असंज्ञि-स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु अपि एवं चैव अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणं परिभ्रम्य ततः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषु उत्पन्नः। तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः पंचेन्द्रियतिर्यगसंज्ञि-पर्याप्तकेषु उत्पद्य तत्रतनस्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु पुनरपि अष्टाष्टकोटिप्रमाणं परिभ्रमणं कृत्वा पश्चात् संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तस्त्री-नपुंसकवेदयोः अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणं पुरुषवेदे सप्तपूर्वकोटिप्रमाणं भ्रमित्वा ततः देवकुरु-उत्तरकुरुतिर्यक्षु पूर्वायुर्वशेन स्त्रीवेदेषु वा पुरुषवेदेषु वा उत्पन्नः तत्र त्रीणि पल्योपमानि जीवित्वा मृतो देवो जातः।**

एताः पंचनवतिपूर्वकोट्यः पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्वसंज्ञिताः अतः आसां पूर्वकोटिपृथक्त्वव्यपदेशः सूत्रनिर्दिष्टः न युज्यते?

नैष दोषः, अस्य पृथक्त्वशब्दस्य वैपुल्यवाचित्वात्।

असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पूर्वोक्त गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हुआ। इसलिए सूत्र में 'अन्तर्मुहूर्तकाल' ऐसा कहा है।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है–

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम है।।५९।।

हिन्दी टीका—कोई एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा अर्पित-विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंच से विभिन्न अन्य तिर्यंच जीव, विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर संज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदों में क्रम से आठ-आठ पूर्वकोटि काल प्रमाण भ्रमण करके असंज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदों में भी इसी प्रकार से आठ-आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदी उन तिर्यंचों में फिर भी आठ-आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियों में आठ-आठ पूर्वकोटियाँ तथा पुरुषवेदियों में सात पूर्वकोटियाँ भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरु के तिर्यंचों में पूर्व बांधी हुई आयु के वश से स्त्रीवेदियों में अथवा पुरुषवेदियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर तीन पल्योपम तक जीवित रहकर मरा और देव हो गया।

शंका—ये पूर्व में कही गई पंचानवे पूर्वकोटियां पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व संज्ञारूप हैं, इसलिए इनकी पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी संज्ञा नहीं बनती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाची है, (इसलिए कोटिपृथक्त्व से यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियाँ ग्रहण की जा सकती हैं।)

द्वादशानां पूर्वकोटिपृथक्त्वानां कथमेकत्वं?

न, जातिमुखेन सहस्राणामपि एकत्वविरोधाभावात्। विशेषेण तु—

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोटिप्रमाणं भ्रामयित्वा पश्चात् त्रिपल्योपमिकेषु तिर्यक्षु उत्पादयितव्यः।

कुतः?

अपर्याप्तत्वेन एतेषामपरिणतानां पश्चात् शेषपूर्वकोटिप्रमाणं परिभ्रमणे संभवाभावात्।

लब्ध्यपर्याप्तकेषु कथं स्त्रीवेदस्य संभवः?

न, लब्ध्यपर्याप्त-स्त्रीवेदयोः अन्योन्यविरोधाभावात्।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु पंचदशपूर्वकोटिकालप्रमाणं भ्रामयित्वा पश्चात् देवकुरु-उत्तरकुरुभोगभूम्योः उत्पादयितव्यः।

कुतः?

वेदान्तरसंक्रान्तेरभावात्। नास्यन्यः कोऽपि विशेषोऽत्र।

सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टिकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।६०।।

शंका—बारह पूर्वकोटि पृथक्त्वों में एकपना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जाति के मुख से अर्थात् जाति की अपेक्षा सहस्रों के भी एकत्व होने में विरोध का अभाव है।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में सैंतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपम वाले तिर्यंचों में उत्पन्न कराना चाहिए।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि अपर्याप्तकाल के साथ अपरिणत हुए, अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक हुए बिना, उक्त जीवों का पश्चात् शेष पूर्वकोटियों प्रमाण परिभ्रमण करना संभव नहीं है।

शंका—लब्ध्यपर्याप्तकों में स्त्रीवेद कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्त और स्त्रीवेद इन दोनों अवस्थाओं में परस्पर कोई विरोध नहीं है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुरु और उत्तरकुरु में उत्पन्न कराना चाहिए।

प्रश्न—ऐसा क्यों?

उत्तर—क्योंकि, वेद-परिवर्तन का अभाव है। इसके सिवाय अन्य कोई विशेषता नहीं है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है।।६०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **त्रिष्वपि पंचेन्द्रियतिर्यक्षु स्थितद्विगुणस्थानयोः नानाजीवान् प्रतीत्य जघन्येन एकसमयः, अंतर्मुहूर्तं क्रमेण। उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागः। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन सासादनस्य एकसमयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टेः अंतर्मुहूर्तं। उत्कृष्टेन सासादनस्य षडावलिकाः, सम्यग्मिथ्यादृष्टेः अंतर्मुहूर्तं इति।**

असंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।६१।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।६२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः संयतासंयतो वा विशुद्धि-संक्लेशवशाभ्यां असंयतसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अविनष्टसंक्लेश-विशुद्धिभ्यां प्रतिपन्नगुणस्थानान्तरस्य अंतर्मुहूर्तमात्रकालोपलम्भात् ।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

हिन्दी टीका — तीनों ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में स्थित उक्त दोनों गुणस्थानों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्टकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल सासादनसम्यग्दृष्टि का एक समय और सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अन्तर्मुहूर्त तथा सासादन का उत्कृष्टकाल छह आवलियां और सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अन्तर्मुहूर्त है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल प्ररूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।६१।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा उक्त तीनों प्रकार के पंचेन्द्रियतिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।६२।।

हिन्दी टीका — कोई मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच यथाक्रम से विशुद्धि अथवा संक्लेश के वश से असंयतसम्यग्दृष्टि होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहकर, अविनष्ट संक्लेश और विशुद्धि के साथ यथाक्रम से दूसरे गुणस्थान को प्राप्त हुआ, ऐसे जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अब उत्कृष्टकाल का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।।६३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—

सामान्यपंचेन्द्रियतिर्यक्-पंचेन्द्रियपर्याप्ततिरश्चोः संपूर्णत्रिपल्योपमकालः।

कुतः?

बद्धतिर्यगायुष्कस्य मनुष्यस्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा देवोत्तरकुरुभोगभूम्योः पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य आत्मनः आयुस्थितिमनुपाल्य देवेषु उत्पन्नस्य संपूर्णत्रिपल्योपममात्रं असंयमसहित-सम्यक्त्वकालोपलम्भात् ।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु देशोनत्रिपल्योपमानि। तिरश्चः मनुष्यस्य वा अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वसहितमिथ्यादृष्टेः देवकुरु-उत्तरकुरुपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु उत्पद्य द्विमासपर्यंतं गर्भे स्थित्वा जायमानस्य मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धो भूत्वा वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य मुहूर्तपृथक्त्वाधिकद्विमासहीनत्रिपल्योपमप्रमाणं सम्यक्त्वमनुपाल्य देवेषूत्पन्नस्य देशोनत्रिपल्योपममात्रसम्यक्त्वकालोपलंभात्।

तिर्यक्संयतासंयतकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदा ओघं।।६४।।

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल यथाक्रम से तीन पल्योपम, तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है।।६३।।

हिन्दी टीका—पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों का सम्पूर्ण तीन पल्योपम उत्कृष्टकाल है।

प्रश्न—ऐसा कैसे है?

उत्तर—क्योंकि, बद्धतिर्यगायुष्क मनुष्य के सम्यक्त्व को ग्रहण करके, दर्शनमोहनीय का क्षपण कर, देवकुरु या उत्तरकुरु के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होकर, अपनी आयु स्थिति को परिपालन कर, देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के तो संपूर्ण तीन पल्योपम मात्र असंयमसहित सम्यक्त्व का काल पाया जाता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में कुछ कम तीन पल्योपम काल है। क्योंकि मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव के देवकुरु अथवा उत्तरकुरु के पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में उत्पन्न होकर और दो मास गर्भ में रहकर जन्म लेने वाले और मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मास कम तीन पल्योपम तक सम्यक्त्व को अनुपालन करके देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के कुछ कम तीन पल्योपम सम्यक्त्व का काल पाया जाता है।

अब संयतासंयत तिर्यंचों का काल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यंचों का काल ओघ के समान है।।६४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**त्रिष्वपि पंचेन्द्रियतिर्यक्षु नानाजीवान् प्रतीत्य सर्वकालं, एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं। योनिनीषु कतिपयान्तर्मुहूर्तैः द्विमासहीनपूर्वकोटिप्रमाणमिति।**

एवं तृतीयस्थले त्रिविधतिर्यक्कालनिरूपणमुख्यत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

अधुना पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकालकथनाय सूत्रमवतरति—

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।६५।।

सूत्रं सुगममेतत्।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एकजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपर्याप्त-अपर्याप्तेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तेषु मनुष्यपर्याप्तापर्याप्तयोः एषु प्राणिषु अन्यतरस्य जीवस्य क्षुद्रभवग्रहणयुक्तपंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषु उत्पद्यसर्वजघन्यकालं तत्र स्थित्वा पूर्वोक्तेन्द्रियादिषु अन्यतरस्य गतस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रापर्याप्तकालोपलम्भात्।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

हिन्दी टीका—तीनों ही प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण होता है। योनिनियों में दो मास और कुछ अन्तर्मुहूर्तों से कम काल कहना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में तीन प्रकार के तिर्यंचों का काल निरूपण की मुख्यता वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंचों का काल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।६५।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।६६।।

हिन्दी टीका—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में से किसी एक जीव के क्षुद्रभवग्रहण से युक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में उत्पन्न होकर और वहाँ पर सर्व जघन्य काल रहकर, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादिकों में से किसी एक को प्राप्त हुए जीव के क्षुद्रभवग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।६७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तेन्द्रियादिजीवानां अन्यतरस्य पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषु उत्पद्य संज्ञि-असंज्ञिअपर्याप्तयोः अष्टाष्टवारं उत्पद्य तेभ्यः निःसृत्य च पूर्वोक्तानामन्यतरं गतस्य अंतर्मुहूर्तमात्र-उत्कृष्टकालोपलम्भात्।**

एवं पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इत्थं चतुर्भिः स्थलैः एकविंशतिसूत्रैः तिर्यग्गतिनामान्तराधिकारः समाप्तः।

अथ षड्भिः अन्तरस्थलैः एकोनविंशतिसूत्रैः मनुष्यगतिनामान्तराधिकारः प्रारम्भते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां कालनिरूपणत्वेन ''मणुसगदीए'' इत्यादित्रीणि सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले सासादनानां कालकथनमुख्यत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु तृतीयस्थले सम्यग्मिथ्यात्वकालप्रतिपादनत्वेन ''सम्मामिच्छा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततपश्चात् चतुर्थस्थले असंयतसम्यग्दृष्टीनां समयप्रतिपादनपरत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले संयतासंयतादीनां कालनिरूपणमुख्यत्वेन ''संजदासंजद'' इत्यादिसूत्रमेकं। पुनश्च अपर्याप्तमनुष्यकालकथनमुख्यत्वेन ''मणुसअपज्जत्ता'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

मनुष्यगतौ त्रिविधमनुष्याणां कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।६७।।

हिन्दी टीका—पूर्व में कहे गये एकेन्द्रियादिकों में से किसी एक के पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर, संज्ञी और असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तकों में आठ-आठ बार उत्पन्न होकर और उनमें से निकलकर पूर्वोक्त जीवों में से किसी एक जीव की पर्याय को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्टकाल पाया जाता है।

इस प्रकार अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों का जघन्य, उत्कृष्टकाल निरूपण की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस तरह से चार स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा तिर्यंचगति नाम का अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अब छह अन्तर्स्थलों में उन्नीस सूत्रों के द्वारा मनुष्यगति नाम का अन्तराधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों का काल निरूपण करने हेतु ''मणुसगदीए'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल कथन करने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती मनुष्यों का काल प्रतिपादन करने वाले ''सम्मामिच्छा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का समय बतलाने हेतु ''असंजद' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में संयतासंयत जीवों का काल निरूपण करने की मुख्यता वाला ''संजदासंजद'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः छठे स्थल में अपर्याप्त मनुष्यों का काल कथन करने हेतु ''मणुसअपज्जत्ता'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब मनुष्यगति में तीन प्रकार के मनुष्यों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।६८।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।६९।।

सिद्धान्तचिन्तामाणिटीका—**कश्चित् सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतो वा संक्लेशवशेन मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पूर्वोक्तैकेन्द्रियादीनामन्यतरं पर्यायं गतः। एवं त्रिष्वपि मनुष्येषु अंतर्मुहूर्तमात्रमिथ्यात्वकालोपलंभात्।**

उत्कृष्टेन एषां कालकथनाय सूत्रावतारः क्रियते—

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।७०।।

सिद्धान्तचिन्तामाणिटीका—**अविवक्षितजीवस्य विवक्षितमनुष्येषु उत्पद्य स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणं परिभ्रम्य अपर्याप्तकेषु उत्पद्य तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः स्त्रीनपुंसकवेदयोः अष्टाष्टपूर्वकोटीः, पुरुषवेदेषु सप्तपूर्वकोटिप्रमाणं भ्रमित्वा देवोत्तरकुरुभोगभूम्योः त्रीणि पल्योपमानि स्थित्वा देवेषु उत्पन्नस्य पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्याधिकत्रिपल्योपमोपलम्भात्।**

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।६८।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त तीनों प्रकार के, मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।६९।।

हिन्दी टीका—किसी सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, असंयतसम्यग्दृष्टि के अथवा संयतासंयत के संक्लेश के वश से मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पूर्वोक्त गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के तीनों ही प्रकार के मनुष्यों में अन्तर्मुहूर्त मात्र मिथ्यात्व का काल पाया जाता है।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्ट काल कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा तीनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्ववर्ष से अधिक तीन पल्योपम प्रमाण है।।७०।।

हिन्दी टीका—अविवक्षित जीव के विवक्षित मनुष्यों में उत्पन्न होकर स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदियों में क्रमशः आठ-आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः स्त्री और नपुंसक वेदियों में आठ-आठ पूर्वकोटियाँ तथा पुरुषवेदियों में सात पूर्व

विशेषतया—मनुष्यमिथ्यादृष्टेश्चैव सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यधिका भवन्ति, न शेषाणां। पर्याप्तमिथ्यादृष्टीनां त्रयोविंशतिपूर्वकोट्यः मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकेषु तेषामुत्पत्तेः अभावात्। मनुष्यिनीमिथ्यादृष्टिषु सप्तपूर्वकोट्यधिकाः, वेदान्तरसंक्रान्तेरभावात्।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्यकालप्रतिपादनत्वेन त्रिसूत्राणि गतानि।

अधुना सासादननानाजीवापेक्षया सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।७१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उपशमसम्यग्दृष्टीनां सप्ताष्टजनानां उपशमसम्यक्त्वकालस्यैकसमयावशेषे सासादनगुणस्थानं गतानां तत्रैकसमयं स्थित्वा मिथ्यात्वं प्रतिपन्नानामेकसमयोपलम्भात्।**

नानाजीव-उत्कृष्टापेक्षया कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**संख्यातानां उपशमसम्यग्दृष्टीनां उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन षडावलिकाः सन्तीति सासादनं प्रतिपन्नानां संख्यातवारान् संचितसासादनकालानां अंतर्मुहूर्तत्वोपलंभात्।**

कोटियाँ भ्रमण करके देवकुरु अथवा उत्तरकुरु में तीन-तीन पल्योपमों तक रह करके देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के पूर्वकोटि पृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम पाये जाते हैं। विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टि के ही तीन पल्योपमों से अधिक सैंतालीस पूर्वकोटियाँ होती हैं, शेष मनुष्यों के नहीं। पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के तेईस पूर्वकोटियाँ अधिक होती हैं, क्योंकि मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकों में उनकी उत्पत्ति नहीं होती है। मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियों में सात पूर्वकोटियाँ अधिक होती हैं, क्योंकि उनके वेदपरिवर्तन नहीं होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों का काल प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्यों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नानाजीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।७१।।

हिन्दी टीका—उपशम सम्यग्दृष्टि सात आठ जनों के उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए तथा वहाँ पर एक समय रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीवों के एक समय प्रमाण काल पाया जाता है।

अब नाना जीवों का उत्कृष्ट काल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्यों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।७२।।

हिन्दी टीका—संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टियों के उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय को आदि करके उत्कृष्ट से छह आवलियाँ शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए जीवों का संख्यात वारों में

एकजीवजघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।७३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उपशमसम्यक्त्वसहितस्य उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयोऽस्तीति सासादनं प्रतिपद्य द्वितीयसमये चैव मिथ्यात्वं प्रतिपन्नसासादनस्य एकसमयदर्शनात्।**

एकजीवोत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सं छ आवलियाओ।।७४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उपशमसम्यग्दृष्टेः उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे सासादनं प्रतिपद्य षडावलिकाः तत्र गमयित्वा मिथ्यात्वं प्रतिपन्नस्य षडावलिकोपलम्भात्।**

एवं सासादनमनुष्यजघन्योत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिनानाजीवजघन्यकालकथनाय सूत्रावतारो भवति—

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।७५।।

संचित हुआ सासादनगुणस्थान संबंधी काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है।

अब एक जीव का जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय है।।७३।।

हिन्दी टीका—उपशमसम्यग्दृष्टि जीव के उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर दूसरे समय में ही मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीव के एक समय प्रमाण काल देखा जाता है।

अब एक जीव का उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है।।७४।।

हिन्दी टीका—उपशमसम्यग्दृष्टि जीव के उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर छह आवली प्रमाण काल वहाँ पर बिताकर मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के छह आवली प्रमाण काल पाया जाता है।

इस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का जघन्य और उत्कृष्टकाल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों में नाना जीवों का जघन्यकाल कहने हेतु सूत्र प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूत तक होते हैं।।७५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **प्रमत्तसंयम-संयमासंयम-अष्टाविंशतिमोहनीयसत्त्वकर्मिमिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिप्रत्यागतानां संख्यातसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा विशुद्धिवशेन सम्यक्त्वं संक्लेशवशेन च मिथ्यात्वं गतानां सर्वजघन्यान्तर्मुहूर्तोपलम्भात् ।**

एषामेवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति —

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **पूर्वोक्तत्रिविधमनुष्याणां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां सर्वोत्कृष्टसम्यग्मिथ्यात्वकालानां मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्तसंयतैः संख्यातवारमनुसंचितकालानां अंतर्मुहूर्तत्वोपलम्भात्।**

एकजीवजघन्यकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।७७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **दृष्टमार्गस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेः पूर्वोक्तचतुर्गुणस्थानेषु एकजीवगुणस्थानस्यान्तर-गुणस्थानप्रत्यागतस्य सर्वजघन्यकालं स्थित्वा संक्लेशवशेन मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य विशुद्धिवशेन असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य सर्वजघन्यान्तर्मुहूर्तमात्रकालोपलंभात्।**

एकजीवोत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

हिन्दी टीका — प्रमत्तसंयम अथवा संयमासंयम अथवा मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि के वश से सम्यक्त्व को और संक्लेश के वश से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अब उन्हीं जीवों का उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त तीनों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।७६।।

हिन्दी टीका — पूर्वोक्त तीन प्रकार के मनुष्यों में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवों से संख्यात वार में संचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के सर्वोत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्व का काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है।

अब एक जीव का जघन्यकाल प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है —

सूत्रार्थ —

उक्त तीनों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।७७।।

हिन्दी टीका — जिसने पूर्व में मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि के सर्वजघन्य काल रहकर संक्लेश के वश से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होने वाले के और विशुद्धि के वश से असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अब एक जीव का उत्कृष्टकाल बतलाने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतश्च एतेषां चतुर्गुणस्थानेषु अदृष्टमार्गः एकजीवः अन्यतरगुणस्थानप्रत्यागत सम्यग्मिथ्यादृष्टिः दीर्घकालं स्थित्वा देश-सकलसंयम-विरहित-मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने गतः। अतः सर्वोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तोपलम्भात्।**

एवं तृतीयस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टिकालनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना मनुष्यगतौ असंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।७९।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**दृष्टमार्गमिथ्यादृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्तसंयतगुणस्थानेभ्यः आगतस्य सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा जघन्यकालाविरोधेन गुणस्थानान्तरं गतस्य जघन्यान्तर्मुहूर्त-मात्रकालोपलम्भात्।**

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।७८।।

हिन्दी टीका—मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत इन पूर्वोक्त चार गुणस्थानों में से नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीव के किसी एक गुणस्थान से पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि से दीर्घकाल तक रह करके देशसंयम और सकलसंयम से रहित दो गुणस्थानों में अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में गये हुए जीव के सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यगति में असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।७९।।

सूत्र सुगम है।

अब एक जीव का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा तीनों प्रकार के असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।।८०।।

हिन्दी टीका—देखा है मार्ग को जिसने ऐसे, मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानों से आये हुए तथा सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्यकाल के अविरोध से अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है।

एकजीवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।।८१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अत्र सातिरेकशब्दः द्वयोरपि त्रिपल्योपमयोः संबंधनीयः। तस्मात् सामान्यमनुष्य-मनुष्यपर्याप्तकयोः सातिरेकाणि त्रीणि पल्योपमानि, अन्यत्र-स्त्रीवेदमनुष्यिनीषु देशोनानि।**

कथं सातिरेकत्वं?

अष्टाविंशतिसत्कर्मि-मिथ्यादृष्टेः पूर्वकोटित्रिभागे शेषे बद्धमनुष्यायुष्कस्य ततः अंतर्मुहूर्तं गत्वा सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयति, सम्यक्त्वेन सह देशोनपूर्वकोटित्रिभागं गमयित्वा त्रिपल्योपमायुःस्थितिदेवकुरू-उत्तरकुरूभोगभूम्योरुत्पद्य आत्मनः आयुःस्थितिमनुपाल्य देवेषूत्पन्नस्य त्रिपल्योपमानां उपरि देशोनपूर्वकोटि-त्रिभागोपलंभात्।

मानुषीषु देशोनत्रिपल्योपमानि, अन्यतराष्टाविंशतिसत्कर्मिमिथ्यादृष्टेः त्रिपल्योपमिकेषु मनुष्येषु उत्पद्य नव मासान् गर्भे स्थित्वा निःक्रान्तस्य उत्तानशय्यायां अंगुष्ठाहारेण सप्तदिवसान् रिंगन्तः सप्तदिवसान्, अस्थिरगमनेन सप्तदिवसान्, स्थिरगमनेन सप्तदिवसान्, कलासु सप्तदिवसान्, गुणेषु सप्तदिवसान् अन्यानपि सप्तदिवसान् गमयित्वा विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य आत्मनः आयुःस्थितिं जीवित्वा देवेषु उत्पन्नस्य एकोनपंचाशद्दिवसैरधिकनवमासोनत्रिपल्योपमोपलम्भात्।

अब एक जीव के उत्कृष्ट काल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

तीनों प्रकार के असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का यथाक्रम से उत्कृष्टकाल तीन पल्योपम, सातिरेक—कुछ अधिक तीन पल्योपम और देशोन-कुछ कम तीन पल्योपम है।।८१।।

हिन्दी टीका—यहाँ पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्योपमों से सम्बद्ध कर लेना चाहिए। इसलिए सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकों में तो साधिक तीन पल्योपम उत्कृष्टकाल है और अन्यत्र अर्थात् मनुष्यनियों में देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्टकाल है।

शंका—तीन पल्योपम से सातिरेक अर्थात् अधिक काल वहाँ कैसे संभव है?

समाधान—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाले तथा पूर्वकोटी के त्रिभाग शेष रहने पर बांधी है मनुष्य आयु को जिसने ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्य के तत्पश्चात् अन्तमुहूर्त जाकर सम्यक्त्व को ग्रहण करके दर्शनमोहनीय का क्षपण कर सम्यक्त्व के साथ देशोन पूर्वकोटी का त्रिभाग बिताकर तीन पल्योपमप्रमाण आयुकर्म की स्थिति वाले देवकुरु या उत्तरकुरु में उत्पन्न होकर अपनी आयु स्थिति का अनुपालन करके देवों में उत्पन्न हुए जीव के तीन पल्योपमों के ऊपर देशोन पूर्व पूर्वकोटी का त्रिभाग अधिक पाया जाता है। मनुष्यनियों में देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्टकाल है। वह इस प्रकार से है-मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन पल्योपम की आयु वाले भोगभूमियाँ मनुष्यों में उत्पन्न होकर और नौ मास गर्भ में रहकर जन्म लेता है। उसके उत्तानशय्या पर अंगुष्ठ चूसने रूप आहार से सात दिन, रेंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमन से सात दिन, स्थिर गमन से सात दिन, कलाओं में सात दिन, गुणों में सात दिन तथा अन्य भी सात दिन बिताकर विशुद्ध होकर सम्यक्त्व को प्राप्त हो, अपनी आयु स्थिति प्रमाण जीवित रहकर देवों में उत्पन्न हुए जीव के उनंचास दिवसों से अधिक नवमासों से कम तीन पल्योपमकाल पाया जाता है।

एवं चतुर्थस्थले मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिकालप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

अधुना संयतासंयतादिअयोगिपर्यंतानां कालप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**ओघवर्णितकालेभ्योऽत्र मनुष्येषु भेदाभावात्। केवलं तु संयतासंयतानां योनिनिष्क्रमणरूपजन्मना उत्पन्नाष्टवर्षैः ऊनपूर्वकोटिप्रमाणं संयमासंयमकालः वक्तव्यः, तिरश्चामिव मनुष्याणां अंतर्मुहूर्तकालेन अणुव्रतग्रहणाभावात्। शेषषष्ठगुणस्थानादारभ्य अयोगिकेवलिपर्यंतकालव्यवस्था गुणस्थानवत् ज्ञातव्या।**

एवं पंचमस्थले संयतासंयतादिकालनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

मनुष्यापर्याप्तकालकथनाय सूत्रमवतरति—

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्म-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-संज्ञि-असंज्ञि-पंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानं मनुष्यपर्याप्तानां वा एषां जीवानां अन्यतरः कश्चिद् जीवः मनुष्यापर्याप्तकेषु-लब्ध्यपर्याप्तकेषु उत्पद्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रायुःस्थितिं गमयित्वा पूर्वोक्तजीवेषु उत्पन्नः, तेषामेव तत्कालोपलंभात्।**

इस प्रकार चतुर्थस्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का कालप्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के मनुष्यों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली तक तीनों प्रकार के मनुष्यों का उत्कृष्ट वा जघन्यकाल ओघ के समान है।।८२।।

हिन्दी टीका—गुणस्थानों में वर्णित काल से इन मनुष्यों में कोई भेद नहीं है। विशेष बात केवल यह है कि संयतासंयतों से सर्वलघु योनि-निष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न हुए जीव के आठ वर्षों से कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयम का काल कहना चाहिए। क्योंकि, तिर्यंचों के समान मनुष्यों के जन्म लेने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल से ही अणुव्रतों के ग्रहण करने का अभाव है।

शेष छठे गुणस्थान से चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान तक के मनुष्यों की कालव्यवस्था गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में संयतासंयतादि जीवों का काल निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अपर्याप्त मनुष्यों का काल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं।।८३।।

हिन्दी टीका—एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकों के अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवों में से कोई एक जीव के लब्ध्यपर्याप्तक

उत्कृष्टापेक्षया मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तनानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोत्पन्नलब्ध्यपर्याप्तकमनुष्येषु मृतेषु तत्काले चैव अन्यानन्यान् जीवान् लब्ध्यपर्याप्तमनुष्येषु उत्पाद्य उत्पाद्य तेषां सर्वकालानां मेलने सति पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्र अनुसंधानवारशलाकाः उपलभ्यन्ते।**

एक जीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तैकेन्द्रियादिजीवेभ्यः आगत्य लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्येषु उत्पन्नस्य क्षुद्र-भवग्रहणमात्र जघन्यायुःस्थितिकालदर्शनात् ।**

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।८६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तजीवेभ्यः आगत्य लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्येषु उत्पन्नस्य अन्तर्मुहूर्तकालो लभ्यते। उपरिमकालविकल्पानां उत्कृष्टायुःस्थिति-अपर्याप्तस्यापि अनुपलंभात्।**

मनुष्यों में उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थिति को बिताकर पूर्वोक्त जीवों में उत्पन्न हुआ, उन जीवों के ही उक्तकाल अर्थात् क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण काल पाया जाता है।

अब उत्कृष्टता की अपेक्षा मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों में नाना जीवों की अपेक्षा काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्टकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।८४।।

हिन्दी टीका—पूर्वोक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के मर जाने पर उसी काल में ही अन्य-अन्य जीवों को लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों में उत्पन्न करा कराके उनके सब कालों के मिला देने पर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानबार शलाकाएं पाई जाती हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।८५।।

पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवों से आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीव के क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य आयुस्थितिकाल देखा जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है।

सूत्रार्थ—

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।८६।।

हिन्दी टीका—पूर्वोक्त जीवों से आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है तथा अन्तर्मुहूर्त से उपरिमकाल के विकल्प उत्कृष्ट आयुस्थिति वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीव

तात्पर्यमेतत्—एतान् लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यभवान् अनंतवारान् ग्राहं ग्राहं अधुना महत्पुण्ययोगेन पर्याप्तमनुष्यभवं उच्चकुले जन्म सम्यग्दर्शनं सच्चारित्रं च गृहीत्वा अस्माभिः प्रमादं परिहृत्य निजशुद्धपरमात्मतत्त्वं ध्यातव्यं सर्वप्रयत्नेन।

एवं षष्ठस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यकालनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्। इत्थं एकोनविंशतिसूत्रैः मनुष्यगतिनामान्तराधिकारः समाप्तः।

अथ षड्भिः स्थलैः विंशतिसूत्रैः देवगतिनामान्तराधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यदेवगतौ मिथ्यात्वादित्रिकदेवानां कालनिरूपितत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वितीयस्थले असंयतसम्यग्दृष्टिकालनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयस्थले भवनत्रिकादारभ्य द्वादशस्वर्गपर्यंतदेवानां कालकथनमुख्यत्वेन ''भवणवासिय'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं आनतादिनव-ग्रैवेयकदेवकालकथनप्रधानत्वेन ''आणद जाव'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। पुनः अनुदिशानुत्तरदेवानां कालप्रतिपादनत्वेन ''अणुद्दिस'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततश्च सर्वार्थसिद्ध्यहमिंद्राणां कालकथनमुख्यत्वेन ''सव्वट्ठ'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना देवगतौ मिथ्यादृष्टिनानाजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।८७।।

के भी नहीं पाये जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के भवों को अनन्तबार ग्रहण कर-करके अब महान् पुण्ययोग से पर्याप्त मनुष्य भव, उच्चकुल में जन्म लेकर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके हम सभी को प्रमाद-आलस्य छोड़कर सम्पूर्ण प्रयत्नपूर्वक निज शुद्ध परमात्मतत्त्व का ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार छठे स्थल में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का काल निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस तरह से उन्नीस सूत्रों के द्वारा मनुष्यगति नाम का अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अब छह स्थलों में बीस सूत्रों के द्वारा देवगति नाम का अन्तराधिकार प्रारंभ होता है—

उसमें से प्रथम स्थल में सामान्य देवगति में मिथ्यात्वादित्रिक अर्थात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थानवर्ती देवों का काल निरूपण करने हेतु "देवगदीए" इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का काल बतलाने वाले "असंजद" इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में भवनत्रिक से लेकर बारहवें स्वर्ग तक के देवों का काल कथन करने वाले "भवणवासिय" इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में आनतस्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों का काल कथन करने की प्रधानता वाले "आणद जाव" इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः पंचमस्थल में अनुदिश और अनुत्तर विमानों में रहने वाले देवों का काल प्रतिपादन करने वाले "अणुद्दिस" इत्यादि तीन सूत्र हैं और आगे छठे स्थल में सर्वार्थसिद्धि विमान के अहमिन्द्र देवों का काल कथन करने वाले "सव्वट्ठ" इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब देवगति में सर्वप्रथम मिथ्यादृष्टि नाना जीवों की अपेक्षा काल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

देवगति में, देवों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।८७।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवजघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।८८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**असंयतसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा संक्लेशेन मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यकालं स्थित्वा पूर्वोक्तद्वयगुणस्थानयोः अन्यतरं गतः, तस्यान्तर्मुहूर्तमात्रकालः भवति।**

एकजीवोत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि।।८९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मनुष्यमिथ्यादृष्टिः द्रव्यसंयमबलेन एकत्रिंशत् सागरोपमायुःस्थितिदेवेषु उत्पद्य मिथ्यात्वेन सह आत्मनः आयुःस्थितिं भुक्त्वा मनुष्येषु उत्पन्नः, तस्य एकत्रिंशत्सागरोपममात्रदेवमिथ्या-दृष्टिकालदर्शनात्।**

सासादन-मिश्र देवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।९०।।

सूत्रं सुगमं।

एवं प्रथमस्थले देवगतौ मिथ्यात्वादि त्रिकगुणस्थानवर्तिकालकथनेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव का जघन्यकाल निरूपण करने हेतु सूत्र प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।८८।।

हिन्दी टीका—असंयतसम्यग्दृष्टि के अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव के, संक्लेश से मिथ्यात्व को प्राप्त होकर, वहाँ पर सर्व जघन्यकाल रहकर पूर्वोक्त दो गुणस्थानों में से किसी एक को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अब एक जीव का उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवों का उत्कृष्टकाल एकतीस सागरोपम है।।८९।।

हिन्दी टीका—कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यसंयम के बल से इकतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर मिथ्यात्व के साथ अपनी आयुस्थिति को भोग करके मनुष्यों में उत्पन्न हो गया, उस देव के इकतीस सागरोपम प्रमाण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का काल देखा जाता है।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती देवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का काल गुणस्थान के समान है।।९०।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में देवगति में मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानवर्ती देवों का काल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना असंयतसम्यग्दृष्टिदेवनानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।९१।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवजघन्यकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एकजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वा विशुद्धिवशेन सम्यक्त्वं प्रतिपद्य सर्वजघन्यसम्यक्त्वकाले स्थित्वा मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोः अन्यतरं गतस्तस्यान्तर्मुहूर्तकालदर्शनात्।**

उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि।।९३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**उत्कृष्टायुःस्थितिदेवेषु उत्पन्नसंयतस्य भुज्यमानायुष्कस्य घाताभावात्, आत्मनः उत्कृष्टस्थितिं जीवित्वा मनुष्येषु उत्पन्नदेवासंयतसम्यग्दृष्टेः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रकालोपलब्धेः। एवं द्वितीयस्थले असंयतदेवकालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।**

भवनत्रिकादारभ्य द्वादशकल्पवासिदेवनानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का नाना जीवों की अपेक्षा काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।९१।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव का जघन्यकाल बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।९२।।

हिन्दी टीका-मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव के विशुद्धि के वश से सम्यक्त्व को प्राप्त होकर, वहाँ सर्व जघन्य सम्यक्त्व के काल प्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्व में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है।

अब उत्कृष्टकाल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का उत्कृष्टकाल तेतीस सागरोपम है।।९३।।

हिन्दी टीका—उत्कृष्ट आयु की स्थिति धारक देवों में उत्पन्न हुए संयत के भुज्यमान आयु के घात का अभाव होने से अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जीवित रहकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि देव के तेतीस सागरोपममात्र काल पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंयत जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब भवनत्रिक से लेकर बारह कल्पवासी देवों में नाना जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।९४।।

सूत्रं सुगमं। त्रयाणामपि कालानां देवमिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-विरहितानामभावात्।

एकजीवजघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**यथा देवसामान्ये द्वयोरेतयोः गुणस्थानयोः जघन्यकालप्ररूपणा कृता तथैवात्र भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवानां सौधर्मादिद्वादशस्वर्गपर्यंतानां देवानां एतयोः द्वयोः गुणस्थानयोः जघन्यकालप्ररूपणा कर्तव्या।**

देवानां उत्कृष्टकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।९६।।

सूत्रार्थ—

भवनवासी देवों से लेकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।९४।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों से रहित तीनों ही कालों का अभाव है।

एक जीव का जघन्यकाल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।९५।।

हिन्दी टीका—इन दोनों गुणस्थानों की जघन्यकाल प्ररूपणा जैसा देवों के ओघ-सामान्य देवों में कही है उसी प्रकार से यहाँ पर भवनवासी-वानव्यंतर-ज्योतिष्कदेवों की एवं सौधर्म स्वर्ग से लेकर शतार-सहस्रारकल्प तक के मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों की भी जघन्यकाल की प्ररूपणा कहना चाहिए।

अब देवों का उत्कृष्टकाल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का उत्कृष्टकाल साधिक सागरोपम, साधिक पल्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दश सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम है।।९६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः भवनवासिदेवेषु उत्पन्नः। पल्योपमस्य असंख्यातभागाभ्यधिकं सागरोपमं जीवित्वा मिथ्यात्वेनैव ततश्च्युतः। एष मिथ्यादृष्टिदेवस्य बद्धायुष्कघातं प्रतीत्य कालः प्रोक्तः। अथवा अंतर्मुहूर्तोनार्धसागरोपमेन सातिरेकं सागरोपमं जीवित्वा तत्पर्यायात् च्युतः। एष सम्यग्दृष्टेः बद्धायुष्कघातं प्रतीत्योक्तः। एष भवनवासिमिथ्यादृष्टिउत्कृष्टकालः।**

एको विराधितसंयतः वैमानिकदेवेषु आयुर्बंधं कृत्वा तदुद्वर्तनाघातेन घातं कृत्वा भवनवासिदेवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तयुतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। पुनः अंतर्मुहूर्तोनसागरोपमार्द्धेन अधिकं सागरोपमं त्रिभिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनं सम्यक्त्वेन सह जीवित्वा तत्पर्यायात् च्युत्वा मनुष्यो जातः। एष भवनवासिअसंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालः। वानव्यन्तर-ज्योतिष्कानां अपि एवं चैव वक्तव्यं। केवलं तु-अंतर्मुहूर्तोनपल्योपमार्धेनाधिकं पल्योपमं मिथ्यात्वोत्कृष्टकालो भवति। एषश्चैव कालः त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनः असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालो भवति।

सौधर्मैशानयोः मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टकालः द्वे सागरोपमे पल्योपमस्य असंख्यातभागेनऽभ्यधिके। एष मिथ्यादृष्टिना बद्धायुष्कस्य घातं प्रतीत्य कालं प्रोक्तः। सम्यग्दृष्टेः बद्धदेवायुर्घातं प्रतीत्यान्तर्मुहूर्तोनार्द्धसागरोपमेन अभ्यधिके द्वे सागरोपमे मिथ्यात्वोत्कृष्टकालो भवति।

कश्चिदाह—''वे सत्त दस चोद्दस सोलसट्ठारस य वीस वावीसा ''एतद्गाथया सह एतस्य सूत्रस्य किं न विरोधो भवति?

हिन्दी टीका—एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर मिथ्यात्व के साथ ही उस पर्याय से च्युत हुआ। यह मिथ्यादृष्टि जीव का बद्धायुष्कघात की अपेक्षा काल कहा है। अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम से अधिक एक सागरोपम तक जीवित रहकर उस पर्याय से च्युत हुआ। यह सम्यग्दृष्टि जीव बद्धायुष्कघात की अपेक्षा काल कहा है। इस प्रकार यह भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवों का उत्कृष्ट काल है। संयम की विराधना की है जिसने ऐसा कोई संयत मनुष्य वैमानिक देवों में आयु को बांध करके उसे उद्वर्तनाघात से घात करके भवनवासी देवों में उत्पन्न हुआ। और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होता हुआ (१) विश्रान्त हो (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम से अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्व के साथ जीवित रहकर पर्याय से च्युत हो मनुष्य हुआ। यह भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल है। वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का भी इसी प्रकार से काल कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि एक अन्तर्मुहूर्त कम आधे पल्योपम से अधिक एक पल्योपम व्यन्तर और ज्योतिषक देवों में मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल होता है। यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम करने पर असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का उत्कृष्ट काल हो जाता है। सौधर्म और ईशान कल्प से मिथ्यादृष्टि देव का उत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागरोपम है। यह मिथ्यादृष्टि के द्वारा बद्धायुष्क के घात की अपेक्षा काल कहा है। सम्यग्दृष्टि जीव के बद्धदेवायु के घात की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम से अधिक दो सागरोपम मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल होता है।

शंका—यहाँ कोई शंका करता है कि सौधर्म-ईशानकल्प से लगाकर आरण-अच्युत कल्प तक क्रमशः दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, बीस और बाईस सागरोपम की स्थिति होती है। इस गाथा के साथ इस उपर्युक्त सूत्र का विरोध क्यों नहीं होगा?

न भवति विरोधः, भिन्नविषयत्वात्। तद्यथा-उक्तं गाथासूत्रं बंधापेक्षया, किन्तु कालप्रतिपादकसूत्रं पुनः विद्यमानायुरपेक्षया स्थितमिति।

सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्तसागरोपमानि सातिरेकाणि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरकल्पयो दश सागरोपमानि सातिरेकाणि, लांतव-कापिष्ठकल्पयोः चतुर्दशसागरोपमानि सातिरेकाणि, शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमानि सातिरेकाणि, शतार-सहस्रारयोः अष्टादशसागरोपमानि सातिरेकाणि। यथा द्विप्रकाराभ्यां सौधर्मैशानयोः सातिरेकत्वं प्ररूपितं तथात्रापि वक्तव्यं।

सौधर्मादिः यावत् सहस्रारः इति असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालः द्वौ सप्त दश चतुर्दश षोडश अष्टादश सागराः अंतर्मुहूर्तोनार्द्धसागरेण सातिरेकाः भवन्ति। एतस्य कालस्याधस्तने सम्यग्दृष्टीनामुत्पादाभावात्।

सासादन-मिश्रयोः कालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।९७।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं तृतीयस्थले मिथ्यादृष्टिअसंयतसम्यग्दृष्ट्योः देवयोः सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योश्च जघन्य-उत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

आनतादिनवग्रैवेयकदेवानां मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्ट्योः नानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

समाधान—विरोध नहीं होगा, क्योंकि सूत्र और गाथा इन दोनों का विषय भिन्न-भिन्न हैं। वह इस प्रकार से है कि उक्त गाथा सूत्र तो बंध की अपेक्षा है किन्तु कालप्रतिपादक सूत्र विद्यमान आयु की अपेक्षा स्थित है।

सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्प में कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्प में साधिक दश सागरोपम, लान्तव-कापिष्ठ कल्प में साधिक चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्र कल्प में साधिक सोलह सागरोपम और शतार-सहस्रार कल्प में साधिक अठारह सागरोपम मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्टकाल है। जिस तरह दोनों प्रकारों से सौधर्म और ईशान कल्प में आयु की साधिकता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यहाँ पर भी कहना चाहिए। सौधर्म कल्प को आदि लेकर सहस्रार कल्प तक असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का उत्कृष्ट काल क्रमशः एक अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम से अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है क्योंकि इस काल के नीचे सम्यग्दृष्टि जीव के उपपाद का अभाव है।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती देवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

भवनवासी से लेकर सहस्रारकल्प तक के सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।९७।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का तथा सासादन एवं मिश्र गुणस्थानवर्ती देवों का जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब आनतस्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नाना जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।९८।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया जघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९९।।

एतस्यार्थः सुगमः।

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कतीसं सागरोवमाणि।।१००।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतेषु एकादशसु उत्कृष्टायुर्बन्धं कृत्वा स्व-स्वदेवेषूत्पद्य आयुः स्थितिमनुभुज्य मनुष्येषु उत्पन्नमिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिदेवानां उक्तोत्कृष्टकालोपलंभात्।

सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टिकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

आनत-प्राणत कल्प से लेकर नवग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।९८।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।।९९।।

इस सूत्र का अर्थ भी सुगम है।

अब उत्कृष्टकाल को बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त कल्पवासी एवं नवग्रैवेयक विमानवासी कल्पातीत देवों का उत्कृष्ट काल यथाक्रम से बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है।।१००।।

हिन्दी टीका—इन आनत-प्राणत, आरण-अच्युतादि ग्यारह स्थानों में उत्कृष्ट आयु को बांधकर और देवों में उत्पन्न होकर अपनी-अपनी आयु स्थिति को परिपालन करके मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपने-अपने स्वर्ग का कहा गया उत्कृष्ट काल पाया जाता है। यहाँ आनत-प्राणत एक कल्प, आरण-अच्युत द्वितीयकल्प और नवग्रैवेयक के ९ ऐसे ग्यारह स्थान कहे गये हैं।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।१०१।।

एतदपि सुगमं।

एवं चतुर्थस्थले आनतादिनवग्रैवेयकदेवजघन्योत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना अनुदिशादिअपराजितविमानवासिदेवानां नानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१०२।।

टीका—असंयतसम्यग्दृष्टिविरहितत्रयोदशानां विमानानां सर्वकालानुपलंभात्।

एकजीवजघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीसं, बत्तीसं, सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१०३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—तत्र गुणस्थानान्तरं संक्रान्तेः अभावात्। एषु सातिरेकप्रमाणमेकः

सूत्रार्थ—

उपर्युक्त ग्यारह कल्पों में सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का काल गुणस्थानों के समान है।।१०१।।

यह सूत्र भी सुगम है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में आनत स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल कथन की मुख्यता से चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब नव अनुदिश विमानों से लेकर पंच अनुत्तर के अपराजित विमानवासी तक के देवों का नाना जीवों की अपेक्षा काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

अनुदिश विमानवासी देवों में तथा अनुत्तर नामक विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१०२।।

हिन्दी टीका—असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से विरहित उपर्युक्त तेरह विमान किसी भी काल में नहीं पाये जाते हैं अर्थात् नव अनुदिश एवं चारों अनुत्तर विमानों में सदैव सम्यग्दृष्टि देव ही रहते हैं। वहाँ मिथ्यादृष्टि देवों का निवास नहीं पाया जाता है।

अब एक जीव का जघन्यकाल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

नौ अनुदिश विमानों में एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल सातिरेक इकतीस सागरोपम और चार अनुत्तर विमानों में साधिक बत्तीस सागरोपम है।।१०३।।

हिन्दी टीका—इन विमानों में अन्य गुणस्थानों के संक्रमण का अभाव है। यहाँ पर सातिरेक

समयः,अधस्तनानामुत्कृष्टस्थितिः समयाधिकाः उपरिमानां जघन्यस्थितिर्भवतीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्[1]।

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि।।१०४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—नवसु अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत्सागराः, चतुःषु अनुत्तरविमानेषु त्रयस्त्रिंशत्सागराः उत्कृष्टेन कालो ज्ञातव्यः। सूत्रे हि ऊनाधिकवचनाभावात्।

एवं पंचमस्थले अनुदिशादित्रयोदशविमानवासिदेवानां सम्यग्दृष्टीनां कालनिरूपणमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

सर्वार्थसिद्धिविमानदेवानां नानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१०५।।

सूत्र सुगमं।

एकजीवापेक्षया कालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।।१०६।।

(साधिक) का प्रमाण एक समय है क्योंकि एक समय अधिक नीचे के विमान की उत्कृष्ट स्थिति ही ऊपर के विमान की जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेश से जाना जाता है।

अब उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

उक्त विमानों में उत्कृष्टकाल यथाक्रम से बत्तीस सागरोपम और तेतीस सागरोपम है।।१०४।।

हिन्दी टीका—नौ अनुदिश विमानों में पूरे बत्तीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्टकाल है। चारों अनुत्तर विमानों में पूरे तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि सूत्र में हीन और अधिकता के प्रतिपादक वचन का अभाव है।

इस प्रकार पंचम स्थल में अनुदिश आदि तेरह विमानवासी सम्यग्दृष्टि देवों का काल निरूपण करने की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सर्वार्थसिद्धि विमान के देवों में नाना जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१०५।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा काल प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सर्वार्थसिद्धि में एक जीव की अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टकाल तेतीस सागरोपम है।।१०६।।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३८७।

सिद्धान्तचिन्तामणि—**पृथक् सूत्रारम्भात् चैव ज्ञायते सर्वार्थसिद्धौ जघन्योत्कृष्टस्थिती समाने स्तः।**

पुनः सूत्रे जघन्योत्कृष्टग्रहणं किमर्थं क्रियते?

नैतत्, तस्य मंदबुद्धिजनानुग्रहार्थत्वात्।

तात्पर्यमेतत्—पंचपरावर्तनपरिभ्रमणभीतिबुद्ध्या चतुर्गतिभ्रमणविरहिता एका सिद्धगतिर्या पंचमीति गीयते तस्याः प्राप्तयेऽस्माभिः प्रयत्नीक्रियते तथा च पंचमगतिप्राप्तानां जिनेंद्राणां पादयुगलकमलं स्मर्यते, नमस्क्रियते अपि च धनञ्जयकविकाव्येन—

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः, चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन, त्वं मा कदाचिद् भुजमालुलोकः[१]।।२५।।

एवं षष्ठस्थले सर्वार्थसिद्धिविमानदेवस्थितिनिरूपणपरत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणि-टीकायां चतुःसप्ततिसूत्रैः गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

हिन्दी टीका—पृथक् सूत्र के बनाने से ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धि में जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सदृश है।

शंका—फिर भी सूत्र में जघन्य और उत्कृष्ट पद का ग्रहण किसलिए किया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस पद का ग्रहण मंदबुद्धि जनों के अनुग्रह के लिए किया गया है।

तात्पर्य यह है कि संसार के पंचपरिवर्तनरूप परिभ्रमण से भयभीत होकर चतुर्गति भ्रमण से रहित एक सिद्धगति जो कि पंचमगतिरूप बताई है। उसकी प्राप्ति हेतु हम सभी को प्रयत्न करना चाहिए तथा पंचमगति को प्राप्त कर चुके जिनेन्द्र भगवन्तों के चरणकमल युगल का सदैव स्मरण किया जाता है एवं नमस्कार किया जाता है। जैसा कि धनंजय कवि ने भी अपने विषापहारस्तोत्र के निम्न काव्य में भगवान को स्मरण करते हुए कहा है–

काव्यार्थ—हे भगवन्! तुमने तो केवल एक ही मार्ग मोक्ष का देखा है और अन्य लोगों ने संसार की चारों गतियों का गहन–दुर्गम मार्ग देखा है अतः तुम अपनी भुजाओं को फैलाकर यह मान मत प्रदर्शित करना कि मैंने सब कुछ देख लिया है। अर्थात् निन्दा स्तुति अलंकार में कवि ने भगवान की स्तुति करते हुए यह बतलाया है कि हम संसारी प्राणी तो संसार की चारों गतियों में भ्रमण करके चौरासी लाख योनियों के दुःखद मार्ग को देख–देख कर महान कष्ट भोग रहे हैं और भगवान जिनेन्द्र ने एक मात्र मोक्षमार्ग को देखकर उसे प्राप्त करके शाश्वत सुख को पा लिया है उसी शाश्वत सुख को देने वाली सिद्धगति की प्राप्ति हेतु हम सभी को प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार छठे स्थल में सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों की स्थिति का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम नाम के प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में चौहत्तर सूत्रों के द्वारा गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. विषापहार स्तोत्र

अथ इंद्रियमार्गणाधिकारः

अथ स्थलषट्केन द्वात्रिंशत्सूत्रैः इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यैकेन्द्रियजीवानां कालकथनमुख्यत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि त्रीणि सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियभेदप्रभेदसहितानां समयप्रतिपादनप्रकारेण ''बादर'' इत्यादि नव सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवभेदप्रभेदकथनमुख्यत्वेन ''सुहुमएइंदिया'' इत्यादि नव सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले विकलत्रयजीवानां कालनिरूपणत्वेन ''बीइंदिया'' इत्यादि षट्सूत्राणि। पुनः पंचमस्थले पंचेन्द्रियाणां स्थितिकथनमुख्यत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। ततश्च षष्ठस्थले पंचेन्द्रियापर्याप्तजीवानां कालनिरूपणत्वेन ''पंचिंदियअपज्जत्ता'' इत्यादि एकं सूत्रं इति समुदायपातनिका।

अथ इन्द्रिय मार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब छह स्थलों में बत्तीस सूत्रों के द्वारा इन्द्रिय मार्गणा नामका द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य एकेन्द्रिय जीवों का काल कथन करने की मुख्यता वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में अनेक भेद-प्रभेद सहित बादरएकेन्द्रिय जीवों का समय प्रतिपादन करने वाले ''बादर'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। उसके आगे तृतीयस्थल में सूक्ष्य एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेद कथन की मुख्यता वाले ''सुहुमएइंदिया'' इत्यादि नव सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में विकलत्रय जीवों का काल बतलाने वाले ''वेइंदिया'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः पंचम स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति बतलाने हेतु ''पंचिंदिय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद छठे स्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों का काल निरूपण करने वाला ''पंचिंदिय अपज्जत्ता'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

विशेष–

ज्ञानमती को नित नमूँ, ज्ञानकली खिल जाय।
ज्ञानज्योति की चमक में, जीवन मम मिल जाय।।

षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका के इस प्रकरण का हिन्दी अनुवाद करते समय मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आज वैशाख कृष्णा दूज (वीर निर्वाण संवत् २५३३, ४ अप्रैल २००७) को अपने ५२ वें आर्यिका दीक्षा दिवस की पवित्र तिथि में षट्खंडागम के १६ वें ग्रंथ की टीका पूर्ण की और सम्पूर्ण सूत्रों (६८४१) पर ३१०७ पृष्ठों की सरल संस्कृत टीका लेखन का कार्य संपन्न करके उन्होंने परम आल्हाद के साथ कृतकृत्यता का अनुभव किया।

इस अवसर पर मैंने हस्तिनापुर-जम्बूद्वीप स्थित कमल मंदिर में विराजमान भगवान महावीर (जहाँ माताजी ने टीका लिखकर पूर्ण किया है) के चरणों में यही प्रार्थना की कि मुझे भी इन टीका ग्रंथों के शीघ्र अनुवाद की शक्ति प्राप्त हो, ताकि स्वाध्यायी भक्तों को इन ग्रंथों के स्वाध्याय का लाभ मिल सके।

आज १२०० वर्षों के बाद (धवला टीकाकर्ता श्री वीरसेनाचार्य के पश्चात्) पुनः वर्तमान में इक्कीसवीं सदी का सौभाग्य जागृत हुआ है कि इस महान् सूत्र ग्रंथ पर लेखनी चलाने की अपूर्व क्षमता पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी को प्राप्त हुई जिसे भारतीय साहित्य भंडार को अमूल्य निधि का लाभ समझना चाहिए।

अधुना एकेन्द्रियजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१०७।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवजघन्यकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**द्वीन्द्रियादिषु एकतरस्य एकेन्द्रियेषु उत्पद्य सर्वजघन्यमेकेन्द्रियकालं स्थित्वा द्वीन्द्रियादिषु उत्पन्नस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रैकेन्द्रियकालोपलंभात्।**

एकजीवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१०९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**द्वीन्द्रियादिषु एकतरः कश्चिद् जीवः एकेन्द्रियेषु उत्पद्य अतिबहुकं कालं यदि**

जैनागम ग्रंथों में वर्णन है कि 'सुलोचना' नामकी आर्यिका माताजी को ग्यारह अंगरूपी श्रुतज्ञान का लाभ प्राप्त हुआ था। यथा–''एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना''। इसी प्रकार से महान ज्ञान को धारण करने वाली ब्राह्मी, सुन्दरी, चंदना आदि आर्यिका माताएँ भी अंगज्ञानरूप श्रुत में पारंगत अवश्य रही हैं। उसी ज्ञान का किंचित् अंश षट्खंडागम की इस टीका में समझना चाहिए।

अब एकेन्द्रिय जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१०७।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव का जघन्य काल प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१०८।।

हिन्दी टीका—एकेन्द्रिय से रहित अन्य द्वीन्द्रियादिक जीव का एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर, सर्वजघन्य एकेन्द्रिय जीव की आयु के कालप्रमाण रह करके, पुनः एकेन्द्रियों से भिन्न अन्य द्वीन्द्रियादि जीव में उत्पन्न होने वाले जीव के क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण एकेन्द्रिय जीव का काल पाया जाता है।

अब एक जीव का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट काल अनंतकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिर्वतन है।।१०९।।

हिन्दी टीका—एकेन्द्रियों से भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल

तिष्ठति तर्हि आवलिकायाः असंख्यातभागमात्राणि चैव पुद्गलपरिवर्तनानि तिष्ठति।

कुतः?

एतस्मात् उपरि अवस्थानशक्तेरभावात्।

एवं प्रथमस्थले सामान्यैकेन्द्रियकालकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति बादरैकेन्द्रियजीवानां नानाजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।११०।।

एकजीवजघन्यकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—द्वीन्द्रियादेः सूक्ष्मैकेन्द्रियस्य वा बादरैकेन्द्रियेषु सर्वजघन्यायुष्केषु उत्पद्य द्वीन्द्रियादिषु गतस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रबादरैकेन्द्रियभवस्थितेरुपलम्भात्।

एकजीवोत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।११२।।

रहता है, तो आवली के असंख्यातवें भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि इस उक्त काल से ऊपर एकेन्द्रियों में रहने की शक्ति का अभाव है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य एकेन्द्रिय जीवों के काल कथन की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर एकेन्द्रिय जीवों में नाना जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।११०।।

अब एक जीव का जघन्यकाल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१११।।

हिन्दी टीका—किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीव का अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव का सर्व जघन्य आयु वाले बादर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर पुनः अन्य द्वीन्द्रियादि में उत्पन्न हुए जीव के क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवों की भवस्थिति पाई जाती है।

अब एक जीव का उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्टकाल अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है।।११२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अंगुलस्य असंख्यात भागः अनेकविकल्पः इति कृत्वा प्रतरावलिकादि-अधस्तनविकल्पानां प्रतिषेधं कृत्वा उपरिमविकल्पग्रहणार्थं 'असंख्यातासंख्यातानि' इति निर्देशः कृतः। प्रतरपल्यादिउपरिमविकल्पप्रतिषेधार्थं सूत्रे 'अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी' निर्देशः कृतः। अनैकेन्द्रियः सूक्ष्मैकेन्द्रियः वा बादरैकेन्द्रियेषु उत्पद्य तत्र यदि सुष्ठु दीर्घकालं तिष्ठति तर्हि असंख्यातासंख्याते अवसर्पिणी-उत्सर्पिण्यौ तिष्ठतः। पुनः निश्चयेन अन्यत्र गच्छति इति यदुक्तं भवति।**

कर्मस्थितिमावलिकायाः असंख्यातभागेन गुणिते बादरस्थितिः जाता इति परिकर्मवचनेन सह एतत्सूत्रं विरुध्यते?

नैतस्य अवक्षिप्तत्वं, सूत्रानुसारि परिकर्मवचनं न भवतीति तस्यैव अवक्षिप्तत्वप्रसंगात् ।

एवं बादरैकेन्द्रियकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि अभूवन्।

अधुना बादरैकेन्द्रिपर्याप्तनानाजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति-

बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।११३।।

सूत्रं सुगममेतत्।

एकजीवजघन्यकालनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

हिन्दी टीका—अंगुल का असंख्यातवां भाग अनेक विकल्परूप है, इसलिए प्रतरावली आदि अधस्तन विकल्पों का प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पों को ग्रहण करने के लिए सूत्र में 'असंख्यातासंख्यात' ऐसा निर्देश किया। प्रतर, पल्य आदि उपरिम विकल्पों के प्रतिषेध करने के लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इस पद का निर्देश किया है। अनेकेन्द्रिय अर्थात् अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव बादर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर, वहाँ पर यदि अति दीर्घकाल तक रहता है, तो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है। पुनः निश्चय से अन्यत्र चला जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

शंका—कर्मस्थिति को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर बादर स्थिति होती है, इस प्रकार के परिकर्म वचन के साथ यह सूत्र विरोध को प्राप्त होता है?

समाधान—परिकर्म के साथ विरोध होने से इस सूत्र के अवक्षिप्तता (विरुद्धता) नहीं प्राप्त होती है, किन्तु परिकर्म का उक्त वचन सूत्र का अनुसरण करने वाला नहीं है, इसलिए उसके ही विरोधपने का प्रसंग आता है।

इस प्रकार बादर एकेन्द्रिय जीवों के कथन की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का काल प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।११३।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव का जघन्यकाल निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है–

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **क्षुद्रभवग्रहणं संख्यातावलिमात्रं, एकं मुहूर्तं षट्षष्टिसहस्र-त्रिशत-षट्त्रिंशद्रूपमात्रखण्डानि कृत्वा एकखण्डमात्रत्वात्। एतदपि कथं ज्ञायते?**

तिण्णि सया छत्तीसा, छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं।
अंतोमुहुत्तकाले, तावदिया होंति खुद्दभवा।।१।।

इति गाथासूत्रादेव ज्ञायते।

मुहूर्तस्य एतावद्भागः संख्यातावलिमात्रः इति कथं ज्ञायते?

आवलिय अणागारे, चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिब्भाए।
मणवयणकायफासे, अवायईहासुदुस्सासे।।१।।
केवलदंसण-णाणे, कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य।
पडिवादुवसामेंतय, खवेंतए संपराए य।।२।।

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।।११४।।

हिन्दी टीका — क्षुद्रभवग्रहण का काल संख्यात आवली प्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहूर्त का छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस रूपप्रमाण खंड करने पर एक खंड प्रमाण क्षुद्रभव का काल होता है।

शंका — यह कैसे जाना है?

समाधान — (गाथार्थ) —एक अन्तर्मुहूर्त काल के छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं।।१।।

इस गाथासूत्र से जाना जाता है कि क्षुद्रभव का काल अन्तर्मुहूर्त का छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है।

शंका — मुहूर्त का छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग संख्यात आवलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना?

समाधान — गाथार्थ —अनाकार दर्शनोपयोग का जघन्य काल आगे कहे जाने वाले सभी पदों की अपेक्षा सबसे कम है।(तथापि वह संख्यात आवलीप्रमाण है।) इससे चक्षुरिन्द्रिय संबंधी अवग्रहज्ञान का जघन्य काल विशेष अधिक है। इससे श्रोत्रेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे घ्राणेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे जिह्वेन्द्रिय जनित अवग्रहज्ञान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्यकाल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है।।१।।

तद्भवस्थ केवली के केवलज्ञान और केवलदर्शन तथा सकषाय जीव के शुक्ललेश्या, इन तीनों का जघन्य काल (परस्पर सदृश होते हुए भी) उच्छ्वास के काल से विशेष अधिक है। इससे एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्ल ध्यान, इससे उपशमश्रेणी से गिरने वाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इससे उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले सूक्ष्मसाम्पराय संयत और इससे क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है।।२।।

माणद्धा कोधद्धा, मायद्धा तह चेव लोभद्धा।
खुद्दभवग्गहणं पुण, किट्टीकरणं च बोद्धव्वं[१]।।३।।

इति गाथासूत्रेभ्य एव ज्ञायते।

अंतर्मुहूर्तं अपि संख्यातावलिमात्रं चैव, ततः अंतर्मुहूर्तक्षुद्रभवग्रहणकालयोः द्वयोः नास्ति कोऽपि विशेषः, इति अंतर्मुहूर्तवचनं सूत्रार्थं संदेहमुत्पादयति?

नास्ति संदेहोऽस्मिन्, ''क्षुद्रभवग्रहणं'' इति अकथयित्वा अंतर्मुहूर्तमिति भणितजिनाज्ञायाः तयोर्विशेषोऽस्तीति अवगम्यते। तथा 'घातक्षुद्रभवग्रहणात्' बादरैकेन्द्रियपर्याप्तजीवस्य जघन्यायुः संख्यातगुणमिति भणितवेदनाकालविधानसंबंधि-अल्पबहुत्वद्वाराच्च।

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तव्यतिरिक्तः कश्चिद् जीवः सर्वजघन्यायुःबादरैकेन्द्रियपर्याप्तकेषु उत्पद्य अन्यत्र गतः, तस्य बादरैकेन्द्रियपर्याप्तस्य जघन्यकालः लभ्यते इति भणितं भवति।

अन्यत्रापि उक्तं—''एकं जीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं।

तत्कीदृशमिति चेत्?

उक्तलक्षणमुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिद् जीवः षट्षष्टिसहस्रद्वात्रिंशदधिक शतपरिमाणानि (६६१३२) जन्ममरणानि अनुभवति, तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियो

क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के जघन्य काल से मानकषाय, इससे क्रोधकषाय, इससे मायाकषाय, इससे लोभकषाय और इससे लब्ध्यपर्याप्त जीव के क्षुद्रभवग्रहण का जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है। क्षुद्रभवग्रहण के जघन्य काल से कृष्टीकरण का जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए।।३।।

इन तीन गाथासूत्रों से जाना जाता है कि क्षुद्रभव का काल भी संख्यात आवलीप्रमाण होता है।

शंका—अंतर्मुहूर्त भी तो संख्यात आवली प्रमाण ही होता है, इसलिए अंतर्मुहूर्त और ''क्षुद्रभवग्रहण'' काल, इन दोनों में कोई भेद नहीं है। अतएव यह अंतर्मुहूर्त का वचनरूप सूत्रार्थ संदेह को उत्पन्न करता है?

समाधान—इसमें कोई संदेह नहीं है, क्योंकि, सूत्र में ''क्षुद्रभवग्रहण'' ऐसा पाठ न करके अंतर्मुहूर्त ऐसा वचन कहने वाली, जिन आज्ञा से उन दोनों में भेद जाना जाता है। तथा घातक्षुद्रभवग्रहणकाल से बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव की जघन्य आयु संख्यातगुणी है इस प्रकार कहे गये वेदनाकालविधानसंबंधी अल्पबहुत्वद्वार से भी जाना जाता है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक से व्यतिरिक्त किसी जीव के सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर, पुनः अन्य पर्याय में चले जाने पर, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

अन्यत्र तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी कहा है—

एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।

प्रश्न—क्षुद्रभवग्रहण का क्या स्वरूप है?

उत्तर—पूर्व कथित लक्षण वाले अंतर्मुहूर्त के मध्य में कोई एकेन्द्रिय होकर छ्यासठ हजार एक सौ बत्तीस (६६१३२) बार जन्म मरण के दुःख का अनुभव करता है। वही जीव अंतर्मुहूर्त के मध्य में दो इन्द्रिय

---

१. धवला टीका, पुस्तक ४, पृ. ३९१।

भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टि-चत्वारिंशत्-चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति। सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवाः एतावन्त एव भवन्ति — ६६३३६।

यदा यैवान्तर्मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते। तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा[१]।''

संप्रति उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रावतारो भवति-

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।११५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **पृथिवीकायिकेषु द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि उत्कृष्टायुः सूत्रसिद्धमस्ति।**

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तभवस्थितिः असंख्यातवर्षमात्रा किं न भवति?

न भवति, तत्रासंख्यातवारं एकजीवस्य उत्पत्तेरसंभवात्।

यदि कश्चिद् जीवः बादरैकेन्द्रियेषु उत्कृष्टसंख्यातप्रमाणवारं अथवा तस्य संख्यातभागमात्रवारं उत्पद्यते तर्हि असंख्यातवर्षाणि भवन्ति?

न भवन्ति, संख्यातानि वर्षसहस्राणि इति सूत्रस्यान्यथानुपपत्तेः, अतः तत्प्रायोग्यसंख्यातवारोत्पत्तिसिद्धेः।

अविवक्षितः कश्चिद् जीवः बादरैकेन्द्रियपर्याप्तकेषु संख्यातानि वर्षसहस्राणि उत्कृष्टेन तत्र भ्रमित्वा पुनः अविवक्षितेषु निश्चयेन उत्पद्यते इति भणितं भवति।

के अस्सी (८०), तीन इन्द्रिय के साठ (६०), चतुरिन्द्रिय के चालीस (४०) और पंचेन्द्रिय के चौबीस (२४) बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है। इस प्रकार अंतर्मुहूर्त में होने वाले सारे जन्म-मरणों की गणना छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस है।

जब एक अंतर्मुहूर्त में छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म-मरण होते हैं, तब एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करता है। उसमें एक भव (जन्म) की क्षुद्रभव संज्ञा है।

अब उन्हीं जीवों की उत्कृष्ट काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है।।११५।।

हिन्दी टीका — पृथिवीकायिक जीवों में उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष प्रमाण होती है ऐसा सूत्र से सिद्ध है।

प्रश्न — बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की भवस्थिति असंख्यातवर्ष प्रमाण क्यों नहीं होती है?

उत्तर — नहीं होती है, क्योंकि उनमें असंख्यातबार एक जीव की उत्पत्ति असंभव है।

शंका — यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियों में उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बार अथवा उसके संख्यातवें भागप्रमाण बार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं?

समाधान — नहीं होते हैं, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्ष प्रमाण हैं' यह सूत्र वचन नहीं बन सकता है। इसलिए तत्प्रायोग्य-उनके योग्य संख्यातबार ही बादर एकेन्द्रियों की उत्पत्ति सिद्ध होती है।

अविवक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर संख्यात-सहस्र वर्ष प्रमाण अधिक से अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित जीवों में निश्चय से उत्पन्न होता है,यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

अधुना बादरैकेन्द्रियापर्याप्तनानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।११६।।

एकजीवजघन्यकालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।११७।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवोत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।११८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूत्रं सुगमं। अविवक्षितेन्द्रियवान् कश्चिद् जीवः बादरैकेन्द्रिय-अपर्याप्तकेषु उत्पद्य यद्यपि संख्यातसहस्रवारं तत्रैव उत्पद्यते, तर्हि अपि तेषु सर्वेषु अंतर्मुहूर्तेषु एकत्रीकृतेषु अपि एकमुहूर्तप्रमाणाभावात्। एवं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियभेदानां पर्याप्तापर्याप्तानां कालकथनमुख्यत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

संप्रति सामान्यसूक्ष्मैकेन्द्रियनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

अब बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त नाना जीवों के काल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।११६।।

अब एक जीव का जघन्यकाल कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।११७।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव का उत्कृष्ट काल प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है।।११८।।

हिन्दी—सूत्र का अर्थ सरल है। अविवक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर यद्यपि संख्यात सहस्रबार उन-उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अंतर्मूहूर्तों के एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाण का अभाव है, अर्थात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय भेद वाले पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के काल कथन की मुख्यता वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य सूक्ष्म एकेन्द्रिय नाना जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।११९।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवजघन्यकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अविवक्षितैंद्रियस्य सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तेषु सर्वजघन्यकालं स्थित्वा अविवक्षितैन्द्रियं गतस्य क्षुद्रभवग्रहणोपलंभात्।**

उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।१२१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अविवक्षितैन्द्रियेभ्यः आगत्य सूक्ष्मैकेंद्रियेषु उत्पद्य असंख्यातलोकप्रमाणमात्रं तेषां उत्कृष्टभवस्थितिं तत्र गमयित्वा अविवक्षितइन्द्रियं गच्छति।**

कुतः?

हेतुस्वरूपजिनवचनोपलंभात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तनानाजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।११९।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

एक जीव का जघन्य काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१२०।।

हिन्दी टीका—अविवक्षित इंद्रिय वाले जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों में सर्व जघन्य काल रह करके अविवक्षित इन्द्रिय वाले जीवों में गये हुए क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण जघन्य काल पाया जाता है।

अब उत्कृष्ट काल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है।।१२१।।

हिन्दी टीका—अविवक्षित अन्य इन्द्रिय वाले जीवों से आकर सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर कोई जीव असंख्यातलोकप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थिति को वहाँ बिताकर अन्य इन्द्रिय वाले जीवों में चला जाता है।

ऐसा कैसे जाना जाता है?

क्योंकि इस प्रकार के हेतुस्वरूप जिनवचन पाये जाते हैं।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक नाना जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१२२।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवजघन्यकालप्ररूपणाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तजीवानां जघन्यायु:कालप्रमाणमात्रमन्तर्मुहूर्तं अत्र गृहीतव्यं।

अत्र क्षुद्रभवग्रहणं किं न गृह्यते?

न, लब्ध्यपर्याप्तजीवान् मुक्त्वा अन्यत्र क्षुद्रभवस्य संभवाभावात्।

उत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तानां उत्कृष्टकालमपि अंतर्मुहूर्तमेव। यदि एकायु:कर्मस्थिति: संख्यातावलिका:, तर्हि संख्यातवारमसंख्यातवारं वा तत्रैव पुन: पुन: उत्पद्यमानस्य दिवस-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सरादिकाल: किं न लभ्यते?

न, तावद्वारं तत्रोत्पत्ते: असंभवात्।

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१२२।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव के जघन्य काल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।१२३।।

हिन्दी टीका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों की जघन्य आयु के कालप्रमाण मात्र अंतर्मुहूर्त काल को यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न—यहाँ क्षुद्रभवग्रहण क्यों नहीं किया गया है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तक जीवों को छोड़कर अन्यत्र क्षुद्रभव का होना संभव नहीं है।

अब उत्कृष्ट काल का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है।।१२४।।

हिन्दी टीका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्ट काल भी अंतर्मुहूर्त ही है।

शंका—यदि एक आयुकर्म की स्थिति संख्यात आवली प्रमाण है, तब संख्यातबार या असंख्यातबार वहाँ पर ही पुन: पुन: उत्पन्न होने वाले जीव के दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा संवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उतने बार उस पर्याय में उत्पत्ति होना असंभव है।

सोऽपि कथं ज्ञायते?

अंतर्मुहूर्तवचनस्यान्यथानुपपत्तेः। एकजीवस्य जघन्यायुःस्थितिकालात् तस्यैव उत्कृष्टभवस्थितिकालः संख्यातगुणः, नानायुःस्थितिसमूहनिष्पन्नत्वात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तनानाजीवकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सुहुमे इंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१२५।।

सूत्र सुगमं।

एकजीवकालप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पर्याप्तजीवानां जघन्यायुर्भिः लब्ध्यपर्याप्तजीवानां जघन्यायुःसंख्यातगुणहीनमिति प्रतिपादनार्थं क्षुद्रभवग्रहणस्योपदेशात्।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१२७।।

सूत्रं सुगमं, पूर्वमेव बहुशः प्ररूपितत्वात्।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान—अन्यथा सूत्र में 'अंतर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस अन्यथानुपपत्ति से जाना जाता है।

एक जीव की जघन्य आयुस्थिति के काल से उसी की उत्कृष्ट संसार स्थिति का काल संख्यात गुणा होता है, क्योंकि वह नाना आयुस्थितियों के समूह से निष्पन्न होता है।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक नाना जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१२५।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब एक जीव का काल प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१२६।।

हिन्दी टीका—पर्याप्त जीवों की जघन्य आयु से लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की जघन्य आयु संख्यातगुणी हीन होती है, इसका प्रतिपादन करने हेतु सूत्र में क्षुद्रभवग्रहण का उपदेश दिया गया है।

अब उत्कृष्ट काल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है।।१२७।।

पहले अनेक बार प्ररूपण करने के कारण यह सूत्र सुगम है।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेंद्रियजीवानां सामान्य-पर्याप्त-अपर्याप्तानां कालनिरूपणत्वेन नवसूत्राणि गतानि।

संप्रति विकलत्रयाणां कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१२८।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया एषां कालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।।१२९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाणां जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणं, तत्र लब्ध्यपर्याप्तानां संभवात्। पर्याप्तानां अंतर्मुहूर्तं तत्र क्षुद्रभवग्रहणस्य संभवाभावात्।**

एकजीवोत्कृष्टकालकथनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।१३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**त्रीन्द्रियाणामेकोनपंचाशद्दिवसाः उत्कृष्टायुःस्थितिप्रमाणं, चतुरिन्द्रियाणां षण्मसाः,**

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त भेद वाले जीवों का कालनिरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब विकलत्रय जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१२८।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा उनका काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।।१२९।।

हिन्दी टीका—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, क्योंकि उनमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की संभावना है। पर्याप्तक जीवों का काल अंतर्मुहूर्त है, क्योंकि पर्याप्तकों में क्षुद्रभवग्रहण की संभावना नहीं है।

अब एक जीव के उत्कृष्ट काल का कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है।।१३०।।

हिन्दी टीका—तीन इन्द्रिय जीवों की उनंचास दिवस उत्कृष्ट आयुस्थिति का प्रमाण है, चारइन्द्रिय

द्वीन्द्रियाणां द्वादशवर्षाः। एताः एकजीवापेक्षया आयुः स्थितयः एताभिः नात्र कार्यमस्ति, भवस्थितेरधिकारात्।

काः भवस्थितिः नाम?

आयुःस्थितिसमूहः भवस्थितिः कथ्यते।

यदि एवं, तर्हि असंख्यातानि वर्षसहस्राणि भवस्थितिः किं न भवति?

नैष दोषः, असंख्यातवारं संख्यातवर्षसहस्रविरोधिसंख्यातवारं वा तत्रोत्पत्तेः संभवाभावात्। अविवक्षितेन्द्रियेभ्यः आगत्य विवक्षितेन्द्रयेषु उत्पद्य संख्यातानि वर्षसहस्राणि चैव हिंडति, असंख्यातानि न परिभ्रमति इति उक्तं भवति।

अधुना लब्ध्यपर्याप्तविकलत्रयाणां नानाजीवकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१३१।।

सूत्रं सुगमं।

एकजीवापेक्षया जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१३२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१३३।

जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति छह महिना है और दो इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष है। ये आयुकर्म की स्थितियाँ एक जीव की अपेक्षा कही गई हैं, इनसे यहाँ पर कोई कार्य नहीं है। क्योंकि यहाँ पर भवस्थिति का अधिकार है।

प्रश्न— भवस्थिति क्या है?

उत्तर— आयु के स्थितिसमूह को भवस्थिति कहते हैं।

शंका— यदि ऐसा है, तो असंख्यात हजार वर्षप्रमाण भव स्थिति क्यों नहीं होती है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि असंख्यात बार अथवा संख्यात वर्ष सहस्र के विरोधी संख्यातबार भी उनमें उत्पत्ति होने की संभावना का अभाव है। अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवों से आ करके विवक्षित इन्द्रियवाले जीवों में उत्पन्न होकर संख्यात सहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असंख्यात वर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिए।

अब लब्ध्यपर्याप्तक विकलत्रय जीवों में नाना जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१३१।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल का निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१३२।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है।।१३३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। विशेषेण तु—द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणाम् लब्ध्यपर्याप्तानां यथाक्रमेण अन्तरविरहिताः अशीति-षष्टि-चत्वारिंशद् लब्ध्यपर्याप्तभवाः। यद्यपि एतावद्वारं एको जीवः तत्रतनोत्कृष्टस्थित्याः उत्पद्यते, तर्ह्यपि तद्भवस्थितिकालसमासः अंतर्मुहूर्तश्चैव।**

कथमेतज् ज्ञायते?

अंतर्मुहूर्तोपदेशान्यथानुपपत्तेः। अन्यथानुपपत्त्या एव ज्ञायते यत् तेषां भवानां संकलनमन्तर्मुहूर्तमात्रमेव भवतीति।

एवं चतुर्थस्थले विकलत्रयपर्याप्तापर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना पंचेन्द्रियाणां नानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि अवतरन्ति—

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१३४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१३५।।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवम-सदपुधत्तं।।१३६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सामान्यपंचेन्द्रियाणां पूर्वकोटिपृथक्त्वेनाभ्यधिकानि सागरोपमसहस्राणि,**

हिन्दी टीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेष बात यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव के यथाक्रम से अंतर रहित होकर अस्सी, साठ, चालीस, लब्ध्यपर्याप्तक भव होते हैं। यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थिति के काल का जोड़ अंतर्मुहूर्त मात्र ही होता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—अन्यथा सूत्र में अंतर्मुहूर्त का उपदेश नहीं हो सकता था। इस अन्यथानुपपत्ति से जाना जाता है कि उन भवों का जोड़ अंतर्मुहूर्त मात्र ही होता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में विकलत्रय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के जघन्य और उत्कृष्ट काल का प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रियों में नाना जीव तथा एक जीव के जघन्य और उत्कृष्ट काल का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं–

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्व काल होते हैं।।१३४।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।१३५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल पूर्व कोटी पृथक्त्व से अधिक सागरोपम सहस्र और सागरोपमशत- पृथक्त्व प्रमाण है।।१३६।।

हिन्दी टीका—सामान्य पंचेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्टकाल पूर्व कोटी पृथक्त्व से अधिक सागरोपम

पंचेन्द्रियपर्याप्तानां सागरोपमशतपृथक्त्वं।

एतस्योदाहरणं—कश्चिद् एको जीवः एकेन्द्रियात् विकलेन्द्रियेभ्यो वा आगत्य सामान्यपंचेन्द्रिय-पर्याप्तपंचेन्द्रिययोः उत्पद्य स्वकस्थितिं स्थित्वा अन्येन्द्रियजीवं गतः। एकस्यैव सागरोपमसहस्रस्य स्वकान्तर्गतबहुत्वं दृष्ट्वा ''सागरोवमसहस्साणि'' इति सूत्रे बहुवचननिर्देशः कृतः।

पंचेन्द्रियसासादनाद्ययोगिपर्यंतानां समयनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१३७।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं पंचमस्थले पंचेन्द्रियाणां कालनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति लब्ध्यपर्याप्तपंचेन्द्रियकालकथनाय सूत्रमवतरति—

पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदियअपज्जत्तभंगो।।१३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं, उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तमित्यादिना भेदाभावात्। केवलं तु-पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकेषु निरंतरोत्पद्यमानभववाराःचतुर्विंशतयो भवन्ति।**

सहस्र है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्ट काल सागरोपमशत पृथक्त्व है।

अब इन का उदाहरण कहते हैं–कोई एक जीव एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय से आकर पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर अपनी स्थिति तक रहकर अन्य इन्द्रिय को चला गया। एक ही सागरोपमसहस्र के अपने अंतर्गत बहुत्व को देखकर 'सागरोपम सहस्साणि' ऐसा सूत्र में बहुवचन का निर्देश किया गया है।

अब पंचेन्द्रियों में सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त जीवों का समय बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।१३७।।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार पंचमस्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का काल निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के काल के समान है।।१३८।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है इत्यादिक रूप से कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में लगातार-निरंतर उत्पन्न होने के भव चौबीस बार होते हैं।

तात्पर्यमेतत्—पंचेन्द्रियाणां समग्रतामवाप्य पर्याप्तको भूत्वाधुना जैनेश्वरीं वाणीं लब्ध्वा प्रमादं परिहृत्य कथमपि भेदाभेदरत्नत्रयाराधना एवं कर्तव्या, यतः पुनः अस्मिन्ननंतसंसारे कदाचिदपि एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु लब्ध्यपर्याप्तकेषु च जन्म न भवेत् आजवंजवपरिभ्रमणं च शीघ्रमेव छिद्येतेति।

एवं लब्ध्यपर्याप्तपंचेन्द्रियसमयनिरूपणपरं एकं सूत्रं गतं।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

तात्पर्य यह है कि हम सभी को पाँचों इन्द्रियों की समग्रता—परिपूर्णता प्राप्त करके पर्याप्तपने को पाकर अब जिनेन्द्र भगवान की वाणी को ग्रहण करके प्रमाद छोड़कर किसी भी तरह से भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना इस प्रकार करना चाहिए जिससे पुनः इस अनंतसंसार में कभी भी एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय आदि पर्यायों में एवं लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था में जन्म न लेना पड़े तथा शीघ्र ही यह संसार परिभ्रमण समाप्त हो जावे।

इस प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों का समय निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकार:

अथ पंचभिः स्थलैः द्वाविंशतिसूत्रैः कायविरहितसिद्धपरमेष्ठिविपरीतस्थावरत्रसकायसहितजीवानां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यपृथिवीआदिचतुष्कानां कालनिरूपणत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादि त्रीणि सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले बादरस्थावराणां कालप्रतिपादनत्वेन ''बादरपुढवि'' इत्यादि नव सूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले सूक्ष्मस्थावरकायानां कालकथनमुख्यत्वेन ''सुहुमपुढवि'' इत्यादि द्वे सूत्रे। तदनु चतुर्थस्थले निगोदजीवानां समयज्ञापनत्वेन ''णिगोद'' इत्यादि चत्वारि सूत्राणि। तदनंतरं पंचमस्थले त्रसपर्याप्तापर्याप्तकानां कालकथनमुख्यत्वेन ''तसकाइय'' इत्यादिसूत्रपंचकं इति समुदायपातनिका।

अधुना पृथिव्यादिचतुष्कानां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतरति—

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१३९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१४०।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा।।१४१।।

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में बाईस सूत्रों के द्वारा काय से विरहित सिद्ध परमेष्ठियों से विपरीत स्थावर और त्रसकायसहित जीवों की कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य पृथिवीकाय आदि चार प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों का कालनिरूपण करने हेतु ''कायाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में बादर स्थावर जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले ''बादर पुढवि'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में सूक्ष्म स्थावरकायिक जीवों का कालकथन करने हेतु ''सुहुमपुढवि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद चतुर्थ स्थल में निगोदिया जीवों का समय बतलाने वाले ''णिगोद'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पंचमस्थल में त्रसकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के काल का कथन करने वाले ''तसकाइय'' इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिक कही गई है।

अब पृथिवीकायिक आदि चार प्रकार के जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं——

सूत्रार्थ —

कायमार्गणा के अनुवाद से पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१३९।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१४०।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण है।।१४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **एकः अविवक्षितकायिकः विवक्षितकायिकेषु उत्पद्य सर्वजघन्यकालं स्थित्वा अविवक्षितकायिकं गतः, लब्धः क्षुद्रभवग्रहणकालः। तथैव अविवक्षितकायिकः एको जीवः अर्पितकायिकेषु उत्पद्य सर्वोत्कृष्टं अर्पितकायिकस्थितिमसंख्यातलोकमात्रं परिभ्रम्य अनर्पितकायिकं गतः, लब्धः उत्कृष्टकालः। तथा च नानाजीवापेक्षया सर्वकालः एव।**

एवं प्रथमस्थले चतुःस्थावरकालकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति बादरपृथिव्यादिस्थावराणां नानाजीवैकजघन्योत्कृष्टस्थितिकथनाय सूत्रत्रयमवतरति —

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादर-वणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१४२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१४३।।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।।१४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **नानाजीवानां अनुच्छिन्नसंतानत्वात् सर्वकालं।**

एकजीवस्य जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणमात्रकालः। उत्कृष्टेन तु अत्र केवलं-दर्शनमोहनीयस्य सप्ततिकोटिकोटिसागरप्रमाणा उत्कृष्टस्थितिर्गृहीतव्या, प्रधानत्वात्, संगृहीताशेषकर्मस्थितेश्च। अस्यैवोदाहरणं—

हिन्दी टीका — अविवक्षित काय वाला कोई एक जीव विवक्षित काय वाले जीवों में उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रहकर अविवक्षित काय को प्राप्त हुआ। तब एक जीव का क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण जघन्यकाल उपलब्ध हुआ।

उसी प्रकार अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवों में उत्पन्न होकर विवक्षित काय की असंख्यात लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुनः उत्कृष्ट काल वाले अविवक्षित काय को प्राप्त हो गया। यह एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल हुआ। पुनश्च नाना जीव की अपेक्षा सर्वकाल ही है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चार प्रकार के स्थावर जीवों के काल का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवों में नाना जीवों की एवं एक जीव की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति का कथन करने के लिए तीन सूत्रों का अवतार हो रहा है —

सूत्रार्थ —

बादरपृथिवीकायिक, बादरजलकायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१४२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्तजीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१४३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कर्मस्थिति प्रमाण है।।१४४।।

हिन्दी टीका — यहाँ यह कथन इसलिए किया है क्योंकि नाना जीवों की सर्वकाल अविच्छिन्न संतान-परम्परा पाई जाती है। एक जीव का जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल है। उत्कृष्ट से तो यहाँ केवल

अविवक्षितबादरकायिकः विवक्षितकायिकेषु उत्पद्य तत्र सप्ततिकोटिकोटिसागरप्रमाणमात्रं कालं स्थित्वा अविवक्षितबादरकायिकं गतः।

संप्रति बादरपृथिव्यादिस्थावरकायपर्याप्तानां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतरति—

बादर-पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१४५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४६।।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।१४७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**द्वयोःसूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कृष्टेन कथ्यते—शुद्धपृथिवीपर्याप्तजीवानां आयुःस्थितिप्रमाणं द्वादश वर्ष सहस्राणि (१२०००), खरपृथिवीकायिकपर्याप्तानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि (२२०००), अप्कायिकपर्याप्तानां सप्तवर्षसहस्राणि (७०००), तेजस्कायिकपर्याप्तानां त्रयो दिवसा (३ दिनानि), वायुकायिकपर्याप्तानां त्रीणि वर्षसहस्राणि (३०००), वनस्पतिकायिकपर्याप्तानां दशवर्षसहस्राणि (१००००), उत्कृष्टायुःस्थितिप्रमाणं भवति। एतासु आयुःस्थितिषु संख्यातसहस्रवारं**

दर्शनमोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्टस्थिति ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि उसकी यहाँ प्रधानता है और उसी में सभी कर्मों की स्थिति संग्रहीत है। उसी का उदाहरण दिया है–अविवक्षित बादरकाय वाला कोई जीव विवक्षित बादरकायिकों में उत्पन्न होकर वहाँ सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण काल तक रह करके विवक्षित बादरकायिक में चला गया। यह एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति कही गई है।

अब बादर पृथिवी आदि स्थावरकायिक पर्याप्त जीवों का काल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरतेजस्कायिकपर्याप्त, बादरवायुकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१४५।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१४६।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है।।१४७।।

हिन्दी टीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ तृतीयसूत्र के अनुसार उत्कृष्टरूप से कथन करते हैं—

शुद्ध पृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवों की आयु स्थिति का प्रमाण बारह हजार (१२०००) वर्ष है। खर-पृथिवीकायिकपर्याप्तक जीवों की स्थिति का काल बाईस हजार (२२०००) वर्ष है। जलकायिक पर्याप्त जीवों की स्थिति का प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष है। तेजस्कायिकपर्याप्तक जीवों की स्थिति का प्रमाण तीन (३) दिवस है। वायुकायिकपर्याप्तक जीवों की स्थिति का प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष है।

उत्पन्ने सति संख्यातानि वर्षसहस्राणि भवन्ति। उदाहरणं—एकः अनर्पितकायिकः, अर्पितकायिकपर्याप्तेषु उत्पन्नः। पुनः तस्मिंश्चैव संख्यातानि वर्षसहस्राणि स्थित्वा अनर्पितकायिकं गतः।

संप्रति बादरपृथिव्यादिलब्ध्यपर्याप्तनानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

बादरपुढवि-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१४८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१४९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१५०।।

त्रयाणामपि सूत्राणामर्थः सुगमः।

एवं द्वितीयस्थले बादरस्थावरपर्याप्तापर्याप्तकालकथनमुख्यत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

सूक्ष्मपृथिव्यादिस्थावरसामान्य-पर्याप्त-अपर्याप्तानां कालकथनाय सूत्रद्वयस्यावतारो भवति—

वनस्पतिकायिकपर्याप्तक जीवों की स्थिति का प्रमाण दश हजार (१००००) वर्ष है। इन आयुस्थितियों में संख्यात हजार बार उत्पन्न होने पर संख्यात सहस्र वर्ष हो जाते हैं।

इसका उदाहरण—एक अविवक्षित काय वाला कोई जीव विवक्षित काय वाले पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। पुनः उसी ही काय में संख्यात सहस्र वर्ष रह करके अविवक्षित काय को प्राप्त हो गया।

अब बादर पृथिवीकायिक आदि लब्ध्यपर्याप्तक नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्टकाल प्रतिपादित करने के लिए तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

बादरपृथिवीकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरजलकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरतेजस्कायिक-लब्ध्यपर्याप्तक, बादरवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येक-शरीरलब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१४८।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१४९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१५०।।

उक्त तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादर स्थावर पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का काल कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्म पृथिवी आदि स्थावरकायिक सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के काल का कथन करने वाले दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्ता पज्जत्ताणं भंगो।।१५१।।

वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो।।१५२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नानाजीवं प्रतीत्य एतेषां स्थावराणां सर्वकाल:, एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं अंतर्मुहूर्तश्च उत्कृष्टेन असंख्याता: लोका:। पर्याप्तानामपर्याप्तानां च अंतर्मुहूर्तमित्येतै: सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताभ्यां विशेषाभावात्। वनस्पतिकायानामपि एवमेव, केवलं-उत्कृष्टेन अनंतकालं असंख्यात-पुद्गलपरिवर्तमित्येतेन एकेन्द्रियेभ्य: वनस्पतिकायिकानां भेदाभावात्।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मपृथिव्यादि-कालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति निगोद नानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयं अवतरति —

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१५३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१५४।।

सूत्रार्थ —

सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोदजीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों का काल सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक और अपर्याप्तकों के काल के समान है।।१५१।।

वनस्पतिकायिक जीवों का काल एकेन्द्रिय जीवों के काल के समान है।।१५२।।

हिन्दी टीका — नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल, एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल, क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक है। पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों का काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादि रूप से सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों के साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिक के काल में विशेषता का अभाव है। वनस्पतिकायिक जीवों का काल भी इसी प्रकार है, केवल उत्कृष्टकाल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूप से एकेन्द्रियों से वनस्पतिकायिक जीवों के काल का कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्म पृथिवी आदि स्थावरकायिक जीवों का काल निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब निगोदिया नाना जीव और एक जीव के जघन्य एवं उत्कृष्टकाल का निरूपण करने हेतु चार सूत्रों का अवतरण होता है —

सूत्रार्थ —

निगोदजीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१५३।।

एक जीव की अपेक्षा निगोदजीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१५४।।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टं।।१५५।।

बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो।।१५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **निगोदजीवानां उत्कृष्टेन कालः-एकः अन्यकायात् आगत्य निगोदेषु उत्पन्नः। तत्र सार्धद्वयपुद्गलपरिवर्तनानि परिवर्त्य अन्यकायं गतः। एवं-बादरनिगोदजीवानां ननाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं, उत्कृष्टेन कर्मस्थितिः, इति एतैः बादरनिगोदानां बदरपृथिवीकायिकेभ्यः विशेषाभावात्।**

एवं चतुर्थस्थले निगोदजीवानां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना त्रसकायसामान्य-त्रसकायपर्याप्तनानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयं अवतरति —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं सव्वद्धा।।१५७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१५८।।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि वे सागरोवम-सहस्साणि।।१५९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।१५५।।

बादरनिगोदजीवों का काल बादरपृथिवीकायिक जीवों के समान है।।१५६।।

हिन्दी टीका — निगोदिया जीवों का उत्कृष्टकाल कहते हैं — कोई एक जीव अन्य काय से आ करके निगोदिया जीवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अढ़ाई पुद्गल परिवर्तनकाल तक परिभ्रमण करके अन्य काय को प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार बादर निगोदिया जीवों में नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्टकाल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूप से बादरनिगोदिया जीवों के काल का बादरपृथिवीकायिक जीवों के काल से कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में निगोदिया जीवों का काल प्रतिपादित करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए। अब त्रसकायिक सामान्य और त्रसकायिक पर्याप्त नाना जीव तथा एक जीव का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टिजीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१५७।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१५८।।

त्रसकायिक जीवों का उत्कृष्टकाल पूर्वकोटीपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्टकाल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण है।।१५९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **त्रसकायविरहितकालाभावात् सर्वकालः। एषां त्रसकायानां पर्याप्तानां च जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तः।**

एषां क्षुद्रभवग्रहणं कालं किन्नोक्तं?

न, क्षुद्रभवग्रहणापेक्षया मिथ्यात्वस्य जघन्यकालस्य स्तोकत्वात्।

उत्कृष्टकालेन कश्चिदेको जीवः स्थावरकायादागत्य सामान्यत्रसकायिकेषु उत्पन्नः,स पूर्वकोटि-पृथक्त्वाभ्यधिकद्विसागरसहस्रे तत्र भ्रमित्वा स्थावरकायं गतः। इतश्च कश्चिद् जीवः स्थावरकायादागत्य द्विसहस्रसागरौ परिभ्रम्य स्थावरं गतः। एतस्मादुपरि तत्र त्रसकायिकेषु अवस्थानसंभवाभावात्।

एषां सासादनाद्ययोगिपर्यंतकालनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१६०।।

सुगमं सूत्रमेतत्।

त्रसलब्ध्यपर्याप्तानां कालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।।१६१।।

हिन्दी टीका — त्रसकाय से विरहित काल का अभाव होने से त्रसजीव सर्वकाल होते हैं। इन त्रसकायिक और इनके पर्याप्तकों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका — 'त्रसकायिक जीवों का अन्तर्मुहूर्तकाल है, ऐसा कहा है, किन्तु 'क्षुद्रभवग्रहण प्रमाणकाल है', ऐसा क्यों नहीं कहा?

समाधान — नहीं, क्योंकि क्षुद्रभवग्रहण के काल को देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्व का काल और भी छोटा है।

उत्कृष्टकाल की अपेक्षा कोई एक जीव स्थावरकाय से आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवों में और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। उनमें जो सामान्य त्रसकायिक जीवों में उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकाय को प्राप्त हुआ तथा दूसरा कोई जीव भी स्थावरकाय से आकर दो हजार सागरोपमप्रमाण उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकाय में चला गया, क्योंकि इसके ऊपर त्रसकाय में रहना संभव नहीं है।

अब उन्हीं सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त जीवों के काल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तक का काल गुणस्थान के समान है।।१६०।।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तकों का काल पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकों के समान है।।१६१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः, एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं। उत्कृष्टेन द्वि-त्रि-चतुः, पंचेन्द्रियापर्याप्तेषु यथाक्रमेण अशीति-षष्टिचत्वारिंशत्-चतुर्विंशतिअनुबद्धभवेषु बहुशतवार-परिवर्तन-संभूतरन्तर्मुहूर्तकालः इत्येतैः विशेषाभावात्।**

तात्पर्यमेतत्—त्रसपर्याप्तराशेः कालः द्विसहस्रसागराः सन्ति। तस्मिन्नपि विकलत्रयाणां असंज्ञि-पंचेन्द्रियाणां च कालः व्यर्थमेव। अतः पंचेन्द्रियपर्याप्तानां कालः सागरोपमशतपृथक्त्वमेव।

उक्तं च—''पंचिंदियपज्जत्ताणं सागरोपमसदपुधत्तं[1]।।''

अतः एतज्ज्ञायते कश्चिद् जीवः त्रसेषु पंचेन्द्रियो भूत्वा अधिकतमानिसप्ताष्टौ शतानि वा सागरोपमानि व्यतीत्य नियमेन विकलत्रयेषु स्थावरेषु वा गमिष्यत्येव। यदि कदाचिद् कश्चिद् भव्यः एषु कालेषु मध्ये सम्यग्दर्शनमवाप्य भेदाभेदरत्नत्रयबलेन धर्म्यशुक्लध्यानबलेन च निजात्मोपलब्धिं कृत्वा मोक्षं गम्येत तर्हि संसारपरिभ्रमणं नश्येत् अन्यथा यदि स्थावरेषु गच्छेत्तर्हि न जाने कदा तत्रत्यादागमनं भवेत्, तत्र अनंतकालोऽपि स्थातुं शक्नोति किं च मनसोऽभावे उपदेशस्यावकाशोऽपि नास्ति तत्र। ततः एतत् ज्ञात्वा त्रसपंचेन्द्रियपर्याप्तावस्थां इंद्रियसमग्रतां च लब्ध्वा कथमपि कोटिप्रयत्नेन सम्यग्दर्शनं स्थिरीकृत्य ज्ञानाराधनां कारं कारं सम्यक्चारित्रं अवलम्ब्य मनुष्यपर्यायः सार्थकः कर्तव्यः। पुनश्च स्थावरकायगमनागमनाय जलाञ्जलिं दत्वा सिद्धालये गत्वानन्तानन्तकालस्तत्रैव स्थातव्यः, कदाचिदपि संसारे पुनरागमनं न कर्तव्यम्।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल, एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्टकाल द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों में यथाक्रम से अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस क्षुद्रभवों में कई सौ बार परिवर्तन से उत्पन्न हुआ अन्तर्मुहूर्त काल होता है, इसके अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है।

तात्पर्य यह है कि पर्याप्तक त्रस जीवराशि का काल दो हजार सागर है। उसमें भी विकलत्रय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का काल व्यर्थ ही है। अतः पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का काल सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमाण ही है।

कहा भी है—''पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्टकाल सागरोपमशतपृथक्त्व है।'' अतः यह ज्ञात होता है कि कोई जीव त्रसों में पंचेन्द्रिय जीवों के रूप में उत्पन्न होकर अधिकतम सात सौ या आठ सौ सागरोपम काल को व्यतीत करके नियम से विकलत्रय अथवा स्थावरों में जाएगा। यदि कदाचित् कोई भव्य जीव इन कालों के बीच में सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर भेदाभेद रत्नत्रय के बल से एवं धर्म-शुक्लध्यान के बल से निज आत्मा की उपलब्धि करके मोक्ष चला जावे, तो उसका संसारपरिभ्रमण नष्ट हो जाएगा। अन्यथा यदि मरकर स्थावरकायिक जीवों में चला गया तब न जाने कब उस पर्याय से पुनरागमन होगा? वहाँ अनन्तकाल तक भी रह सकता है, क्योंकि मन के अभाव में उपदेश की प्राप्ति भी वहाँ नहीं हो सकती है। इसलिए ऐसा जानकर त्रस पंचेन्द्रियपर्याप्त अवस्था को एवं इन्द्रियों की समग्रता-पूर्णता को प्राप्त करके किसी भी तरह करोड़ों प्रयत्नों से सम्यग्दर्शन को स्थिर-दृढ़ करके ज्ञानाराधना कर-करके सम्यक्चारित्र का अवलम्बन लेकर अपनी मनुष्यपर्याय को सार्थक करना चाहिए। पुनः आगे स्थावरकाय में होने वाले गमनागमन को तिलांजलि देकर सिद्धालय पर जाकर वहीं अनन्तानन्त काल तक स्थित रहना चाहिए और संसार में कभी भी पुनरागमन नहीं करना चाहिए।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ४००।

एवमेव प्रोक्तमपि श्री चन्द्रप्रभस्तुतौ —

शिखरिणीछंद — शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः।
विधत्ते नानाभूपवनजलवन्हिद्रुमतनुम्।।
त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्।
स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः[१]।।२।।

एवं पंचमस्थले त्रसपर्याप्त-अपर्याप्तकालनिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार की भावना श्रीचन्द्रप्रभु भगवान की स्तुति में भी व्यक्त की गई है —

श्लोकार्थ — इस संसार में प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्मों के उदय से अनादिकाल से अनेक प्रकार के पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि स्थावर शरीरों को धारण करता है। पुनः कभी पापकर्म की मन्दता से दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि त्रसपर्यायों को प्राप्त करके अतिप्रयत्न से पुण्यकार्य को करके कोई प्राणी अपनी शुद्धात्मा में स्थिर हो जाते हैं, तब वे मोक्षफलरूप कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार पंचमस्थल में त्रसजीवों के पर्याप्त और अपर्याप्तकाल का निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम नाम के प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में कायमार्गणा नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. जिनस्तोत्र संग्रह पृ. १३६ ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ त्रयोदशस्थलैः पंचषष्टिसूत्रैः कायवाङ्मनसां परिस्पन्दलक्षणयोगमार्गणाधिकारः चतुर्थः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले सासादन-मिश्र-उपशामक-क्षपक-विरहितशेषगुणस्थानवर्तिषु मनोयोगवचनयोगसहितानां कालप्ररूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-गुणस्थानवर्तिकालप्रतिपादनत्वेन ''सासण'' इत्यादि पंच सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले चतुरुपशामक-क्षपकानां जघन्योत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात्-चतुर्थस्थले सामान्यकाययोगिनां कालप्ररूपणत्वेन ''कायजोगीसु'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले औदारिककाययोगिनां कालकथनत्वेन ''ओरालिय'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। पुनः षष्ठस्थले औदारिकमिश्रयोगिनां समयनिरूपणत्वेन ''ओरालियमिस्स'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। पुनश्च सप्तमस्थले औदारिकमिश्रयोगे असंयतगुणस्थानकालनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु अष्टमस्थले औदारिकमिश्रयोगि-सयोगिकेवलिसमयप्रतिपादनमुख्यत्वेन ''सजोगि'' इत्यादिसूत्रत्रयं। अनंतरं नवमस्थले वैक्रियिकयोगिकाल-कथनप्रकारेण ''वेउव्विय'' इत्यादि सूत्र पंचकं। तदनंतरं दशमस्थले वैक्रियिकमिश्रयोगिसमयनिरूपणत्वेन ''वेउव्वियमिस्स'' इत्यादिसूत्राणि अष्टौ। पुनश्च एकादशस्थले आहारकाययोगिनां कालप्रतिपादनत्वेन ''आहार'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वादशस्थले आहारमिश्रयोगिनां महामुनीनां समयकथनमुख्यत्वेन

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तेरह स्थलों में पैंसठ (६५) सूत्रों के द्वारा काय-वचन और मन के परिस्पंदनरूप लक्षण वाले चतुर्थ योगमार्गणा नाम के अधिकार का कथन किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सासादन, मिश्र, उपशामक, क्षपक इनसे रहित शेष गुणस्थानवर्ती जीवों में मनोयोग और वचनयोग सहित जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का काल प्रतिपादन करने की मुख्यता से ''सासण'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में चार उपशामक और चार क्षपकश्रेणी वाले जीवों के जघन्य और उत्कृष्टकाल को बतलाने वाले ''चदुण्हं'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में सामान्य काययोगी जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु ''कायजोगीसु'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में औदारिककाययोगी जीवों के काल का कथन करने वाले ''ओरालिय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में औदारिक मिश्रकाययोगियों का समय बतलाने हेतु ''ओरालियमिस्स' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके आगे सातवें स्थल में औदारिकमिश्रकाययोग में असंयतगुणस्थानवर्ती जीवों का काल निरूपण करने वाले ''असंजद'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद आठवें स्थल में औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगकेवली भगवन्तों का समय प्रतिपादन करने वाले ''सजोगि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। अनन्तर नवमें स्थल में वैक्रियिककाययोगी जीवों का काल कथन करने हेतु ''वेउव्विय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। इसके पश्चात् दशवें स्थल में वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का समय निरूपण करने की मुख्यता वाले ''वेउव्वियमिस्स'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनश्च ग्यारहवें स्थल में आहारककाययोगी जीवों का कालप्रतिपादन करने वाले ''आहार'' इत्यादि चार सूत्र हैं। आगे बारहवें स्थल में आहारकमिश्रकाययोगी महामुनियों का समय बतलाने की मुख्यता वाले ''आहारमिस्स'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् तेरहवें स्थल

''आहारमिस्स'' इत्यादिसूत्रचतुष्कं। तत्पश्चात् त्रयोदशस्थले कार्मणकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया कालप्रतिपादनत्वेन ''कम्मइय'' इत्यादिना सूत्राणि दश इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना योगमार्गणायां मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-सयोगिनां मनोवचनयोगिनां समयप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१६२।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एकजीवापेक्षया एषां कालकथनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतस्य सूत्रस्य अर्थनिश्चयसमुत्पादनार्थं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानि आश्रित्य एकसमयप्ररूपणा क्रियते। अत्र तावत् योगपरावृत्ति-गुणपरावृत्ति-मरण-व्याघातैः मिथ्यात्वगुणस्थानस्य एकसमयः प्ररूपयिष्यते।

तद्यथा—एकः सासादनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा मनोयोगेन स्थितः। मनोयोगकाले एक समयावशेषे मिथ्यात्वं गतः, एकसमयं मनोयोगेन सह मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमये

में कार्मणकाययोगी जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा काल कथन करने हेतु ''कम्मइय'' इत्यादि दश सूत्र हैं। यह इस अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका बताई गई है।

अब योगमार्गणा में मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त और सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का समय प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१६२।।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब एक जीव की अपेक्षा उपर्युक्त गुणस्थानों का काल कथन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है-

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१६३।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र के अर्थ-निश्चय के समुत्पादन हेतु मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों को आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा की जाती है-उनमें से पहले योगपरिवर्तन गुणस्थान, परिवर्तन मरण और व्याघात इन चारों के द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थान का एक समय प्ररूपण किया जाता है। वह इस प्रकार है-सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोग के साथ विद्यमान था। मनोयोग के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्व को

मिथ्यादृष्टिश्चैव, किन्तु वचनयोगी काययोगी वा जातः। एवं योगपरावर्तनैः पंचविधा एकसयमप्ररूपणा कृता।

कथं समयभेदो भवति?

सासादनादिगुणस्थान-पश्चात्कृतत्वेनेति।

अधुना गुणस्थानपरावृत्त्या एकसमयः कथ्यते—एकः मिथ्यादृष्टिः वचनयोगेन काययोगेन वा स्थितः। तस्य वचनकाययोगेषु क्षीणेषु मनोयोगः आगतः। मनोयोगेन सह एकसमये मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमयेऽपि मनोयोगी चैव, किंतु सम्यग्मिथ्यात्वं वा असंयमेन सह सम्यक्त्वं वा संयमासंयमं वा अप्रमत्तभावेन संयमं वा प्रतिपन्नः। एवं गुणस्थानपरावृत्त्या चतुर्विधा एकसमयप्ररूपणा कृता।

कथमत्र समयभेदः?

प्रतिपद्यमानगुणस्थानभेदेनेति।

अत्र पूर्वोक्तपंचसु समयेषु संप्रतिलब्धचतुःसमये प्रक्षिप्ते नवभंगा भवन्ति।

कश्चित् एको मिथ्यादृष्टिःवचनयोगेन काययोगेन वा स्थितः। पुनः योगसंबंधिकालक्षयेण मनोयोगः आगतः। एकसमयं मनोयोगेन सह मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमये मृतः। यदि तिर्यक्षु वा मनुष्येषु वा उत्पन्नः, तर्हि कार्मणकाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी वा जातः। अथवा यदि देवनारकयोः उत्पन्नः तर्हि कार्मणकाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी वा जातः। एवं मरणेन एक भंगे लब्धे पूर्वोक्तनवभंगेषु प्रक्षिप्ते दशभंगा भवन्ति (१०)।

प्राप्त हुआ। वहाँ पर एक समय मात्र मनोयोग के साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया। द्वितीय समय में भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोग से वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया। इस प्रकार योगपरिवर्तन के साथ पाँच प्रकार से एक समय की प्ररूपणा की गई।

शंका—यहाँ पर एक समय से दूसरे समय में भेद कैसे होता है?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानों को पीछे करने से अर्थात् सासादनादि गुणस्थानों के बदलने से समयभेद बन जाता है।

अब गुणस्थान परिवर्तन के द्वारा एक समय की प्ररूपणा कहते हैं। वह इस प्रकार है—

कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। उनके वचनयोग अथवा काययोग का काल क्षीण होने पर मनोयोग आ गया, तब मनोयोग के साथ एक समय में मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समय में भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व को, अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से गुणस्थान के परिवर्तन द्वारा चार प्रकार से एक समय की प्ररूपणा की गई।

शंका—यहाँ पर एक समय से दूसरे समय में भेद कैसे होता है?

समाधान—आगे प्राप्त होने वाले गुणस्थान के भेद से समय में भेद हो जाता है। पूर्वोक्त योग परिवर्तन संबंधी पाँच समयों में साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थान संबंधी चार समयों को प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग हो जाते हैं। कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। पुनः योगसंबंधी काल के क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया। तब एक समय मनोयोग के साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और दूसरे समय में मरा। सो यदि वह तिर्यंचों में या मनुष्यों में उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। अथवा यदि देव या नारकियों में उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हो

व्याघातेन एको मिथ्यादृष्टिः वचनयोगेन काययोगेन वा स्थितः। तयोः वचनकाययोगयोः क्षयेण तस्य मनोयोगः आगतः। एकसमयं मनोयोगेन मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमये व्याघातात् काययोगी जातः। लब्धः एक समयः। एवं पूर्वोक्तदशभंगेषु प्रक्षिप्ते एकादश भंगाः (११)।

अत्रोपयोगिनी गाथा—

गुणजोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि।
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे[1]।।

एतस्मिन् विवक्षितगुणस्थाने स्थितजीवाः इमं अविवक्षितगुणस्थानं प्रतिपद्यन्ते, न प्रतिपद्यन्ते इति ज्ञात्वा गुणस्थानप्रतिपन्नाः अपि इमं विवक्षितगुणस्थानं गच्छन्ति, न गच्छन्ति इति चिन्तयित्वा असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत-प्रमत्तसंयतानां च चतुर्विधा एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या। एवमप्रमत्तसंयतानां प्ररूपणा ज्ञातव्या।

विशेषेण तु व्याघातेन विना त्रिविधा एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।

अप्रमत्तसंयतस्य किमर्थं व्याघातो नास्ति?

अप्रमाद-व्याघातयोः सहानवस्थानलक्षणविरोधात्।

अधुना सयोगिकेवलिनः एकसमयप्ररूपणा क्रियते—एक क्षीणकषायः मनोयोगेन स्थितः, मनोयोगस्य एकसमयेऽवशिष्टे सयोगी जातः। एकसमयं मनोयोगेन दृष्टः, सयोगिकेवली भगवान् द्वितीयसमये वचनयोगी काययोगी वा जातः। एवं चतुःषु मनोयोगेषु पंचसु वचनयोगेषु पूर्वोक्तगुणस्थानां एकसमयप्ररूपणा कर्तव्याः।

गया। इस प्रकार मरण से प्राप्त एक भंग को पूर्वोक्त नौ भंगों में प्रक्षिप्त करने पर दश भंग हो जाते हैं। अब व्याघात से लब्ध होने वाले एक भंग की प्ररूपणा करते हैं–कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। सो उन वचनयोग अथवा काययोग के क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया। तब एक समय मनोयोग के साथ मिथ्यात्व दृष्ट हुआ और द्वितीय समय में वह व्याघात को प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया। इस प्रकार से एक समय लब्ध हुआ। पूर्वोक्त दस भंगों में इस एक भंग के प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं। इस विषय में उपयुक्त गाथा इस प्रकार है–

गाथार्थ—गुणस्थान परिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगों में अर्थात् तीनों योगों के होने पर होती है। किन्तु सयोगिकेवली के पिछले दो अर्थात् मरण और व्याघात तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं। इस विवक्षित गुणस्थान में विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थान को प्राप्त होते हैं या नहीं, ऐसा जान करके गुणस्थानों को प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थान को जाते हैं, अथवा नहीं ऐसा चिन्तवन करके असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों की चार प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए। इसी प्रकार से अप्रमत्तसंयतों की भी प्ररूपणा होती है। विशेष बात यह है कि उनके व्याघात के बिना तीन प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

शंका—अप्रमत्तसंयत के व्याघात किसलिए नहीं है?

समाधान—क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात इन दोनों का सहानवस्थालक्षण विरोध है। अब सयोगिकेवली के एक समय की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है–एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोग के

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका), पृ. ४११।

उत्कृष्टेन एषां कालकथनाय सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१६४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्ताः पंचमनोयोगिनः पंचवचनयोगिनश्च मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयत-सयोगिकेवलिगुणस्थानेषु उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तकालं तिष्ठन्ति। योगापेक्षया एतत्कालं अस्ति। यथा अविवक्षितयोगे स्थितः कश्चित् मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतः सयोगिकेवली वा स्वकयोगसंबंधिकालक्षयेण विवक्षितयोगं गतः। तत्र तत्प्रायोग्योत्कृष्ट-कालमंतर्मुहूर्तपर्यंतं स्थित्वा अविवक्षितयोगं गतः। लब्धः उत्कृष्टकालः।**

एवं प्रथमस्थले पूर्वोक्तगुणस्थानसंबंधिमनोवचनयोगसहितानां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

सासादन—सम्यग्मिथ्यादृष्टिजघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रपंचकमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।१६५।।

साथ विद्यमान थे। जब मनोयोग के काल में एक समय अवशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गये और एक समय मनोयोग के साथ दृष्टिगोचर हुए। वे सयोगिकेवली द्वितीय समय में वचनयोगी अथवा काययोगी हो गये। इस प्रकार से चारों मनोयोगों में और पाँचों वचनयोगों में पूर्वोक्त गुणस्थानों की एक समय संबंधी प्ररूपणा करना चाहिए।

अब उपर्युक्त गुणस्थानवर्ती जीवों का उत्कृष्टकाल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।१६४।।

हिन्दी टीका—पूर्व में बतलाये गये पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीव मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली गुणस्थानों में उत्कृष्टरूप से अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं। योग की अपेक्षा यह काल व्यवस्था बताई है।

जैसे—अविवक्षित योग में विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत अथवा सयोगिकेवली उस योग संबंधी काल के क्षय हो जाने से विवक्षित योग को प्राप्त हुए। वहाँ पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योग को प्राप्त हो गये। यह उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पूर्वोक्त गुणस्थानसंबधी मन-वचनयोग से सहित जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु पाँच सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों का काल गुणस्थान के समान है।।१६५।।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६६।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१६७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६८।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१६९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगिसासादनानां ओघसासादनेभ्यः भेदाभावात्। अत्रापि जोग-गुणस्थानपरावृत्ति-मरण-व्याघातैः समयाविरोधेन एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।**

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः नानाजीवापेक्षया कालं कथ्यते—पंचमनोयोग-पंचवचनयोगेषु स्थिताः सप्ताष्टौ जनाः बहुकाः वा मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयताः प्रमत्तसंयताः वा विवक्षितयोगकालेषु एकसमयावशेषे सम्यग्मिथ्यात्वं गताः। एकसमयं विवक्षितयोगेन सह दृष्टाः, द्वितीयसमये सर्वे अविवक्षितयोगं गताः। एवं मरणेन विना योग-गुणपरावृत्ति-व्याघातैः एकसमयप्ररूपणा चिंतयित्वा वक्तव्या।

उत्कृष्टेन—अर्पितयोगेन सहितसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां प्रवाहस्य अच्छिन्नरूपस्य पल्योपमस्य असंख्यात-भागायामस्योपलंभात्।

एकजीवापेक्षया मरणेन बिना गुण-योगपरावृत्ति-व्याघातान् आश्रित्य एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।१६६।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग है।।१६७।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१६८।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१६९।।

हिन्दी टीका—पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों के काल का गुणस्थान संबंधी सासादनों के काल से कोई भेद नहीं है। यहाँ पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन, मरण और व्याघात के द्वारा आगम के अविरोध से एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

अब नाना जीवों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का काल कहते हैं—

पाँचों मनोयोग अथवा वचनयोग में स्थित सात आठ जन अथवा बहुत से मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित योग के काल में एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुए और एक समयमात्र विवक्षित योग के साथ दृष्टिगोचर हुए। द्वितीय समय में सभी के सभी अविवक्षित योग को चले गये इसी प्रकार मरण के बिना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और व्याघात इन तीनों की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए।

उत्कृष्टरूप से-विवक्षित योग से सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अविच्छिन्नरूप प्रवाह पल्योपम के असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा मरण के बिना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन तीनों का

उत्कृष्टेन एकजीवापेक्षया एकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः अविवक्षितयोगे स्थितः अर्पितयोगं प्रतिपन्नः। तत्र तत्प्रायोग्योत्कृष्टमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अनर्पितयोगं गतः। लब्धमंतर्मुहूर्तं इति।

एवं द्वितीयस्थले सासादनसम्यग्मिथ्यात्वयोः जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

अधुना चतुरुपशामक-क्षपकनानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७०।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१७१।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१७३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवान् आश्रित्य उपशामकानां व्याघातेन विना योग-गुणपरावृत्ति-मरणैः एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या। क्षपकाणां मरणव्याघाताभ्यां विना योग-गुणपरावृत्तिद्वयं चैवाश्रित्य एकसमयप्ररूपणा प्ररूपयितव्या। जघन्येन एकससमयकालः कथितः।**

उत्कृष्टेन तु चत्वारः उपशामकाः चत्वारः क्षपकाश्च अनर्पितयोगे स्थिताः स्वकयोगस्य कालक्षये

आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। अविवक्षित योग में विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित योग को प्राप्त हुआ। वहाँ पर अपने योग के योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अविवक्षित योग को चला गया। इस प्रकार से एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब चार उपशामक और चार क्षपक गुणस्थानों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।१७०।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।१७१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१७२।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।।१७३।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों का आश्रय करके उपशामक जीवों के व्याघात के बिना योग परिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण के द्वारा एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए। क्षपक जीवों का मरण और व्याघात के बिना योगपरिवर्तन और गुणस्थान परिवर्तन इन दोनों का आश्रय लेकर ही एक समय की प्ररूपणा कहना चाहिए।

इस प्रकार जघन्यरूप से एक समयवर्ती काल का कथन हुआ।

उत्कृष्टरूप से स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव अविवक्षित योग में उस योग के कालक्षय से

विवक्षितयोगं गताः। तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनरपि अविवक्षितयोगं प्रतिपन्नाः। लब्धमंतर्मुहूर्तं।

एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षपकानां योगपरावृत्ति-गुणस्थानपरावृत्त्यपेक्षया द्विप्रकारेण, उपशामकानां च व्याघातेन विना त्रिभिः प्रकारैः ज्ञात्वा कथयितव्या। उत्कृष्टेन एकजीवापेक्षयापि अंतर्मुहूर्तप्ररूपणा ज्ञात्वा कथयितव्या। अत्र एकसमयसंबंधिविकल्पप्ररूपणार्थं गाथास्ति-

एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णवय अट्ठेव।
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा[१]।

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १।

तात्पर्यमेतत्—उपशामकाः नियमेन कस्यचित् एकतमस्य कषायोदये सति अधः पतन्त्येव पुनः तस्मिन् भवे अन्यस्मिन् भवे वा क्षपकश्रेणिमारुह्य मोक्षं गमिष्यन्ति। क्षपकाश्च तस्मिन्नेव भवे केवलज्ञानमुत्पाद्य अर्हन्तो भगवन्तः भवन्ति इति ज्ञात्वा क्षपकश्रेण्यारोहणभावना भावयितव्या।

एवं तृतीयस्थले उपशामकक्षपकयोः कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति सामान्यकाययोगिनां कालकथनाय सूत्रचतुष्टयं अवतार्यते—

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१७४।।

विवक्षित योग को प्राप्त हुए। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि अविवक्षित योग को प्राप्त हो गये। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य से क्षपकों के योगपरावर्तन और गुणस्थान परावर्तन की अपेक्षा दो प्रकार से और उपशामकों की व्याघात के बिना शेष तीन प्रकारों से जान करके कहना चाहिए।

उत्कृष्ट से एक जीव की अपेक्षा भी अन्तर्मुहूर्त की प्ररूपणा जानकर कथन करना चाहिए। यहाँ पर एक समय संबंधी विकल्पों की प्ररूपणा करने हेतु गाथा प्रस्तुत की जा रही है–

गाथार्थ —मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों से क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ, पाँच, पाँच, पाँच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक इतने एक समयसंबंधी प्ररूपणा के विकल्प होते हैं।

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १

तात्पर्य यह है कि उपशामक–उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले महामुनि नियम से किसी न किसी एक कषाय के उदय होने पर नीचे गिरते हैं, पुनः उसी भव में अथवा अगले अन्य मनुष्य भव में क्षपकश्रेणी आरोहण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे तथा क्षपक श्रेणी वाले महामुनि तो उसी भव में केवलज्ञान को उत्पन्न करके अरिहंत भगवान बन जाते हैं, ऐसा जानकर क्षपक श्रेणी आरोहण की भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में उपशामक और क्षपक जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य काययोगियों का काल कथन करने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१७४।।

---

१. धवला पुस्तक ४, पृ. ४१५।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७५।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१७६।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो।।१७७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया औदारिककाययोगिआदिकाययोगिनां सर्वकालः वर्तते। एकजीवापेक्षया एकः सासादनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा काययोगकाले स्थितः। तस्मिन् योगकाले एकसमयावशेषे मिथ्यादृष्टिर्जातः। काययोगेन एकसमयं मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमये अन्ययोगं गतः।**

अथवा मनोवचनयोगेषु स्थितस्य मिथ्यादृष्टेः तयोः कालयोः क्षयेण काययोगः आगतः। एकसमयं काययोगेन सह मिथ्यात्वं दृष्टं। द्वितीयसमये सम्यग्मिथ्यात्वं वा असंयमेन सह सम्यक्त्वं वा संयमासंयमं अप्रमत्तभावेन संयमं वा प्रतिपन्नः। लब्धः एकसमयः। अत्र मरणव्याघाताभ्यां एकसमयः नास्ति। मृते व्याघातितेऽपि काययोगं मुक्त्वा अन्ययोगाभावात्।

एकजीवस्य उत्कृष्टेन एकः मिथ्यादृष्टिः मनोवचनयोगेषु स्थितः अद्धाक्षयेण काययोगी जातः, सर्वोत्कृष्टमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा एकेन्द्रियेषु उत्पन्नः। तत्र अनंतकालमसंख्यातपुद्गलपरिवर्त्तं काययोगेन सह परिवर्त्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्र पुद्गलपरिवर्तेषु उत्पन्नेषु त्रसेषु आगत्य सर्वोत्कृष्टमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा वचनयोगी जातः। लब्धः काययोगस्य उत्कृष्टकालः।

एक जीव की अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१७५।।

एक जीव की अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है।।१७६।।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काययोगियों का काल मनोयोगियों के काल के समान है।।१७७।।

हिन्दी टीका—एक जीव की अपेक्षा एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोग के काल में विद्यमान था। उस योग के काल में एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया। तब काययोग के साथ एक समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ। पुनः द्वितीय समय में वह अन्य योग को चला गया। अथवा मनोयोग और वचनयोग में विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीव के उन योगों के कालक्षय से काययोग आ गया। तब एक समय काययोग के साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ। पुनः द्वितीय समय में सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया। यहाँ पर मरण अथवा व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि मरण होने पर अथवा व्याघात होने पर भी काययोग को छोड़कर अन्य योग का अभाव है।

एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टकाल कहते हैं—मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव उस योग के कालक्षय हो जाने से काययोगी हो गया। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अनन्तकाल प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काययोग के साथ

पुनश्च सासादनादीनां सयोगिकेवलिपर्यंताना मनोयोगिवत् कालः ज्ञातव्यः। तत्र—मनोयोगे निरूद्धे प्रपंचेन—विस्तरेण प्ररूपितत्वात्। विशेषेण तु—मरणव्याघातौ सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः न स्तः। सासादनसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्तसंयतानां व्याघातेन एकसमयो नास्ति, मरणेन पुनः अस्ति।

एवं चतुर्थस्थले सामान्ययोगिनां कालनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति औदारिककाययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिकालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१७८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७९।।

उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।।१८०।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो।।१८१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अस्मिन् काययोगे मिथ्यादृष्टीनां व्युच्छेदाभावात्। एकजीवापेक्षया मरण-गुण-योगपरावृत्तिभिः एकसमयः प्ररूपयितव्यः। व्याघातेन एकसमयो न लभ्यते, तस्य काययोगाविना-

---

परिवर्तन करके आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गल परिवर्तनों के शेष रहने पर त्रसजीवों में आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके वचनयोगी हो गया। इस प्रकार से काययोग का उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ।

पुनश्च सासादन से लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त जीवों का काल मनोयोगियों के समान जानना चाहिए। क्योंकि मनोयोग के निरुद्ध करने पर पहले प्रपंच से (विस्तार से) प्ररूपण किया जा चुका है। विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों के मरण और व्याघात नहीं होते हैं तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों के व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरण की अपेक्षा एक समय होता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सामान्ययोगी जीवों का कालनिरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिककाययोगी जीवों का मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

औदारिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१७८।।

एक जीव की अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियों का जघन्यकाल एक समय है।।१७९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है।।१८०।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियों का काल मनोयोगियों के काल के समान है।।१८१।।

हिन्दी टीका—इस काययोग में मिथ्यादृष्टि जीवों के कालविच्छेद का अभाव है। एक जीव की अपेक्षा

भावित्वात्। एकजीवस्य उत्कृष्टेन देशोनद्वाविंशतिसहस्रप्रमाणं वर्तते। तस्योदाहरणं-एकः तिर्यङ् मनुष्यः देवो वा द्वाविंशतिसहस्रवर्षायु:स्थितिकेषु एकेन्द्रियेषु उत्पन्नः। सर्वजघन्येन अंतर्मुहूर्तकालेन पर्याप्तिं गतः। औदारिकापर्याप्तकालेन ऊनद्वाविंशतिवर्षसहस्राणि औदारिककाययोगेन स्थित्वा अन्ययोगं गतः। एवं देशोन-द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि जातानि। अथवा देवो न उत्पादयितव्यः, तस्य जघन्य अपर्याप्तकालानुपलंभात्।

सासादनादीनां पूर्ववत् ज्ञातव्यः कालः, केवलं तु व्याघातेनात्र एकसमयप्ररूपणा न प्ररूपयितव्या।

तात्पर्यमेतत्—औदारिककायेनैव रत्नत्रयाराधना क्रियते अतः प्रमादं परिहृत्य अनेन मनुष्यपर्यायेण स्वात्मोपलब्धिः सिद्धिः कर्तव्या।

एवं पंचमस्थले औदारिककाययोगिनां समयनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्कं गतम् ।

संप्रति औदारिकमिश्रयोगिनां मिथ्यात्वसासादनकालनिरूपणाय सूत्रसप्तकं अवतार्यते—

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१८२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं।।१८३।।

मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तन की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए। किन्तु यहाँ पर व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि वह काययोग का अविनाभावी है। एक जीव का उत्कृष्टरूप से काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। उसका उदाहरण इस प्रकार है–एक तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव बाईस हजार वर्ष की आयु स्थिति वाले एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ। पुनः इस औदारिक शरीर के अपर्याप्तकाल से कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोग के साथ रह करके पुनः अन्य योग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं। अथवा यहाँ पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए क्योंकि देवों से आकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले जीव के जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है।

सासादन आदि गुणस्थानवर्ती जीवों का काल पूर्ववत् जानना चाहिए, केवल विशेष बात यह है कि व्याघात के द्वारा यहाँ एक समय वाली प्ररूपणा का प्ररूपण नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि औदारिककाय के द्वारा ही रत्नत्रय की आराधना की जाती है अतः प्रमाद को छोड़कर इस मनुष्यपर्याय के द्वारा हम सभी को स्वात्मा की उपलब्धि और सिद्धि करना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में औदारिककाययोगी जीवों का समय निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिक मिश्रकाययोगी जीवों के मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान का काल निरूपण करने के लिए सात सूत्र अवतरित होते हैं।

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१८२।।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१८३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१८४।।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१८५।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१८६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।१८७।।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।।१८८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**औदारिकमिश्रकाययोगेषु मिथ्यादृष्टीनां सर्वकालोऽस्ति। एकजीवापेक्षया एकः एकेन्द्रियः सूक्ष्मवायुकायिकेषु अधोलोकान्ते स्थितेषु क्षुद्रभवग्रहणायुःस्थितिकेषु त्रीन् विग्रहान् कृत्वा उत्पन्नः। तत्र त्रिसमयोन-क्षुद्रभवग्रहणमपर्याप्तो भूत्वा जीवित्वा मृतः, विग्रहं कृत्वा कार्मणकाययोगी जातः। एवं त्रिसमयोन-क्षुद्रभवग्रहणमौदारिकमिश्रजघन्यकालो जातः।**

उत्कृष्टकालापेक्षया—अपर्याप्तकेषु उत्पद्य संख्यातभवग्रहणप्रमाणं तत्र परिवर्तनं कृत्वा पुनः पर्याप्तेषु उत्पद्य औदारिककाययोगी जातः एतद्भवग्रहणकालं मिलित्वापि मुहूर्तस्यांतर्गतं चैव भवति।

सासादना सप्ताष्ट जना बहवो वा स्वकालैकसमयेऽवशेषे औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाताः। एकसमयं तत्र स्थित्वा द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गताः।

लब्धः औदारिकमिश्रेण सासादनानामेकसमयः।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१८४।।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।१८५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।१८६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१८७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है।।१८८।।

हिन्दी टीका—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों का सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव अधोलोक के अन्त में स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयु स्थिति वाले सूक्ष्म-वायुकायिकों में तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ। वहाँ पर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणकाल तक लब्ध्यपर्याप्त होकर जीवित रह कर मरा। पुनः विग्रह करके कार्मणकाययोगी हो गया। इस प्रकार से तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण औदारिकमिश्रकाययोग का जघन्यकाल सिद्ध हुआ।

उत्कृष्टकाल की अपेक्षा कोई एक जीव लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहण प्रमाण उनमें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया। इन सब संख्यात भवों के ग्रहण करने का काल मिल करके भी मुहूर्त के अन्तर्गत ही रहता है।

सात आठ जन अथवा बहुत से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने योग के काल में एक समय अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये। उसमें एक समय रह करके द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार से औदारिकमिश्रकाययोग के साथ सासादनसम्यग्दृष्टियों का एक समय लब्ध हुआ।

उत्कृष्टेन—सप्त अष्टौ जना बहुका: वा सासादना: औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाता:। सासादनगुणस्थानेन अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा ते मिथ्यात्वं गता:। तत्समये चैव अन्ये सासादना: औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाता:। एवं एक-द्वि-त्रि आदिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रवारं सासादना औदारिकमिश्रकाययोगं प्रतिपादयितव्यं। तत: नियमात् अंतरं भवति। एवमेतत्कालं मिलित्वापि पल्योपमस्य असंख्यातभागो भवति।

एकजीवापेक्षया एकसमय: पूर्ववत्। उत्कृष्टेन—एको देवो वा नारको वा उपशमसम्यग्दृष्टि: उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाशेषे सासादनं गत:। एकसमयं स्थित्वा कालं कृत्वा तिर्यग्मनुष्ययो: ऋजुगत्या उत्पद्य औदारिकमिश्रकाययोगी जात:। तत्र समयोनषडावलिका: स्थित्वा मिथ्यात्वं गत:। एवं उत्कृष्टकालो लब्ध:।

एवं षष्ठस्थले औदारिकमिश्रयोगे स्थितमिथ्यादृष्टिसासादनयो: कालनिरूपणत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

अधुना अस्मिन् योगे असंयतसम्यग्दृष्टिकालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयं अवतरति—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१८९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१९०।।

उत्कृष्ट की अपेक्षा कहते हैं—सात आठ जन, अथवा बहुत से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। सासादनगुणस्थान के साथ अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य दूसरे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार से एक, दो, तीन को आदि करके उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र बार सासादनसम्यग्दृष्टि जीव को औदारिकमिश्रकाययोग प्राप्त कराना चाहिए। इसके पश्चात् नियम से अन्तर हो जाता है। इस प्रकार यह सब काल मिलकर भी पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग होता है।

उत्कृष्ट से कहते हैं—एक जीव की अपेक्षा पूर्ववत् काल एक समय है। कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली काल के शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। वहाँ पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यंच और मनुष्यों में ऋजुगति से उत्पन्न होकर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। वहाँ पर एक समय कम छह आवली तक रह करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार छठे स्थल में औदारिकमिश्रकाययोग में स्थित मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्तियों का काल निरूपण करने वाले सात्र सूत पूर्ण हुए।

अब इस योग में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है–

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल तक होते हैं।।१८९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१९०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९१।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१९२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् योगे चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां नानाजीवापेक्षया कथ्यते-सप्ताष्टौ जना बहवः वा असंयतसम्यग्दृष्टयो नारकाः औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाताः। पूर्वं बहुसागरोपमानि दुःखेन सह स्थितत्वात् सर्वलघुकालेन पर्याप्तिं गताः लब्धं जघन्येनान्तर्मुहूर्तं।**

उत्कृष्टेन—देवाः नारकाः मनुष्याः सप्ताष्टौ जनाः बहवो वा सम्यग्दृष्टयः औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाताः। ते पर्याप्तिं गताः। तत्समये चैवान्ये असंयतसम्यग्दृष्टयो औदारिकमिश्रकाययोगिनो जाताः। एवमेक-द्वि-त्रयो यावदुत्कृष्टेन संख्यातवारा इति। एताभिः संख्यातशलाकाभिरेकमपर्याप्तकालं गुणिते एकमुहूर्तस्यान्तश्चैव येन भवति, तेनान्तर्मुहूर्तमिति प्रोक्तं।

एकजीवापेक्षया—एकः सम्यग्दृष्टिः द्वाविंशतिसागरोपमानि दुःखैकरसो भूत्वा जीवितः। षष्ठ्याः पृथिव्याः निर्गत्य मनुष्येषूत्पन्नः। विग्रहगत्यां तस्य सम्यक्त्वमाहात्म्येन उदयागतपुण्यपुद्गलस्य औदारिकनामकर्मोदयेन सुगंध-सुरस-सुवर्ण-शुभस्पर्शपरमाणुपुद्गलाः बहुत्वेन आगच्छन्ति, तस्य योगबहुत्वदर्शनात्। एतस्य जीवस्य जघन्येन औदारिकमिश्रकाययोगस्य कालो भवति।

उत्कृष्टेन कस्य भवति?

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१९१।।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१९२।।

हिन्दी टीका—इस औदारिकमिश्रकाययोग में चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवों का वर्णन नाना जीवों की अपेक्षा कहते हैं–सात आठ जन, अथवा बहुत से असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिक मिश्रकाययोगी हुए और बहुत से सागरोपम काल तक पहले दुःखों के साथ रहे हुए होने से सर्वलघु काल से पर्याप्तियों को प्राप्त हुए। इस प्रकार जघन्यरूप से अन्तर्मुहूर्तकाल प्राप्त हुआ।

उत्कृष्टरूप से—देव, नारकी अथवा मनुष्य सात आठ जन अथवा बहुत से सम्यग्दृष्टि जीव, औदारिक मिश्रकाययोगी हुए। वे सब पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार से एक दो, तीन इत्यादि क्रम से उत्कृष्ट संख्यातबार तक अन्य-अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये। इन संख्यात शलाकाओं से एक अपर्याप्तकाल को गुणित करने पर वह सब काल चूँकि एक मुहूर्त के अन्तर्गत ही होता है, इसीलिए सूत्रकार ने अन्तर्मुहूर्तकाल कहा है।

एक जीव की अपेक्षा छठी पृथ्वी का कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी बाईस सागर तक दुःखों से एक रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा। पुनः छठी पृथिवी से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। विग्रहगति में, सम्यक्त्व के माहात्म्य से उदय में आये हैं पुण्य प्रकृति के पुद्गलपरमाणु जिसके, ऐसे उस जीव के औदारिक नामकर्म के उदय से सुगंधित, सुरस, सुवर्ण और शुभ स्पर्श वाले पुद्गल परमाणु बहुलता से आते हैं, क्योंकि उस समय उसके योग की बहुलता देखी जाती है। इस जीव के जघन्य से औदारिकमिश्रकाययोग का काल होता है।

शंका—यह उत्कृष्टकाल किस जीव के होता है?

सर्वार्थसिद्धिविमानवासिदेवस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि सुखलालितस्य प्रमुक्तदुःखस्य मानुषगर्भे विष्टा-मूत्रान्त्र-पित्त-श्लेष्मा-वसा-सिंघाण-रक्त-शुक्रापूरिते अतिदुर्गन्धे कुत्सितरसे दुर्वर्णे दुःस्पर्शे चर्मकारकुण्डोपमे उत्पन्नस्य, तत्र मंदो योगो भवतीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्[1]। मंदयोगेन स्तोकान् पुद्गलान् गृण्हतः जीवस्य औदारिकमिश्रकालं दीर्घं भवतीति कथितं भवति।

अथवा योगोऽत्र महान् चैव भवतु, योगवशेन बहुकाः पुद्गलाः आगच्छन्तु, तर्हि अपि अस्य जीवस्य अपर्याप्तकालं दीर्घं भवति, विलासेन दूषितस्य जीवस्य लघुकालेन पर्याप्तिपूर्णस्य असामर्थ्यत्वात्।

एवं सप्तमस्थले औदारिकमिश्रयोगे सम्यग्दृष्टिकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति सयोगिनां औदारिकमिश्रयोगे कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१९३।।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं।।१९४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।।१९५।।

समाधान—तेतीस सागरोपमकाल तक सुख से लालित-पालित हुए तथा दुःखों से रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव के विष्टा, मूत्र, आतड़ी, पित्त, खारिस (कफ) चर्वी, नासिका मल, लोहू और शुक्र व्याप्त, अति दुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्वर्ण और दुष्ट स्पर्श वाले चमार के कुंडके सदृश मनुष्य के गर्भ में उत्पन्न होने पर उसके विग्रहगति में तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकार का आचार्य परम्परागत उपदेश है। मंदयोग से अल्प पुद्गलों को ग्रहण करने वाले जीव के औदारिक मिश्रकाययोग का काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है।

अथवा यहाँ पर चाहे योगकाल बड़ा ही रहा आवे और योग के वश से पुद्गल भी बहुत से आते रहें, तो भी उक्त प्रकार के जीव के अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि विलास से दूषित जीव के शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियों के सम्पूर्ण करने में सामर्थ्य नहीं है।

इस प्रकार सातवें स्थल में औदारिकमिश्रकाययोग में सम्यग्दृष्टि जीवों का काल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सयोगकेवलियों का औदारिकमिश्रकाययोग में काल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।१९३।।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनों का उत्कृष्टकाल संख्यात समय है।।१९४।।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनों का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है।।१९५।।

---

१. धवला पुस्तक ४, पृ. ४२३।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्ताष्टजनानां दण्डात् कपाटसमुद्घातं गत्वा तत्र एकसमयं स्थित्वा प्रतरसमुद्घातं गतानां एकसमयो भवति, अथवा रुचकात्-प्रतरसमुद्घातात् कपाटं गत्वा एकसमयं स्थित्वा दण्डसमुद्घातगतकेवलिनां एकसमयो भवति।**

उत्कृष्टेन नानाजीवापेक्षया कथ्यते—कपाटसमुद्घाते आरोहणावरोहणक्रियायां व्यापृतैः दण्ड-प्रतरपर्यायपरिणतसंख्यातकेवलिभिः संख्यात-समयपंक्तिषु स्थितैः संख्यातसमयाः भवन्तीति।

एकजीवापेक्षया—आरोहणावरोहणक्रियायां व्यापृतदण्ड-प्रतरसमुद्घात-परिणतकेवलिसमुद्घाताभ्यां आगते कपाटसमुद्घातगतकेवलिनि जघन्येन उत्कृष्टेनापि एकसमयो भवति।

बहवः समयाः किं न भवन्ति?

न, कपाटसमुद्घाते एकसमयं मुक्त्वा बहुसमयावस्थानाभावात्।

एकसमयस्यैव जघन्योत्कृष्टव्यपदेशः कथं?

नैष दोषः, कनिष्ठोऽपि ज्येष्ठोऽपि एषश्चैव मम पुत्रः, इति लोके व्यवहारोपलंभात्।

एवं अष्टमस्थले सयोगिकेवलिनां औदारिकमिश्रयोगे जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति वैक्रियिककाययोगेषु मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानकालनिरूपणाय सूत्रपंचकं अवतरति—

हिन्दी टीका—दण्डसमुद्घात से कपाटसमुद्घात को प्राप्त होकर और वहाँ एक समय रहकर प्रतर समुद्घात को प्राप्त हुए सात-आठ केवलियों के यह एक समय होता है। अथवा रुचक—प्रतरसमुद्घात से कपाटसमुद्घात को प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंडसमुद्घात को प्राप्त होने वाले केवलियों के यह एक समय होता है।

उत्कृष्टरूप से नाना जीवों की अपेक्षा कथन करते हैं—

कपाट समुद्घात की आरोहण और अवतरणरूप क्रिया में लगे हुए क्रमशः दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्याय से परिणत संख्यात समयों की पंक्ति में स्थित ऐसे संख्यात केवलियों के द्वारा अधिकृत अवस्था में उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं।

एक जीव की अपेक्षा-आरोहण और अवतरणरूप क्रिया में व्यापृत, ऐसे दंड समुद्घात और प्रतर समुद्घातरूप पर्याय से क्रमशः परिणत हो उक्त समुद्घात केवली अवस्था से आये हुए कपाट समुद्घातगत केवली के जघन्य और उत्कृष्ट से भी यह एक समय पाया जाता है।

शंका—उक्त प्रकार के जीवों के बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि कपाटसमुद्घात में एक समय को छोड़कर बहुत समय तक रहने का अभाव है।

शंका—तो फिर एक ही समय के जघन्य और उत्कृष्ट का व्यपदेश कैसे किया?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कनिष्ठ भी और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा पुत्र है' इस प्रकार का लोक में व्यवहार पाया जाता है इसलिए एक में भी जघन्य और उत्कृष्ट का व्यपदेश हो सकता है।

इस प्रकार आठवें स्थल में सयोगिकेवली भगवन्तों का औदारिकमिश्रकाययोग में जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोग में मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानों का काल निरूपण करने हेतु पाँच सूत्रों का अवतार होता है—

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।१९६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।१९७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१९८।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।१९९।।

सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो।।२००।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**वैक्रियिककाययोगे मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः संतानव्युच्छेदाभावात् नानाजीवापेक्षया सर्वकालः।**

एकजीवापेक्षया—एकः मिथ्यादृष्टिः मनोवचनयोगयोः स्थितः कालक्षयेण वैक्रियिककाययोगी जातः। एकसमयं वैक्रियिककाययोगेन दृष्टः। द्वितीयसमये मृतः अन्ययोगं गतः। मरणेन बिना सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा जातः। अथवा सासादनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा वैक्रियिककाययोगकाले एकसमयावशेषे मिथ्यादृष्टिर्जातो, द्वितीयसमये चान्ययोगं गतः। व्याघातेन एकसमायो नास्ति, निरुद्धकाययोगत्वात्। एवं असंयतसम्यग्दृष्टेरपि एकसमयप्ररूपणा त्रिप्रकारैः कर्तव्या।

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तं—मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा देवो नारको वा मनोवचनयोगेषु

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।१९६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।१९७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१९८।।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।१९९।।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल मनोयोगियों के समान है।।२००।।

हिन्दी टीका—सभी कालों में वैक्रियिक काययोग वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की परम्परा विच्छेद का अभाव है। इसलिए नाना जीव की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान था। वह उस योग के काल के क्षय हो जाने से वैक्रियिककाययोगी हो गया। तब वह एक समय वैक्रियिक काययोग के साथ दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में मरा और अन्य योग को प्राप्त हो गया। अथवा मरण के बिना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव वैक्रियिककाययोग के काल में एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समय में अन्य योग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से एक समय लब्ध होता है। यहाँ पर व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि काययोग की अपेक्षा कथन हो रहा है। (व्याघात तो मन या वचनयोग में पाया जाता है) इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के भी एक समय की प्ररूपणा तीन प्रकार से करना चाहिए।

एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टरूप से अन्तर्मुहूर्त काल है-मनोयोग या वचनयोग में स्थित मिथ्यादृष्टि और

स्थितः काययोगी जातः। सर्वोत्कृष्टं अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अन्ययोगी जातः। लब्धमन्तर्मुहूर्तं।

अस्मिन् वैक्रियिकयोगे सासादनानां पूर्ववत्कालो ज्ञातव्यः। सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि ओघवत् कालप्ररूपणा वर्तते।

एवं नवमस्थले वैक्रियिककाययोगे कालनिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

संप्रति वैक्रियिकमिश्रयोगे मिश्रगुणस्थानरहितत्रिगुणस्थानवर्तिनां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्राष्टकं अवतार्यते-

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२०१।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स अंखेज्जदिभागो।।२०२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२०३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२०४।।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२०५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि कोई देव अथवा नारकी जीव वैक्रियिक काययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य योग वाले हो गये। इस प्रकार से उत्कृष्ट कालरूप अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया।

इस वैक्रियिककाययोग में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल पूर्ववत् जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की कालप्ररूपणा गुणस्थान के समान है।

इस प्रकार नवमें स्थल में वैक्रियिककाययोगी जीवों का कालनिरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोग में मिश्रगुणस्थान रहित तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं।।२०१।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग है।।२०२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२०३।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२०४।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।२०५।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।२०६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२०७।।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।।२०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अत्र तावन्मिथ्यादृष्टेः जघन्यकालः उच्यते—सप्ताष्ट जना बहवो वा द्रव्यलिंगिनः उपरिमग्रैवेयकेषु-उत्पन्नाः सर्वलघुअंतर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गताः। संप्रति सम्यग्दृष्टीनां कथ्यते—संख्याताः संयताः सर्वार्थसिद्धिदेवेषु द्विविग्रहौ कृत्वा उत्पन्नाः सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गताः।

किमर्थं द्विविग्रहौ कारितौ?

बहुपुद्गलग्रहणार्थं, तदपि स्तोककालेन पर्याप्तिसंपन्नकरणार्थं इति।

अनयोरेव उत्कृष्टेन नानाजीवापेक्षया—सताष्ट जनाः उत्कृष्टेन असंख्यातश्रेणिमात्रा वा मिथ्यादृष्टयो देवनारकयोः उत्पद्य वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनो जाताः, अंतर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गताः। तत्समये चैवान्ये मिथ्यादृष्टयो वैक्रियिकमिश्रयोगिनो जाताः। एवं एक-द्वि-त्र्यादि-उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः शलाकाः लभ्यन्ते। एताभिः वैक्रियिकमिश्रकालं गुणिते पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रः वैक्रियिकमिश्रकालो भवति।

असंयतसम्यग्दृष्टीनामपि एवमेव वक्तव्यं। विशेषतया तु एते एकसमयेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।।२०६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२०७।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है।।२०८।।

हिन्दी टीका—यहाँ पर पहले मिथ्यादृष्टि का जघन्यकाल कहते हैं–सात आठ जन, अथवा बहुत से द्रव्यलिंगी मुनि उपरिम ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तकपने को प्राप्त हुए। अब सम्यग्दृष्टि का जघन्यकाल कहते हैं–संख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों में उत्पन्न हुए और सबसे अल्प अन्तर्मुहूर्त काल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए।

शंका—दो विग्रह किसलिए कराये गये हैं?

समाधान—बहुत सी पुद्गल वर्गणाओं के ग्रहण कराने के लिए दो विग्रह कराये गये हैं। फिर भी लघुकाल से पर्याप्तियों को सम्पन्न करने के लिए कहा है।

इन्हीं दोनों विग्रहों में उत्कृष्टरूप से नाना जीवों की अपेक्षा कथन करते हैं—

सात–आठ जन अथवा उत्कर्ष से असंख्यातश्रेणिमात्र मिथ्यादृष्टिजीव देव अथवा नारकियों में उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकारसे एक, दो, तीन को आदि लेकर पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों की शलाकाएं पाई जाती हैं। इसमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग के काल को गुणा करने पर पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोग का काल होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों का भी काल इसी प्रकार से कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि ये असंयत सम्यग्दृष्टि जीव एक समय में पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्टरूप से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इस

उत्कृष्टेन उत्पद्यन्ते, किंच अस्य राशेः वैक्रियिकमिश्रकालोऽसंख्यातगुणोऽस्ति।

तत्कथं ज्ञायते?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

एकजीवापेक्षया—एको द्रव्यलिंगी मुनिः उपरिमग्रैवेयकेषु द्विविग्रहौ कृत्वा उत्पन्नः। सर्वलघुअंतर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गतः। सम्यग्दृष्टीनां एकः संयतः सर्वार्थसिद्धिदेवेषु उत्पन्नः द्विविग्रहौ कृत्वा, सर्वलघ्वन्तर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गतः। लब्धः जघन्यकालः।

उत्कृष्टेन—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः सप्तपृथिवीनारकेषु उत्पन्नः सर्वचिरेणान्तर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गतः। सम्यग्दृष्टेः-एकः बद्ध नारकायुष्कः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा प्रथमपृथिवीनारकेषु उत्पद्य सर्वचिरेणान्तर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गतः। द्वाभ्यां जघन्यकालाभ्यां द्वयोरपि उत्कृष्टकालौ संख्यातगुणौ ज्ञातव्यौ, गुरुपदेशादिति।

सासादनानां अस्मिन् मिश्रयोगे—सप्ताष्ट जनाः बहवो वा सासादनाः स्वककाले एकसमयावशेषे देवेषूत्पन्नाः। द्वितीयसमये सर्वे मिथ्यात्वं गताः। लब्धः एकसमयः। नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेन—सप्ताष्ट जनाः यावदुत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा वा एकद्वित्रिसमयानादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन समयोन षडावलिका प्रमाणं सासादनकालेऽवशेषे देवेषु उत्पन्नाः। ते सर्वे क्रमेण मिथ्यात्वं गताः। तत्समये चैव पूर्वमिव सासादनाः देवेषु उत्पन्नाः। एवं निरंतरं नानाजीवानाश्रित्य सासादनकालः पल्योपमस्य

उत्पन्न होने वाली राशि से वैक्रियिकमिश्रकाययोग का काल असंख्यातगुणा है।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—आचार्य परम्परागत उपदेश से यह जाना जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं—

कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकों में दो विग्रह करके उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। एक सम्यग्दृष्टि भावलिंगी संयत सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में दो विग्रह करके उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए। यह जघन्यकाल प्राप्त हुआ।

उत्कृष्टरूप से-कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि की कालप्ररूपणा करते हैं-कोई एक बद्धनरकायुष्क जीव सम्यक्त्व को प्राप्त होकर दर्शनमोहनीय का क्षपण करके और प्रथम पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ। दोनों के जघन्यकालों से दोनों ही उत्कृष्टकाल संख्यातगुणे हैं, ऐसा गुरु उपदेश से ज्ञात होता है।

इस मिश्रयोग में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का कथन करते हैं—

सात-आठ जन अथवा बहुत से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थान के काल में एक समय अवशेष रहने पर देवों में उत्पन्न हुए और द्वितीय समय में सबके सब मिथ्यात्व को प्राप्त हो गये। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टरूप से कहते हैं—

सात-आठ जन अथवा उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र जीव एक, दो अथवा तीन समय

असंख्यातभागमात्रः स्वकराशिभ्यः असंख्यातगुणा जाता इति।

अस्मिन् गुणस्थाने एकजीवापेक्षया—एकः सासादनः स्वकाले एकसमयावशेषे देवेषु उत्पन्नः, द्वितीयसमयेषु मिथ्यात्वं गतः। लब्धः एकसमयः।

उत्कृष्टेन—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे आसादनां गत्वा एकसमयं स्थित्वा ऋजुगत्या देवेषु उत्पद्य समयोनषडावलिकाः सासादनेन स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः। लब्धः उत्कृष्टकालः।

एवं दशमस्थले वैक्रियिकमिश्रकाययोगे त्रिगुणस्थानवर्तिजघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

आहारकाययोगिनानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालकथनाय सूत्रचतुष्टयं अवतार्यते—

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२०९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१०।।

को आदि करके उत्कर्ष से एक समय कम छह आवलीप्रमाण सासादनकाल के अवशेष रहने पर वे सबके सब देवों में उत्पन्न हुए। पुनः वे सब क्रम से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। उसी समय में ही पूर्व के समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव देवों में उत्पन्न हुए। इस प्रकार निरन्तर नाना जीवों का आश्रय करके सासादनगुणस्थान का काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र और अपनी राशि से असंख्यातगुणा हो जाता है।

इस गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा कहते हैं—

कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थान के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर देवों में उत्पन्न हुआ और द्वितीय समय में ही मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से एक समय प्रमाण काल उपलब्ध हो गया।

उत्कृष्टरूप से-कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य उपशम सम्यक्त्व के काल में छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर और एक समय वहाँ पर रहकर ऋजुगति से देवों में उत्पन्न होकर एक समय कम छह आवलीप्रमाण काल तक सासादनगुणस्थान के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। यह उत्कृष्टकाल है।

इस प्रकार दशवें स्थल में वैक्रियिकमिश्रयोग में तीन गुणस्थानवर्ती जीवों के जघन्य उत्कृष्टकाल का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी नाना जीवों का जघन्य और उत्कृटकाल कथन करने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगियों में प्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।२०९।।

उन आहारककाययोगियों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२१०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।२११।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्ताष्ट जनाः प्रमत्तसंयताः मनोयोगेन वचनयोगेन वा स्थिताः, स्वकाले क्षीणे आहारकाययोगिनो जाताः। द्वितीयसमये मृताः, मूलशरीरे वा प्रविष्टाः। लब्धः एकसमयः। अत्र व्याघातगुणस्थानपरावृत्तिभ्यां एकसमयो न लभ्यते।**

उत्कृष्टेन नानाजीवापेक्षया—आहारशरीरस्योत्पादकाः प्रमत्तसंयताः मनोवचनयोगस्थिताः आहारकाययोगिनो जाताः। यावत् ते योगान्तरं गताः, तावच्चैव अन्ये आहारकाययोगं प्रतिपन्नाः। एवमेकादि-एकोत्तरवृद्ध्या संख्यात-शलाकाः लभ्यन्ते। एताभिः एकं काययोगकालं गुणिते आहारकाययोगकालं उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्त प्रमाणं भवति।

एकजीवापेक्षया—एकः प्रमत्तसंयतः मनोयोगे वचनयोगे वा स्थितः आहारकाययोगं गतः। द्वितीयसमये मृतः, मूलशरीरे वा प्रविष्टः।

उत्कृष्टेन—मनोयोगे वचनयोगे वा स्थितप्रमत्तसंयतः आहारकाययोगं गतः, सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अन्ययोगं गतः। लब्ध एष कालः।

एवं एकादशस्थले आहारकाययोगिप्रमत्तसंयतकालप्रतिपादनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

आहारमिश्रकाययोगिनां कालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

एक जीव की अपेक्षा आहारककाययोगी जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२११।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२१२।।

हिन्दी टीका—सात या आठ प्रमत्तसंयत महामुनि मनोयोग अथवा वचनयोग के साथ स्थित थे। वे अपने योगकाल के क्षीण हो जाने पर आहारक काययोगी हुए। द्वितीय समय में मरे अथवा मूल औदारिक शरीर में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार से एक समय का काल उपलब्ध हो गया। यहाँ पर व्याघात अथवा गुणस्थान परिवर्तन के द्वारा एक समय नहीं प्राप्त होता है।

उत्कृष्टरूप से नाना जीवों की अपेक्षा आहारकशरीर को उत्पन्न करने वाले मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान प्रमत्तसंयत मुनि आहारककाययोगी हुए। जब वे किसी दूसरे योग को प्राप्त हुए उसी समय में ही अन्य प्रमत्तसंयत मुनि आहारककाययोग को प्राप्त हो गये। इस प्रकार एक को आदि लेकर एकोत्तर वृद्धि से संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं। इन शलाकाओं से एक काययोग के काल को गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारककाययोग का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण हो जाता है।

एक जीव की अपेक्षा मनोयोग या वचनयोग में विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोग को प्राप्त हुएऔर द्वितीय समय में मरे अथवा मूल शरीर में प्रविष्ट हो गये।

उत्कृष्टरूप से मनोयोग या वचनयोग में विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत मुनि आहारक काययोग को प्राप्त हुए। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योग को प्राप्त हो गये। यह आहारक काययोगियों का काल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में आहारककाययोगी प्रमत्तसंयत मुनियों का काल बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारकमिश्रकाययोगियों का काल प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२१३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२१५।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्ताष्ट जनाः प्रमत्तसंयताः दृष्टमार्गा आहारमिश्रकाययोगिनो जाताः, सर्वलघ्वन्तर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गताः। एवं जघन्यकालः प्ररूपितः। उत्कृष्टेन—सप्ताष्ट जनाः प्रमत्तसंयताः दृष्टमार्गाः अदृष्टमार्गाः वा आहारमिश्रकाययोगिनो जाताः, अंतर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गताः। तत्समये चैवान्ये आहारमिश्र-काययोगिनो जाताः शेषं पूर्ववत्।**

एकजीवापेक्षया—एकः प्रमत्तसंयतः पूर्वमनेकवारं उत्पादिताहारशरीरः आहारमिश्रकाययोगी जातः, सर्वलघ्वन्तर्मुहूर्तेन पर्याप्तिं गतः। उत्कृष्टेन—एकः प्रमत्तसंयतः अदृष्टमार्गः आहारकमिश्रो जातः। सर्वचिरेण अंतर्मुहूर्तेन जघन्यकालात् संख्यातगुणेन कालेन पर्याप्तिं गतः। एवं लब्धः उत्कृष्टकालः।

एवं द्वादशस्थले आहारकमिश्रयोगिसंयतानां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

सूत्रार्थ—

आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयतजीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं।।२१३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२१४।।

एक जीव की अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२१५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२१६।।

हिन्दी टीका—देखा है मार्ग को जिन्होंने ऐसे सात या आठ प्रमत्तसंयत मुनि आहारकमिश्रकाययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। इस प्रकार जघन्यकाल कहा। उत्कृष्टरूप से—देखा है मार्ग को जिन्होंने ऐसे अथवा अदृष्टमार्गी सात या आठ प्रमत्तसंयत मुनि आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य भी प्रमत्तसंयत मुनि आहारकमिश्रकाययोगी हुए। शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

एक जीव की अपेक्षा-पूर्व में अनेक बार आहारकमिश्रशरीर को उत्पन्न किया है जिसने ऐसे कोई एक प्रमत्तसंयत मुनि आहारकमिश्रकाययोगी हुए और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। इस प्रकार से जघन्यकाल प्राप्त हो गया।

उत्कृष्टरूप से-नहीं देखा है मार्ग को जिसने ऐसे कोई एक प्रमत्तसंयत मुनि आहारकमिश्रकाययोगी हुए और जघन्यकाल से संख्यातगुणे काल के द्वारा पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार बारहवें स्थल में आहारक मिश्रकाययोगी संयतों का काल प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना कार्मणकाययोगिनां मिथ्यादृष्टि जीवानां कालकथनाय सूत्रत्रयं अवतार्यते —

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२१७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२१८।।

उक्कस्सेण तिण्णि समया।।२१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **नानाजीवापेक्षया — विग्रहगतौ वर्तमानजीवानां सर्वकालेषु विरहाभावात्। एकजीवापेक्षया — एकः मिथ्यादृष्टिः विग्रहगतिनामकर्मोदयवशेन एकविग्रह-मारणान्तिकं गतः। पुनः अंतर्मुहूर्तेन छिन्नायुष्को भूत्वा बद्धायुर्बलेन उत्पन्नप्रथमसमये कार्मणकाययोगी जातः। द्वितीयसमये औदारिकमिश्रं वैक्रियिकमिश्रं वा गतः। लब्धः एकसमयः। उत्कृष्टेन — उदाहरणं — एकः सूक्ष्मैकेन्द्रियः अधस्तन-सूक्ष्मवायुकायिकेषु त्रिविग्रहं मारणान्तिकं गतः। पुनः अंतर्मुहूर्तेन छिन्नायुष्को भूत्वा उत्पन्नप्रथमसमयादिं कृत्वा त्रिषु विग्रहेषु त्रिसमयं कार्मणकाययोगी भूत्वा चतुर्थसमये औदारिकमिश्रं गतः। सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उत्पद्यमानानां त्रयो विग्रहा भवन्तीति नियमो नास्ति, किंतु संभावनां प्रतीत्यात्र सूक्ष्मैकेन्द्रियग्रहणं कृतं।**

बादरैकेन्द्रियाः सूक्ष्मैकेन्द्रियाः त्रसकाया वा सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उत्पद्यमानाः त्रीन् विग्रहान् कुर्वन्ति इति

अब कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का कालकथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२१७।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२१८।।

एक जीव की अपेक्षा कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल तीन समय है।।२१९।।

हिन्दी टीका — नाना जीवों की अपेक्षा-विग्रहगति में वर्तमानकालीन-विद्यमान जीवों का सभी कालों में विरह का अभाव पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा-एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रह गतिनामकर्म के वश से एक विग्रह वाले मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त से छिन्नायुष्क होकर बांधी हुई आयु के वश से उत्पन्न होने के प्रथम समय में कार्मणकाययोगी हुआ। पुनः द्वितीय समय में औदारिकमिश्रकाययोग को अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से एक समय उपलब्ध हुआ।

अब उत्कृष्ट की अपेक्षा उदाहरण देते हैं —

एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधस्तन सूक्ष्मवायुकायिकों में तीन विग्रह वाले मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त से छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर तीन विग्रहों में तीन समय तक कार्मणकाययोगी रहकर चौथे समय में औदारिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हो गया।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याय में उत्पन्न होने में तीन विग्रह होते हैं ऐसा कोई नियम नहीं है, किन्तु संभावना की अपेक्षा यहाँ पर सूक्ष्म एकेन्द्रियों का ग्रहण किया है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही

एष नियमो गृहीतव्यः, आचार्यपरंपरागतत्वात्।

तदेवोच्यते—ब्रह्मलोकवर्तिप्रदेशे वामदिक्संबंधिलोकस्य पर्यंतभागात् तिर्यग्दक्षिणभागे त्रिरज्जुप्रमाणं गत्वा पुनः सार्धदशरज्जुप्रमाणं अधस्तने वाणवत्ऋजुं गत्वा ततः सम्मुखं चतुःरज्जुमात्रं आगत्य पुनः तिर्यग्दक्षिणभागे चतुःरज्जुमात्रं गत्वा कोणदिशास्थितलोकान्तवर्तिसूक्ष्मवायुकायिकेषु उत्पद्यमानस्य त्रयो विग्रहा भवन्ति।

तात्पर्यमेतत्—एकेन्द्रियजीवेषु जन्म मा भवेत् इति भावनया। रत्नत्रयं संप्राप्य अप्रमादीभूय स्वात्मशुद्धिर्विधातव्या। पुनश्च या कचिदविग्रहा ऋजुगतिः सिद्धिगतिर्भवति तस्याः प्राप्त्यर्थं प्रयत्नो विधेयोऽस्माभिरिति।

एवं कार्मणसासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवैकजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते-

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२२०।।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२२१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२२२।।

उक्कस्सेण वे समयं।।२२३।।

तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यही उपदेश आचार्य परम्परा से आया हुआ है।

अब तीन विग्रह करने की दिशा को कहते हैं–ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेश पर वामदिशा सबंधी लोक के पर्यन्तभाग से तिरछे दक्षिण की ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े दस राजु नीचे की ओर वाण के समान सीधी गति से जाकर पश्चात् सामने की ओर चार राजुप्रमाण आकर पुनः तिरछे दक्षिण की ओर चार रज्जुप्रमाण जाकर कोणवर्ती दिशा में स्थित लोक के अन्तर्वर्ती सूक्ष्म वायुकायिकों में समुत्पन्न होने वाले जीव के तीन विग्रह होते हैं।

तात्पर्य यह है कि एकेन्द्रिय जीवों में हमारा कभी भी जन्म न होने पावे, ऐसी भावना से रत्नत्रय को प्राप्त करके निष्प्रमादी होकर सदैव निजात्मा को शुद्ध बनाना चाहिए, पुनः जो कोई विग्रहरहित ऋजुगति नाम की सिद्धगति होती है उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अब कार्मणकाययोगी सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों में नाना जीव की अपेक्षा काल प्रतिपादित करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।२२०।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।२२१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२२२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल दो समय है।।२२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः एकविग्रहं कृत्वा उत्पन्नप्रथमसमये एकसमयः कार्मणकाययोगेन लभ्यते।**

नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेन — सासादनाः असंयतसम्यग्दृष्टयो वा द्विविग्रहौ कृत्वा बद्धायुष्कवशेन उत्पद्य द्विसमयं स्थित्वा औदारिकमिश्रं वैक्रियिकमिश्रं वा गताः। तत्समये चैवान्ये कार्मणकाययोगिनो जाताः। एवमेकं काण्डकं कृत्वा एतादृशानि आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रं काण्डकानि भवन्ति। एतेषां शलाकाभिः द्विसमयौ गुणिते आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रः कार्मणकाययोगः उत्कृष्टकालोभवति।

एकजीवापेक्षया पूर्ववत् एकसमयः। उत्कृष्टेन एतयोः सासादनअसंयतसम्यग्दृष्ट्योः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उत्पत्तेरभावात्, बृद्धिहानिक्रमेण स्थितलोकान्ते उत्पत्तेरभावाच्च।

सयोगिकेवलिनां नानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयं अवतार्यते —

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं।।२२४।।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं।।२२५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं।।२२६।।

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का एक विग्रह करके उत्पन्न होने के प्रथम समय में एक समय कार्मणकाययोग के साथ पाया जाता है।

नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टरूप से-पूर्व पर्याय को छोड़ने के पश्चात् कितने ही सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बांधी हुई आयु के वश से उत्पन्न होकर विग्रहगति में दो विग्रह करके, दो समय रहकर पुनः औदारिकमिश्रकाययोग को अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हुए। उसी समय में ही दूसरे भी जीव कार्मणकाययोगी हुए। इस प्रकार इस एक कांडक को करके इसी प्रकार के अन्य-अन्य आवली के असंख्यातवें भाग मात्र कांडक होते हैं। इन कांडकों की शलाकाओं से दोनों समयों को गुणा करने पर आवली का असंख्यातवाँ भाग मात्र कार्मणकाययोग का उत्कृष्टकाल होता है।

एक जीव की अपेक्षा उनका काल पूर्ववत् एकसमय होता है। उत्कृष्टरूप से इन सासादन या असंयतगुणस्थानवर्ती जीवों की सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पत्ति का अभाव है तथा वृद्धि-हानि के क्रम से विद्यमान लोक के अन्त में भी उनकी उत्पत्ति का अभाव है।

अब सयोगिकेवली गुणस्थानवर्तियों में नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टकाल का कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली कितने समय तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से तीन समय होते हैं।।२२४।।

कार्मणकाययोगी सयोगिजिनों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टकाल संख्यात समय है।।२२५।।

एक जीव की अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनों का जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है।।२२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —**सप्ताष्ट जना वा सयोगिनो युगपत् कपाटसमुद्घातं गताः, प्रतरलोकपूरण-समुद्घातौ गत्वा भूयः प्रतरं त्रिसमयं कार्मणकाययोगिनो भूत्वा कपाटं गताः। उत्कृष्टेन च नानाजीवानां त्रिसमयिकं कांडकं कृत्वा संख्यातकाण्डकानां उपलम्भात्।**

एकजीवापेक्षया जघन्योत्कृष्टाभ्यां एकसमयमेव।

कुतः?

प्रतरसमुद्घातात् लोकपूरणाद् वा कपाटस्य गमनाभावात्। अतो ज्ञायते केवलिनः भगवतः आरोहणावरोहणयोः प्रतरलोकपूरणप्रतरेषु कार्मणकाययोगो भवति।

तात्पर्यमेतत्—संप्रतिकाले षष्ट्युत्तरशतविदेहेषु कश्चित् केवली भगवान् समुद्घातं कुर्वन् तिष्ठति इति भवितुं शक्यते, तान् केवलिनः भगवतः नमस्कुर्मो वयम् भक्तिभावेन।

एवं त्रयोदशस्थले कार्मणकाययोगिनां मिथ्यात्वसासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिसयोगिकेवलिनां कार्मणकाययोगकालनिरूपणत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

हिन्दी टीका—सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए और प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त होकर पुनः प्रतरसमुद्घात को प्राप्त हो, तीन समय तक कार्मणकाययोगी रह करके कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए। क्योंकि उत्कृष्टरूप से तीन समय वाले कांडक को करके उनके संख्यात कांडक पाये जाते हैं।

और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय ही पाया जाता है।

ऐसा क्यों कहा है?

क्योंकि प्रतर अथवा लोकपूरण समुद्घात करने वाले कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवन्तों के कपाटसमुद्घात में जाने का अभाव है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि केवली भगवान के प्रतर और लोकपूरण के समय आरोहण-अवरोहण में कार्मणकाययोग होता है।

तात्पर्य यह है कि आज भी एक सौ साठ विदेह क्षेत्रों में कोई केवली भगवान समुद्घात कर रहे हों, यह संभव है। उन केवली भगवान को हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार से तेरहवें स्थल में कार्मणकाययोगी जीवों में मिथ्यात्व-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टि और तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगिकेवली भगवन्तों के कार्मणकाययोग का काल निरूपण करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकार:

अथ पंचभिः स्थलैः त्रयोविंशतिसूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्त्रीवेदेषु मिथ्यात्वत्रिककालप्रतिपादनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रपंचकं। ततः परं द्वितीयस्थले स्त्रीवेदेषु असंयत-संयतासंयतादि अनिवृत्तिगुणस्थानेषु कालनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततश्च तृतीयस्थले पुरुषवेदे मिथ्यात्वादिअनिवृत्तिगुणस्थानवर्तिनां कालप्रतिपादनत्वेन ''पुरिसवेदएसु'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले नपुंसकवेदे प्रथमगुणस्थानादारभ्य नवमगुणस्थानपर्यंतं कालकथनमुख्यत्वेन ''णवुंसय'' इत्यादिना नव सूत्राणि। पुनश्च पंचमस्थले अपगतवेदानां महामुनीनां नवमगुणस्थानाद्ययोगिपर्यन्तानां कालनिरूपणमुख्यत्वेन ''अपगद'' इत्यादिना एकं सूत्रं इति समुदायपातनिका।

अधुना वेदमार्गणायां स्त्रीवेदे नानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२२७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२२८।।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में तेईस सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पाँचवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें प्रथम स्थल में स्त्रीवेद में मिथ्यात्वत्रिक-प्रथम तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले "वेदाणुवादेण" इत्यादि पाँच सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में स्त्रीवेद वाले असंयत और संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान से लेकर नवमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक के जीवों का कालनिरूपण करने वाले "असंजद" इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः तृतीयस्थल में पुरुषवेदी मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती से अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती जीवों का काल बतलाने वाले "पुरिसवेदएसु" इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में नपुंसकवेद में प्रथम गुणस्थान से लेकर नवमें गुणस्थानवर्ती जीवों का काल कथन करने वाले "णवुंसय" इत्यादि नव सूत्र हैं। पुनश्च पंचम स्थल में अपगतवेदी महामुनियों का नवमें गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में कालनिरूपण करने की मुख्यता वाला "अपगद" इत्यादि एक सूत्र है।

यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब वेदमार्गणा के अन्तर्गत स्त्रीवेद में नाना जीवों का तथा एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२२७।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२२८।।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।।२२९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकजीवापेक्षया कथ्यते—एकः स्त्रीवेदकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा परिणामनिमित्तेन मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा अन्यगुणस्थानं गतः। जघन्योऽयं कालः। उत्कृष्टेन—एकः अविवक्षितवेदः स्त्रीवेदेषु उत्पन्नः। पुनः तत्र स्त्रीवेदेन पल्योपमशत-पृथक्त्वं परिवर्त्य अविवक्षितवेदं गतः।**

तात्पर्यमेतत्—अत्र प्रमत्तसंयतः स्त्रीवेदे कथितः, तत्तु भावस्त्रीवेदापेक्षया। पुनः पल्योपमशतपृथक्त्वेन भोगभूमिषु स्त्रीवेदे, स्वर्गेषु देवीनां अपि पल्योपमायुः गृहीतव्यं। तत्रैव सप्तशतं अष्टशतं वा पल्योपमं आयुःस्थितिकालं लभ्यते।

संप्रति सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वयोः स्त्रीवेदकालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयं अवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२३०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।२३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेन स्वराशिभ्यः असंख्यातगुणः, पल्योपमस्य असंख्यातभागः, एकजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेन षडावलिकाः। एतत्सासादने**

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपमशतपृथक्त्व है।।२२९।।

हिन्दी टीका—यहाँ सर्वप्रथम एक जीव की अपेक्षा कथन किया जा रहा है–

कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण रह करके अन्य गुणस्थान को चला गया। यह जघन्यकाल है।

उत्कृष्ट से—अविवक्षित वेद वाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियों में उत्पन्न हुआ पुनः वहाँ पर स्त्रीवेद के साथ पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवक्षित वेद को चला गया।

तात्पर्य यह है कि यहाँ पर जो स्त्रीवेद में प्रमत्तसंयत गुणस्थान बतलाया गया है, वह भावस्त्रीवेद की अपेक्षा जानना चाहिए। पुनः पल्योपमशतपृथक्त्व के द्वारा भोगभूमिया स्त्रीवेद में तथा स्वर्गों में भी देवियों की पल्योपम आयु का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि वहीं पर सात सौ अथवा आठ सौ पल्योपम आयु वाला स्थितिकाल प्राप्त होता है।

अब सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में स्त्रीवेदियों का काल बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२३०।।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का काल गुणस्थान के समान है।।२३१।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कर्ष से अपनी राशि से असंख्यातगुणा पल्योपम का असंख्यातवां भाग है, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से छह आवलीप्रमाण काल है, यह सासादनगुणस्थान में कालव्यवस्था है।

कालव्यवस्था। सम्यग्मिथ्यात्वे—नानाजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन स्वराशिभ्यः असंख्यातगुणः, पल्योपमस्यासंख्यातभागः, एकजीवापेक्षया जघन्येन उत्कृष्टेन च अंतर्मुहूर्तमेव।

एवं प्रथमस्थले स्त्रीवेदिनां मिथ्यात्वादित्रिकगुणस्थानकालनिरूपणत्वेन सूत्राणि पंच गतानि।

संप्रति स्त्रीवेदे चतुर्थादिनवमगुणस्थानवर्तिनां कालकथनाय सूत्रचतुष्टयं अवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा।।२३२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२३३।।

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि।।२३४।।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।२३५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया सर्वकालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तं स्त्रीवेदे चतुर्थगुणस्थाने। तस्योदाहरणं—एकः मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा स्त्रीवेदकः परिणामप्रत्ययेन असंयतसम्यग्दृष्टिः भूत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा जघन्यकालाविरोधेन गुणस्थानान्तरं**

अब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में देखें—

नाना जीवों की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल अपनी राशि से असंख्यातगुणित पल्योपम के असंख्यातवें भाग है तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में स्त्रीवेदी जीवों का काल निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब स्त्रीवेद में चतुर्थ से लेकर नवमें गुणस्थान तक के जीवों का काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२३२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२३३।।

एक जीव की अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम पचपन पल्योपम है।।२३४।।

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२३५।।

हिन्दी टीका—स्त्रीवेदी जीवों में चतुर्थ गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा सम्पूर्ण काल पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा स्त्रीवेद में चतुर्थ गुणस्थान में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल रहता है।

इसका उदाहरण देते हुए कहा है—

एक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव परिणामों के

गतः। लब्धः जघन्यकालः। उत्कृष्टेन — कश्चिदविवक्षितवेदकः — पुरुषवेदकःनपुसंकवेदको वा पंचपंचाशत्पल्योपमायुःस्थितिदेवीषु उत्पद्य षट् पर्याप्तीः पूर्णीकृत्य अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य पुनः अंतर्मुहूर्तं विशुद्धो भूत्वा वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य सम्यक्त्वेन आयुःस्थितिमनुभुज्य कालं कृत्वा पुरुषवेदं प्रतिपन्नः, तस्य त्रिभिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनपंचपञ्चाशत्पल्योपमोपलंभात्!

स्त्रीवेदे संयतासंयतस्य उत्कृष्टकालेऽस्ति विशेषः-एकः अष्टाविंशतिमोहनीयकर्मप्रकृतिसत्त्वसहितः स्त्रीवेदेषु कुक्कुट-मर्कटादिषु उत्पद्य द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निर्गत्य मुहूर्तपृथक्त्वस्योपरि सम्यक्त्वं संयमासंयमं वा युगपत् गृहीत्वा द्विमासमुहूर्तपृथक्त्वोन-पूर्वकोटिसंयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः इति।

पुनः ओघे — अंतर्मुहूर्तोन-पूर्वकोटिसंयतासंयत-उत्कृष्टकालः संज्ञिसन्मूर्च्छिमपर्याप्तमत्स्य-कच्छप-मंडूकादिषु लब्धः, अत्र स्त्रीवेदे स न लभ्यते, सम्मूर्च्छिमेषु स्त्रीवेदाभावात्।

तात्पर्यमेतत् — देशोनपूर्वकोटिकालस्य द्वौ भेदौ स्तः, द्विमासमुहूर्तपृथक्त्वहीनपूर्वकोटिवर्षकालः स्त्रीवेदे कुक्कुटमर्कटादिषु लभ्यते। अंतर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिवर्षकालः सम्मूर्च्छिम-मत्स्य-कच्छपमंडूकादिषु नपुंसकवेदे जायते इमे तिर्यञ्चोऽपि स्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रवर्तिनश्चैव।

निमित्त से असंयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रह करके जघन्यकाल के अविरोध से किसी दूसरे गुणस्थान को चला गया। इस प्रकार जघन्यकाल प्राप्त हुआ।

उत्कृष्टरूप से-किसी अविवक्षित अन्य वेद वाले-पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी जीव के पचपन पल्योपम की आयु स्थिति वाली देवियों में उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियों को सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, पुनः अन्तर्मुहूर्त में विशुद्ध होकर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त कर सम्यक्त्व के साथ अपनी आयु स्थिति का उपभोग कर मरण को करके पुरुषवेद को प्राप्त जीव के तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम पचपन पल्योपमप्रमाण काल पाया जाता है।

स्त्रीवेद में संयतासंयत गुणस्थान के उत्कृष्टकाल में कुछ विशेषता बतलाते हैं — मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी, कुक्कुट, मर्कट आदि में उत्पन्न होकर दो मास गर्भ में रहकर वहाँ से निकल करके मुहूर्त पृथक्त्व के ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयम को युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्व से कम पूर्वकोटीवर्षप्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हो गया।

पुनः ओघकाल-गुणस्थान की समय प्ररूपणा में-जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वर्ष संयतासंयत का उत्कृष्टकाल कहा है, वह संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मच्छ — मछली, कच्छप — कछुवा, मंडूकादिकों — मेंढक आदि में पाया जाता है, वह यहाँ पर नहीं पाया जाता है क्योंकि सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीवों में स्त्रीवेद का अभाव है।

तात्पर्य यह है कि देशोनपूर्वकोटि काल के दो भेद हैं —

१. **द्विमासमुहूर्तहीनपूर्वकोटिवर्षकाल** — यह स्त्रीवेदी कुक्कुट-मुर्गा, बंदर आदि में पाया जाता है।

२. **अन्तर्मुहूर्तऊनपूर्वकोटिवर्षकाल** — यह सम्मूर्च्छन जन्म वाले मत्स्य, कछुवा, मेंढक आदि नपुंसकवेदी जीवों में होता है।

ये तिर्यंच भी स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में जन्म लेने वाले हैं, क्योंकि अन्य स्थानों के जीवों में इस काल से गणना नहीं होती है।

पुनः षष्ठसप्तमाष्टमनवमगुणस्थानेषु ये स्त्रीवेदकाः संयताः ते भावस्त्री वेदापेक्षयैव न च द्रव्यस्त्रीवेदिन्यः इति ज्ञातव्यः।

एवं द्वितीयस्थले स्त्रीवेदे असंयताद्यनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनां कालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति पुरुषवेदे मिथ्यादृष्टिनानाजीवैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२३६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२३७।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।२३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—पुरुषवेदे मिथ्यादृष्टीनां सर्वकालः नानाजीवापेक्षया। एकजीवापेक्षया जघन्येन कश्चित् असंयत सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा दृष्टमार्गः मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा गुणस्थानान्तरं प्रपन्नः, तस्य एष कालो लब्धः। उत्कृष्टकालेन—एकः स्त्रीनपुंसकवेदयोः बहुबारं परिभ्रमितजीवः पुरुषवेदेषु उत्पन्नः। पुरुषवेदो भूत्वा सागरोपमशतपृथक्त्वं भ्रमित्वा अविवक्षितवेदं

पुनः छठे, सातवें, आठवें और नवमें गुणस्थानों में जो स्त्रीवेदी संयत होते हैं, वे भावस्त्रीवेद की अपेक्षा ही हैं, न कि द्रव्यस्त्रीवेदी इन गुणस्थानों में हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में स्त्रीवेद में असंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों का काल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेद में मिथ्यादृष्टि नाना जीव तथा एक जीव के जघन्य और उत्कृष्टकाल को बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं?।।२३६।।

एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२३७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल सागरोपमशतपृथक्त्व है।।२३८।।

हिन्दी टीका—पुरुषवेद में नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टियों का सर्वकाल पाया जाता है, क्योंकि तीनों ही कालों में पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों का विरह असंभव है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से-दृष्टमार्ग-देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत, जो मिथ्यादृष्टि होकर और सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त हो गया, ऐसे जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्टकाल की अपेक्षा-स्त्री और नपुंसकवेदी जीवों में बहुत बार परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदियों में उत्पन्न हुआ। पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके अविवक्षित वेद को प्राप्त हो गया। उसके उत्कृष्ट काल पाया जाता है। तीन सौ को आदि करके नौ सौ तक की संख्या की

गतः। त्रिशतमादिं कृत्वा यावन्नवशतं इति एतस्याः संख्यायाः शतपृथक्त्वमिति संज्ञास्ति एवं ज्ञातव्यं।

संप्रति पुरुषवेदे सासादनाद्यनिवृत्तिगुणस्थानवर्तिकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।२३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतेषां कथितगुणस्थानानां नानाजीवैकजीवानां जघन्योत्कृष्टकालाभ्यां ओघात् भेदाभावात्। केवलं तु संयतासंयतानां स्त्रीवेदवत् कालो ज्ञातव्यः।**

तात्पर्यमेतत्—यदि कश्चित् द्रव्यस्त्रीवेदकः भावपुरुषवेदी अस्ति। तस्य संयतासंयतादुपरितनगुणस्थानानि न भवन्ति इति ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले पुरुषवेदे प्रथमादिनवमगुणस्थानवर्तिनां समयप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति नपुंसकवेदे मिथ्यात्वादित्रिकगुणस्थानवर्तिनां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२४०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२४१।।

'शतपृथक्त्व'' यह संज्ञा है, ऐसा जानना चाहिए।

अब पुरुषवेद में सासादन से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती तक का काल बतलाने वाला सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२३९।।

हिन्दी टीका—इन सूत्रोक्त-सूत्र में कहे गये गुणस्थानों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल के साथ गुणस्थान से कोई भेद नहीं है। विशेष बात केवल यह है कि पुरुषवेदी संयतासंयतों का काल स्त्रीवेदी संयतासंयतों के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि यदि कोई द्रव्यस्त्रीवेदी जीव भाव से पुरुषवेदी है तो उसके संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थान नहीं हो सकते हैं ऐसा सैद्धान्तिक कथन समझना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पुरुषवेद में प्रथम मिथ्यात्व आदि नव गुणस्थानवर्ती जीवों का समय प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेद में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का जघन्य और उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२४०।।

एक जीव की अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२४१।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२४२।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२४३।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।२४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **नपुंसकवेदिनां सर्वकालः नानाजीवानाश्रित्येति। एकजीवापेक्षया — सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः संयतो वा मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा गुणस्थानान्तरं गतः नपुंसकवेदः, तस्य अन्तर्मुहूर्तः कालः। उत्कृष्टेन — एकः परिभ्रमितस्त्री-पुरुषवेदस्थितिकः नपुंसकवेदं प्रतिपद्य तमत्यजन् आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि परिभ्रम्य अन्यवेदं गतः, तस्योत्कृष्टकालो लब्धः।**

सासादनानां नपुसंकवेदिनां ओघवत्। सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि ओघवत् ज्ञातव्यं।

असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि अनिवृत्तिगुणस्थानवर्त्तिनां नपुंसकवेदे कालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२४५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।२४२।।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवों का काल ओघ-गुणस्थानके समान है।।२४३।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२४४।।

हिन्दी टीका — नाना जीवों की अपेक्षा नपुंसकवेदी जीवों का सम्पूर्ण काल पाया जाता है, क्योंकि सभी कालों में इन जीवों के विरह का अभाव है।

एक जीव की अपेक्षा-सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत अथवा संयतजीव के मिथ्यात्व को प्राप्त होकर और वहाँ पर सर्व जघन्यकाल रह करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा-जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया है, ऐसा कोई एक जीव नपुंसकवेद को प्राप्त होकर, उसे नहीं छोड़ता हुआ आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परिवर्तनों तक परिभ्रमण करके अन्य वेद को प्राप्त हुआ। उसके यह उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवों का काल ओघ के समान होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदियों का काल भी ओघ-गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

अब नपुंसकवेद में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक के जीवों का काल कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२४५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२४६।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२४७।।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।२४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—नानाजीवापेक्षया नपुंसकेषु सर्वकालः। एकजीवापेक्षया जघन्येन—मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः संयतासंयतः संयतो वा दृष्टमार्गः असंयतसम्यक्त्वं प्रतिपद्य सर्वजघन्यकालं स्थित्वा गुणान्तरं गतः, तस्यान्तर्मुहूर्तोपलम्भात्।

एकजीवस्य उत्कृष्टेन अष्टाविंशतिसत्कर्मिकस्य सप्तपृथिव्यां उत्पद्य षट्पर्याप्तीः परिपूर्य विश्रम्य विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य अंतर्मुहूर्तावशेषे आयुषि मिथ्यात्वं गत्वा आयुर्बन्धं कृत्वा अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य निर्गतस्य षड्भिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमोपलंभात्।

नपुंसकवेदेषु नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-संयतानां ओघात् विशेषाभावात्। अत्रापि प्रमत्तादीनां द्रव्यवेदः पुरुष एव भाववेदेन नपुंसकाः सन्ति इति ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले नपुंसकवेदेषु नवगुणस्थानपर्यंतानां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

अथापगतवेदेषु गुणस्थानव्यवस्थासमयप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२४६।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है।।२४७।।

संयतासंयत से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२४८।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा नपुंसकवेदियों में सर्वकाल पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से—दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत या संयतजीव के असंयतसम्यक्त्व को प्राप्त होकर सर्व जघन्यकाल रह करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्टरूप से—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले किसी एक जीव के सातवीं पृथिवी में उत्पन्न होकर छह पर्याप्तियों को सम्पन्न करके, विश्राम कर और विशुद्ध होकर तथा सम्यक्त्व को प्राप्त होकर, आयु के अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर, मिथ्यात्व में जाकर, आगामी भवसंबंधी आयु को बांधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलने वाले जीव के छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेतीस सागरोपम काल पाया जाता है।

नपुंसकवेद में नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट कालों के द्वारा संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती संयतों का काल ओघ के समान है, उसमें कोई अन्य विशेषता नहीं है।

यहाँ भी प्रमत्तादि संयतों का द्रव्यवेद पुरुष ही रहता है, भाववेद नपुंसक होता है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में नपुंसकवेद में नव गुणस्थान तक के जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल निरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेद में गुणस्थान व्यवस्था एवं समय का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।२४९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः ओघात् विशेषाभावात्।**

तात्पर्यमेतत् — प्रशस्तपुरुषवेदं संप्राप्य जैनेश्वरी दीक्षां गृहीत्वा निजशुद्धपरमात्मतत्त्वरुचिज्ञान-चारित्ररूपनिश्चयरत्नत्रयं पालयित्वा साक्षात् समयसारकार्यरूपानन्तचतुष्टयं प्राप्तव्यं इति भावना भाव्यतेऽस्माभिः।

एवं पंचमस्थले अपगतवेदेषु महामुनीनां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय एकं सूत्रं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां वेदमार्गणानाम-पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ —

अपगतवेदी जीवों में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अवेदभाग से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२४९।।

हिन्दी टीका — नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल के साथ ओघ से कोई विशेषता नहीं है।

तात्पर्य यह है कि प्रशस्त पुरुषवेद को प्राप्त करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके निज शुद्ध परमात्म तत्त्व के प्रति रुचि-सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रय का पालन करके साक्षात् समयसार के कार्यरूप अनंत चतुष्टय की प्राप्ति होवे, ऐसी हम भावना भाते हैं।

इस प्रकार पंचमस्थल में अपगतवेद-वेदरहित अवस्था में महामुनियों के जघन्य एवं उत्कृष्टकाल का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि टीका में वेदमार्गणा नामक पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकार:

अथ चतुर्भिः स्थलैर्दशसूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चतुर्विधकषायेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तपर्यंतानां कालकथनमुख्यत्वेन ''कसाया'' इत्यादि एकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले उपशामकानां कषायकालकथनत्वेन ''दोण्णि'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले क्षपकानां कषायकालनिरूपणत्वेन ''दोण्णि'' इत्यादिसूत्रचतुष्कं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अकषायानां कालप्रतिपादनत्वेन ''अकसाईसु'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका।

अधुना चतुर्विधकषायेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तानां कालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो।।२५०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतत्सूत्रं द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन पर्यायार्थिकनये अवलम्ब्यमाने अस्ति विशेषः। स एव कथ्यते—एकजीवापेक्षया क्रोधकषायिनो जीवस्य जघन्येन एकसमयं। अत्र कषायपरावृत्ति-गुणस्थानपरावृत्तिमरणैरेक समयो वक्तव्यः। व्याघातेन एकसमयो न लभ्यते, क्रोधस्यैव तत्रोत्पत्तेः। तद्यथा—एकः सासादनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा क्रोधकषायी एकसमयं क्रोधकषायकालावशेषे**

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों से दस सूत्रों में कषाय मार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चार प्रकार की कषायों में मिथ्यादृष्टि से अप्रमत्त गुणस्थान पर्यंत जीवों के कालकथन की मुख्यता वाला ''कसाया'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। उसके आगे द्वितीय स्थल में उपशामक जीवों का काल बतलाने हेतु 'दोण्णि' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में क्षपक जीवों के कषाय का काल कथन करने वाले ''दोण्णि'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में कषायरहित जीवों के काल का प्रतिपादन करने वाला ''अकसाईसु'' इत्यादि एक सूत्र है। यह इस अधिकार के सूत्रों की समुदाय पातनिका हुई।

अब चार प्रकार की कषायों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तगुणस्थानवर्तियों तक का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत तक का काल मनोयोगियों के समान है।।२५०।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र में द्रव्यार्थिक नय का आश्रय लेकर कथन किया गया है, किन्तु पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन लेने पर इसमें कुछ विशेषता पाई जाती है। उसे कहते हैं–

क्रोध कषायी मिथ्यादृष्टि जीव का एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय है। यहाँ पर कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण के द्वारा एक समय की प्ररूपणा कहना चाहिए। व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है क्योंकि व्याघात के होने पर तो क्रोध की ही उत्पत्ति होती है। जैसे कोई–

मिथ्यात्वं गतः। एकसमयं क्रोधेन मिथ्यात्वं दृष्टं, द्वितीयसमये अन्यकषायं गतः। एषा कषायपरावृत्तिः।

एकः मिथ्यादृष्टिः अन्यकषायेन स्थितः, तस्य कालक्षयेन क्रोधकषायः आगतः, एकसमयं क्रोधकषायेन सह दृष्टः। द्वितीयसमये सम्यग्मिथ्यात्वं असंयतसम्यक्त्वं संयमासंयमं अप्रमत्तभावेन संयमं वा प्रतिपन्नः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः।

एको मिथ्यादृष्टिः अन्यकषायेन स्थितः, तस्य कालक्षयेन क्रोधकषायी जातः। एकसमयं क्रोधेन सह दृष्टः। द्वितीयेन मृतः अन्यकषायेषु उत्पन्नः, एष मरणेन एकसमयः। क्रोधेन मृतः नरकगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नजीवानां प्रथमं क्रोधोदयस्योपलम्भात्। मानेन मृतः मनुष्यगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमसमये मानोदयनियमोपदेशात्। मायया मृतः तिर्यग्गत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमसमये माययोदय-नियमोपदेशात्। लोभेन मृतः देवगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमं चैव लोभोदयो भवतीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्। एवं शेषगुणस्थानानामपि ज्ञात्वा वक्तव्यं। तथैव मान-माया-लोभकषायाणामपि कथयितव्यं। केवलं-कषाय-गुणस्थानपरावृत्ति-मरण-व्याघातैः चतुर्भिरपि एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।

एवं प्रथमस्थले चतुःकषायसहितानां मिथ्यादृष्ट्यादिअप्रमत्तान्तानां कालप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतं।

सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत क्रोधकषायी जीव क्रोधकषाय के काल में एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। एक समय क्रोध के साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समय में किसी और कषाय को प्राप्त हो गया। यह कषायपरिवर्तनसंबंधी एक समय की प्ररूपणा है।

एक कोई मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि अन्य कषाय में स्थित था, उस कषाय के कालक्षय से क्रोधकषाय को प्राप्त हुआ। एक समय वह क्रोधकषाय के साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समय में सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा असंयतसम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ, यह गुणस्थानपरिवर्तन है।

एक कोई मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषाय में विद्यमान था। उस कषाय के कालक्षय से वह क्रोधकषायी हो गया। एक समय क्रोधकषाय के साथ दृष्टिगोचर हुआ पुनः द्वितीय समय में मरा और अन्य कषायों में उत्पन्न हुआ, यह मरण की अपेक्षा एक समय हुआ। क्रोधकषाय के साथ मरा हुआ जीव नरकगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि नरकों में उत्पन्न होने वाले जीवों के सर्वप्रथम क्रोधकषाय का उदय पाया जाता है। मानकषाय से मरा हुआ जीव मनुष्यगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीवों के प्रथम समय में मानकषाय के उदय के नियम का उपदेश देखा जाता है। माया कषाय से मरे हुए जीव को तिर्यग्गति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि तिर्यंचों के उत्पन्न होने के प्रथम समय में मायाकषाय के उदय का नियम देखा जाता है। लोभकषाय से मरा हुआ जीव देवगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि उनमें उत्पन्न होने वाले जीवों के सर्वप्रथम लोभकषाय का उदय होता है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेश है। इसी प्रकार से शेष गुणस्थानों का भी काल जानकर कहना चाहिए। इसी प्रकार मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायों के कालों की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन, मरण और व्याघात इन चारों के द्वारा एक समय की प्ररूपणा कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चार कषाय सहित जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक के जीवों का काल प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अधुना उपशामकानां कषायकालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२५१।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२५३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—त्रिषु क्रोधमानमायाकषायेषु अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानवर्तिनौ उपशामकौ भवतः, अनिवृत्तिकरणादुपरि त्रिकषायाणामभावात्। लोभकषाये अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्तिनः उपशामकाः भवन्ति, उपशान्तकषाये लोभोदयाभावात्।

उपर्युक्तद्वयगुणस्थानवर्तिनोः त्रिगुणस्थानवर्तिषु च कषायपरावृत्ति-गुणस्थानपरावृत्ति-व्याघातैः एकसमयप्ररूपणा न लभ्यते, तथाविधोपदेशाभावात्। किन्तु अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपराययोः आरोहणावरोहणप्रथमसमये मृतानां मुनीनां एकसमयो लभ्यते। अपूर्वकरणस्य पुनः अवतरतः प्रथमसमये चैव एकसमयोऽस्ति।

कुतः?

अब उपशामक जीवों का कषायकाल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कषायों की अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें और नवमें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव और लोभकषाय की अपेक्षा तीन उपशामक अर्थात् आठवें, नवमें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेण्यारोहक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।२५१।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२५२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२५३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त तक है।।२५४।।

हिन्दी टीका—क्रोधादि तीनों कषायों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये दो गुणस्थानवर्ती उपशामक मुनि होते हैं, क्योंकि अनिवृत्तिकरण से ऊपर तीनों कषायों का अभाव है। लोभकषाय में अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक मुनि होते हैं, क्योंकि उपशान्तकषाय गुणस्थान में लोभकषाय के उदय का अभाव है।

इन उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकों में कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और व्याघात इन तीनों की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि उस प्रकार का उपदेश नहीं पाया जाता है किन्तु अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवों के चढ़ने या उतरने के प्रथम समय में मरण को प्राप्त हुए मुनियों के एक समय पाया जाता है। अपूर्वकरण गुणस्थान के उतरने के प्रथम समय में ही एक समय पाया जाता है।

प्रश्न—क्यों?

आरूह्यमाणापूर्वकरणस्य प्रथमसमये मरणाभावात्।

एषः जघन्यकालः नानाजीवानां। उत्कृष्टेन तु—आरोहणावरोहणपर्यायपरिणतजीवैः अंतर्मुहूर्तकालं एतेषां गुणस्थानानां परिपूर्णोपलंभात्।

एकजीवापेक्षया—त्रयाणामुपशामकानां मरणेन एकसमयोपलंभात्। उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तं-कषायाणामुदयस्य अंतर्मुहूर्तादुपरि निश्चयेन विनाशो भवतीति गुरुपदेशात् लभ्यते।

एवं द्वितीयस्थले उपशामकानां कषायसमयनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति क्षपकानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयं अवतार्यते—

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२५५।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२५७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तयोः अपूर्वकरणनिवृत्तिकरणगुणस्थानयोः क्षपकयोः त्रिषु गुणस्थानेषु**

उत्तर—क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मुनि के प्रथम समय में मरण का अभाव है।

यह नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य काल है। उत्कृष्ट की अपेक्षा-उपशम श्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्याय से परिणत मुनियों की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानों के परिपूर्णरूप से पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा—तीनों उपशामक मुनियों के मरण की अपेक्षा एक समय पाया जाता है।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त—कषायों के उदय का अन्तर्मुहूर्त काल से ऊपर निश्चय से विनाश होता है, ऐसा गुरु उपदेश से जाना जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में उपशामकों के कषाय का समय बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले नाना एवं एक क्षपक का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं।।२५५।।

उक्त जीवों के उक्त कषायों का काल अन्तर्मुहूर्त है।।२५६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२५७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२५८।।

हिन्दी टीका—पूर्वोक्त दोनों सूत्रों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनियों

क्षपकेषु च कषायपरावृत्त्या एकसमयो न लभ्यते, क्षपकोपशामकयोः कषायोदयस्य जघन्यकालस्यापि अंतर्मुहूर्तपरिमाणोपदेशात्। न गुणस्थानपरावृत्यापि एकसमयः, एकसमयिकस्य कषायोदयस्य क्षपकोपशमश्रेण्योः अभावात्। न व्याघातेनापि, क्षपकोपशमश्रेण्योः व्याघातस्य प्रतिषेधात्। न मरणेनापि, क्षपकेषु मरणाभावात्। ततो जघन्यकालेन निश्चयेन अंतर्मुहूर्तेन भवितव्यमिति। एष जघन्यकालः नानाजीवापेक्षया, एषामुत्कृष्टकालोऽपि अंतर्मुहूर्तमेव, क्रमेण अंतर्मुहूर्तान्तरेण क्षपकश्रेणिं चटमानबहुजीवान् आश्रित्य जघन्यकालात् संख्यातगुणकालोपलंभात्।

एकजीवापेक्षयापि जघन्योत्कृष्टकालमन्तर्मुहूर्तमेव कथितमस्ति।

एवं तृतीयस्थले क्षपकानां कषायस्थितिनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति अकषायानां कालप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।।२५९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सर्वेणापि प्रकारेण नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालगतविशेषाभावात् ओघवत् कथयितव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—''सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।'' इति सूत्रात्

के दोनों या तीनों गुणस्थानों में कषायपरिवर्तन से एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि क्षपक और उपशामकों में अपनी उदयागत कषाय के उदय का जघन्यकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है ऐसा आचार्य परम्परा से उपदेश प्राप्त है और न गुणस्थान परिवर्तन के द्वारा ही एक समय प्रमाण काल पाया जाता है क्योंकि एक समय वाले कषाय के उदय का क्षपक और उपशम श्रेणियों में अभाव है। न व्याघात के द्वारा ही एक समय पाया जाता है क्योंकि क्षपक और उपशमश्रेणियों में व्याघात का प्रतिषेध पाया जाता है और न मरण के द्वारा ही एक समय पाया जाता है क्योंकि क्षपकों में मरण का अभाव है इसलिए यहाँ पर कषायों का जघन्यकाल निश्चय से अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए।

नाना जीवों की अपेक्षा यह जघन्यकाल है, इनका उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। क्रमशः अन्तर्मुहूर्त के अन्तर से क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले बहुत जीवों की अपेक्षा जघन्यकाल से उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा भी जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही कहा गया है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में क्षपक श्रेणी वाले महामुनियों की कषायस्थिति का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायरहित मुनियों का काल प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है–

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में अंतिम चार गुणस्थानवर्ती जीवों का काल ओघ के समान है।।२५९।।

हिन्दी टीका—सभी प्रकार से नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकालगत कोई विशेषता नहीं है, गुणस्थान के समान ही उसका कथन करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि ''कषाय सहित जीव कर्म के योग्य पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है वही बंध

संसारपरिभ्रमणकारणं कषायं ज्ञात्वा शनैः शनै कषायाः मंदीकर्तव्याः यावत्तावत्तेषां आमूलचूलं नाशो न भवेदिति।

एवं चतुर्थस्थले अकषायिनां कालकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थ ग्रंथे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कषाय-मार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

है "इस सूत्र से कषाय को संसार परिभ्रमण का कारण जानकर धीरे-धीरे कषायों को तब तक मंद करना चाहिए, जब तक उन कषायों का आमूल चूल-जड़ से नाश न हो जावे। अर्थात् कषायों के पूर्ण नष्ट होने से पूर्व हमें उन कषायों को मंद करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में कषायरहित जीवों का कालकथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि टीका में कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकार:

अथ त्रिभिः स्थलैः नवभिः सूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कुमतिकुश्रुतज्ञानिनां गुणस्थानापेक्षया कालकथनमुख्यत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं द्वितीयस्थले विभंगज्ञानिनां कालप्रतिपादनपरेण ''विभंग'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले पंचविधज्ञानिनां गुणस्थानव्यवस्थाव्यवस्थापनत्वेन कालप्रतिपादनपरत्वेन च ''आभिणि'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानि मिथ्यादृष्टिसासादनसमयनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतरति—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुद अण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।२६०।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२६१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अनयोर्द्वयोरज्ञानयोः नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन अर्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनं इत्येतेन ओघात् भेदाभावात्। अनादि-अनिधनाः अनादिसनिधनाः मतिश्रुताज्ञानिनः अपि सन्ति, किंतु तेषामत्र अनधिकारः।**

एवं मतिश्रुताज्ञानविरहितसासादनामभावात् एषां कालः ओघवत् ज्ञातव्यः।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में कुमति-कुश्रुत ज्ञानियों के गुणस्थान की अपेक्षा कालकथन की मुख्यता वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में विभंगज्ञानियों का काल प्रतिपादन करने वाले ''विभंग'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में पाँच प्रकार के ज्ञानियों की गुणस्थान व्यवस्था में काल का निरूपण करने वाले ''आभिणि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। अध्याय के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम कुमति-कुश्रुत ज्ञान वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों का समय निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा की अपेक्षा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२६०।।

मति-श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२६१।।

हिन्दी टीका—इन दोनों मिथ्याज्ञानों में नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल, एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। इस प्रकार से ओघ के काल से कोई भेद नहीं है। यद्यपि अनादि-अनंत और अनादि-सान्त मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी भी जीव हैं किन्तु उनका यहाँ पर अधिकार नहीं है।

इस प्रकार मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान से रहित सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों का अभाव है उनका काल गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इत्थं प्रथमस्थले मतिश्रुताज्ञानि कालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनकालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२६२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२६३।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२६४।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२६५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**विभंगज्ञानिमिथ्यादृष्टीनां त्रिष्वपि कालेषु संतानव्युच्छेदाभावात्। एकजीवापेक्षया असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतासंयतस्य संयतस्य वा दृष्टमार्गस्य मिथ्यात्वं प्रतिपद्य सर्वजघन्यकालं स्थित्वा गुणान्तरं गतस्य अंतर्मुहूर्तमात्रविभंगज्ञानकालोपलंभात्। उत्कृष्टेन—एकः मिथ्यादृष्टिः सप्तमपृथिव्यां उत्पद्य षट्पर्याप्तीः समाप्य विभंगज्ञानी जातः। आत्मनः आयुःस्थितिमनुपाल्य कालं कृत्वा निर्गतस्य नष्टं विभंगज्ञानं, अपर्याप्तकाले तस्य विरोधात्। एवं अंतर्मुहूर्तोन त्रयस्त्रिंत्सागरोपमानि विभंगज्ञानस्य उत्कृष्टकालो भवति। एवमेव सासादनानां ओघवत् कथयितव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले विभंगज्ञानिनां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मति-श्रुत अज्ञानी जीवों का काल निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब विभंगज्ञानियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थान का काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२६२।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२६३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है।।२६४।।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है।।२६५।।

हिन्दी टीका—तीनों ही कालों में विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों की परम्परा के व्युच्छेद का अभाव है। एक जीव की अपेक्षा दृष्टमार्गी असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत या संयत के मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहाँ रहकर गुणस्थानान्तर को गए हुए जीव के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण विभंगज्ञान का काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवी में उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियों को सम्पन्न करके विभंगज्ञानी हुआ। अपनी आयुस्थिति को परिपालन कर और मरण करके निकला, तब उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया क्योंकि अपर्याप्तकाल में विभंगज्ञान के होने का विरोध है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम विभंगज्ञान का उत्कृष्टकाल होता है। इसी प्रकार सासादन जीवों का काल भी ओघ के समान कहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में विभंगज्ञानियों का काल प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना पंचविधज्ञानसहितानां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२६६।।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२६७।।

केवलणाणी सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।।२६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः एतेषां ओघात् विशेषाभावात्। विशेषेण—अवधिज्ञानिसंयतासंयतस्य एकजीवस्य उत्कृष्टकालेऽस्ति विशेषः—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मिजीवः संज्ञिसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतः विश्रम्य विशुद्धः संयमासंयमं प्रतिपद्य मतिश्रुतज्ञानी जातः। ततः अंतर्मुहूर्तं गत्वा अवधिज्ञानमुत्पादयति। एतावन्मात्रविशेषः, नास्त्यन्यत्र कुत्रापि। शेषगुणस्थाने ओघवत् व्यवस्थास्ति।**

मनःपर्यये ज्ञाने प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां उपशामकानां क्षपकाणां च नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः ओघात् भेदाभावः।

अब पाँच प्रकार के ज्ञान से सहित जीवों का काल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२६६।।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२६७।।

केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२६८।।

हिन्दी टीका—नाना जीव और एक जीव संबंधी जघन्य और उत्कृष्टकाल की अपेक्षा इन सूत्रोक्त जीवों के काल में ओघ से कोई विशेषता नहीं है। केवल अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसंबंधी एक जीव के उत्कृष्टकाल में विशेषता है। वह इस प्रकार है–मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव संज्ञी, सम्मूर्च्छिम, पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विशुद्ध होकर, संयमासंयम को प्राप्त कर, मति–श्रुतज्ञानी हो गया पुनः अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है। इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है शेष गुणस्थानों में ओघवत् व्यवस्था है।

मनःपर्ययज्ञान में प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का तथा उपशामक और क्षपकों का नाना जीव और एक जीव के जघन्य और उत्कृष्टकालों के साथ ओघप्ररूपणा से कोई भेद नहीं है।

केवलज्ञानविरहितसयोगि-अयोगिकेवलिनोरभावात् ओघवद्ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत्—मिथ्यात्वसहचारिअज्ञानत्रिकं परिहृत्य मतिश्रुतज्ञानाभ्यां भावश्रुतज्ञानबलेन वा अतीन्द्रियपरिपूर्णयुगपद्लोकालोकावभासिकेवलज्ञानमाविर्भावयितव्यं। तथा च केवलज्ञानिभगवतां श्रीचरणाम्बुजमाश्रित्य प्रार्थयितव्यं—

स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणं श्रुतचक्षुषा।
पश्यन् पश्यामि देव! त्वां केवलज्ञानचक्षुषा।।

एवं तृतीयस्थले पंचविधज्ञानिनां समयनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

**इति षट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनी-
ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम
सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।**

केवलज्ञान से रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियों का अभाव है। इनकी व्यवस्था ओघ के समान समझना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्व के साथ रहने वाले तीनों अज्ञानों को छोड़कर मति-श्रुत ज्ञानों से अथवा भावश्रुतज्ञान के बल से अतीन्द्रिय, परिपूर्ण एवं युगपत् लोक और अलोक का प्रतिभास कराने वाले केवलज्ञान को प्रगट करना चाहिए तथा केवली भगवन्तों के श्रीचरणों का आश्रय लेकर यही प्रार्थना करनी चाहिए कि—

श्लोकार्थ—हे भगवन्! निजात्मा के अभिमुख करने वाले स्वात्मसंवित्ति लक्षणरूप श्रुतज्ञान के चक्षु से देखते हुए आपको केवलज्ञान चक्षु से देख सकूँ ऐसी भावना भाता हूँ।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पाँच प्रकार के ज्ञान से सहित जीवों का काल बताने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

**इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में
गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में
ज्ञानमार्गणा नामका सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।**

अथ संयममार्गणाधिकार:

अथ त्रिभिः स्थलैः सप्तभिः सूत्रैः संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यसंयमिनां गुणस्थानापेक्षया कालकथनाय ''संजमा'' इत्यादि एकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले सामायिकादिपंचविधसंयमकालप्रतिपादनत्वेन ''सामाइय'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले संयतासंयत-असंयतकालप्ररूपणत्वेन ''संजदा'' इत्यादि सूत्रद्वयं इति समुदाय पातनिका।

अधुना संयममार्गणायां सामान्यसंयमिकालकथनाय सूत्रमवतरति-

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।२६९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सामान्यसंयमेऽवलम्बिते विशेषानुपलब्धेः।**

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयमिकालकथनरूपेण एकं सूत्रं गतं।

संप्रति सामायिकादिधारिसंयतानां कालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

सामाइय-च्छेदोवट्ठाणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।२७०।।

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों के द्वारा सात सूत्रों में निबद्ध संयममार्गणा नामक आठवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य संयमी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा काल कथन करने वाला ''संजमा'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में सामायिक आदि पाँच प्रकार के संयमपालकों का काल प्रतिपादन करने हेतु ''सामाइय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु ''संजदा'' इत्यादि दो सूत्र हैं।

इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका बतलाई गई है।

अब संयम मार्गणा में सामान्य संयमियों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगिकेवली तक जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२६९।।

हिन्दी टीका—सामान्य संयम के अवलम्बन करने पर ओघ-गुणस्थान के काल में कोई भेद नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य संयमियों का काल कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सामायिक आदि संयमों के धारक संयतों का काल प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण तक के जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२७०।।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं।।२७१।।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं।।२७२।।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।।२७३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**प्रमत्ताप्रमत्तयोः नानाजीवान् आश्रित्य सर्वकालः। एकजीवस्य जघन्येनैकसमयः, उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः। द्वयोरुपशामकयोः अपूर्व-अनिवृत्तिकरणयोः जघन्येन नानैकजीवं प्रतीत्य एकसमयः। उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः। द्वयोः क्षपकयोः अष्टमनवमगुणस्थानवर्तिनोः नानैकजीवं आश्रित्य जघन्योत्कृष्टाभ्यां अंतर्मुहूर्तकाल एव इत्येनेन ओघात् भेदाभावात् सामायिकच्छेदोपस्थापनयोरिति।**

परिहारशुद्धिसंयमे नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः, एकजीवं आश्रित्य जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः।

सूक्ष्मसांपराये-सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयतयोः उभयत्र श्रेण्योः संयमभेदाभाावत् ओघवत्कालो वर्तते।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतेषु ओघादेशयोः चतुर्णां गुणस्थानानां संयमभेदानुपलम्भात्।

एवं द्वितीयस्थले पंचविधसंयतानां जघन्योत्कृष्टकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

परिहारविशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का काल ओघ के समान है।।२७१।।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपकों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।२७२।।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों में अंतिम चार गुणस्थान वाले जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२७३।।

हिन्दी टीका—प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। आठवें और नवमें गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकों का नाना और एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आठवें और नवमें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षपकों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघ के काल से सामायिक और छेदोपस्थापना में कोई भेद नहीं है।

परिहारविशुद्धिसंयम में-नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

सूक्ष्म साम्पराय में-सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतों के दोनों श्रेणियों में संयम के भेद का अभाव है, इसलिए ओघ के समान उनका काल होता है।

यथाख्यातविहारशुद्धि संयतों में-ओघ और आदेश में चारों गुणस्थानों के संयमों में कोई भेद नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पाँच प्रकार के संयतों का जघन्य और उत्कृष्टकाल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति संयतासंयत-असंयतकालनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

संजदासंजदा ओघं।।२७४।।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।।२७५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः।**

तात्पर्यमेतत्—असंयमावस्थां त्यक्त्वा प्राग् संयतासंयतगुणस्थाने आरुह्य क्रमेण सामायिकसंयमलब्धये पुरुषार्थो विधेयः। यदि कदाचित् अतिदुर्लभमनुष्यपर्याये संयमरत्नं लब्धं भवेत् तर्हि यथाख्यातसंयमप्राप्तये प्रतिक्षणं पूर्णसंयमशालिनां श्रीचरणारविंदमवलम्ब्य प्रार्थयितव्यं अस्माभिः—

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पञ्चमचारित्रलाभाय[1]।।६।।

एवं तृतीयस्थले संयतासंयत-असंयतकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अब संयतासंयत और असंयत जीवों का काल निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयतों का काल गुणस्थान के समान है।।२७४।।

असंयतजीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतों का काल गुणस्थान के समान है।।२७५।।

इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

तात्पर्य यह है कि असंयम अवस्था को त्यागकर पहले संयतासंयत गुणस्थान में चढ़कर क्रम से हम सभी को सामायिक संयम प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। यदि कदाचित् इस अतिदुर्लभ मनुष्य पर्याय में संयमरत्न प्राप्त हो जावे, तो यथाख्यातसंयम को प्राप्त करने के लिए प्रतिक्षण हम लोगों को पूर्ण संयमधारी महामुनियों के चरणकमलों का अवलम्बन लेकर ऐसी प्रार्थना करना चाहिए–

गाथार्थ—समस्त जिनेन्द्र भगवन्तों ने जिस चारित्र को स्वयं धारण किया है तथा सभी शिष्यों के लिए जिस चारित्र का उपदेश दिया है, ऐसे उन पाँच भेदयुक्त चारित्र को पंचम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।।६।।

इस प्रकार तृतीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का काल कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में संयममार्गणा नाम का आठवां अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. वीरभक्ति–मुनिप्रतिक्रमणसूत्रे।

अथ दर्शनमार्गणाधिकार:

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सप्तसूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुर्दर्शनिनां कालनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि सूत्राणि पंच। ततः परं द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनवतोः कालप्रतिपादनत्वेन ''ओधि'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

अधुना चक्षुरचक्षुर्दर्शनिनोः कालकथनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२७६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२७७।।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि।।२७८।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२७९।।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२८०।।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वाले जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले ''ओधि'' इत्यादि दो सूत्र हैं।

अध्याय के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षु और अचक्षु दर्शनी जीवों का काल कथन करने हेतु पाँच सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२७६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२७७।।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल दो हजार सागरोपम है।।२७८।।

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२७९।।

अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक का काल गुणस्थान के समान है।।२८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्टीनां सर्वकालः। एकजीवापेक्षया जघन्येन सम्यग्मिथ्यादृष्टेः असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतासंयतस्य संयतस्य वा दृष्टमार्गस्य मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यकालं स्थित्वा गुणस्थानान्तरं गतस्य अंतर्मुहूर्तकालोपलम्भात्। उत्कृष्टेन एकः अचक्षुर्दर्शनी मिथ्यादृष्टिः चक्षुर्दर्शनिषु उत्पन्नः। चतुर्दर्शनी भूत्वाद्विसागरसहस्रे परिभ्रम्य अचक्षुर्दर्शनं गतः।**

निर्वृत्त्यपर्याप्तकानामिव लब्ध्यपर्याप्तकेषु चक्षुर्दर्शनं किं नोच्यते?

न, तस्मिन् भवे तत्र चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावात्। किन्तु निर्वृत्त्यपर्याप्तानां तस्मिन् भवे नियमेन चक्षुर्दर्शनोपयोगोपलंभात्।

एवमेव चक्षुर्दर्शनविरहितसासादनादीनामभावात्।

इत्थमेव अचक्षुर्दर्शनविरहितसावरणजीवानामनुपलंभात्, तेषां अपि मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां गुणस्थानवत् कालप्रतिपादनव्यवस्था ज्ञातव्या।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनवतोः कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रपञ्चकं गतम्।

संप्रति अवधि-केवलदर्शनवतोः कालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।२८१।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।२८२।।

हिन्दी टीका — चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों का सर्वकाल है, क्योंकि उनसे रहित काल का अभाव पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से — दृष्टमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत या संयत के मिथ्यात्व को प्राप्त होकर वहाँ पर सर्व जघन्यकाल रह करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्टरूप से — कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियों में उत्पन्न हुआ और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शन को प्राप्त हो गया। इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ।

शंका — निर्वृत्यपर्याप्तकों के समान लब्ध्यपर्याप्तकों में चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा?

समाधान — नहीं, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तकों के उसी भव में चक्षुदर्शनोपयोग का अभाव पाया जाता है किन्तु निर्वृत्यपर्याप्तकों के तो उसी भव में नियम से ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है।

इसी प्रकार चक्षुदर्शन से विरहित सासादन आदि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं। इसी तरह से अचक्षुदर्शन से रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं। उनमें भी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यंत जीवों के अपने-अपने गुणस्थानों के समान काल प्रतिपादन की व्यवस्था जाननी चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन वाले जीवों का काल बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी भगवन्तों का काल बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अवधिदर्शनी जीवों का काल अवधिज्ञानियों के समान है।।२८१।।

केवलदर्शनी जीवों का काल केवलज्ञानियों के समान है।।२८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **अवधिदर्शनवतां जघन्योत्कृष्टकालप्ररूपणा अवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनवतां कालप्ररूपणापि केवलज्ञानिवत् ज्ञातव्या भवति।**

तात्पर्यमेतत् — दर्शनोपयोगज्ञानोपयोगौ येषां युगपत् भवतः, तेषां पदप्राप्त्यर्थं अस्माभिः प्रयत्नो विधेयः, यावत्तत्पदं न प्राप्नुयात् तावत्तेषां आराधना प्रतिदिनं कर्तव्या इति।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिन्तामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

हिन्दी टीका — अवधिदर्शन वाले जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट कालप्ररूपणा अवधिज्ञानियों के समान जानना चाहिए तथा केवलदर्शनी जीवों की कालप्ररूपणा भी केवलज्ञानियों के समान होती है।

तात्पर्य यह है कि जिनके दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनों युगपत्-एक साथ होते हैं, ऐसे अर्हन्त भगवन्तों का पद प्राप्त करने हेतु हम सभी को प्रयत्न करना चाहिए। जब तक वह पद प्राप्त न हो, तब तक प्रतिदिन उसकी आराधना करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकार:

अथ चतुर्भि:स्थलैः षड्विंशतिसूत्रैः लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यावतां मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनां कालनिरूपणत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्राष्टकं। ततः परं द्वितीयस्थले तेजःपद्मलेश्यावतोः मिथ्यादृष्ट्यादिअप्रमत्तान्तानां कालप्रतिपादनत्वेन ''तेउलेस्सिय'' इत्यादिसूत्राष्टकं। तदनु तृतीयस्थले शुक्ललेश्यावतां मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुणस्थानवर्तिनां कालकथनमुख्यत्वेन ''सुक्कलेस्सिएसु'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यायां संयतासंयतादिसयोगिकेवलिनां कालप्रतिपादनत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। इति समुदायपातनिका।

अधुना अशुभत्रिकलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादित्रिकगुणस्थानवर्तिनां कालप्ररूपणाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२८३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२८४।।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।२८५।।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में छब्बीस सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नाम का दसवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन अशुभ लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती जीवों का कालनिरूपण करने हेतु ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। पुन: द्वितीय स्थल में तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु ''तेउलेस्सिय'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्तियों का काल कथन करने वाले ''सुक्कलेस्सिएसु'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में शुक्ललेश्या में संयतासंयत से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती तक का काल बतलाने हेतु ''संजदासंजदा'' इत्यादि चार सूत्र हैं।

इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब अशुभ तीन लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का काल प्ररूपणा करने वाले पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२८३।।

एक जीव की अपेक्षा तीनों अशुभलेश्या वाले जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२८४।।

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओं का उत्कृष्टकाल क्रमशः साधिक तेतीस सागरोपम, साधिक सतरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है।।२८५।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२८६।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।२८७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **त्रिलेश्यायुतमिथ्यादृष्टीनां विरहाभावात् सर्वकालः। एकजीवापेक्षया जघन्येन कृष्णलेश्यायां तावत् अंतर्मुहूर्तप्ररूपणा क्रियते — नीललेश्यायां स्थितस्य तल्लेश्याकालक्षयेण कृष्णलेश्या जाता। सर्वलघुकालमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा नीललेश्यासहितो जातः।**

कापोतलेश्यायुतः किं न भवति?

न, कृष्णलेश्यायाः परिणतस्य जीवस्य अनंतरमेव कापोतलेश्यापरिणमनशक्त्याः अभावात्।

नीललेश्यायां उच्यते — हीयमानकृष्णलेश्यायां वर्धमानकापोतलेश्यायां वा स्थितस्य नीललेश्या आगता। सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा जघन्यकालाविरोधेन कापोतलेश्यां कृष्णलेश्यां वा गतः, अन्यलेश्यागमनासंभवात्। केऽपि आचार्याः हीयमानलेश्यायामेव जघन्यकालो भवतीति भणन्ति।[1]

कापोतलेश्यायां उच्यते — हीयमाननीललेश्यायां तेजोलेश्यायां वा स्थितस्य कापोतलेश्या आगता। तत्र सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा यदि तेजोलेश्यायाः आगतः, तर्हि नीललेश्यायां नेतव्यः। अथवा नीललेश्यायाः

उक्त तीनों अशुभलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२८६।।

उक्त तीनों अशुभलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२८७।।

हिन्दी टीका — तीनों अशुभ लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सम्पूर्णकाल में विरह का अभाव है अर्थात् ऐसे जीवों का सर्वकाल ही सद्भाव पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से सर्वप्रथम कृष्ण लेश्या के अन्तर्मुहूर्त काल की प्ररूपणा बतलाई जा रही है —

नीललेश्या में वर्तमान किसी जीव के उस लेश्या के कालक्षय हो जाने से कृष्णलेश्या हो गई और वह उसमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके नीललेश्या वाला हो गया।

शंका — कृष्णलेश्या के पश्चात् कापोतलेश्या वाला क्यों नहीं होता है?

समाधान — नहीं, क्योंकि कृष्णलेश्या से परिणत जीव के तदनन्तर ही कापोतलेश्यारूप परिणमन शक्ति का होना असंभव है।

अब नीललेश्या के अन्तर्मुहूर्त काल की प्ररूपणा करते हैं–हीयमान कृष्णलेश्या में अथवा वर्धमान कापोतलेश्या में विद्यमान किसी जीव के नीललेश्या आ गई। तब वह जीव उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके जघन्यकाल के अविरोध से यथासंभव कापोतलेश्या को अथवा कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ क्योंकि इन दोनों लेश्याओं के सिवाय उसके अन्य किसी लेश्या का आगमन असंभव है। कितने ही आचार्य, हीयमान लेश्या में ही जघन्यकाल होता है, ऐसा कहते हैं।

अब कापोतलेश्या के जघन्यकाल को कहते हैं–हीयमान नीललेश्या में अथवा तेजोलेश्या में विद्यमान जीव के कापोतलेश्या आ गई। वह जीव उस लेश्या में सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेश्या से आया है तो नीललेश्या में ले जाना चाहिए और यदि नीललेश्या से आया है तो तेजोलेश्या में ले जाना

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका) पृ. ४५६।

आगतः, तर्हि तेजोलेश्यायां नेतव्यः, अन्यथा संक्लेश-विशुद्धी आपूर्यमाणस्य जघन्यकालानुपपत्तेः।

अत्र योगस्य इव एकसमयः जघन्यकालः किं न लभ्यते?

न, योग-कषाययोरिव लेश्यायां लेश्यापरावृत्त्या गुणस्थानपरावृत्त्या मरणेन व्याघातेन वा एकसमयकालस्यासंभवात्। न तावत् लेश्यापरावृत्त्या एकसमयो लभ्यते, अर्पितलेश्यायाः परिणमितद्वितीयसमये तल्लेश्यायाः विनाशाभावात्। गुणस्थानान्तरं गतस्य द्वितीयसमये लेश्यान्तरगमनाभावाच्च। न च गुणस्थानपरावृत्त्या, अर्पितलेश्यायाः परिणतद्वितीयसमये गुणस्थानान्तरगमनाभावात्। न च व्याघातेन, एकसमयस्थितलेश्यायाः व्याघाताभावात्। न च मरणेन, अर्पितलेश्यायाः परिणतद्वितीयसमये मरणाभावात्।

उत्कृष्टकालः कथ्यते—

नीललेश्यायां स्थितस्य कृष्णलेश्या आगता। तत्र सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अधः सप्तमपृथिव्यां उत्पन्नः। तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि गमयित्वा उद्‌गतः-ततः निर्गतः। पश्चादपि अंतर्मुहूर्तकालं भावनावशेन सा चैव लेश्या भवति। एवं द्विअंतर्मुहूर्ताभ्यां सातिरेकाणि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि कृष्णलेश्यायाः उत्कृष्टकालो भवति।

नीललेश्यायां उच्यते—कापोतलेश्यायां स्थितस्य नीललेश्या आगता। तत्र दीर्घमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पञ्चमीपृथिव्यां उत्पन्नः। तत्र सप्तदशसागरोपमानि तस्यां लेश्यायां गमयित्वा ततो निर्गतः। निर्गतस्यापि अंतर्मुहूर्तं सा चैव लेश्या भवति। एवं द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां सातिरेकाणि सप्तदशसागरोपमानि नीललेश्यायाः

चाहिए, अन्यथा संक्लेश और विशुद्धि को आपूरण करने वाले जीव के जघन्यकाल नहीं बन सकता है।

शंका—यहाँ पर योगपरावर्तन के समान एक समयरूप जघन्यकाल क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि योग और कषायों के समान लेश्या से लेश्या के परिवर्तन द्वारा अथवा गुणस्थान के परिवर्तन द्वारा अथवा मरण और व्याघात द्वारा एक समय काल का पाया जाना असंभव है। इसका कारण यह है कि लेश्यापरिवर्तन के द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि विवक्षित लेश्या से परिणत हुए जीव के द्वितीय समय में उस लेश्या के विनाश का अभाव है तथा इसी प्रकार विवक्षित लेश्या के साथ अन्य गुणस्थान को गए हुए जीव के द्वितीय समय में अन्य लेश्या में भी जाने का अभाव है। गुणस्थान परिवर्तन की अपेक्षा भी एक समय संभव नहीं है, क्योंकि विवक्षित लेश्या से परिणत हुए जीव के द्वितीय समय में अन्य गुणस्थान में गमन का अभाव है। व्याघात की अपेक्षा भी एक समय संभव नहीं है क्योंकि एक समय में वर्तमान लेश्या के व्याघात का अभाव है और मरण की अपेक्षा भी एक समय संभव नहीं है, क्योंकि विवक्षित लेश्या से परिणत हुए जीव के द्वितीय समय में मरण का अभाव है।

अब उत्कृष्टकाल का कथन करते हैं—

नीललेश्या में विद्यमान किसी जीव के कृष्णलेश्या आ गई। उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ वह तेतीस सागरोपम काल बिताकर निकला। उसके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक भावना के वश से वही लेश्या होती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों से अधिक तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

अब नीललेश्या का काल कहते हैं—कापोतलेश्या में वर्तमान जीव के नीललेश्या आ गई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह करके वह जीव पाँचवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर सत्ररह सागरोपम काल उस लेश्या के साथ बिताकर निकला। निकलने पर भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस प्रकार दो

उत्कृष्टकालो भवति।

कापोतलेश्यायां उच्यते—तेजोलेश्यायां स्थितस्य स्वककालस्य क्षीणे कापोतलेश्या आगता। तत्र दीर्घमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तृतीयापृथिव्यां उत्पन्नः। तल्लेश्यायां सप्तसागरोपमानि तत्र गमयित्वा ततो निर्गतः। निर्गतस्यापि सा चैव लेश्या अंतर्मुहूर्तं भवति। एवं द्वि-अंतर्मुहूर्ताभ्यां सातिरेकाः सप्तसागराः कापोतलेश्यायाः उत्कृष्टकालो भवति।

सासादनानां त्रिकाशुभलेश्यागतानां गुणस्थानवत् व्यवस्था ज्ञातव्या।

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां अपि आसु त्रिविधासु लेश्यासु पूर्ववत्कालो ज्ञातव्यः।

एवं अशुभलेश्या-परिणतत्रिगुणस्थानवर्तिनां कालनिरूपणं कृतं।

अधुना त्रिलेश्यासु असंयतसम्यग्दृष्टिनानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२८८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२८९।।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।।२९०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**त्रिविधाशुभलेश्यासु असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालः।**

अन्तर्मुहूर्तों से अधिक सत्ररह सागरोपम नीललेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

अब कापोतलेश्या का उत्कृष्ट काल कहते हैं-तेजोलेश्या में विद्यमान किसी जीव के उस लेश्या के काल के क्षीण हो जाने पर कापोतलेश्या आ गई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर मरण करके तृतीय पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर उसी लेश्या के साथ सात सागरोपम काल बिताकर निकला। निकलने के पश्चात् भी वही लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों से अधिक सात सागरोपम कापोतलेश्या का उत्कृष्ट काल होता है।

इन तीनों अशुभ लेश्या वाले सासादन जीवों की काल व्यवस्था गुणस्थान के समान जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की भी इन तीन अशुभ लेश्याओं में पूर्ववत् कालव्यवस्था जानना चाहिए। इस प्रकार अशुभ लेश्या से परिणत तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का कालनिरूपण किया गया है।

अब इन तीनों अशुभ लेश्याओं में असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीव और एक जीव का जघन्य तथा उत्कृष्टकाल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों अशुभलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२८८।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२८९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्ररह सागरोपम और सात सागरोपम है।।२९०।।

हिन्दी टीका—तीनों अशुभ लेश्याओं में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल पाया जाता है।

एकजीवापेक्षया कथ्यते—एकः असंयतसम्यग्दृष्टिः वर्द्धमाननीललेश्यायां स्थितः कृष्णलेश्यां गतः। तत्र सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः नीललेश्यामागतः। नीललेश्यायां उच्यते-हीयमानकृष्णलेश्यः जीवः नीललेश्यः जातः। तल्लेश्यायां सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा कापोतलेश्यं गतः।

कापोतलेश्यायां उच्यते—एकः सम्यग्दृष्टिः हीयमान-नीललेश्यः कापोतलेश्यं गतः। तत्र सर्वजघन्य-मन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तेजोलेश्यो जातः।

पूर्वं हीयमानतेजोलेश्यात् वर्द्धमानकापोतलेश्यात् क्रमशः कापोतलेश्यां नीललेश्यां आगतानां जघन्यकालः उक्तः, स संप्रति अत्र किं नोच्यते?

न, प्रायेण तस्योपदेशाभावात्।

लेश्यानां उत्कृष्टकालः कथ्यते—

कृष्णलेश्यायां देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागराः, नीललेश्यायां देशोनसप्तदशसागराः, कापोतलेश्यायां देशोनसप्तसागराः।

आसां लेश्यानां उदाहरणानि निर्दिश्यन्ते-एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी मिथ्यादृष्टिः सप्तमपृथिव्यां कृष्णलेश्येन सह उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतः विश्रान्तः विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। अंतर्मुहूर्तोनत्रयस्त्रिंशत्सागरान् भवसंबंधेन अवस्थितकृष्णलेश्यायां गमयित्वा अंतर्मुहूर्तावशेषे मिथ्यात्वं गत्वा आयुः बंधयित्वा विश्रम्य मृतः, ततो निर्गत्य तिर्यङ्जातः। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनत्रयस्त्रिंशत्सागराः कृष्णलेश्यायाः उत्कृष्टकालो भवति।

एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं—

वर्धमान नीललेश्या में विद्यमान कोई एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः नीललेश्या में आ गया।

अब नीललेश्या का काल कहते हैं—हीयमान कृष्णलेश्या वाला कोई एक जीव नीललेश्या वाला हो गया। उस लेश्या में सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर कापोतलेश्या को प्राप्त हो गया।

अब कापोतलेश्या का काल कहते हैं-हीयमान नीललेश्या वाला एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कापोतलेश्या को प्राप्त हुआ। उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्या को प्राप्त हुआ।

शंका—पहले हीयमान तेजोलेश्या और वर्धमान कापोतलेश्या से क्रमशः कापोत और नीललेश्या में आए हुए जीवों का जघन्यकाल कहा है, सो वह अब यहाँ पर क्यों नहीं कहते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रायः आज कल उस प्रकार के उपदेश का अभाव है।

अब लेश्याओं का उत्कृष्टकाल कहते हैं—

कृष्णलेश्या में कुछ कम तेंतीस सागरप्रमाण, नील लेश्या में कुछ कम सत्रह सागरप्रमाण और कापोतलेश्या में कुछ कम सातसागरप्रमाण काल है।

इन लेश्याओं के उदाहरण बतलाते हैं-मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवी में कृष्णलेश्या के साथ उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर, विश्राम ले तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। सम्यक्त्व के साथ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम भवसंबंध से अवस्थित कृष्णलेश्या के साथ बिताकर अन्तर्मुहूर्तकाल के अवशिष्ट रहने पर मिथ्यात्व को जाकर परभव की आयु बांधकर, विश्राम लेकर मरा और वहाँ से निकलकर तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

नीललेश्यायां — एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी नीललेश्यया सह पंचमपृथिव्यां अधस्तनप्रस्तारे उत्कृष्टायुःस्थितिकः भूत्वा उत्पन्नः।

तत्र जघन्या कृष्णलेश्या चेत्?

न, सर्वेषां नारकाणां तत्रस्थानां तस्याश्चैव लेश्यायाः अभावात्।

एकस्मिन् प्रस्तारे भिन्नलेश्यानां संभवः कथं अस्ति?

न, विरोधाभावात्। एषोऽर्थः सर्वत्र ज्ञातव्यः।

षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतः विश्रान्तः विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। आयुःस्थितिमनुपाल्य मृतः मनुष्यो जातः। तत्रापि अंतर्मुहूर्तं तथा चैव लेश्यया सह स्थित्वा लेश्यान्तरं गतः। पश्चिमान्तर्मुहूर्तं पूर्वोक्तत्रिषु अंतर्मुहूर्तेषु अपनीय शुद्धशेषान्तर्मुहूर्तैः ऊनसप्तदशसागरोपमानि असंयतसम्यग्दृष्टेः नीललेश्यायाः उत्कृष्टकालोभवति।

कापोतलेश्यायां कथ्यते — एकः मिथ्यादृष्टिः तृतीयापृथिव्यां उत्कृष्टायुःस्थितिकः कापोतलेश्यो भूत्वा उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तियुतः विश्रान्तः विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य आयुःस्थितिमनुपाल्य मनुष्यो जातः। पश्चादपि अंतर्मुहूर्तं सा चैव लेश्या भवति। पश्चादन्तर्मुहूर्तं पूर्वेषु त्रिषु अंतर्मुहूर्तेषु अपनीय शुद्धशेषेण ऊनानि सप्तसागरोपमानि कापोतलेश्यायाः उत्कृष्टकालो भवति।

एवं प्रथमस्थले कृष्णनीलकापोतलेश्यायुतानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनपराणि अष्टौ सूत्राणि गतानि।

मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव नीललेश्या के साथ पाँचवीं पृथिवी के अधस्तन प्रस्तार के उत्कृष्ट आयुकर्म की स्थिति वाला होकर उत्पन्न हुआ।

शंका — पाँचवी पृथिवी में तो जघन्यकृष्णलेश्या होती है?

समाधान — नहीं, पाँचवीं पृथिवी के अधस्तन प्रस्तार के समस्त नारकियों के उसी ही लेश्या का अभाव है।

शंका — एक ही प्रस्तार में दो भिन्न लेश्याओं का होना कैसे संभव है?

समाधान — नहीं, क्योंकि एक ही प्रस्तार में भिन्न-भिन्न जीवों के भिन्न-भिन्न लेश्याओं के होने में कोई विरोध नहीं है। अर्थात् कुछ नारकियों के उत्कृष्ट नीललेश्या ही होती है और कुछ के जघन्य कृष्णलेश्या होती है यही अर्थ सर्वत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार पाँचवीं पृथिवी में उत्पन्न हुआ वह जीव छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, विश्राम लेकर तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। वहाँ अपनी आयु स्थिति का परिपालन करके मरा और मनुष्य हुआ। वहाँ पर भी अन्तर्मुहूर्त तक उसी पूर्वलेश्या के साथ रहकर अन्य लेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार पिछले अन्तर्मुहूर्त को पूर्व के तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम करके बचे हुए अन्तर्मुहूर्तों से कम सत्रह सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टि के नीललेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

अब कापोतलेश्या के बारे में कहते हैं-एक मिथ्यादृष्टि जीव तीसरी पृथिवी में वहाँ की उत्कृष्ट आयुकर्म की स्थिति वाला तथा कापोतलेश्या वाला हो करके उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, विश्राम ले, विशुद्ध होकर सम्यक्त्व को प्राप्त करके और अपनी आयुकर्म की स्थिति को भोग करके मनुष्य हुआ। पीछे भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती हैं। इस पिछले अन्तर्मुहूर्त को पहले के तीन अन्तर्मुहूर्तों में से घटाकर शेष बचे हुए अन्तर्मुहूर्तों से कम सात सागरोपम कापोतलेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कृष्ण-नील-कापोत लेश्या से सहित नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्टकाल बतलाने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति पीतपद्मलेश्ययो: नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा।।२९१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२९२।।

उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।२९३।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।२९४।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।२९५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं वर्तते, तस्यैव स्पष्टीकरणं क्रियते—हीयमानपद्मलेश्यायां स्थितस्य स्वकालक्षयेण तेजोलेश्या आगता। तत्र सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा कापोतलेश्यं गत:। एवमसंयतसम्यग्दृष्टेरपि तेजोलेश्यायां जघन्यकालो वक्तव्य:।

पद्मलेश्यायां कथ्यते—एक: शुक्ललेश्यायां हीयमानायां स्थित: मिथ्यादृष्टि: तत्कालक्षयेण पद्मलेश्यो जात:। सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पीतलेश्यां गत:। एवं जघन्येन अंतर्मुहूर्तं मिथ्यादृष्टि: पद्मलेश्यायां। एवं असंयतसम्यग्दृष्टेरपि जघन्यकालो वक्तव्य:।

अब पीत और पद्म लेश्या में नाना जीवों का और एक जीव का जघन्य तथा उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२९१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२९२।।

तेजोलेश्या का उत्कृष्टकाल कुछ अधिक दो सागरोपम और पद्मलेश्या का उत्कृष्टकाल कुछ अधिक अठारह सागरोपम है।।२९३।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२९४।।

उक्त दोनों लेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।२९५।।

हिन्दी टीका—एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल होता है। उसी का स्पष्टीकरण करते हैं—हीयमान पद्मलेश्या में विद्यमान किसी मिथ्यादृष्टि जीव के अपनी लेश्या के कालक्षय हो जाने से तेजोलेश्या आ गई। उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह कापोतलेश्या को प्राप्त हो गया। इस प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के भी तेजोलेश्या का जघन्यकाल कहना चाहिए।

अब पद्मलेश्या का जघन्यकाल कहते हैं–कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव हीयमान शुक्ललेश्या में विद्यमान था। उस लेश्या के काल के क्षय हो जाने से वह पद्मलेश्या वाला हो गया। वहाँ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक वह मिथ्यादृष्टि जीव पद्मलेश्या में रहा।

उत्कृष्टेन अनयोः लेश्ययोः कालः कथ्यते —

पीतलेश्यायां — एकः मिथ्यादृष्टिः कापोतलेश्यायां स्थितः। तस्याः कालक्षयेण पीतलेश्यो जातः। तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा मृतः सौधर्मे उत्पन्नः। द्वौ सागरौ पल्योपमस्य असंख्यातभागेनाभ्यधिकौ जीवित्वा च्युतः नष्टतेजोलेश्यो जातः। लब्धा स्वकस्थितिः पूर्वोक्तान्तर्मुहूर्तेन अभ्यधिका।

मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य तेजोलेश्यायाः उत्कृष्टस्थितिः अंतर्मुहूर्तोन सार्धद्वयसागरप्रमाणा किं न लभ्यते?

न, मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्टिभ्यां उपरिमदेवेषु बद्धमायुः उद्वर्तनाघातेन घातयित्वा मिथ्यादृष्टिः यदि सुष्ठु महदपि वर्धयति, तर्हि पल्योपमस्य असंख्यातभागेनाभ्यधिकौ द्वौ सागरौ करोति, सौधर्मे उत्पद्यमान-मिथ्यादृष्टीनां एतस्मात् अधिकायुः स्थितिवर्धने शक्त्याः अभावात्।

सार्धद्वयसागरोपमस्थितिकेषु उत्पन्नसम्यग्दृष्टिं मिथ्यात्वं नीत्वा उत्कृष्टकालं भणिष्यामः तर्हि को दोषः?

न, अंतर्मुहूर्तोनसार्धद्वयसागरोपमेषु उत्पन्नसम्यग्दृष्टेः सौधर्मनिवासिनः मिथ्यात्वगमने संभवाभावात्।

तदपि कथं ज्ञायते?

पल्योपमस्य असंख्यातभागाभ्यधिक-द्विसागरोपममात्रा सौधर्मेशानयोः मिथ्यादृष्टि-आयुःस्थितिर्भवतीति आचार्य परंपरागतोपदेशात्।

अथवा अन्येनोपदेशेन सार्धद्वयसागरोपमानि देशोनानि मिथ्यादृष्टेरपि संभवति, भवनवास्यादिसहस्त्रार-

---

इसी प्रकार से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का भी जघन्यकाल कहना चाहिए।

अब उत्कृष्ट से इन दोनों लेश्याओं का कालकथन करते हैं —

प्रथम पीतलेश्या में — एक मिथ्यादृष्टि जीव कापोतलेश्या में विद्यमान था। उस लेश्या के कालक्षय से वह तेजोलेश्या वाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सौधर्मकल्प में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रहकर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गई। इस प्रकार पूर्व के अन्तर्मुहूर्त से अधिक दो सागरोपम सौधर्मकल्प की मिथ्यादृष्टिसंबंधी उत्कृष्टस्थिति तेजोलेश्या की प्राप्त हो गई।

शंका — मिथ्यादृष्टि जीव के तेजोलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त से कम अढ़ाई सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है?

समाधान — नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा उपरिम देवों में बांधी हुई आयु को उद्वर्तनाघात से घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अच्छी तरह खूब बड़ी भी स्थिति करे तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि सौधर्मकल्प में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के इस उत्कृष्ट स्थिति से अधिक आयु की स्थिति स्थापन करने की शक्ति का अभाव है।

शंका — यदि हम अढ़ाई सागरोपम स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व में ले जाकर तेजोलेश्या का उत्कृष्टकाल कहें तो क्या दोष है?

समाधान — नहीं, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागरोपम की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुए सौधर्म निवासी सम्यग्दृष्टि देव के मिथ्यात्व में जाने की संभावना का अभाव है।

शंका — यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान — पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौधर्म-ईशानकल्प में मिथ्यादृष्टि की आयु स्थिति होती है, इस प्रकार का आचार्यपरम्परागत उपदेश है अथवा अन्य उपदेश से कुछ

पर्यन्तदेवेषु मिथ्यादृष्टेः द्विविधायुःस्थितिप्ररूपणान्यथानुपपत्तेः।

असंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालः कथ्यते—

एकः असंयतः सौधर्मैशानयोः देवेषु द्वौ सागरौ अंतर्मुहूर्तोनं सागरस्य अर्द्धं च आयुः कृत्वा अंतर्मुहूर्तं तेजोलेश्यः भूत्वा क्रमेण कालं कृत्वा सौधर्मे उत्पन्नः। स्वकस्थितिं स्थित्वा पुनः मनुष्येषु उत्पद्य अंतर्मुहूर्तं तस्याश्चैव लेश्यायाः परिणम्य पद्मलेश्यां कापोतलेश्यां वा गतः। लब्धानि अंतर्मुहूर्तोन-सार्धद्वयसागरोपमानि संपूर्णानि।

एभ्यः अधिकानि किं न भवन्ति?

न, पूर्वापरकालयोः लब्धान्तर्मुहूर्तात् अर्धसागरोपमे पतितान्तर्मुहूर्तस्य बहुत्वोपदेशात्।

पद्मलेश्यायां उच्यते—एकः मिथ्यादृष्टिः वर्द्धमानतेजोलेश्यः स्वकाले क्षीणे पद्मलेश्यो जातः। दीर्घमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा शतारसहस्रारकल्पवासिदेवेषु उत्पन्नः। तत्र अष्टादश सागराः पल्योपमस्य असंख्यातभागेनाभ्यधिकाः जीवित्वा च्युतस्य नष्टा पद्मलेश्या।

असंयतसम्यदृष्टेः उच्यते—एकः संयतः पद्मलेश्यायां अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा शतारसहस्रारदेवेषु अष्टादश सागरोपमानि अंतर्मुहूर्तोन-मर्द्धसागरं च आयुः स्थितिं कृत्वा क्रमेण कालं कृत्वा सहस्रारदेवेषु उत्पद्य स्वकस्थितिं स्थित्वा च्युतः मनुष्यो जातः। तत्रापि अंतर्मुहूर्तं पद्मलेश्यायां स्थित्वा शुक्ललेश्यां तेजोलेश्यां वा गतः। लब्धानि अंतर्मुहूर्तोन-अर्धसागरोपमेन अधिकानि अष्टादश सागरोपमानि।

कम अढ़ाई सागरोपमकाल सौधर्म-ईशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव के भी संभव है, अन्यथा भवनवासियों से लगाकर सहस्रारकल्प तक के देवों में मिथ्यादृष्टि जीव के दो प्रकार की आयुस्थिति की प्ररूपणा नहीं हो सकती थी।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि के उत्कृष्ट तेजोलेश्या के काल को कहते हैं-एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म-ऐशान देवों में दो सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम सागरोपम के अर्धभागप्रमाण आयु को बांध करके एक अन्तर्मुहूर्त तेजोलेश्या वाला हो करके और क्रम से मरकर सौधर्मकल्प में उत्पन्न हुआ, पुनः अपनी आयुस्थिति तक वहाँ रहकर और मनुष्यों में उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त तक उसी लेश्या से परिणत हो, पद्मलेश्या या कापोतलेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्त कम पूरा अढ़ाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया।

शंका—अन्तर्मुहूर्त से कम अढ़ाई सागरोपम से अधिक काल क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अढ़ाई सागरोपमकाल के आदि और अन्त में लब्ध होने वाले अन्तर्मुहूर्त से अर्ध सागरोपमकाल में पतित अन्तर्मुहूर्त के बहुत्व का उपदेश पाया जाता है।

अब पद्मलेश्या के उत्कृष्टकाल को कहते हैं-वर्धमान तेजोलेश्या वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव अपने काल के क्षीण होने पर पद्मलेश्या वाला हो गया और वहाँ उस लेश्या में उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार-सहस्रारकल्पवासी देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग से अधिक अठारह सागरोपम काल तक जीवित रहकर च्युत हुआ, तब उसके पद्मलेश्या नष्ट हो गई।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के पद्मलेश्या का उत्कृष्टकाल कहते हैं—एक संयत पद्मलेश्या में अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा और शतार-सहस्रार देवों में अठारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपम की आयु को बांधकर, क्रम से मरण कर, सहस्रारकल्प के देवों में उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहाँ रह करके च्युत हो मनुष्य हो गया। वहाँ पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पद्मलेश्या में रह करके शुक्ललेश्या को या तेजोलेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम काल से अधिक अठारह सागरोपम प्राप्त हुए।

सासादनानां अनयोरुभयोर्लेश्ययोः गुणस्थानप्ररूपणावत्प्ररूपणा कर्तव्या।

तथैव सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि गुणस्थानवत्प्ररूपणा विधातव्या।

संप्रति अनयोर्द्वयोर्लेश्ययोः संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते-

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२९६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२९७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२९८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पीतपद्मलेश्ययोः संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां सर्वकालः नानाजीवापेक्षया। एकजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयकालः प्ररूप्यते-एकः मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा वर्द्धमानपीतलेश्यः पीतलेश्यायां एकसमयावशेषे संयमासंयमं प्रतिपन्नः। एकसमयं संयमासंयमं तेजोलेश्यया सह दृष्टं। द्वितीयसमये संयमासंयमः पद्मलेश्यां गतः। एषा लेश्यापरावृत्तिः।**

अथवा एकः संयतासंयतः हीयमानपद्मलेश्यः पद्मलेश्याकाले क्षीणे सति संयतासंयतगुणस्थाने एकसमयावशेषे पीललेश्यो जातः। पीतलेश्यया सह संयमासंयमः एक समयं दृष्टः। द्वितीयसमये तल्लेश्यया

इन दोनों लेश्याओं में सासादनसम्यग्दृष्टियों की कालप्ररूपणा गुणस्थानप्ररूपणा के समान समझना चाहिए।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की कालव्यवस्था भी गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

अब इन्हीं दोनों लेश्याओं में संयतासंयत-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का नानाजीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल निरूपण करने के लिए तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों लेश्या वाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२९६।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।२९७।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।२९८।।

हिन्दी टीका—पीत और पद्मलेश्या में संयतासंयत-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का नानाजीवों की अपेक्षा सर्वकाल पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एकसमय का काल प्ररूपित किया जाता है-

वर्धमान तेजोलेश्या वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेश्या के काल में एक समय अवशेष रह जाने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। एक समय संयमासंयम तेजोलेश्या के साथ दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे समय वह संयतासंयत पद्मलेश्या को प्राप्त हो गया। यह लेश्यापरिवर्तन संबंधी एक समय की प्ररूपणा है।

अथवा हीयमान पद्मलेश्या वाला एक संयतासंयत पद्मलेश्या के काल के क्षीण हो जाने पर एक समय संयमासंयम गुणस्थान का अवशेष रहने पर तेजोलेश्या वाला हो गया। तेजोलेश्या के साथ संयमासंयम एक

सह असंयतसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः मिथ्यादृष्टिर्वा जातः। एषा गुणस्थान परावृत्तिः। अत्र मरणव्याघाताभ्यां एकसमयो न लभ्यते।

संप्रति पद्मलेश्यायामुच्यते—एको मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा वर्धमानपद्मलेश्यः पद्मलेश्यायां एकसमयावशेषे संयमासंयमं प्रतिपन्नः। द्वितीय समये संयमासंयमेन सह शुक्ललेश्यां गतः। एषा लेश्यापरावृत्तिः।

अथवा वर्द्धमानपीतलेश्यः संयतासंयतः पीतलेश्यायाः क्षयेण पद्मलेश्यो जातः। एकसमयं पद्मलेश्यया सह संयमासंयमं दृष्टं, द्वितीयसमये अप्रमत्तो जातः। एषा गुणपरावृत्तिः।

अथवा संयतासंयतो हीयमानशुक्ललेश्यः शुक्ललेश्याकालक्षयेण पद्मलेश्यो जातः। द्वितीयसमये पद्मलेश्यश्चैव, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः मिथ्यादृष्टिर्वा जातः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः।

मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानयोः तेजोपद्मलेश्ययोः लेश्यागुणस्थानपरावृत्ती आश्रित्य एकसमयः किन्नोच्यते?

न, तत्र एकसमयसंभवाभावात्। वर्द्धमानतेजोलेश्यायाः पद्मलेश्यां गत्वा द्वितीयसमये गुणस्थानं गच्छतोः मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः पद्मलेश्यायां एकमयः लभ्यते। हीयमानतेजोलेश्यायां एकसमयावशेषे मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान-प्रतिपन्नयोः पीतलेश्यायां एकसमयो लभ्यते।

समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में उसी लेश्या के साथ असंयतसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन के द्वारा एक समय की प्ररूपणा हुई। यहाँ पर मरण और व्याघात के द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है।

अब पद्मलेश्या के एक समय की प्ररूपणा कहते हैं-जैसे-वर्धमान पद्मलेश्या वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, पद्मलेश्या के काल में एक समय अवशेष रहने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। द्वितीय समय में संयमासंयम के साथ ही शुक्ललेश्या को प्राप्त हुआ। यह लेश्या परावर्तनसंबंधी एक समय की प्ररूपणा हुई।।

अथवा वर्धमान तेजोलेश्या वाला कोई संयतासंयत तेजोलेश्या के काल के क्षय हो जाने से पद्मलेश्या वाला हो गया। एक समय पद्मलेश्या के साथ संयमासंयम दृष्टिगोचर हुआ और वह द्वितीय समय में अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा हुई अथवा हीयमान शुक्ललेश्या वाला कोई संयतासंयत जीव शुक्ललेश्या के काल के पूरे हो जाने पर पद्मलेश्या वाला हो गया। द्वितीय समय में वह पद्मलेश्या वाला ही है किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा हुई।।

शंका—मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दो गुणस्थानों में तेज और पद्मलेश्या वाले जीवों की लेश्या और गुणस्थानसंबंधी परिवर्तनों को आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा क्यों नहीं कही?

समाधान—नहीं, क्योंकि इन गुणस्थानों में एक समय की प्ररूपणा का होना संभव नहीं है। वर्धमान तेजोलेश्या से पद्मलेश्या को जाकर द्वितीय समय में उपरिम गुणस्थानों को जाने वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पद्मलेश्या के साथ एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार हीयमान तेजोलेश्या में एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीवों के तेजोलेश्या के साथ एक समय पाया जाता है।

एवं कापोतनीललेश्ययोरपि एकसमयो लभ्यते?

न लभ्यते, यतः मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा एकसमयं लेश्यायां परिणम्य द्वितीयसमये अन्यगुणस्थानं लेश्यान्तरं वा न गच्छति। तथा एतद्गुणस्थानप्रतिपद्यमानाः जीवाः अपि लेश्यायां एकसमयावशेषे तत्तद्गुणस्थानानि न प्रतिपद्यन्ते।

कुतः?

स्वभावात्।

अधस्तनगुणस्थानवर्तिनः लेश्यायां एकसमयावशेषे यथा संयमासंयमगुणस्थानं प्रतिपद्यन्ते, तथा प्रमत्तसंयतोऽपि संयमासंयमगुणस्थानं किं न प्रतिपद्यते?

स्वभावात्, अथवा नास्त्यत्र प्रतिषेधः।

अधुना प्रमत्तसंयतस्य जघन्यकालः कथ्यते—

एकप्रमत्तः हीयमानपद्मलेश्यायां स्थितः। तल्लेश्यायाः कालक्षयेण प्रमत्तकाले एकसमयावशेषे तेजोलेश्यो जातः एकसमयः दृष्टः। द्वितीयसमये तेजोलेश्या चैव, किंतु संयमासंयमं असंयमेन सह सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा सासादनसम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गतः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः (१)।

अथवा अप्रमत्तः पीतलेश्यायां स्थितः। तल्लेश्यायां अप्रमत्तस्य कालक्षयेन प्रमत्तो जातः। प्रमत्तः पीतलेश्यया सह एकसमयं दृष्टः। द्वितीयसमये मृतो देवो जातः। एवं मरणेन एकसमयः उपलब्धः (२)।

शंका—तेज और पद्मलेश्या के समान ही कापोत और नीललेश्याओं का भी एक समय पाया जाता है फिर उसे क्यों नहीं कहा?

समाधान—कापोत और नीललेश्या के साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समय में विवक्षित लेश्या के द्वारा परिणत होकर द्वितीय समय में अन्य गुणस्थान को अथवा अन्य लेश्या को नहीं जाते हैं तथा इन गुणस्थानों को प्राप्त होने वाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेश्या के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर उन-उन गुणस्थानों को नहीं प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है।

शंका—अपनी लेश्या में एक समय रहने पर जैसे नीचे के गुणस्थान वाले संयमासंयम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार से प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थान को क्यों नहीं प्राप्त होते हैं?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है अथवा इस विषय में कोई प्रतिषेध नहीं है।

अब प्रमत्तसंयत का जघन्य काल कहते हैं-एक प्रमत्तसंयत हीयमान पद्मलेश्या में विद्यमान था। उस लेश्या के कालक्षय से तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थान के काल में एक समय अवशेष रहने पर वह तेजोलेश्या वाला हो गया। एक समय वह तेजोलेश्या के साथ प्रमत्तसंयत के रूप में दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीयसमय में तेजोलेश्या ही रही किन्तु वह संयमासंयम को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा सासादनगुणस्थान को अथवा मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हो गया। यह एक समयरूप गुणस्थान परिवर्तन है।। (१)

अथवा कोई एक अप्रमत्तसंयत तेजोलेश्या में वर्तमान था। उसी लेश्या में रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थान के कालक्षय से वह प्रमत्तसंयत हो गया। वह प्रमत्तसंयत तेजोलेश्या के साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में मरा और देव हो गया। इस प्रकार मरण की अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ। (२)

प्रमत्तसंयतः तेजोलेश्यया परिणम्य द्वितीयसमये येन लेश्यान्तरं न गच्छति, प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपद्यमानोऽपि तेजोलेश्याकाले एकसमयावशेषे लेश्यान्तरं न प्रतिपद्यते, तेनात्र लेश्यापरावृत्तिर्नास्ति। अप्रमत्तो हीयमानपद्मलेश्यः पद्मलेश्याकाले एकसमयावशेषे प्रमत्तो जातः। द्वितीयसमयेऽपि प्रमत्तश्चैव, किन्तु तेजोलेश्यो जातः। एषा लेश्यापरावृत्तिः (३)।

अथवा प्रमत्तो तेजोलेश्यायां स्थितः। तल्लेश्यायाः कालक्षयेण पद्मलेश्या आगता। पद्मलेश्यया सह प्रमत्तः एकसमयं दृष्टः। द्वितीयसमये पद्मलेश्यश्चैव, किन्तु अप्रमत्तो जातः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः।

प्रमत्तः पद्मलेश्यायां स्थितः, तल्लेश्यायाः कालक्षयेण तेजोलेश्यायां परिणम्य द्वितीयसमये अप्रमत्तः किं न कार्यते?

न, हीयमानलेश्यायां अप्रमत्तगुणस्थानग्रहणाभावात्।

तर्हि असौ मिथ्यात्वादिगुणस्थानं किं न प्रतिपद्यते?

न, तेजोलेश्यायां पतित्वा अंतर्मुहूर्तं न स्थित्वा अधस्तनगुणस्थानग्रहणाभावात्। अथवा अप्रमत्तः पद्मलेश्यायां स्थितः अप्रमत्तकालक्षयेण प्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये मृतो देवत्वं गतः।

संप्रति अप्रमत्तसंयतस्य जघन्येन एकसमयः उच्यते—

मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतो वा वर्द्धमानतेजोलेश्यः तेजोलेश्याकाले एकः समयोऽस्ति इति अप्रमत्तो जातः। एकसमयं तेजोलेश्यया सह अप्रमत्तो दृष्टः। द्वितीयसमये पद्मलेश्यो

प्रमत्तसंयत तेजोलेश्या के साथ परिणमित होकर द्वितीय समय में चूँकि दूसरी अन्य लेश्या को नहीं प्राप्त होता है, वह प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेश्या के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर भिन्न लेश्या को प्राप्त नहीं करता है इसलिए यहाँ लेश्या परावर्तन नहीं है।

हीयमान पद्मलेश्या वाला अप्रमत्तसंयत पद्मलेश्या के काल में एक समय शेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समय में भी वह प्रमत्तसंयत ही रहा किन्तु तेजोलेश्या वाला हो गया। यह लेश्यासंबंधी परिवर्तन है। (३)

अथवा कोई प्रमत्तसंयत तेजोलेश्या में विद्यमान था। उसके उस तेजोलेश्या के कालक्षय से पद्मलेश्या आ गई। पद्मलेश्या के साथ वह प्रमत्तसंयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में वह पद्मलेश्या वाला ही रहा किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थान परिवर्तन हुआ।

शंका—पद्मलेश्या के काल में विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्या के कालक्षय से तेजोलेश्या से परिणमित होकर द्वितीय समय में अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि हीयमान लेश्या के साथ अप्रमत्तगुणस्थान के ग्रहण करने का अभाव है।

शंका—तो उक्त प्रकार का जीव मिथ्यात्व आदिक नीचे के गुणस्थान को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि तेजोलेश्या में गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे बिना नीचे के गुणस्थानों के ग्रहण करने का अभाव है।

अथवा कोई अप्रमत्तसंयत पद्मलेश्या में विद्यमान था। वह अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के कालक्षय से प्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समय में मरा और देवगति को प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयत के जघन्य की अपेक्षा एकसमयसंबंधी लेश्यादिपरिवर्तन को कहते हैं–वर्धमान तेजोलेश्या वाला कोई मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव, तेजोलेश्या के काल में एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह तेजोलेश्या के साथ एक समय अप्रमत्तसंयतरूप से

जातः। एषा लेश्या परावृत्तिः (१)।

अथवाऽप्रमत्तो हीयमानपद्मलेश्यकः एकसमये अप्रमत्तकालावशेषे पद्मलेश्याकालक्षयेण तेजोलेश्यको जातः। द्वितीयसमये प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपन्नः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः (२)। अथवा प्रमत्तः वर्द्धमानतेजोलेश्यः अप्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये मृतो देवत्वं गतः। एवं मरणेन एकसमयो लब्धः (३)।

प्रमत्तो वर्द्धमानपद्मलेश्यः पद्मलेश्याकाले एकसमयावशेषे अप्रमत्तः जातः। द्वितीयसमये अप्रमत्तश्चैव, किन्तु शुक्ललेश्यां गतः। एषा लेश्यापरावृत्तिः (१)। अथवा अप्रमत्तो हीयमानशुक्लालेश्यः शुक्ललेश्याकालक्षयेण पद्मलेश्यो जातः। द्वितीयसमये पद्मलेश्यया सह प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपन्नः। एषा गुणस्थान परावृत्तिः (२)। अथवा प्रमत्तः पद्मलेश्यायां स्थितः प्रमत्तकाले क्षीणे एकसमयं जीवितमस्तीति अप्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये मृतो देवत्वं गतः। एवं मरणेन एक समयो लब्धः (३)।

एतदेकसमयप्ररूपणा जाता।

अधुना उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तकालः कथ्यते —

संयतासंयतः प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतो वा तेजःपद्मलेश्ययोः अर्पितलेश्यायां परिणम्य सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अनर्पितलेश्यां गतः। लब्धमुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तमिति।

दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समय में पद्मलेश्या वाला हो गया। यह लेश्या परिवर्तन है। (१)

अथवा हीयमान पद्मलेश्या वाला कोई अप्रमत्तसंयत, एक समय अप्रमत्तसंयत काल के अवशेष रहने पर पद्मलेश्या के कालक्षय से तेजोलेश्या वाला हो गया और द्वितीय समय में प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तन है। (२)

अथवा वर्धमान तेजोलेश्या वाला कोई प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समय में मरा और देवगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार मरण से एक समय लब्ध हुआ। (३)

कोई वर्धमान पद्मलेश्या वाला प्रमत्तसंयत, पद्मलेश्या के काल में एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समय में अप्रमत्तसंयत ही रहा किन्तु शुक्ललेश्या को प्राप्त हो गया। इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ। (१)

अथवा हीयमान शुक्ललेश्या वाला कोई अप्रमत्तसंयत जीव शुक्ललेश्या के कालक्षय से पद्मलेश्या वाला हो गया। द्वितीय समय में पद्मलेश्या के साथ प्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तनसंबंधी एक समय की प्ररूपणा हुई। (२)

अथवा कोई प्रमत्तसंयत पद्मलेश्या में विद्यमान था। वह प्रमत्तकाल के क्षीण हो जाने पर तथा एक समय प्रमाण जीवन के शेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। दूसरे समय में मरा और देवगति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार मरण के साथ एक समय प्राप्त हुआ। (३)

यह एक समय की प्ररूपणा हुई।

अब उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल का कथन करते हैं —

कोई संयतासंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत जीव तेजोलेश्या और पद्मलेश्याओं में से विवक्षित किसी एक लेश्या में परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित लेश्या को प्राप्त हो गया। यह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हुआ।

एवं द्वितीयस्थले पीतपद्मलेश्याजघन्योत्कृष्टकालनिरूपत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

अधुना शुक्ललेश्यायां मिथ्यात्वादिचतुरसंयतगुणस्थानवर्तिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।२९९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३००।।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३०१।।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।३०२।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।३०३।।

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।।३०४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**त्रिष्वपि कालेषु शुक्ललेश्यावतां मिथ्यादृष्टीनां विरहाभावात् सर्वकालः नानाजीवापेक्षया कथ्यते।**

एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं—एकः मिथ्यादृष्टिः वर्द्धमानपद्मलेश्यः स्वलेश्यायाः क्षयेण शुक्ललेश्यो जातः। सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मलेश्यां गतः, अन्यलेश्यागमने संभवाभावात्। लब्धोंऽतर्मुहूर्तः।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पीत-पद्म लेश्या वाले जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट काल का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्या में मिथ्यात्व आदि चार असंयत गुणस्थानवर्ती जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२९९।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३००।।

शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागरोपम है।।३०१।।

शुक्ललेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है।।३०२।।

शुक्ललेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है।।३०३।।

शुक्ललेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है।।३०४।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा तीनों ही कालों में शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के विरह का अभाव है। इसलिए वे सर्वकाल पाये जाते हैं।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है—

वर्धमान पद्मलेश्या वाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेश्या का काल समाप्त हो जाने से शुक्ललेश्या वाला हो गया। वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ, क्योंकि उसका

उत्कृष्टेन—एकः द्रव्यलिंगी दिगम्बरमुनिः द्रव्यसंयममाहात्म्येन उपरिमग्रैवेयकेषु आयुर्बंधं कृत्वा पद्मलेश्यायां स्थितः। तल्लेश्यायाः कालक्षयेण तस्य शुक्ललेश्या आगता। तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा कालं कृत्वा उपरिमग्रैवेयकेषु उत्पद्य स्वकस्थितिं गमयित्वा च्युतः तत्क्षणे चैव नष्टलेश्यो जातः। एवं प्रथमान्तर्मुहूर्तेन सातिरेकः एकत्रिंशत्सागरोपममात्रो मिथ्यात्वसहितशुक्ललेश्यायाः उत्कृष्टकालो भवति।

सासादनानां अपि शुक्ललेश्यायां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेन षडावलिकाः इति ओघेन भेदाभावात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टानामपि ओघेन सह भेदाभावात्।

असंयतसम्यग्दृष्टीनामपि शुक्ललेश्यायां नानाजीवं प्रतीय सर्वकालः, एकजीवं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि सातिरेकानि। केवलं-पर्यायार्थिकनयेऽवलम्ब्यमानेऽस्ति विशेषः-पश्चिममनुष्य-भवे शुक्ललेश्याया एकान्तर्मुहूर्तेन सह पूर्वोक्तकालस्य सातिरेकत्वोपलंभात्। किंतु ओघे तु देशोनपूर्वकोटिकालेन सह सातिरेकत्वदर्शनात्।

तात्पर्यमेतत्—शुक्ललेश्यायां सर्वार्थसिद्धिदेवापेक्षया चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां उत्कृष्टायुरपेक्ष्य एषः उत्कृष्टकालः कथितो ज्ञातव्यः।

एवं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यायां चतुर्गुणस्थानवर्तिनां कालकथनमुख्यत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना संयतासंयतादिसयोगिकेवलिपर्यंतकाल प्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

पद्मलेश्या के सिवाय अन्य किसी लेश्या में जाना संभव ही नहीं है, यह अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट से-एक द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुनि द्रव्यसंयम के माहात्म्य से उपरिम ग्रैवेयकों में आयु को बांधकर पद्मलेश्या में विद्यमान था। उसके उस लेश्या के कालक्षय से शुक्ललेश्या आ गई। उसमें अन्तर्मुहूर्त काल रहकर, काल को व्यतीत करके, उपरिम ग्रैवेयकों में उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति को बिताकर वहाँ से च्युत हुआ और उसी क्षण में उसकी वह लेश्या नष्ट हो गई। इस प्रकार प्रथम अन्तर्मुहूर्त के साथ कुछ अधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्व सहित शुक्ललेश्या का उत्कृष्टकाल होता है।

सासादन जीवों का भी शुक्ललेश्या में नानाजीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय, और उत्कृष्टकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलिप्रमाण है, क्योंकि ओघ से इस काल में कोई भेद नहीं पाया जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के काल में भी ओघ से भेद का अभाव पाया जाता है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का भी शुक्ललेश्या में नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकाल कुछ अधिक तेंतीस सागरप्रमाण है। केवल पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन लेने पर ही इसमें विशेषता है—पिछले मनुष्यभव में होने वाली शुक्ललेश्या के एक अन्तर्मुहूर्त के साथ पूर्वोक्त काल में अधिकपना पाया जाता है, किन्तु ओघ में देशोन पूर्वकोटि के साथ उक्तकाल की साधिकता देखी जाती है।

तात्पर्य यह है कि शुक्ललेश्या में सर्वार्थसिद्धि देवों की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों की उत्कृष्ट आयु की अपेक्षा यह उत्कृष्टकाल कहा गया है, ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में शुक्ललेश्या में चारों गुणस्थानवर्ती जीवों का काल कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों का काल कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३०५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३०६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३०७।।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं।।३०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**शुक्ललेश्यायां संयतासंयताः प्रमत्ताः अप्रमत्ताः नानाजीवाः त्रिष्वपिकालेषु सन्ति। एकजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः—एकः प्रमत्तसंयतः हीयमानशुक्ललेश्यः एकः समयः शुक्ललेश्यायामस्तीति संयतासंयतो जातः। द्वितीयसमये संयतासंयतश्चैव, किन्तु पद्मलेश्यां गतः। एषा लेश्यापरावृत्तिः (१)। शेषगुणस्थानेभ्यः संयमासंयमं प्रतिपद्यमानानां शुक्ललेश्यायां एकसमयो न लभ्यते, वर्द्धमानशुक्ललेश्यायां संयमासंयमं प्रतिपन्नानां द्वितीयसमये पद्मलेश्यायां गमनाभावात्।**

अथवा संयतासंयतो वर्द्धमानपद्मलेश्यः तल्लेश्यायाः कालक्षयेण संयमासंयमकाले एकसमयावशेषे शुक्ललेश्यो जातः। द्वितीयसमये शुक्ललेश्यश्चैव, किन्तु अप्रमत्तभावेन संयमं प्रातिपन्नः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः (२)।

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३०५।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।३०६।।

उक्त तीनों गुणस्थानों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३०७।।

शुक्ललेश्या वाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवली का काल गुणस्थान के समान है।।३०८।।

हिन्दी टीका—शुक्ललेश्या में संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत नानाजीव तीनों ही कालों में पाये जाते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय है–

हीयमान शुक्ललेश्या वाला एक प्रमत्तसंयत जीव, शुक्ललेश्या के काल में एक समय शेष रहने पर संयतासंयत हुआ। द्वितीय समय में वह संयतासंयत ही है, किन्तु पद्मलेश्या को प्राप्त हो गया। यह लेश्या का एक समयसंबंधी परिवर्तन है। (१)

शेष गुणस्थानों से संयमासंयम को प्राप्त होने वाले जीवों के शुक्ललेश्या का एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि वर्धमान शुक्ललेश्या के साथ संयमासंयम को प्राप्त होने वाले जीवों के द्वितीय समय में पद्मलेश्या में गमन का अभाव है।

अथवा कोई संयतासंयत वर्धमान पद्मलेश्या वाला है। उस लेश्या के कालक्षय से और संयमासंयम के काल में एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्ललेश्या वाला हो गया। द्वितीय समय में वह शुक्ललेश्या वाला ही है किन्तु अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तनसंबंधी एक समय की प्ररूपणा है। (२)

प्रमत्तस्य उच्यते—एकः अप्रमत्तः हीयमानशुक्ललेश्यः शुक्ललेश्याकाले एकसमयावशेषे प्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये प्रमत्तश्चैव, किंतु पद्मलेश्या परावर्तिता। एषा लेश्यापरावृत्तिः (१) अथवा एकः प्रमत्तः वर्द्धमानपद्मलेश्यः पद्मलेश्या कालक्षयेण शुक्ललेश्यो जातः। द्वितीयसमये शुक्ललेश्यश्चैव, किन्तु अप्रमत्तो जातः। एषा गुणस्थानपरावृत्तिः (२)। अथवा अप्रमत्तो हीयमानशुक्ललेश्यः शुक्ललेश्याकालेन सह प्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये मृतो देवत्वं गतः (३)।

अप्रमत्तस्य उच्यते—एकः प्रमत्तः शुक्ललेश्यायां स्थितः, शुक्ललेश्यासहितः अप्रमत्तो जातः। द्वितीयसमये मृतो देवत्वं गतः (१)। अथवा अपूर्वकरणः श्रेण्यः अवतरन् शुक्ललेश्यः अप्रमत्तो भूत्वा मृतो देवो जातः (२)। अत्र एकसमय भंगप्रूरूपणगाथा कथ्यते—

दो द्दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए।
दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुक्कलेस्साए[१]।।

एषामेव संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां शुक्ललेश्यायां उत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तं अस्ति।

तदेवोच्यते—शुक्ललेश्यायां परिणम्य उत्कृष्टमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मलेश्यां गतानामुत्कृष्टकालोपलंभात्।

चतुर्णां उपशामकानां चतुर्णां क्षपकानां सयोगिकेवलिनां च नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालप्ररूपणा

अब प्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा करते हैं–हीयमान शुक्ललेश्या वाला कोई एक अप्रमत्तसंयत शुक्ललेश्या के काल में एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समय में वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु उसके पद्मलेश्या लौट आई। यह लेश्यापरिवर्तन संबंधी एक समय की प्ररूपणा हुई। (१)

अथवा वर्धमान पद्मलेश्या वाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, पद्मलेश्या के कालक्षय से शुक्ललेश्या वाला हो गया। द्वितीय समय में वह शुक्ललेश्या वाला ही है। किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानसंबंधी परिवर्तन है। (२)

अथवा हीयमान शुक्ललेश्या वाला कोई अप्रमत्तसंयत, शुक्ललेश्या के ही काल के साथ प्रमत्तसंयत हो गया किन्तु दूसरे समय में मरा और देवगति को प्राप्त हुआ। (३)

अब अप्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा करते हैं–शुक्ललेश्या में विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव शुक्ललेश्या के साथ ही अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समय में मरा और देवगति को प्राप्त हुआ। (१)

अथवा शुक्ललेश्या वाला श्रेणी से उतरता हुआ कोई अपूर्वकरणसंयत अप्रमत्तसंयत होकर मरा और देव हो गया। (२)

यहाँ पर एक समय के भंगों की प्ररूपणा करने वाली गाथा इस प्रकार है—

गाथार्थ—तेजोलेश्या के दो, दो और तीन समयभंग होते हैं। पद्मलेश्या के तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयभंग होते हैं तथा शुक्ललेश्या के दो, तीन और दो समयभंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।।४१।।

इन्हीं संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों के शुक्ललेश्या में उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है। उसी का स्पष्टीकरण करते हैं—

शुक्ललेश्या से परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर पद्मलेश्या को प्राप्त हुए जीवों के उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

चारों उपशामक और चारों क्षपक तथा सयोगिकेवली गुणस्थान में नाना जीव और एक जीव की जघन्य

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका), पृ. ४७५।

गुणस्थानवद्ज्ञातव्या, किं च एतेषां शुक्ललेश्यां मुक्त्वा अन्यलेश्याभावात्।

तात्पर्यमेतत्—वर्णनामकर्मोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यलेश्या सापि षड्विधा, प्रत्येकं संख्यातसंख्यातानन्तविकल्पा अपि भवन्ति। भावलेश्या तु कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिः भवति। एतासां लेश्यानां कर्मापेक्षया कथ्यन्ते लक्षणानि-

उक्तं च—

पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति।।५०७।।
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं, छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं[१]।।५०८।।

एतल्लेश्यानां कार्यस्योदाहरणं ज्ञात्वा पीतपद्मशुक्ललेश्यापरिणामान् वृद्धिंगतान् कुर्वाणैः निजशुद्धबुद्धनित्यनिरञ्जनात्मानं ध्यायद्भिः उत्कृष्टधर्म्यध्यानेन शुक्लध्यानमवलम्ब्य मोक्षपुरुषार्थः साधनीयः। पुनश्च अलेश्यो भूत्वा परमानन्द सुखमेव शाश्वतं अनुभवितव्यं। सिद्धिपुरं गत्वा अनन्तानन्तकालं तत्रैव स्थातव्यमिति।

एवं उत्कृष्ट काल प्ररूपणा गुणस्थान के समान जानना चाहिए, क्योंकि इनमें शुक्ललेश्या को छोड़कर अन्य लेश्या का अभाव रहता है।

तात्पर्य यह है कि वर्ण नामकर्म के उदय से उत्पन्न शरीर का वर्ण द्रव्यलेश्या कहलाती है, वह द्रव्यलेश्या छह प्रकार की है। वह प्रत्येक लेश्या नाना जीवों की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद वाली भी होती है। कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को भावलेश्या कहते हैं। इन सभी लेश्याओं का लक्षण कर्म की अपेक्षा कहते हैं—

गाथार्थ—कृष्ण आदि छह लेश्या वाले कोई छह पथिक वन के मध्य में मार्ग से भ्रष्ट होकर फलों से पूर्ण किसी वृक्ष को देखकर अपने-अपने मन में इस प्रकार विचार करते हैं और उसके अनुसार वचन कहते हैं—कृष्ण लेश्या वाला विचार करता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष को मूल से उखाड़कर इसके फलों का भक्षण करूँगा। नीललेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष को स्कंध से काटकर इसके फल खाऊँगा। कापोतलेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटकर इसके फलों को खाऊँगा। पीतलेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष की छोटी-छोटी शाखाओं को काटकर इसके फलों को खाऊँगा। पद्मलेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष के फलों को तोड़कर खाऊँगा तथा शुक्ललेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष से स्वयं टूटकर पड़े हुए फलों को खाऊँगा। इस तरह जो मनःपूर्वक वचनादि की प्रवृत्ति होती है वह लेश्या का कर्म है।

इन लेश्याओं के कार्य के उदाहरण जानकर पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या के परिणामों को वृद्धिंगत करते हुए निज शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन आत्मा का ध्यान करने वाले महापुरुषों को उत्कृष्ट धर्मध्यान के द्वारा शुक्लध्यान का अवलंबन लेकर मोक्षपुरुषार्थ की सिद्धि करना चाहिए। पुनः लेश्यारहित होकर परमानंद सुखरूप शाश्वतसुख का अनुभव करना चाहिए, सिद्धिपुर-मोक्षमहल में जाकर वहीं पर अनन्तानंत काल तक स्थित रहना चाहिए।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड।

उक्तं च—

किण्हादिलेस्सरहिया, संसारविणिग्गया अणंतसुहा।
सिद्धिपुरं संपत्ता, अलेस्सिया ते मुणेयव्वा[1]।।५५६।।

तेभ्योऽलेश्येभ्यो नित्यमेव नमोऽस्तु अस्माकमिति।

एवं चतुर्थस्थले संयतासंयतादिसयोगिकेवलिनां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमती कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

कहा भी है—

गाथार्थ—कृष्णादि लेश्याओं से रहित अलेश्या-सिद्ध भगवान संसार से निकलकर अनन्तसुख के स्थानरूप सिद्धिपुर को प्राप्त कर लेते हैं ऐसा जानना चाहिए। उन लेश्यारहित परमात्माओं को हमारा नित्यकाल नमस्कार होवे।

इस प्रकार से चतुर्थस्थल में संयतासंयत से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के भगवन्तों का जघन्य और उत्कृष्टकाल बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि टीका में लेश्यामार्गणा नामका दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड।

अथ भव्यमार्गणाधिकार:

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां अष्टभि: सूत्रै: भव्यमार्गणानाम एकादशोधिकार: प्रारभ्यते—

तत्र प्रथमस्थले भव्यानां गुणस्थानापेक्षया कालप्रतिपादनत्वेन ''भवियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तत: परं द्वितीयस्थले अभव्यानां कालकथनमुख्यत्वेन ''अभवसिद्धिया'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

अधुना भव्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिजीवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३०९।।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो।।३१०।।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देस्सो।।३११।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१२।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।३१३।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३१४।।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में आठ सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में गुणस्थान की अपेक्षा भव्यात्माओं का काल प्रतिपादन करने वाले ''भवियाणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में अभव्यों का काल कथन करने वाले ''अभवसिद्धिया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्यों में मिथ्यादृष्टि आदि जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिक जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३०९।।

एक जीव की अपेक्षा अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है।।३१०।।

उक्त तीन प्रकारों में से जो भव्यत्व सादि और सान्त है, उसका निर्देश इस प्रकार है।।३११।।

सादि-सान्त मिथ्यात्व का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३१२।।

सादि-सान्त मिथ्यात्व का उत्कृष्टकाल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है।।३१३।।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली तक का काल ओघ के समान है।।३१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —**नानाजीवमाश्रित्य भव्यसिद्धिकाः मिथ्यादृष्टिजीवाः त्रिष्वपि कालेषु सन्ति। एकजीवापेक्षया — भव्यत्वं द्विविधं — अनादिसपर्यवसितं सादिसपर्यवसितं। पूर्वं सम्यक्त्वं येन न लब्धं, तस्य अनादिसपर्यवसितं। सम्यक्त्वं गृहीत्वा मिथ्यात्वं गतस्य सादिसपर्यवसितं।**

अनादित्वात् अकृत्रिमस्य न विनाशश्चेत् ?

नैतत्, अज्ञानस्य कर्मबंधस्य च अनादेरपि विनाशोपलंभात्।

अकारणत्वात् न तस्य विनाशश्चेत्?

न, अनादिबंधनबद्धकर्मकारणत्वात्। अज्ञानस्य कर्मबंधस्य च कारणं अनादिबन्धनबद्धकर्मैव इति ज्ञातव्यं।

कश्चिदाह — सिद्धाणां मिथ्यात्वासंयमकषाययोगकर्मास्रवविरहितानां न संसारे पुनः पतनमस्ति, ततो न सादिसान्तं भव्यत्वं। न च प्रतिपन्नसम्यक्त्वस्यापि भव्यत्वं सादिर्भवति, पूर्वमपि तत्र जीवे भव्यत्वोपलम्भात्?

अत्राचार्येणोच्यते — न संसारे निपतितसिद्धान्-पुनरागतसिद्धानानाश्रित्य भव्यत्वं सादिः उच्यते। न च ते सिद्धाः संसारे निपतन्ति, नष्टास्रवत्वात्। किन्तु गृहीतसम्यक्त्वजीवस्य भव्यत्वं सादिरुच्यते। न च तत्पूर्वमस्ति, अस्य सादिसान्तस्य भव्यस्य पूर्ववर्तिना तेन अनादिअनन्तेन भव्यत्वेन सह एकत्वविरोधात्।

पूर्वोक्तमपि भव्यत्वं सान्तं चेत् का हानि?

हिन्दी टीका — नाना जीवों की अपेक्षा भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीव तीनों कालों में होते हैं। एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं तो भव्यत्व के दो भेद हैं-१. अनादि-सांत, २. सादि-सांत। पूर्व में जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है उनके अनादि-सांत भव्यत्व होता है तथा एक बार सम्यक्त्व को प्राप्त करके पुनः मिथ्यात्व में गये हुए जीव के सादि-सांत भव्यत्व होता है।

शंका — जो वस्तु अनादि है, वह अकृत्रिम होती है और उसका विनाश नहीं होता है। इसलिए अनादि से चले आये मिथ्यात्व में भी सान्तता नहीं मानना चाहिए?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अज्ञान और कर्मबंध का उनके अनादि होते हुए भी विनाश देखा जाता है।

शंका — कारणरहित वस्तु का विनाश नहीं होता है। इसलिए अज्ञान या कर्मबंध का भी विनाश नहीं होना चाहिए?

समाधान — नहीं, क्योंकि अज्ञान या कर्मबंध का कारण अनादिबन्धनबद्ध कर्म ही है और अज्ञान एवं कर्मबंध के कारण अनादिकाल से बंधे कर्म ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के द्वारा कर्मास्रव से विरहित सिद्ध जीवों का पुनः संसार में पतन नहीं होता है इसलिए भव्यत्व सादि-सान्त नहीं है और न प्रतिपन्न सम्यक्त्वी जीव के भी भव्यत्व सादि होता है क्योंकि सम्यक्त्व की प्राप्ति के पूर्व भी उस जीव में भव्यत्व पाया जाता है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं — संसार में पुनः लौटकर आने वाले सिद्ध जीवों की अपेक्षा से भव्यत्व को सादि नहीं कह सकते, क्योंकि कर्मास्रवों के नष्ट हो जाने से वे संसार में पुनः लौटकर नहीं आते। किन्तु ग्रहण किया है सम्यक्त्व को जिसने, ऐसे जीव के भव्यत्व को सादि कहते हैं तथा वह पूर्व में भी नहीं है क्योंकि इस सादि-सान्त भव्यत्व के पूर्ववर्ती उस अनादि-अनन्त भव्यत्व के साथ एकत्व का विरोध है।

शंका — पहले के भव्यत्व को भी यदि सान्त मान लिया जाये तो क्या हानि है?

न, शक्तिं प्रतीत्य तस्य सान्तत्वोपदेशात्। व्यक्तिं प्रतीत्य सम्यक्त्वग्रहणेन विना अनन्तसंसारस्य जीवस्य भव्यत्वं सान्तं नास्ति, विरोधात्।

पुनश्च भव्यत्वेन अनाद्यनन्तेनापि भवितव्यं, अन्यथा भव्यजीवस्य व्युच्छेदप्रसंगात्।

उक्तं च— **अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।**
भावकलंकइ पउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।।४२।।
एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण[१]।।४३।।

इत्यादिसूत्रदर्शनाच्च भव्यजीवानां व्युच्छेदाभावसिद्धत्वात्।

मोक्षमगच्छतां भव्यत्वं नास्ति?

एतदपि वक्तुं न युक्तं, किं च मोक्षगमनशक्तिसद्भावं प्रतीत्य तेषां भव्यत्वोपदेशात्।

उक्तं च श्रीस्वामिसमंतभद्रेण—

कामादिप्रभवश्चित्रः, कर्मबंधानुरूपतः।
तच्च कर्मस्वहेतुभ्यो, जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः।।९९।।
शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती, ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती, स्वभावोऽतर्कगोचरः[२]।।१००।।

समाधान— नहीं, क्योंकि शक्ति की अपेक्षा से उसके सान्तता का उपदेश दिया गया है। व्यक्ति की अपेक्षा सम्यक्त्व ग्रहण के बिना अनन्त संसारी जीव के सान्त भव्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है। अर्थात् फिर तो भव्यत्व को अनादि-अनन्त भी होना पड़ेगा अन्यथा भव्यजीवों के विच्छेद का प्रसंग प्राप्त होगा। कहा भी है-

गाथार्थ— ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक नहीं पाई है और जो दूषित भावों की अति प्रचुरता के कारण कभी भी निगोद के वास को नहीं छोड़ते हैं।।४२।।

एक निगोदशरीर में द्रव्यप्रमाण से जीव सिद्धों से तथा समस्त अतीतकाल के समयों से अनन्तगुणे देखे जाते हैं।।४३।।

इत्यादि सूत्रों के देखे जाने से भी भव्यजीवों के विच्छेद का अभाव सिद्ध है।

प्रश्न— मोक्ष में नहीं जाने वाले जीवों के भव्यपना नहीं होना चाहिए?

उत्तर— ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योंकि मोक्षगमन की शक्ति के सद्भाव की अपेक्षा उनमें भव्यपना पाये जाने का उपदेश है।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है—

कारिकार्थ— जो काम आदि-रागादिकों का उत्पाद होता है वह कार्यरूप-भावसंसार नाना प्रकार का है, वह ज्ञानावरणादि कर्मबंध के अनुसार ही होता है और वह कर्म अपने हेतुभूत रागादि परिणामों से ही होता है तथा वे जीव शुद्धि-भव्यत्व और अशुद्धि-अभव्यत्व के भेद से दो प्रकार के हैं।।९९।।

जीवों की ये शुद्धि और अशुद्धिरूप दो शक्तियाँ मूंग आदि के पकने योग्य एवं न पकने योग्य शक्ति के समान हैं पुनः इन दोनों की शक्ति भव्य एवं अभव्य जीवों की अपेक्षा से सादि एवं अनादि है। वस्तु का यह स्वभाव तर्क के अगोचर है।।१००।।

---

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका) पृ. ४७७। २. अष्टसहस्री कारिका नं. ९९-१००, पृ. ४८५ से ५१०।

तथा च भव्यत्वशक्तिमतां सर्वेषां तद्भव्यत्वव्यक्त्या भवितव्यमेव एषोऽपि नियमो नास्ति, अन्यथा सर्वस्यापि हेमपाषाणस्य हेमपर्यायेण परिणमनप्रसंगात्। न चैवं दृश्यते, अनुपलम्भात्।

निर्वृत्तिं गच्छन्नपि न व्युच्छिद्यते भव्यराशिः इति कथमेतद् ज्ञायते?

तस्य अनन्तत्वात्। सः राशिरनन्त उच्यते, यः सत्यपि व्यये न समाप्यते, अन्यथा अनन्तव्यपदेशोऽनर्थको भवेत्। तस्मात् त्रिविधेन भव्यत्वेन भवितव्यमिति। न च सूत्रेण सह विरोधः, शक्तिमपेक्ष्य सूत्रे अनादिसान्तत्वोपदेशात्।

त्रयाणां भव्यानां मध्ये यः सादिसान्तः भव्यः तस्यायं निर्देशः प्ररूपणा प्रज्ञापना इति उक्तं भवति।

अथवा भव्यानां यन्मिथ्यात्वं तद्द्विविधं—अनादिसान्तं सादिसान्तमिति। तत्र योऽसौ सादिः सान्तः मिथ्यादृष्टिः तस्यायं निर्देशो वक्तव्यमिति। पुनः पूर्वोक्तेऽर्थे यः सादिः सान्तः भव्यः तस्य मिथ्यात्वस्य असौ निर्देशः प्ररूपयितव्यः।

तस्य मिथ्यात्वसहित भव्यस्य जघन्येन कालः—यः कश्चित् सम्यग्दृष्टिः दृष्टमार्गः मिथ्यात्वं गत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अन्यगुणस्थानं गतः तस्यैव।

उत्कृष्टेन कालः कथ्यते—एकः अनादिमिथ्यादृष्टिः त्रीणि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। तेन सम्यक्त्वेन उत्पद्यमानेन अनंत संसारः छिन्नः सन् अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। उपशमसम्यक्त्वेन सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तंस्थित्वा उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाशेषे सासादनं गत्वा मिथ्यात्वं नेतव्यः।

तथा यह भी कोई नियम नहीं है कि भव्यत्व की शक्ति रखने वाले सभी जीवों के उसकी व्यक्ति होना ही चाहिए। अन्यथा सभी स्वर्णपाषाण के स्वर्णपर्याय रूप परिणमन का प्रसंग प्राप्त होगा? और ऐसा देखा भी नहीं जाता है, क्योंकि वैसी उपलब्धि नहीं होती है।

शंका—निवृत्ति (मोक्ष) को जाते हुए जीवों के भी नित्य व्ययात्मक भव्यराशि विच्छेद को प्राप्त नहीं होती है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, यह राशि अनन्त है और वही राशि अनन्त कही जाती है जो व्यय के होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है। अन्यथा फिर उस राशि की अनन्त संज्ञा निरर्थक हो जाएगी। इसलिए भव्यत्व तीन प्रकार का हो जाना चाहिए तथा सूत्र के साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि शक्ति की अपेक्षा सूत्र में भव्यत्व के अनादिसान्तता का उपदेश दिया गया है।

तीन प्रकार के भव्यों के मध्य में जो सादि-सान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रज्ञापना की गई है। अथवा भव्यजीवों के जो मिथ्यात्व है,वह दो प्रकार का होता है-१. अनादि-सान्त और २. सादि-सान्त। उनमें से जो सादि और सान्त मिथ्यादृष्टि है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए तथा पहले के अर्थ में जो सादि-सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्व का यह निर्देश है, ऐसी प्ररूपणा करनी चाहिए।

उस मिथ्यात्वसहित भव्यजीव का जघन्यकाल कहते हैं—

कोई एक दृष्टमार्गी सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को प्राप्त करके सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थिर रहकर अन्य गुणस्थान में चला गया, उसी के यह जघन्यकाल होता है।

अब इनका उत्कृष्टकाल कहते हैं-कोई एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणों को करके सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। उत्पन्न होने के साथ ही उस सम्यक्त्व से अनन्त संसार छिन्न होता हुआ अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मात्र कर दिया गया। उपशमसम्यक्त्व के साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रहकर उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियां शेष रह जाने पर उसी जीव को सासादनगुणस्थान में ले जाकर मिथ्यात्व में ले जाना चाहिए।

अथवा उपशमसम्यग्दृष्टिश्चैव मिथ्यात्वं गत्वा अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनं मिथ्यात्वेन परिवर्त्य अंतर्मुहूर्तावशेषे संसारे सम्यक्त्वं गृहीत्वा अनन्तानुबंधिकषायान् विसंयोज्य विश्रम्य दर्शनमोहं क्षपयित्वा प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तसहस्रं कृत्वा अधःप्रवृत्तकरणं करोति, पुनश्च अपूर्वकरणः अनिवृत्तिकरणः सूक्ष्मसांपरायः क्षीणकषायः सयोगी भूत्वा सिद्धो जातः। तस्यैव देशोनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तकालोऽभवत् इति ज्ञातव्यं।

ततः सासादनानां अयोगिपर्यन्तानां भव्यत्वं मुक्त्वा अन्यस्यासंभवात् तेषां सर्वेषां ओघवत् ज्ञातव्यं।

संप्रति अभव्यनानैकजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३१५।।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो।।३१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अभव्यमार्गणायां एषां सर्वकालः, अव्ययत्वात्। एकजीवापेक्षयापि मिथ्यात्वं मुक्त्वा तस्य गुणस्थानान्तरगमनाभावात्।**

तात्पर्यमेतत्—श्रीमते भगवते श्रीऋषभदेवाय अनन्तवारं नमोऽस्तु मम, अद्य[१] ब्राह्ममुहूर्ते अस्य भगवतः महामहोत्सववर्षे देवाधिदेवस्य समवसरणं भारतदेशे भ्रामयितव्यमिति भावनोत्पन्ना जाता।

अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्व को जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्व के साथ परिभ्रमण करके अन्तर्मुहूर्तमात्र संसार के शेष रहने पर सम्यक्त्व को ग्रहण करके, पुनः अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन करके, पश्चात् विश्राम ले दर्शनमोह को क्षपण कर, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान संबंधी सहस्रों परिवर्तन को करके, अधःप्रवृत्तकरण करता है, पुनः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध हो गया। इस प्रकार से उसके ही देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल हुआ, ऐसा जानना चाहिए।

उसके पश्चात् सासादन आदि गुणस्थानवर्ती जीवों से लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त भगवन्तों के भव्यत्व को छोड़कर अन्य का होना अर्थात् अभव्यत्व का होना असंभव है। उन सभी का काल गुणस्थान के समान समझना चाहिए।

अब अभव्य नाना जीव और एक जीव का काल बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३१५।।

एक जीव की अपेक्षा अभव्यों का अनादि और अनन्तकाल है।।३१६।।

हिन्दी टीका—अभव्यमार्गणा में इन अभव्य जीवों का सम्पूर्ण काल पाया जाता है, क्योंकि अभव्य जीवों का कभी व्यय-विनाश नहीं होता है।

एक जीव की अपेक्षा भी मिथ्यात्व को छोड़कर अभव्य के अन्य गुणस्थानों में जाने का अभाव है।

तात्पर्य यह है कि श्रीमान् भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकर को मेरा अनंतबार नमस्कार होवे, क्योंकि आज प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में इन भगवान ऋषभदेव के महामहोत्सव वर्ष में देवाधिदेव ऋषभदेव के समवसरण को पूरे भारत देश में भ्रमण कराने की भावना मेरे मन में उत्पन्न हुई तथा आज बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य

---

१. भादो शुक्ला द्वितीया, १४ सितम्बर १९९६, मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में।

पुनश्चाद्य चारित्रचक्रवर्ति श्रीशांतिसागरस्य प्रथमाचार्यस्य एकचत्वारिंशत्तमा पुण्यतिथिरस्ति अतः सर्वत्र भारते चतुर्विधसंघैः अनुमानतः पंचाशल्लक्ष दिगम्बर जैन श्रावक-श्राविकाभिश्च गुरूणां गुरोः गुणगानं क्रियते। अनेन आचार्यवर्येण लक्षादिभव्येभ्यः जिनधर्मोपदेशं दत्वा अगणितभव्यानां भव्यत्वशक्तिव्यक्त्यर्थं व्रतादिकं दत्तं। बहुभ्यो भव्येभ्यश्च जैनेश्वरीं दीक्षां प्रदाय दिगम्बरमुनिमार्गः पुनरुज्जीवितः, तस्मै अस्माकं पुनः पुनः नमोऽस्तु।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यजीवकालकथनाय सूत्रद्वयं गतम्।

एवं षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रन्थे कालानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज की इकतालीसवीं (४१वीं) पुण्यतिथि का दिवस है, अतः भारत में सर्वत्र चतुर्विध संघों के द्वारा अनुमानतः पचास लाख (५०,०००००) दिगम्बर जैन श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा गुरूणां गुरु आचार्यश्री का गुणगान किया जा रहा है। इन आचार्यश्री ने लाखों भव्यात्माओं को जिनधर्म का उपदेश देकर अनगिनत भव्यात्माओं की भव्यत्व शक्ति को व्यक्त करने हेतु व्रतादि प्रदान किये हैं तथा अनेक भव्यात्माओं को जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान करके दिगम्बर मुनिमार्ग को पुनः जीवन्त किया है अतः उन आचार्यवर्य को हमारा पुनः पुनः बारम्बार नमस्कार होवे।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अभव्यजीवों का काल कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

भावार्थ—वीरनिर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (२५२२) सन् १९९६ में भादों शुक्ला दूज को चारित्रचकवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर महाराज की ४१वीं पुण्यतिथि के दिन इस टीका का लेखन करते-करते महाराष्ट्र के मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर टीकाकर्त्री पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने उन गुरूणां गुरु के उपकारों का स्मरण किया है तथा उसी दिन भगवान ऋषभदेव समवसरण को भारत भ्रमण कराने की उनके मन में उत्पन्न हुई जिस भावना को उन्होंने इसमें व्यक्त किया है। वह भावना सन् १९९८ में सफल हुई और राजधानी दिल्ली से पूज्य माताजी के सानिध्य में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने वित्त राज्यमंत्री श्री वी. धनंजय कुमार जैन की अध्यक्षता में ९ अप्रैल-महावीर जयंती के शुभ दिन सुन्दर समवसरण रथ का भारत भ्रमण हेतु प्रवर्तन किया। इस रथ प्रवर्तन के द्वारा देश भर में लगभग ३ वर्ष तक अनादि जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ, पुनः उस धातु निर्मित समवसरण को भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि एवं केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ पर विराजमान कर दिया गया है, जो भव्यात्माओं को सच्चे ज्ञान का संदेश प्रदान कर रहा है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि टीका में भव्यत्व मार्गणा नामका ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकार:

अथ चतुर्भि:स्थलैः त्रयोदशसूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले क्षायिक-वेदकसम्यग्दृष्ट्योः कालकथनमुख्यत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि सूत्रद्वयं। ततः परं द्वितीयस्थले उपशमसम्यक्त्वे चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनोः कालनिरूपणत्वेन 'उपशम'' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनु तृतीयस्थले प्रमत्ताद्युपशान्तानां कालप्रतिपादनत्वेन 'पमत्तसंजद' इत्यादिसूत्राणि चत्वारि। तदनंतरं चतुर्थस्थले सम्यक्त्वविपरीतसासादनादित्रिकगुणस्थानवर्तिकालप्ररूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना क्षायिकसम्यक्त्वकालकथनाय सूत्रमवतरति—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्यसम्यग्दृष्टिषु क्षायिकसम्यग्दृष्टिष्वपि नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालान् आश्रित्य भेदाभावात् ओघवदुच्यते। केवलं क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतेषु अस्ति भेदः। तदेव भणिष्यामः—एको देवो नारको वा सम्यग्दृष्टिः मनुष्येषु उत्पद्य अंतर्मुहूर्ताभ्यधिकगर्भादिअष्टवर्षान् गमयित्वा संयमासंयमं प्रतिपद्य अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य अंतर्मुहूर्तेन दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिक सम्यग्दृष्टिः जातः। एवं चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः**

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में तेरह सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के कालकथन की मुख्यता वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके आगे द्वितीय स्थल में उपशमसम्यक्त्व में चतुर्थ और पंचमगुणस्थानवर्ती जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''उपशम'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीयस्थल में प्रमत्तसंयत से उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती महामुनियों का काल निरूपण करने हेतु ''पमत्तसंजद'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में सम्यक्त्व से विपरीत सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का काल प्ररूपण करने वाले ''सासण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं।

अध्याय के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब क्षायिकसम्यक्त्व का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक का काल गुणस्थान के समान है।।३१७।।

हिन्दी टीका—सामान्य सम्यग्दृष्टियों में और क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में भी नाना जीव और एक जीव के जघन्य और उत्कृष्टकाल का आश्रय लेकर भेद का अभाव होने से उनका कथन गुणस्थान के समान कहा है। केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों में कुछ भेद है। उसी को कहते हैं-कोई एक देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्त अधिक गर्भ से लेकर आठ वर्ष बिताकर

अभ्यधिकाष्टवर्षैः ऊनं पूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः। अत्रैव एष विशेषः, नास्त्यत्र कुत्रापि।

संप्रति वेदकसम्यग्दृष्टिकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।।३१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः सर्वगुणस्थानानां ओघगुणस्थानेभ्यः भेदाभावात्।**

तात्पर्यमेतत्—वर्तमानकाले अस्मिन् भरतक्षेत्रे पंचमकाले केवलिश्रुतकेवलिभगवतोरभावात् क्षायिकसम्यक्त्वं नास्ति, उपशमसम्यक्त्वस्य कालं अंतर्मुहूर्तमात्रमेव, अतोऽद्यत्वे वेदकसम्यक्त्वमेवास्माकं। अस्य कालमुत्कृष्टं षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणं अस्ति। क्षायिकसम्यक्त्वं यावन्न भवेत्तावदिदं न नश्येत् एषैव मम भावना वर्तते।

एवं प्रथमस्थले क्षायिकवेदकसम्यक्त्वकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति उपशमसम्यक्त्वे चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनोः कालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

संयमासंयम को प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक अन्तर्मुहूर्त से दर्शनमोहनीय का क्षपण कर, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो गया। इन चार अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हुआ। यहाँ पर इतनी ही विशेषता है और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का काल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक का काल गुणस्थान के समान है।।३१८।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों का और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्टकालों के द्वारा सभी गुणस्थानों का काल ओघ के समान ही है, उसमें कोई भेद नहीं है।

तात्पर्य यह है कि इस भरतक्षेत्र के अन्दर वर्तमान काल में पंचमकाल (दुःषमकाल) चल रहा है अतः यहाँ केवली-श्रुतकेवली का अभाव होने से क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है तथा उपशम सम्यक्त्व का काल मात्र अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः आज हम सभी को वेदक-क्षयोपशम सम्यक्त्व ही है। इस वेदकसम्यक्त्व का उत्कृष्टकाल छ्यासठ सागर प्रमाण है। जब तक क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त न होवे, तब तक मेरा क्षयोपशम सम्यक्त्व नष्ट न होवे, यही मेरी भावना है। अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व होने तक मेरा क्षयोपशम सम्यक्त्व बना रहे, पुनः क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति हो जावे, ऐसी भावना सभी को करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में क्षायिक और वेदक सम्यक्त्व का काल बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमसम्यक्त्व में चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्तियों का काल कथन करनेवाले चार सूत्रों का अवतार हो रहा है—

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१९।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।३२०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३२१।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सप्ताष्टजना बहवो वा मिथ्यादृष्टयः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे सर्वे सासादनं गताः। अंतरं जातं। जघन्येन एष कालः। उत्कृष्टेन—सप्ताष्ट जना बहवो वा मिथ्यादृष्टयः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः। तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा वेदकसम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गताः। अस्य एका शलाका निक्षेपयितव्या। तत्समये चैव अन्ये मिथ्यादृष्टयः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा चतुर्णां गुणस्थानानां अन्यतरं गताः। द्वितीयशलाका लब्धा भवति। एवं त्रिचतुरादिं गत्वा पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः शलाका लभ्यन्ते।**

तत्कथं ज्ञायते?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्। एताभिः शलाकाभिः उपशमसम्यक्त्वकालं, गुणिते स्वकराशिभ्यः असंख्यातगुणः अन्तरविरहितकालो भवति।

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं।।३१९।।

उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत और संयतासंयतों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग है।।३२०।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३२१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३२२।।

हिन्दी टीका—सात-आठ जन, अथवा बहुत से मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुए। उसमें अन्तर्मुहूर्त तक रह करके वे सब वेदकसम्यक्त्व को या सम्यग्मिथ्यात्व को या सासादनसम्यक्त्व को अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त हो गये। इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए। उसी समय में ही अन्य भी मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होकर उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान को प्राप्त हुए। यह दूसरी शलाका प्राप्त हुई। इस प्रकार से तीन-चार को आदि लेकर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र शलाकाएँ प्राप्त होती हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्व की शलाकाएँ पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र होती हैं?

समाधान—आचार्य परम्परागत उपदेश से यह जाना जाता है।

इन लब्ध शलाकाओं से उपशमसम्यक्त्व के काल को गुणा करने पर अपनी राशि से असंख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्व का काल होता है।

एकजीवापेक्षया जघन्येन—एकः मिथ्यादृष्टिः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः, अपरो देशसंयमेन सह तदेव सम्यक्त्वं च प्रतिपन्नः, सर्वजघन्यकालं स्थित्वा उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे आसादनं गतः। एष द्वयोरपि जघन्यकालः।

उत्कृष्टेन तु—द्वौ मिथ्यादृष्टिजीवौ। तत्र एकः उपशमसम्यक्त्वं, अपरो देशसंयमं प्रतिपन्नः। सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सम्यग्मिथ्यात्व-मिथ्यात्व-वेदकसम्यक्त्वेषु मध्ये एकतरं गतौ द्वावपि। लब्धः उत्कृष्टकालः।

एवं द्वितीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टिदेशसंयतकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति प्रमत्ताद्युपशान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३२३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३२४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३२५।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३२६।।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य से कथन करते हैं—

एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। दूसरा देशसंयम के साथ उसी उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने-अपने गुणस्थान में रह करके उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए। यह दोनों गुणस्थानों का जघन्यकाल है।

उत्कृष्टरूप से कहते हैं—

दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं। उनमें से एक उपशमसम्यक्त्व को और दूसरा देशसंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व अथवा वेदकसम्यक्त्व इन तीनों में से किसी एक को प्राप्त हुए, यह उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि देशसंयत जीवों का कालकथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रमत्तसंयत से लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक के महामुनियों में नानाजीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत से लेकर उपशन्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।।३२३।।

उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३२४।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।।३२५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रमत्ताप्रमत्तयोः नानाजीवापेक्षया जघन्यकालं तावदुच्यते—सप्ताष्टजना बहवो वा उपशमसम्यग्दृष्टयः उपशमश्रेण्याः अवतीर्य प्रमत्ताप्रमत्तौ भूत्वा एकसमयं स्थित्वा कालं कृत्वा देवा जाताः। अपूर्वकरणस्य अवतरद्भ्यः, अनिवृत्ति-सूक्ष्मसांपरायिकानां चटनावतरणक्रियाव्यापृतैः उपशान्तस्य आरोहद्भिः अर्पितगुणस्थानप्रतिपन्नद्वितीयसमये मृतैःमहामुनिभिः एकसमयो वक्तव्यः।**

उत्कृष्टेन तु प्रमत्ताप्रमत्तयोः कालः कथ्यते—सप्ताष्टजना बहवो वा दर्शनमोहनीयोपशामकाः चारित्रमोहनीयोपशामका वा प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने प्रतिपन्नाः। तयोः गुणस्थानयोः अंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा अन्यगुणस्थानं गताः। तस्मिंश्चैव समये अन्ये उपशमसम्यग्दृष्टयः प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने प्रतिपन्नाः। एवमत्र संख्यातशलाकाः लभ्यन्ते। एताभिः प्रमत्ताप्रमत्तकालं गुणितेऽपि अंतर्मुहूर्तं चैव भवति, 'अंतोमुहुत्तं' इति सूत्रे उद्दिष्टत्वात्। एवं चैव चतुर्णां उपशामकानां अपि वक्तव्यं। एकजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तमिति।

एवं तृतीयस्थले प्रमत्तादिउपशमसम्यग्दृष्टीनां कालकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

सासादनादित्रिकजीवानां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।३२७।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।३२८।।

हिन्दी टीका—प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा जघन्यकाल कहते हैं—सात-आठ जन, अथवा बहुत से उपशम सम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणी से उतरकर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत होकर, वहाँ पर एक समय रह करके, मरण कर देव हुए। अपूर्वकरण गुणस्थान वाले के उतरते हुए, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान वालों के आरोहण और अवतरण इन दोनों ही क्रियाओं में लगे हुए तथा उपशान्तकषाय के चढ़ते हुए विवक्षित गुणस्थान को प्राप्त होकर द्वितीय समय में मरे हुए महामुनियों के द्वारा एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

अब उत्कृष्टरूप से प्रमत्त और अप्रमत्त मुनियों का काल कहते हैं—

सात-आठ जीव अथवा बहुत से जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीय कर्म के उपशामक हों अथवा चाहे चारित्रमोहनीय कर्म के उपशामक हों अथवा चाहे चारित्रमोहनीय कर्म के उपशमन करने वाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त हुए। उन दोनों गुणस्थानों में अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुए। उसी समय में अन्य भी उपशम सम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार से यहाँ पर संख्यात शलाकाएँ प्राप्त होती हैं। इन शलाकाओं से प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत के काल को गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है क्योंकि सूत्र में 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है। इसी प्रकार से चारों उपशामकों का भी काल कहना चाहिए।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय है और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल है ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार तृतीय स्थल में प्रमत्तादि उपशमसम्यग्दृष्टियों का काल कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का काल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।३२७।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।३२८।।

मिच्छादिट्ठी ओघं।।३२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **ओघे कथितसासादनादीनां अत्र सम्यक्त्वानुवादे कथितसासादनादित्रयाणां गुणस्थानानां च भेदाभावात्।**

अस्या मार्गणायाः पठनस्य तात्पर्यमेतत् — अद्य प्रभृति पुरा कुंथलगिरिसिद्धक्षेत्रे यमसल्लेखनागृहीतेन श्रीशांतिसागराचार्यदेवेन षड्विंशत्युपवासदिवसे भव्यानां हिताय कार्यकर्तृश्रावकानां प्रार्थनया उपदेशः कृतः। तस्मिंश्च धर्मामृतप्रवचने कथितं यत् — ''भोः आयुष्मन्तो भव्योत्तमाः! शृण्वन्तु, यथा वृक्षेषु प्राक् पुष्पाणि पश्चात् पुष्पैश्चैव फलानि आगच्छन्ति, तथैव व्यवहारसम्यग्दर्शनं पुष्पमिव निश्चयसम्यग्दर्शनफलस्य कारणं वर्तते इति ''एतत्सर्वं मया तत्र श्रुतं एकचत्वारिंशद्वर्षपूर्वमिति।

अतोऽस्माभिरपि एवमेव याच्यते। यद्व्यवहारसम्यग्दर्शनं लब्धं तन्निर्वाणप्राप्तिं यावत्तिष्ठेत्। अनेन साधनेनैव निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागचारित्राविनाभावि साध्यं सिद्ध्यति, तदैव चानंतचतुष्टयं लप्स्यतेऽस्माभिरिति।

एवं चतुर्थस्थले सासादनसम्यग्मिथ्यात्वमिथ्यात्वकालप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनी ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानामद्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

मिथ्यादृष्टि जीवों का काल गुणस्थान के समान है।।३२९।।

हिन्दी टीका — ओघ में कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानों की कालप्ररूपणा का और सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद में कहे गए सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानों की कालप्ररूपणा में परस्पर में कोई भेद नहीं है।

इस मार्गणा को पढ़ने का तात्पर्य यह है कि आज से इकतालीस वर्ष पहले कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र में यमसल्लेखना को ग्रहण करने वाले चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनि महाराज ने छत्तीसवें उपवास के दिन कार्यकर्ता श्रावकों की प्रार्थना से भव्यों के कल्याण हेतु अपना अंतिम उपदेश दिया था। उस धर्मामृत प्रवचन में आचार्यश्री ने कहा था कि–

"हे आयुष्मान् भव्यप्राणियों! सुनो, जैसे–वृक्षों में पहले पुष्प आते हैं, उसके बाद उन पुष्पों से ही फल प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार संसार में व्यवहार सम्यग्दर्शन भी पुष्प के समान ही है, जो कि निश्चय सम्यग्दर्शनरूपी फल को प्राप्त कराने में कारण है।" यह अंतिम उपदेश आज से इकतालिस (४१) वर्ष पूर्व मैंने स्वयं कुंथलगिरि प्रवास के मध्य आचार्यदेव के मुखारविंद से सुना है।

अतः हमें भी भगवान से यही याचना करना चाहिए कि जो व्यवहार सम्यग्दर्शन मुझे प्राप्त हुआ, वह निर्वाणप्राप्ति होने तक बना रहे। इसी साधन के द्वारा ही वीतरागचारित्र का अविनाभावी निश्चय सम्यक्त्व, जो कि साध्यरूप है वह सिद्ध होगा और तभी हमें अनंतचतुष्टय की प्राप्ति होगी, ऐसा सम्यक्त्वमार्गणा का अभिप्राय है।

इस प्रकार से चतुर्थस्थल में सासादन, मिश्र एवं मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकार:

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सप्तसूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिनां गुणस्थानापेक्षया कालनिरूपणत्वेन ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिनां कालनिरूपणत्वेन ''असण्णी'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति पातनिका।

अधुना संज्ञिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३३०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३३१।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।३३२।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।३३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संज्ञिनां मिथ्यादृष्टिजीवानां नानाजीवान् आश्रित्य सर्वकालः। जघन्येन अंतर्मुहूर्तं। उत्कृष्टेन—एकः असंज्ञी संज्ञिषु उत्पन्नः, सागरोपमशतपृथक्त्वं तत्रैव भ्रमित्वा पुनः असंज्ञित्वं गतः। लब्धः उत्कृष्टकालः। सासादनादीनां क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थानां कालः ओघवद् ज्ञातव्यः।**

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा काल निरूपण करने वाले ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का काल बतलाने वाले ''असण्णी'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञी जीवों का काल प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणा के अनुवाद से संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३३०।।

एक जीव की अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३३१।।

एक जीव की अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टिजीवों का उत्कृष्टकाल सागरोपमशतपृथक्त्व है।।३३२।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक संज्ञियों की कालप्ररूपणा गुणस्थान के समान है।।३३३।।

हिन्दी टीका—संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल है और उत्कृष्टरूप से–कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञियों में उत्पन्न हुआ और सागरोपमशतपृथक्त्व के अन्त तक वह संज्ञियों में ही भ्रमण करके पुनः असंज्ञीपने को प्राप्त हुआ। यह उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ है। सासादन

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां कालकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

असंज्ञिनां कालप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असण्णी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३३४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।३३५।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।३३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एषां नानाजीवापेक्षया सर्वकालः एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियत्वात्। एकजीवापेक्षया—एकः संज्ञी असंज्ञिषु उत्पद्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रकालं स्थित्वा संज्ञित्वं गतः। उत्कृष्टेन—एकः संज्ञी मिथ्यादृष्टिः असंज्ञी भूत्वा आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तने कालपर्यंते तत्र परिवर्तनं कारं कारं संज्ञित्वं गतः। लब्धः उत्कृष्टकालः।**

तात्पर्यमेतत्—संज्ञित्वावस्थायामेव जिनेन्द्रदेवप्रणीतप्रवचनलाभो भवति इति ज्ञात्वा संज्ञित्वं लब्ध्वाधुना प्रमादं परिहृत्य स्वशुद्धात्माराधना कोटिप्रयत्नेन कर्तव्याऽस्माभिरिति।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानामत्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

आदि से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ तक जीवों का काल ओघ-गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का काल बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का काल बतलाने हेतु तीन सूत्रों का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३३४।।

एक जीव की अपेक्षा असंज्ञी जीवों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।३३५।।

एक जीव की अपेक्षा असंज्ञियों का उत्कृष्टकाल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।३३६।।

हिन्दी टीका—नाना जीवों की अपेक्षा इन सभी असंज्ञी जीवों का सर्वकाल होता है, क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक असंज्ञीपना पाया जाता है। अर्थात् एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक तो सभी जीव असंज्ञी ही रहते हैं और पंचेन्द्रियों में संज्ञी-असंज्ञी दोनों भेद होते हैं, अतः पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव भी प्रतिक्षण रहते ही हैं।

एक जीव की अपेक्षा—कोई एक संज्ञी जीव असंज्ञियों में उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रह करके संज्ञीपने को प्राप्त हो गया।

उत्कृष्टरूप से—कोई एक संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव असंज्ञी होकर, आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनों तक उन्हीं में परिभ्रमण करके संज्ञीपने को प्राप्त हुआ। यह उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ है।

तात्पर्य यह है कि संज्ञित्व अवस्था में ही-मन सहित पंचेन्द्रिय जीवों को ही जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का लाभ प्राप्त होता है, ऐसा समझकर संज्ञीपने को प्राप्त इस मनुष्य पर्याय में प्रमाद छोड़कर करोड़ों प्रयत्नों के द्वारा अपनी शुद्धात्मा की आराधना हम सभी को करना चाहिए, यही इस मार्गणा के कथन का सार है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में चतुर्थ ग्रंथ में कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकार:

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां षड्भिः सूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तृ प्रथमस्थले आहारमार्गणायां आहारिणां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगिकेवलिनां कालनिरूपणत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारिणां कतिपयगुणस्थानापेक्षया कालकथनमुख्यत्वेन ''अणाहारएसु'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

अधुना आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादिसयोग्यन्तानां कालकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३३७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३३८।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।३३९।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३४०।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारमार्गणा में मिथ्यादृष्टि आहारक जीवों से लेकर सयोगिकेवली जीवों का काल निरूपण करने हेतु ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में कतिपय गुणस्थानों की अपेक्षा अनाहारक जीवों का काल कथन करने वाले ''अणाहारएसु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवलियों तक का काल बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारकों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३३७।।

एक जीव की अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३३८।।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है।।३३९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के आहारकों का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।३४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **आहारकेषु मिथ्यादृष्टिनानाजीवानां सर्वकालः। एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं। उत्कृष्टेन — एकः मिथ्यादृष्टिः विग्रहं कृत्वा आहारकमिथ्यादृष्टिषु उत्पन्नः। अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रं असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाणं तत्र परिभ्रम्य आहारको जातः। पुन अवसाने विग्रहं कृत्वा अनाहारकत्वं गतः। एवं आहारिमिथ्यादृष्टेः उत्कृष्टकालो भवति। सासादनादीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टकालैः ओघवद् ज्ञातव्यः।**

एवं प्रथमस्थले आहारिणां कालकथनमुख्यत्वेन सूचचतुष्टयं गतं।

अधुना अनाहारिणां गुणस्थानापेक्षया सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो।।३४१।।

अजोगिकेवली ओघं।।३४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टयः नानाजीवं प्रतीत्य सर्वकालं भवन्ति, एकजीवापेक्षया जघन्येन एकः समयः, उत्कृष्टेन त्रयः समयाः। सासादनसम्यग्दृष्टेः असंयतसम्यग्दृष्टेः नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः उत्कृष्टेन आवलिकाया असंख्यातभागः। एक जीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः उत्कृष्टेन द्वौ समयौ। सयोगिकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयःसमयाः, उत्कृष्टेन संख्यात समयाः, एकजीवं प्रतीत्य जघन्योत्कृष्टाभ्यां त्रयः समयाः, इत्येतैः अनाहारमिथ्यादृष्ट्यादीनां कार्मणकाययोगिमिथ्यादृष्ट्यादिभिः विशेषाभावात्।**

अयोगिकेवलिनां नानाजीवं प्रतीत्य जघन्योत्कृष्टाभ्यां अंतर्मुहूर्तं, एकजीवापेक्षया जघन्योत्कृष्टाभ्यां

हिन्दी टीका — आहारक मिथ्यादृष्टि जीव सम्पूर्ण कालों में पाये जाते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल है। उत्कृष्ट की अपेक्षा — एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके आहारक मिथ्यादृष्टियों में उत्पन्न हुआ। अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक उनमें परिभ्रमण करता हुआ आहारक रहा पुनः अन्त में विग्रह करके अनाहारकपने को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल सिद्ध हो जाता है।

सासादन आदि का नाना जीव तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल गुणस्थान के समान समझें। इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का कालकथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा काल बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अनाहारक जीवों का काल कार्मणकाययोगियों के समान है।।३४१।।

अनाहारक अयोगिकेवली का काल ओघ-गुणस्थान के समान है।।३४२।।

हिन्दी टीका — अनाहारक मिथ्यादृष्टि नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं और उत्कृष्ट से तीन समय होते हैं। अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय तक होते हैं। सयोगकेवली का काल नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से तीन समय और उत्कर्ष से संख्यात समय है तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल तीन समय है, इस प्रकार से अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवों का कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदि से विशेषता का अभाव है।

अयोगिकेवलियों में नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तहै, एक जीव की अपेक्षा जघन्य

पंचह्रस्वाक्षरोच्चारणकालो भवति इत्योघप्ररूपणया भेदाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले अनाहारककालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

तात्पर्यमत्रैवं ज्ञातव्यं—देशोनषट्त्रिंशद्वर्षपर्यंतं दिगम्बरमुनिवेषेण अष्टाविंशतिमूलगुणान् धारयन् सूरिगुणापेक्षया षट्त्रिंशद्गुणानपि पालयन् विंशतिशताब्दौ प्रथमाचार्योऽयं चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागर-महामुनीन्द्रः अन्त्यकाले मध्ये मध्ये मात्रजलं गृहीत्वा षट्त्रिंशदुपवासान् कुर्वाणः चतुर्दशदिवसपर्यंतं जलमपि त्यक्त्वा कवलाहारापेक्षया निराहारः सन् भक्तप्रत्याख्याननामपंडितमरणेन समाधिमरणं कृत्वा नश्वरदेहं तत्याज, यशःकायं च चिरस्थायिनं चकार।

अनेनैव गुरुदेवेन षट्खण्डागमग्रंथस्य मुद्रणं कारयित्वा हिंदीभाषानुवादं च कारयित्वा अस्मादृशामुपरि महोपकारः कृतः। अन्यैश्चापि धर्मप्रभावनादिकार्यैः स्वस्य कालः सर्वोत्तमधर्म्यध्यानेन यापितः, अस्मिन् कालानुगमान्त्ये सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां अभीक्ष्णज्ञानोपयोगकालवृद्ध्यर्थं तस्मै गुरुवर्याय पुनः पुनः नमस्क्रियते मया।

तथा च आभ्यां महामुनिभ्यां नवलक्षवर्षपूर्वं अष्टमबलभद्रश्रीरामचन्द्रनिवारितोपसर्गं विजत्य केवलिज्ञानिनौ संजातौ, पुनश्च चिरकालं पृथिव्यां विहरंतौ निर्वाणधाम जग्मतुः, तौ देशभूषणकुलभूषणसिद्धपरमात्मानौ मया नमस्क्रियेते। कुंथलगिरौ विराजिते तयोर्मूर्त्ती अपि शतसहस्रवारं प्रणम्येते मयाधुना। ययोश्चरणाम्बुजसन्निधौ आचार्यदेवेन स्वस्य समाधिः साधितः। सा निर्वाणभूमिरपि स्तूयते मया। यत्र स्थित्वा एकमासपर्यंतं मया एकचत्वारिंशद्वर्षपूर्वं साक्षात् क्षपकमहामुनिशांतिसागरस्य दर्शनं कृतं, तेनैव स्थापितदेशभूषण-कुलभूषणमूर्त्योश्चापि दर्शनं कारं कारं निजपरिणामविशुद्धिः कृता।

और उत्कृष्टकाल पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारणकाल के समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणा से कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों की काल प्ररूपणा करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ तात्पर्य ऐसा जानना चाहिए कि जिन्होंने छत्तीस (३६) वर्ष पर्यन्त दिगम्बर मुनिवेष में अट्ठाईस मूलगुणों को धारण करके आचार्य परमेष्ठी के छत्तीस (३६) मूलगुणों का पालन करते हुए बीसवें सदी में प्रथमाचार्य बनने का श्रेय प्राप्त किया है, ऐसे चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर महामुनीन्द्र ने अपनेजीवन के अन्तकाल में बीच-बीच में मात्र जल को ग्रहण करके छत्तीस (३६) उपवास करते हुए चौदह दिनों तक जल का भी त्याग करके कवलाहार की अपेक्षा निराहार रहकर भक्तप्रत्याख्यान नामक पण्डित मरण के द्वारा समाधिमरण करके अपनेनश्वर शरीर का त्याग किया और अपनी यशकाया को-कीर्ति पताका को युग-युग तक चिरस्थाई बना लिया।

इन्हीं गुरुदेव ने षट्खण्डागम ग्रंथ का विद्वानों से हिन्दी में अनुवाद करवाकर मुद्रण कराकर हम जैसे भव्यप्राणियों पर महान उपकार किया है। अन्य भी धर्म प्रभावना आदि कार्य करके अपना समय सर्वोत्तम धर्मध्यान में व्यतीत किया। इस सिद्धांत चिंतामणि टीका में कालानुगम प्रकरण को लिखते हुए ग्रंथ लेखन की समापन बेला में अपने अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के काल की वृद्धि हेतु मैंने उन गुरुदेव को पुनः पुनः नमस्कार किया है ताकि उनकी कृपा प्रसाद से मेरा क्षण-क्षण ज्ञानोपयोग में ही व्यतीत होवे।

इसके साथ ही आज से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व आठवें बलभद्र श्री रामचन्द्र द्वारा उपसर्ग निवारण किये जाने पर जिन दो महामुनियों को कुंथलगिरि पर्वत पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, पुनः चिरकाल तक पृथ्वी तल पर विहार करके जिन्होंने निर्वाणधाम को प्राप्त किया, ऐसे उन देशभूषण और कुलभूषण नामक दोनों सिद्ध परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार है। कुंथलगिरि तीर्थ पर विराजमान उन दोनों की प्रतिमाओं को भी आज मैं लाखों बार नमन करती हूँ। उन्हीं दोनों मुनिराजों की सिद्ध प्रतिमाओं के चरण सानिध्य में ही आचार्यवर्य श्री गुरुदेव ने अपने समाधिमरणरूप लक्ष्य को सिद्ध किया है।

अस्य पावनसिद्धक्षेत्रस्य स्मरणं श्रीकुंदकुंददेवेनापि कृतं।

उक्तं च—

वंसत्थलम्मिणयरे, पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे।
कुलदेसभूसणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं[1]।।१७।।

तथा च श्री पूज्यपाददेवेनापि निर्वाणक्षेत्रस्य भक्त्यां कथ्यते—

वसंततिलकाछंद—

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां, निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम्।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः, संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या[2]।।२१।।

एवं आहारमार्गणा समाप्ता।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे चतुर्थग्रंथे श्रीभूतबलिसूरिविरचित-कालानुगमनाम्नि पंचमप्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विंशतिशताब्दौ प्रथमाचार्यश्रीशांतिसागरस्य प्रथमपट्टाचार्यः श्रीवीरसागरः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां मार्गणायां कालानुगमप्ररूपको चतुर्थो महाधिकारः समाप्तः।

जहाँ रहकर मैंने ४१ वर्ष पूर्व एक माह तक साक्षात् उन क्षपक महामुनिराज श्री शांतिसागर महाराज के दर्शन किए तथा उन्हीं की प्रेरणा से स्थापित देशभूषण-कुलभूषण मुनियों की मूर्ति के दर्शन करके अपने परिणामों में विशुद्धता प्राप्त की है, उस निर्वाणभूमि कुंथलगिरि की भी मैं बारम्बार स्तुति करती हूँ।

उस पावन तीर्थ कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र का स्मरण श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने भी निर्वाणभक्ति में किया है-

गाथार्थ—वंशस्थल नगर के पश्चिम भाग में कुंथलगिरि पर्वत के शिखर से कुलभूषण और देशभूषण मुनियों ने निर्वाणपद प्राप्त किया है, उनको मेरा नमस्कार होवे।।१७।।

इसी प्रकार आचार्य श्रीपूज्यपाद स्वामी ने भी निर्वाणक्षेत्र की भक्ति में कहा है—

श्लोकार्थ—इस भरतक्षेत्र के जिन-जिन स्थानों से अर्हंत भगवान्, गणधर भगवान् एवं श्रुतपारंगत महामुनिगण मोक्षधाम को प्राप्त हुए हैं, उन सभी निर्वाणभूमियों की मैं मन-वचन-काय की शुद्धतापूर्वक स्तुति करते हुए उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम-नमस्कार करता हूँ।।२१।।

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में चतुर्थग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित कालानुगम नाम के पाँचवें प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि टीका में मार्गणाओं के द्वारा काल का प्ररूपण करने वाला यह चतुर्थ महाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. निर्वाणभक्ति प्राकृत। २. निर्वाणभक्ति संस्कृत।

चतुर्थग्रन्थस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायाः प्रशस्तिः

मुनिवन्दितपादसरोजयुगं, जनताहृदयाम्बुजभानुसमम्।
जितमोहमहारिपुवीरजिनं, प्रणमामि सुरासुरवंद्यपदम्।।१।।

अस्ति जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रेऽस्मिन् आर्यखण्डे उत्तरप्रदेशे भगवतां श्रीशान्तिनाथकुंथुनाथ-अरनाथजन्मभूमि हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्राद् विहारं कृत्वा अनेकतीर्थक्षेत्राणि वन्दमाना स्वसंघेन सहिता नानाग्रामनगरेषु नानाविधधर्मप्रभावनां कुर्वन्ती अहं मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रं समागता।

अत्र वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे ज्येष्ठशुक्ला द्वितीयायां आरभ्य शुक्ला-षष्ठ्यां सहस्राधिकजिनप्रतिमानां पंचकल्याणकप्रतिष्ठाभवत् महतीधर्मप्रभावनापूर्वकं। तन्मध्ये श्रुतपञ्चम्यां तिथौ महाराष्ट्रस्य मुख्यमंत्री श्रीमनोहरजोशी आगत्य विशालजैनजनतामवलोक्य हर्षितमनाः जैनसाधुसाध्वीनामाशीर्वादमादधाना अतिशयप्रशंसां चकार। अत्र प्रतिष्ठिता इमाः सर्वाः जिनप्रतिमाः आचार्यवर्यश्रीशांतिसागरस्य चारित्रचक्रवर्तिनः प्रथमाचार्यस्य पञ्चमपट्टाधीशो यः श्रीश्रेयांस-सागराचार्यस्तस्य प्रेरणया स्थापिताः सन्ति। संप्रति तस्य संघस्था श्रीश्रेयांसमती आर्यिका स्वसंघसहितात्र तिष्ठति। अस्या एव महत्प्रेरणया वयमत्रागताः।

श्रीमहावीरशासने मूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री गौतमस्वामी-

---

चतुर्थ ग्रंथ की सिद्धांतचिंतामणि टीका की प्रशस्ति

श्लोकार्थ—जिनके चरणकमल मुनियों से वंदित हैं, जो जनता के हृदय कमल को विकसित करने में सूर्य के समान हैं तथा जो सुर-असुरों के द्वारा भी वन्दनीय है, उन मोह महाशत्रु के विजेता तीर्थंकर श्री महावीर भगवान को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

मध्यलोक के प्रथमद्वीप-जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में उत्तरप्रदेश में भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ एवं अरहनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर नगरी है। वहाँ निर्मित जम्बूद्वीप रचना नामक तीर्थस्थल से विहार करके (२७ नवम्बर १९९५ को) अनेक तीर्थक्षेत्रों की वंदना करते हुए मैं अपने संघ के साथ अनेक ग्राम-नगरों में खूब धर्मप्रभावना करती हुई मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र (२७ अप्रैल १९९६) में पहुँची।

मांगीतुंगी में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (२५२२) में ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी के दिन एक हजार से अधिक जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महान धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुई। ये सभी प्रतिमाएँ बीसवीं सदी के प्रथमाचार्यवर्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज की अक्षुण्ण परम्परा के पंचम पट्टाधीश आचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज की प्रेरणा से स्थापित की गई हैं। इस समय उनकी संघस्थ आर्यिका श्री श्रेयांसमती माताजी यहाँ मांगीतुंगी में अपने संघ सहित विराजमान हैं, इन्हीं की विशेष प्रेरणा और आग्रह से मैं इस तीर्थ पर आई हूँ।

भगवान महावीर के जिनशासन में श्रीकुन्दकुन्दाम्नाय के सरस्वती गच्छ बलात्कारगण में श्री गौतम-गणधर स्वामी से लेकर आचार्यपरम्परा की मणिमाला में अद्भुत मणिस्वरूप आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं, उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज मेरे महाव्रत प्रदाता-आर्यिका दीक्षा

प्रभृत्याचार्यपरम्परामालायां अद्भुतो मणिः आचार्यश्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यो मम महाव्रतप्रदायकदीक्षागुरुर्वभूव। तस्य कृपाप्रसादेन सरस्वतीमातुः प्रसादेन च मया षट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डान्तर्गतचतुर्थग्रन्थस्य स्पर्शनानुगम-कालानुगमनामचतुर्थ-पंचमानुयोगद्वारसमन्वितस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीका अद्य पूर्यते। इयं टीका श्रावणकृष्णादशम्याः प्रारभ्य वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे भाद्रपदशुक्लातृतीयायां तिथौ पूर्णीकृतम्। अधुना परमहर्षं अनुभवन्त्या मया अनन्तानन्तसिद्धान् मुहुर्मुहुः वन्दमानया तेषां भक्तिप्रसादेन पूर्णज्ञानं-श्रुतज्ञानं केवलज्ञानं च प्रार्थ्यते।

इयं चिन्तामणिष्टीका, स्थेयादाचन्द्रतारकम्।
पूर्णज्ञानमतीलब्ध्यै, स्यात्सर्वस्मै श्रुताप्तये।।१।।

।। इति वर्द्धतां जिनशासनम्।।

देने वाले गुरुदेव थे। उनकी कृपाप्रसाद से तथा सरस्वती माता की कृपा से मैंने षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड के स्पर्शनानुगम और कालानुगम नामक चतुर्थ-पंचम अनुयोगद्वार से समन्वित चतुर्थ ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि टीका आज लिखकर पूर्ण किया है।

इस टीका का लेखन मैंने वीर निर्वाण संवत् २५२२ में श्रावण कृष्णा दशमी को शुरू किया और भादों शुक्ला तृतीया को पूर्ण किया। इसलिए आज परम प्रसन्नता का अनुभव करते हुए अनन्तानन्त सिद्धों को बार-बार नमस्कार करते हुए उनकी भक्ति के प्रसाद से पूर्ण श्रुतज्ञान और केवलज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती हूँ।

श्लोकार्थ — यह सिद्धान्तचिंतामणि टीका इस धरती पर जब तक चाँद-तारे रहें, तब तक स्थित रहे तथा सभी भव्यात्माओं को श्रुतज्ञान एवं पूर्ण ज्ञानमती-केवलज्ञान की प्राप्ति कराती रहे, यही मंगल कामना है।

भावार्थ — इस चतुर्थ ग्रंथ की टीका पूज्य ज्ञानमती माताजी ने मात्र एक माह आठ दिन (३८ दिन) में लिखकर पूर्ण किया है। उसमें भी ३ चतुर्दशी, २ अष्टमी, २ अमावस और १ पूर्णिमा इस प्रकार ८ दिन सिद्धान्तग्रंथ स्वाध्याय के लिए निषिद्ध होने के कारण लेखन नहीं हुआ, अतः केवल एक माह में इस टीका की रचना पूज्य माताजी के अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की ही प्रतीक है। पुनः १२ वर्षों के बाद वीर निर्वाण संवत् २५३४ में मेरे द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद सम्पन्न हुआ है। यह अनुवाद सभी स्वाध्यायीजनों के लिए मंगलकारी होवे तथा आत्मकल्याण में निमित्त बने, यही भगवान् जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

देव-शास्त्र-गुरु नमन कर, करूँ नित्य स्वाध्याय।
आत्मतत्त्व का मनन कर, निज में हो अवगाह।।१।।

जिनशासन की वृद्धि में, हैं निमित्त आचार्य।
उनमें ही माने प्रथम[१], शांतिसिंधु आचार्य।।२।।

उनके शिष्य प्रथम बने, प्रथम पट्ट आचार्य।
ज्येष्ठ-श्रेष्ठ आचार्य वे, वीरसागराचार्य।।३।।

उनकी शिष्या ज्ञानमति, गणिनीप्रमुख महान।
इस युग की जो सरस्वती, कहलातीं गुणखान।।४।।

षट्खण्डागम ग्रंथ की, संस्कृत टीका शुद्ध।
सरलबोध रचना करी, पढ़ते जिसे प्रबुद्ध।।५।।

वीरसेन आचार्य के, बाद प्रथम यह काम।
किया ज्ञानमति मात ने, साहित्यिक अवदान।।६।।

इकतिस सौ अरु सात हैं, पृष्ठ लिखे निज हस्त।
इनको लिख करके हुआ, माता का मन स्वस्थ।।७।।

सोलह ग्रंथों में चतुर्थ, है यह ग्रंथ महान।
इसमें स्पर्शनानुगम, कालानुगम प्रधान।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणी, टीका का अनुवाद।
मैंने हिन्दी में किया, मिला ज्ञान का स्वाद।।९।।

नाम चन्दनामति मेरा, हूँ आर्यिका अजान।
ज्ञानमती जी मात की, शिष्या से पहचान।।१०।।

ग्यारह वर्ष की उम्र से, मिला उन्हीं से ज्ञान।
तेरहवर्ष की उम्र में, ब्रह्मचर्य व्रत ठान।।११।।

क्रम क्रम से गृहत्याग कर, प्रतिमा सप्तम धार।
गुरुछाया से हो गया, निज आतम उद्धार।।१२।।

इकतिस[२] वर्ष की उम्र में, दीक्षा मिली महान।
श्रावण सुदि एकादशी, किया आत्मकल्याण।।१३।।

---

१. बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य। २. सन् १९८९ में।

ज्ञानमती माँ ने दिया, चन्दनामती शुभ नाम।
लक्ष्य तभी पूरा हुआ, जीवन बना महान।।१४।।

मुझे मिला सौभाग्य यह, पढ़ा ग्रंथ सिद्धान्त।
कर्म निर्जरा के लिए, यही सुखद वृत्तांत।।१५।।

अहिच्छत्र जी तीर्थ से, हस्तिनापुर की ओर।
संघ विहार के मध्य में, भक्त मिले चहुँ ओर।।१६।।

ग्राम महलका जो बना, अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध।
चन्द्रप्रभ भगवान का, दर्शन कर मन शुद्ध।।१७।।

वीर संवत् पच्चीस सौ, चौंतिस माघ का मास।
कृष्णा सप्तमि[१] को हुआ, पूर्ण ग्रंथ अनुवाद।।१८।।

सिद्ध श्रुतादिक भक्ति पढ़, गुरुपद में वंदामि।
करके उन करकमल में, दे पुनि किया प्रणाम।।१९।।

इनके ही आशीष से, होगी ज्ञान की वृद्धि।
कार्य और आगे करूँ, होवे भाव विशुद्धि।।२०।।

षट्खण्डागम ग्रंथ का, सदा करूँ स्वाध्याय।
जब तक सिद्धी पंथ का, खुले नहीं अध्याय।।२१।।

---

१. २९ जनवरी २००८।

परिशिष्ट

षट्खंडागम का विषय

-गणिनी ज्ञानमती

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक सत्प्ररूपणा में सर्वप्रथम 'णमोकार महामंत्र' से मंगलाचरण किया है। इसमें १७७ सूत्र हैं। इस ग्रंथ की रचना श्रीमत्पुष्पदंत आचार्य ने की है। इसके आगे के संपूर्ण सूत्र श्रीमद् भूतबलि आचार्य प्रणीत हैं।

इस मंगलाचरण की धवला टीका में पांचों परमेष्ठी के लक्षण बताये हैं।

यह मंत्र अनादि है या श्री पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित सादि है?

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका में इसका स्पष्टीकरण किया है। धवला टीका में इसे 'निबद्धमंगल' कहकर आचार्यदेव रचित 'सादि' स्वीकार किया है। इसी मुद्रित प्रथम पुस्तक के टिप्पण में जो पाठ का अंश उद्धृत है वह धवलाटीका का ही अंश माना गया है। उसके आधार से यह मंगलाचरण 'अनादि' है। आचार्य श्री पुष्पदंत द्वारा रचित नहीं है, ऐसा स्पष्ट होता है। इस प्रकरण को मैंने दिया है। यथा—

अयं महामंत्र सादिरनादिर्वा?

अथवा षट्खण्डागमस्य मु प्रतौ पाठांतरं। यथा—(मुद्रितमूलग्रन्थस्य प्रथमावृत्तौ)

''जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं''[1]।

अस्यायमर्थः-यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा निबद्धः—संग्रहीतः न च ग्रथितः देवतानमस्कारः स निबद्धः मंगलं। यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा कृतः-ग्रथितः देवतानमस्कारः स अनिबद्धमंगलं। अनेन एतज्ज्ञायते-अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः —

महापंच गुरोर्नाम नमस्कारसुसम्भवम्। महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्[2]।।६३।।

महापंचगुरूणां पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्। उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये[3]।।६८।।

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम्—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।
तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः[4]।।३।।

यह महामंत्र सादि है अथवा अनादि?

अथवा, मुद्रितमूल प्रति में (प्रथम आवृत्ति में) पाठान्तर है। जैसे—

जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्त्ता के द्वारा देवता नमस्कार निबद्ध किया जाता है, वह निबद्धमंगल है और जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्त्ता के द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है-रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है।

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक १, भाग १,पृ. ४२, टिप्पणो। २. आदिदं-प्रथममित्यर्थः। ३-४. णमोकारमंत्रकल्पे।

इसका अर्थ यह है—सूत्र ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथकार जो देवता नमस्काररूप मंगल कहीं से संग्रहीत करते हैं, स्वयं नहीं रचते हैं वह तो निबद्धमंगल है और सूत्र के प्रारंभ में ग्रंथकर्त्ता के द्वारा जो देवतानमस्कार स्वयं रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह णमोकार महामंत्र मंगलाचरणरूप से यहाँ संग्रहीत होते हुए भी अनादिनिधन है, वह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

''णमोकार मंत्रकल्प'' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है —

श्लोकार्थ — नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत में ज्येष्ठ — सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।६३।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।६८।।

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है —

श्लोकार्थ — उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दु:षमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।।३।।

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि टीका' में सर्वत्र सूत्रों का विभाजन एवं समुदायपातनिका आदि बनाई हैं। यहाँ मैंने 'समयसार' 'प्रवचनसार' 'पंचास्तिकाय' ग्रंथों की 'तात्पर्यवृत्ति' टीका का अनुसरण किया है। श्री जयसेनाचार्य की टीका में सर्वत्र गाथासूत्रों की संख्या एवं विषयविभाजन से स्थल-अन्तरस्थल बने हुए हैं। उनकी टीका के अनुसार ही मैंने यहाँ स्थल-अन्तरस्थल विभाजित किये हैं।

सर्वत्र मंगलाचरणरूप में मैंने कहीं पद्य, कहीं गद्य का प्रयोग किया है। तीर्थ और विशेष स्थान की अपेक्षा से प्राय: वहाँ-वहाँ के तीर्थंकरों को नमस्कार किया है।

यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गत-गौतमस्वामिमुखकुण्डावतरित-पुष्पदंताचार्यादिविस्तारितगंगाया: जलसदृशं ''नद्या नवघटे भृतं जलमिव'' इयं टीका सर्वजनमनांसि संतर्पिष्यत्येवेतिमया विश्वस्यते।

अथाधुना श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यदेवविनिर्मिते गुणस्थानादिविंशतिप्ररूपणान्तर्गर्भितसत्प्ररूपणा — नाम ग्रंथे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिका व्याख्यानं विधीयते। तत्रादौ 'णमो अरिहंताणं' इति पंचनमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण गुणस्थानमार्गणा-प्रतिपादनसूचकत्वेन 'एत्तो इमेसिं' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तत: चतुर्दशगुणस्थाननिरूपणपरत्वेन ''संतपरूवणदाए'' इत्यादि-षोढशसूत्राणि। तत: परं चतुर्दशमार्गणासु गुणस्थानव्यवस्था-व्यवस्थापन-मुख्यत्वेन ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादिना चतु:पञ्चाशदधिक-एकशतसूत्राणि सन्ति। एवं अनेकान्तरस्थलगर्भित-सप्त-सप्तत्यधिकएकशतसूत्रै: एते त्रयो महाधिकारा भवन्तीति सत्प्ररूपणाया: व्याख्याने समुदायपातनिका भवति।

अत्रापि प्रथममहाधिकारे 'णमो' इत्यादि मंगलाचरणरूपेण प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं। ततो गुणस्थानमार्गणा-कथनप्रतिज्ञारूपेण द्वितीयस्थले 'एत्तो' इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च चतुर्दशमार्गणानां नामनिरूपणरूपेण तृतीयस्थले सूत्रद्वयं। तत: परं गुणस्थानप्रतिपादनार्थं अष्टानुयोगनामसूचनपरत्वेन चतुर्थस्थले 'एदेसिं' इतयादिसूत्रत्रयं। एवं षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य, सत्प्ररूपणाया: पीठिकाधिकारे

चतुर्भिरन्तरस्थलैः सप्तसूत्रैः समुदायपातनिका सूचितास्ति।

अथ श्रीमद्भगवद्धरसेनगुरुमुखादुपलब्धज्ञानभव्यजनानां वितरणार्थं पंचमकालान्त्य-वीरांगजमुनिपर्यंतं गमयितुकामेन पूर्वाचार्यव्यवहारपरंपरानुसारेण शिष्टाचारपरिपालनार्थं निर्विघ्नसिद्धान्तशास्त्रपरिसमाप्त्यादिहेतोः श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्येण णमोकारमहामन्त्रमंगलगाथा-सूत्रावतारः क्रियते —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।१।।

जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से निकलकर जो गौतमस्वामी के मुखरूपी कुण्ड में अवतरित गिरी है तथा पुष्पदन्त आचार्य आदि के द्वारा विस्तारित गंगाजल के समान ''नदी से भरे हुए नये घड़े के जल सदृश'' यह टीका सभी प्राणियों के मन को संतृप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब यहाँ श्रीमान् पुष्पदन्त आचार्यदेव द्वारा रचित गुणस्थान आदि बीस प्ररूपणाओं में अन्तर्गर्भित इस सत्प्ररूपणा नामक ग्रंथ में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका का व्याख्यान किया जाता है। उसमें सबसे पहले ''णमो अरिहंताणं'' इत्यादि इस पञ्चनमस्कार गाथा को आदि में करके सूत्र पाठ के क्रम से गुणस्थान, मार्गणा के प्रतिपादन की सूचना देने वाले ''एत्तो इमेसिं'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद चौदह गुणस्थानों के निरूपण की मुख्यता से ''ओघेण अत्थि'' इत्यादि सोलह सूत्र हैं। पुनः आगे चौदह मार्गणाओं में गुणस्थान व्यवस्था की मुख्यता से ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादि एक सौ चौव्वन (१५४) सूत्र हैं। इस प्रकार अनेक अन्तर्स्थलों से गर्भित एक सौ सतत्तर (१७७) सूत्रों के द्वारा ये तीन महाधिकार हो गए हैं। सत्प्ररूपणा के व्याख्यान में यह समुदायपातनिका हुई।

यहाँ भी प्रथम महाधिकार में ''णमो'' इत्यादि मंगलाचरणरूप से प्रथम स्थल में एक गाथा सूत्र है पुनः द्वितीय स्थल में गुणस्थान-मार्गणा के कथन की प्रतिज्ञारूप से ''एत्तो'' इत्यादि एक सूत्र है और उसके बाद चौदह मार्गणाओं के नाम निरूपण रूप से तृतीय स्थल में दो सूत्र हैं। उसके आगे गुणस्थानों के प्रतिपादन हेतु आठ अनुयोग के नाम सूचना की मुख्यता से चतुर्थ स्थल में 'एदेसिं'' इत्यादि तीन सूत्र हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथराज की सत्प्ररूपणा के पीठिका अधिकार में चार अन्तरस्थलों के द्वारा सूत्रों में समुदायपातनिका सूचित — प्रदर्शित की गई है।

अब श्रीमत् भगवान धरसेनाचार्य गुरु के मुख से उपलब्ध ज्ञान को भव्यजनों में वितरित करने के लिए पंचमकाल के अन्त में वीरांगज मुनिपर्यन्त इस ज्ञान को ले जाने की इच्छा से, पूर्वाचार्यों की व्यवहार परम्परा के अनुसार, शिष्टाचार का परिपालन करने के लिए, निर्विघ्न सिद्धान्त शास्त्र की परिसमाप्ति आदि हेतु को लक्ष्य में रखते हुए श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा णमोकार महामंत्र मंगल गाथा सूत्र का अवतार किया जाता है —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी में मैंने 'तृतीय महाधिकार' प्रारंभ किया था अतः श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। यथा —

महावीरो जगत्स्वामी, सातिशायीति विश्रुतः।
तस्मै नमोऽस्तु मे भक्त्या, पूर्णसंयमलब्धये।।१।।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

''**सुत्तमोदिण्णं अत्थदो तित्थयरादो, गंथदो गणहरदेवादोत्ति**[1]।।

ये सूत्र अर्थप्ररूपणा की अपेक्षा से तीर्थंकर भगवान से अवतीर्ण हुए हैं और ग्रंथ की अपेक्षा श्री गणधर देव से अवतीर्ण हुए हैं।

अथवा 'जिनपालित' शिष्य को निमित्त कहा है।

श्री पुष्पदंताचार्य ने अपने भानजे 'जिनपालित' को दीक्षा देकर प्रारंभिक १७७ सूत्रों की रचना करके भूतबलि आचार्य के पास भेजा था। ऐसा 'धवलाटीका' में एवं श्रुतावतार में वर्णित है।

इस मंगलाचरण को सूत्र १ संज्ञा दी है। आगे द्वितीय सूत्र का अवतार हुआ है—

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेवट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति।।२।।

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाण से इन चौदह गुणस्थानों के अन्वेषणरूप प्रयोजन के लिए यहाँ से चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं।

ऐसा कहकर पहले चौदह मार्गणाओं के नाम बताए हैं। यथा—गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणा हैं।

पुनः पांचवें सूत्र में कहा है—

इन्हीं चौदह गुणस्थानों का निरूपण करने के लिए आगे कहे जाने वाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं।।६।।

इन आठों के नाम—१. सत्प्ररूपणा २. द्रव्यप्रमाणानुगम ३. क्षेत्रानुगम ४. स्पर्शनानुगम ५. कालानुगम ६. अन्तरानुगम ७. भावानुगम और ८. अल्पबहुत्वानुगम।

आगे प्रथम 'सत्प्ररूपणा' का वर्णन करते हुए ओघ और आदेश की अपेक्षा निरूपण करने को कहा है।

इसी में ओघ की अपेक्षा चौदह गुणस्थानों का वर्णन है और आगे चौदह मार्गणाओं का वर्णन करके उनमें गुणस्थानों को भी घटित किया है। मार्गणाओं के नाम ऊपर लिखे गये हैं। गुणस्थानों के नाम—

१. मिथ्यात्व २. सासादन ३. मिश्र ४. असंयतसम्यग्दृष्टि ५. देशसंयत ६. प्रमत्तसंयत ७. अप्रमत्तसंयत ८. अपूर्वकरण ९. अनिवृत्तिकरण १०. सूक्ष्मसांपराय ११. उपशांतकषाय १२. क्षीणकषाय १३. सयोगिकेवली और १४. अयोगिकेवली ये चौदह गुणस्थान हैं।

इस ग्रंथ में मैंने तीन महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में सात सूत्र हैं जो कि ग्रंथ की पीठिका—भूमिकारूप हैं। दूसरे महाधिकार सत्प्ररूपणा के अंतर्गत १६ सूत्रों में चौदह गुणस्थानों का वर्णन है एवं तृतीय महाधिकार में मार्गणाओं में गुणस्थानों की व्यवस्था करते हुए विस्तार से १५४ सूत्र लिए हैं।

इस प्रथम ग्रंथ में प्रारंभ में पंच परमेष्ठियों के वर्णन में एक सुन्दर प्रश्नोत्तर धवला टीका में आया है जिसे मैंने जैसे का तैसा लिया है। यथा—

''**संपूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेत् ?**

---

१. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वित) पु. १, पृ. ६०।

न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदसत्त्वापत्तेः......। इत्यादि।

शंका—संपूर्णरत्न—पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव है, रत्नों का एकदेश देव नहीं हो सकता है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि रत्नत्रय के एकदेश में देवपने का अभाव होने पर उसकी संपूर्णता में भी देवपना नहीं बन सकता है।

शंका—आचार्य आदि में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें एकदेशपना ही है, पूर्णता नहीं है?

समाधान—यह कथन समुचित नहीं है, क्योंकि पलालराशि—घास की राशि को जलाने का कार्य अग्नि के एक कण में भी देखा जाता है इसलिए आचार्य, उपाध्याय और साधु भी देव हैं[१]।''

यह समाधान श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही उत्तम बताया है।

प्रथम पुस्तक 'सत्प्ररूपणाग्रंथ' की टीका को पूर्ण करते समय मैंने उस स्थान का विवरण दे दिया है। यथा—

''वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां ख्रिष्टाब्दे षण्णवत्यधि-कैकोनविंशतिशततमे पंचविशे दिनांके द्वितीयमासि (२५-२-१९९६) राजस्थान प्रान्ते 'पिडावानामग्रामे' श्री पार्श्वनाथसमवसरणमंदिरशिलान्यासस्य मंगलावसरे एतत्सत्प्ररूपणाग्रन्थस्य 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां' पूरयन्त्या मया महान् हर्षोऽनुभूयते। टीकासहितोऽयं ग्रन्थो मम श्रुतज्ञानस्य पूर्त्यै भूयात्।''

पुनः वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईसवें वर्ष में ही फाल्गुन शुक्ला सप्तमी तिथि को ईसवी सन् १९९६ के द्वितीय मास की २५ तारीख को राजस्थान प्रान्त के पिड़ावा ग्राम में श्रीपार्श्वनाथ समवसरण मंदिर के शिलान्यास के मंगल अवसर पर इस 'सत्प्ररूपणा' ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीका' को पूर्ण करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। टीका सहित यह सत्प्ररूपणा नामक 'षट्खण्डागम' ग्रंथ मेरे श्रुतज्ञान की पूर्ति के लिए होवे, यही मेरी प्रार्थना है।

पुस्तक २—आलाप अधिकार

यह द्वितीय ग्रंथ सत्प्ररूपणा के ही अंतर्गत है। इसमें सूत्र नहीं हैं।

''संपहि संत-सुतविवरण-समत्ताणंतरं तेसिं परुवणं भणिस्सामो।''

सत्प्ररूपणा के सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने पर अनंतर अब उनकी प्ररूपणा का वर्णन करते हैं—

शंका—प्ररूपणा किसे कहते हैं?

समाधान—सामान्य और विशेष की अपेक्षा गुणस्थानों में, जीवसमासों में, पर्याप्तियों में, प्राणों में, संज्ञाओं में, गतियों में, इन्द्रियों में, कायों में, योगों में, वेदों में, कषायों में, ज्ञानों में, संयमों में, दर्शनों में, लेश्याओं में, भव्यों में, अभव्यों में, संज्ञी-असंज्ञियों में, आहारी-अनाहारियों में और उपयोगों में पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषणों से विशेषित करके जो जीवों की परीक्षा की जाती है, उसे प्ररूपणा कहते हैं। कहा भी है—

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग, इस प्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएं कही गई हैं।

इनके कोष्ठक गुणस्थानों के एवं मार्गणाओं के बनाये गये हैं।

---

१. षट्खण्डागम, सिद्धान्तचिन्तामणि टीकासमन्वित, पु. १, पृ. ४९८।

गुणस्थान १४ हैं, जीवसमास १४ हैं — एकेन्द्रिय के बादर-सूक्ष्म ऐसे २, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ऐसे ३, पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी ऐसे २, ये ७, हुए इन्हें पर्याप्त-अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ हुए। पर्याप्ति ६ — आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। प्राण १० हैं — पांच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास। संज्ञा ४ हैं — आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। गति ४ हैं — नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। इन्द्रियां ५ हैं — एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति। काय ६ हैं — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय। योग १५ हैं — सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग। वेद ३ हैं — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। कषाय ४ हैं — क्रोध, मान, माया, लोभ। ज्ञान ८ हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि। संयम ७ हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, देशसंयम और असंयम। दर्शन ४ हैं — चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। लेश्या ६ हैं — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। भव्य मार्गणा २ हैं — भव्यत्व और अभव्यत्व। सम्यक्त्व ६ हैं — औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र। संज्ञी मार्गणा के २ भेद हैं — संज्ञी, असंज्ञी। आहार मार्गणा २ हैं — आहार, अनाहार। उपयोग के २ भेद हैं — साकार और अनाकार।

इस ग्रंथ को मैंने दो महाधिकारों में विभक्त किया है। इसमें कुल ५४५ कोष्ठक — चार्ट हैं। उदाहरण के लिए पांचवें गुणस्थान का एक चार्ट दिया जा रहा है —

नं. १३ **संयतासंयतों के आलाप**

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ देश.	१ सं.प.	६	१०	४	२ म. ति.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व. ४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ संयमा.	३ के.द. विना.	द्र.३ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

इनमें से संयतासंयत के कोष्ठक में —

गुणस्थान १ है — पाँचवां देशसंयत। जीवसमास १ है — संज्ञीपर्याप्त। पर्याप्तियाँ छहों हैं, अपर्याप्तियाँ नहीं है। प्राण १० हैं। संज्ञायें ४ हैं। गति २ हैं — मनुष्य, तिर्यंच। इंद्रिय १ है — पंचेन्द्रिय। काय १ है — त्रसकाय। योग ९ हैं — ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, १ औदारिक काययोग। वेद ३ हैं। कषाय ४ हैं। ज्ञान ३ हैं — मति, श्रुत, अवधि। संयम १ है — संयमासंयम। दर्शन ३ हैं — केवलदर्शन के बिना। लेश्या द्रव्य से — वर्ण से छहों हैं, भावलेश्या शुभ ३ हैं। भव्यत्व १ है। सम्यक्त्व ३ हैं — औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। संज्ञीमार्गणा १ है — संज्ञी। आहार मार्गणा १ है — आहारक। उपयोग २ हैं — साकार और अनाकार। यही सब चार्ट में दिखाया गया है।

इस प्रकार यह दूसरी पुस्तक का सार अतिसंक्षेप में बताया गया है।

पुस्तक ३ — द्रव्यप्रमाणानुगम

इस ग्रंथ में श्री भूतबलि आचार्य वर्णित सूत्र हैं अब यहाँ से संपूर्ण 'षट्खण्डागम' सूत्रों की रचना इन्हीं श्रीभूतबलि आचार्य द्वारा लिखित है। कहा भी है—

''**संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव पदिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह**[१] **—** ''

जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं के चौदहों गुणस्थानों के—चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण—संख्या के ज्ञान को कराने के लिए श्रीभूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं—

इसमें प्रथम सूत्र—

''**दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।।१।।**

द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ—गुणस्थान और आदेश—मार्गणा इन दोनों की अपेक्षा से उन-उन में जीवों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रंथ में भी मैंने दो अनुयोगद्वार लिये हैं—द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम। अतः इन दोनों में चार महाधिकार किये हैं। क्षेत्रानुगम में तृतीय महाधिकार में ४ सूत्र एवं चतुर्थ महाधिकार में ८८ सूत्र हैं, ऐसे कुल सूत्र ९२ हैं। दोनों अनुयोगद्वारों में सूत्र १९२+९२=२८४ हैं। द्रव्यप्रमाणानुगम में प्रथम महाधिकार में १४ सूत्र हैं एवं द्वितीय में १७८ हैं, ऐसे कुल सूत्र १९२ हैं।

चौदह गुणस्थानों में जीवों की संख्या बतलाते हैं—

प्रथम गुणस्थान में जीव अनंतानंत हैं। द्वितीय गुणस्थान में ५२ करोड़ हैं। तृतीय गुणस्थान में १०४ करोड़ हैं। चतुर्थ गुणस्थान में सात सौ करोड़ हैं। पाँचवे गुणस्थान में १३ करोड़ हैं।

प्रमत्तसंयत नाम के छठे गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान के महामुनि एवं अरहंत भगवान 'संयत' कहलाते हैं। उन सबकी संख्या मिलाकर 'तीन कम नव करोड़' है। धवला टीका में कहा है—

''**एवं परुविदसव्वसंजदरासिमेकट्ठे कदे अट्ठकोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्स-णवसद-सत्ताणउदिमेत्तो होदि**[१]**।**''

इसी तृतीय पुस्तक में दूसरा एक और मत प्राप्त हुआ है—

''**एदे सव्वसंजदे एयट्ठे कदे सत्तरसद-कम्मभूमिगद-सव्वरिसओ भवंति। तेसिं पमाणं छक्कोडीओ णवणउइलक्खा णवणउदिसहस्सा णवसयछण्णउदिमेत्तं हवदि**[२]**।**'' सर्वसंयतों की संख्या छह करोड़, निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नव सौ छ्यानवे है।

इन दोनों मतों को श्री वीरसेनाचार्य ने उद्धृत किया है।

वर्तमान में प्रसिद्धि में 'तीन कम नव करोड़' संख्या ही है।

इन सर्वमुनियों को नमस्कार करके यहाँ इस ग्रंथ का किंचित् सार दिया है। इसकी सिद्धान्तचिंतामणि टीका में मैंने अधिकांश गणित प्रकरण छोड़ दिया है, जो कि धवलाटीका में द्रष्टव्य है।

श्री वीरसेनाचार्य ने आकाश को क्षेत्र कहा है। आकाश का कोई स्वामी नहीं है, इस क्षेत्र की उत्पत्ति में

१. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९७। २. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९२।

कोई निमित्त भी नहीं है यह स्वयं में ही आधार-आधेयरूप है। यह क्षेत्र अनादिनिधन है और भेद की अपेक्षा लोकाकाश-अलोकाकाश ऐसे दो भेद हैं। इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से क्षेत्र का वर्णन किया है।

क्षेत्र में गुणस्थानवर्ती जीवों को घटित करते हुए कहा है—

''**ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।।२।।**

मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में हैं? सर्वलोक में हैं।।२।।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभाए।।३।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवलीपर्यंत कितने क्षेत्र में हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।।३।।

इसमें एक प्रश्न हुआ है—

लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, उसमें अनंतानंत जीव कैसे समायेंगे?

यद्यपि लोक असंख्यात प्रदेशी है फिर भी उसमें अवगाहनशक्ति विशेष है जिससे उसमें अनंतानंत जीव एवं अनंतानंत पुद्गल समाविष्ट हैं। जैसे मधु से भरे हुए घड़े में उतना ही दूध भर दो, उसी में समा जायेगा[1]।

इस अनुयोगद्वार में स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद ऐसे तीन भेदों द्वारा जीवों के क्षेत्र का वर्णन किया है।

इस ग्रंथ की पूर्ति मैंने मांगीतुंगी तीर्थ पर श्रावण कृ. १० को ईसवी सन् १९९६ में की है।

पुस्तक ४—स्पर्शन-कालानुगम

इस चतुर्थ ग्रंथ—पुस्तक में स्पर्शनानुगम एवं कालानुगम इन दो अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इन दोनों की सूत्र संख्या १८५+३४२=५२७ है।

स्पर्शनानुगम—इसमें भी मैंने गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार किये हैं। यह स्पर्शन भूतकाल एवं वर्तमानकाल के स्पर्श की अपेक्षा रखता है। पूर्व में जिसका स्पर्श किया था और वर्तमान में जिसका स्पर्श कर रहे हैं, इन दोनों की अपेक्षा से स्पर्शन का कथन किया जाता है।

स्पर्शन में छह प्रकार के निक्षेप घटित किये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावस्पर्शन।

'तत्र स्पर्शनशब्दः' नाम स्पर्शनं निक्षेपः, अयं द्रव्यार्थिकनयविषयः।

सोऽयं इति बुद्ध्या अन्यद्रव्येण सह अन्यद्रव्यस्य एकत्वकरणं स्थापनास्पर्शनं यथा घटपिठरादिषु अयं ऋषभोऽजितः संभवोऽभिनंदनः इति। एषोऽपि द्रव्यार्थिकनयविषयः[2]।''

स्पर्शन शब्द नामस्पर्शन है। यह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह वही है, ऐसी बुद्धि से अन्य द्रव्य के साथ अन्यद्रव्य का एकत्व करना स्थापनास्पर्शन निक्षेप है जैसे घट आदि में ये ऋषभदेव हैं, अजितनाथ हैं, संभवनाथ हैं, अभिनंदननाथ हैं इत्यादि। यह भी द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इत्यादि निक्षेपों का वर्णन है।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से प्ररूपणा करते हुए कहा है—

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणांतिक-उपपादगतमिथ्यादृष्टियों ने भूतकाल एवं वर्तमानकाल से सर्वलोक को स्पर्श किया है।

इसी प्रकार गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों के भूतकालीन, वर्तमानकालीन स्पर्शन का वर्णन किया है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. २३। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. १४२।

कालानुगम—इसमें भी गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार कहे हैं। काल को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ऐसे चार भेद रूप से कहा है पुनश्च—'नो आगमभावकाल' से इस ग्रंथ में वर्णन किया है।

यह काल अनादि अनंत है, एक विध है, यह सामान्य कथन है। काल के भूत, वर्तमान और भविष्यत् की अपेक्षा तीन भेद हैं।

एक प्रश्न आया है—

स्वर्गलोक में सूर्य के गति की अपेक्षा नहीं होने से वहां मास, वर्ष आदि का व्यवहार कैसे होगा?

तब आचार्यदेव ने समाधान दिया है—

यहाँ के व्यवहार की अपेक्षा ही वहाँ पर 'काल' का व्यवहार है। जैसे जब यहाँ 'कार्तिक' आदि मास में आष्टान्हिक पर्व आते हैं, तब देवगण नंदीश्वर द्वीप आदि में पूजा करने पहुँच जाते हैं इत्यादि।

नाना जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है।।२।।

एकजीव की अपेक्षा किसी का अनादिअनंत है, किसी का अनादिसांत है, किसी का सादिसांत है। इनमें से जो सादि और सांत काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है। एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव का सादिसांत काल जघन्य से अंतर्मुहूर्त है[१]।।३।।

वह इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतजीव, परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त काल रह करके, फिर भी सम्यक्त्वमिथ्यात्व को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है[१]।

इस प्रकार यह कालानुगम का संक्षिप्त सार दिखाया है।

इस ग्रंथ की टीका मैंने मांगीतुंगी क्षेत्र पर भाद्रपद शु. ३, वी.सं. २५२२, दिनाँक १५-९-१९९६ को लिखकर पूर्ण की है।

पुस्तक ५—अन्तर-भाव-अल्पबहुत्वानुगम

इस ग्रंथ में अन्तरानुगम में ३९७ सूत्र हैं, भावानुगम में ९३ सूत्र हैं एवं अल्पबहुत्वानुगम में ३८२ सूत्र हैं। इस प्रकार ३९७+९३+३८२=८७२ सूत्र हैं।

अन्तरानुगम—इस ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मैंने दो महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में अंतर का निरूपण है। द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में अंतर दिखाया गया है।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छहविध निक्षेप है। अंतर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची हैं। इस प्रकार के अन्तर के अनुगम को अन्तरानुगम कहते हैं।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है।।३।।

जैसे एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम में बहुत बार परिवर्तित होता हुआ परिणामों के निमित्त से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अंतर्मुहूर्त काल

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. ३२४।

तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वगुणस्थान का अंतर प्राप्त हो गया।

मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम काल है।।४।।

इन ग्रंथों के स्वाध्याय में जो आल्हाद उत्पन्न होता है, वह असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का कारण है। यहाँ तो मात्र नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

भावानुगम—इसमें भी महाधिकार दो हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनकी अपेक्षा यह भाव चार प्रकार का है। इसमें भी भावनिक्षेप के आगमभाव एवं नोआगमभाव ऐसे दो भेद हैं। नोआगमभाव नामक भावनिक्षेप के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पाँच भेद हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि में कौन सा भाव है?

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।५।।

यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से ये भाव कहे हैं। यद्यपि यहाँ औदयिक भावों में से गति, कषाय आदि भी हैं किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता इसलिए उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

अल्पबहुत्वानुगम—इस अनुयोगद्वार के प्रारंभ में मैंने गद्यरूप में श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। इसमें भी दो महाधिकार विभक्त किये हैं।

इस अल्पबहुत्व में गुणस्थान और मार्गणाओं में सबसे अल्प कौन हैं? और अधिक कौन हैं? यही दिखाया गया है। यथा—

सामान्यतया—गुणस्थान की अपेक्षा से अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं तथा अन्य सब गुणस्थानों के प्रमाण से अल्प हैं[१]।।२।।

और 'मिथ्यादृष्टि सबसे अधिक अनंतगुणे हैं[२]।।१४।।

इस ग्रंथ में भी बहुत से महत्वपूर्ण विषय ज्ञातव्य हैं। जैसे कि-''दर्शन मोहनीय का क्षपण करने वाले—क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करने वाले जीव नियम से मनुष्यगति में होते हैं।''

जिन्होंने पहले तिर्यंचायु का बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व के साथ तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि भोगभूमि को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है[३]।''

यह सभी साररूप अंश मैंने यहाँ दिये हैं। अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार इन-इन ग्रंथों का स्वाध्याय श्रुतज्ञान की वृद्धि एवं आत्मा में आनंद की अनुभूति के लिए करना चाहिए।

इस ग्रंथ की टीका की पूर्ति मैंने अंकलेश्वर-गुजरात में मगसिर कृ. ७, वीर नि. सं. २५२३, दिनाँक २-१२-१९९६ को की है।

पुस्तक ६—जीवस्थान चूलिका

इस ग्रंथ में चूलिका के नौ भेद हैं—१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, २. स्थान समुत्कीर्तन ३. प्रथम महादण्डक ४. द्वितीय महादण्डक ५. तृतीय महादण्डक ६. उत्कृष्टस्थिति ७. जघन्यस्थिति ८. सम्यक्त्वोत्पत्ति एवं ९. गत्यागती चूलिका।

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २४३-२५२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २५६।

इसमें क्रमश: सूत्रों की संख्या—४६+११७+२+२+४४+४३+१६+२४३=५१५ है।

चूलिका—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारों के विषय—स्थलों के विवरण के लिए यह चूलिका नामक अधिकार आया है।

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन—इस चूलिका में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियों का वर्णन करके उनके १४८ भेदों का भी निरूपण किया है।

२. स्थानसमुत्कीर्तन—स्थान, स्थिति और अवस्थान ये तीनों एकार्थक हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण इनका भी अर्थ एक ही है। स्थान की समुत्कीर्तना—स्थान समुत्कीर्तन है।

पहले प्रकृति समुत्कीर्तन में जिन प्रकृतियों का निरूपण कर आये हैं, उन प्रकृतियों का क्या एक साथ बंध होता है? अथवा क्रम से होता है? ऐसा पूछने पर इस प्रकार होता है। यह बात बतलाने के लिए यह स्थान समुत्कीर्तन है।

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि के अथवा सासादन के, सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, असंयतसम्यग्दृष्टि के, संयतासंयत के और संयत के होता है। ऐसे यहाँ छह स्थान ही विवक्षित हैं। क्योंकि 'संयत' पद से छठे, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती संयतों को लिया है। अयोगकेवली गुणस्थान में बंध का ही अभाव है अत: उन्हें नहीं लिया है।

जैसे ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियों का बंध छहों स्थानों में अर्थात् दशवें गुणस्थान तक संयतों में बंध होता है इत्यादि।

३. प्रथम महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के लिए अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा बंधने वाली प्रकृतियों का ज्ञान कराने के लिए यहाँ तीन महादण्डकों की प्ररूपणा आई है।

इसमें प्रथम महादण्डक का कथन सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने के लिए हुआ है। विशेषता यह है कि—

''एदस्सवगमेण महापावक्खयस्सुवलंभादो[१]।''

क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

४. द्वितीय महादण्डक—प्रकृतियों के भेद से और स्वामित्व के भेद से इन दोनों दण्डकों में भेद कहा गया है।

५. तृतीय महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथ्वी का नारकी मिथ्यादृष्टि जीव, पांचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि १६ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन प्रकृतियों को बांधता है इत्यादि।

६. उत्कृष्ट कर्मस्थिति—कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

७. जघन्यस्थिति—उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है। इत्यादि का विस्तार से कथन है।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका—जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों को बाँधता हुआ, जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के द्वारा सत्त्वस्वरूप होते हुए और उदीरणा को प्राप्त होते हुए यह जीव

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.१३३।

सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

"प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है[१]।।४।।"

आगे—"दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करने के लिए आरंभ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरंभ करता है? अढ़ाई द्वीप समुद्रों में स्थित पंद्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस काल में जिनकेवली और तीर्थंकर होते हैं, वहाँ उस काल में आरंभ करता है[२]।।११।।"

ऐसे दो नमूने प्रस्तुत किये हैं।

९. गत्यागती चूलिका—इसमें सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों को विशेषरूप से वर्णित किया है—

प्रश्न हुआ-"तिर्यंच मिथ्यादृष्टि कितने कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं?।।२१।।

तीन कारणों से—कोई जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनबिंबों के दर्शन से।।२२।।

पुन: प्रश्न होता है—जिनबिंब दर्शन प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्ति में कारण कैसे है? उत्तर देते हैं—

"जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो। तथा चोक्तं—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा[३]।।१।।"

जिनप्रतिमाओं के दर्शन से निधत्त और निकाचितरूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिंब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण देखा जाता है। कहा भी है—जिनेन्द्रदेवों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजरपर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं।

२१६ सूत्र की टीका में अन्य ग्रंथों के उद्धरण भी दिये गये हैं। नमूने के लिए प्रस्तुत हैं—

आत्मज्ञातृतया ज्ञानं, सम्यक्त्वं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुत:[४]।।

इस प्रथमखण्ड 'जीवस्थान' की छठी पुस्तक की टीका मैंने अपनी दीक्षाभूमि "माधोराजपुरा" राजस्थान में पूर्ण की है। उसमें मैंने संक्षेप में तीन श्लोक दिये हैं—

देवशास्त्रगुरुन् नत्वा, नित्य भक्त्या त्रिशुद्धित:। षट्खण्डागमग्रंथोऽयं, वन्द्यते ज्ञानवृद्धये।।१।।

द्वित्रिपंचद्विवीराब्दे, फाल्गुनेऽसितपक्षाके। माधोराजपुराग्रामे, त्रयोदश्यां जिनालये।।२।।

नम: श्रीशांतिनाथाय, सर्वसिद्धिप्रदायिने। यस्य पादप्रसादेन, टीकेयं पर्यपूर्यत।।३।।

मैंने शरदपूर्णिमा को वी.सं.२५२१ में हस्तिनापुर में यह टीका लिखना प्रारंभ किया था। मुझे प्रसन्नता है कि फाल्गुन कृष्णा १३, वी. नि. सं. २५२३, दि. ७-३-१९९७ को माधोराजपुरा में मैंने यह प्रथम खंड की टीका पूर्ण की है। यह टीका मांगीतुंगी यात्रा विहार के मध्य आते-जाते लगभग ३६ सौ किमी. के मध्य में मार्ग में अधिकरूप में लिखी गई है।

मैंने इसे सरस्वती देवी की अनुकंपा एवं माहात्म्य ही माना है। इसमें स्वयं में मुझे 'आश्चर्य' हुआ है। जैसा कि मैंने लिखा है—

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २०६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.२४२।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.४२८। ४. तत्त्वार्थसार का उद्धरण।

''पुनश्च हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे विनिर्मितकृत्रिमजंबूद्वीपस्य सुदर्शनमेर्वादिपर्वतामुपरि विराजमान-सर्वजिनबिंबानि मुहुर्मुहुः प्रणम्य यत् सिद्धान्तचिंतामणिटीकालेखनकार्यं एकविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे मया प्रारब्धं, तदधुना मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रस्य यात्रायाः मंगलविहारकाले त्रयोविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गे एव निर्विघ्नतया जिनदेवकृपाप्रसादेन महद्हर्षोल्लासेन समाप्यते। एतत् सरस्वत्या देव्यः अनुकंपामाहात्म्यमेव विज्ञायते, मयैव महदाश्चर्यं प्रतीयते[१]।''

इस खंड में कुल सूत्र संख्या १७७+१२८४+५२७+८७२+५१५=२३७५ है।

मेरे द्वारा लिखित पेजों की संख्या १६१+८८+१३०+१८९+१९३+१८७=९४८ है।

इस प्रकार 'जीवस्थान' नामक प्रथम खण्ड (अंतर्गत छह पुस्तकों) का यह संक्षिप्त सार मैंने लिखा है।

द्वितीय खण्ड — क्षुद्रकबंध

इसे प्राकृत भाषा में 'खुद्दाबंध' कहते हैं एवं संस्कृत भाषा में 'क्षुद्रकबंध' नाम है।

इसे क्षुद्रक बंध कहने का अभिप्राय यह है कि —

आगे स्वयं भूतबलि आचार्य ने 'तीस हजार' सूत्रों में 'महाबंध' नाम से छठा खण्ड स्वतंत्र बनाया है। इसीलिए १५८९ सूत्रों में रचित यह ग्रंथ 'क्षुद्रकबंध' नाम से सार्थक है।

इस ग्रंथ की टीका को मैंने 'पद्मपुरा' तीर्थ पर प्रारंभ किया था अतः मंगलाचरण में श्रीपद्मप्रभ भगवान को नमस्कार किया है। यथा —

श्रीपद्मप्रभदेवस्य, विश्वातिशयकारिणे।
नमोऽभीप्सितसिद्ध्यर्थं, ते च दिव्यध्वनिं नुमः।।१।।

इस खण्ड में जीवों की प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोड़कर मार्गणा स्थानों में की गई है। इन ग्यारह अनुयोगद्वारों के नाम — १. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व २. एक जीव की अपेक्षा काल ३. एक जीव की अपेक्षा अन्तर ४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा काल ९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम। अंत में ग्यारहों अनुयोगद्वारों की चूलिका रूप से 'महादण्डक' दिया गया है। यद्यपि इसमें अनुयोगद्वारों की अपेक्षा ११ अधिकार ही हैं फिर भी प्रारंभ में प्रस्तावनारूप में 'बंधक सत्त्वप्ररूपणा' और अंत में चूलिकारूप में महादण्डक ऐसे १३ अधिकार भी कहे जा सकते हैं।

बंधक सत्त्वप्ररूपणा — इसमें ४३ सूत्र हैं। जिनमें चौदह मार्गणाओं के भीतर कौन जीव कर्मबंध करते हैं और कौन नहीं करते, यह बतलाया गया है।

१. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व — इस अधिकार में मार्गणाओंसंबंधी गुण व पर्याय कौन से भावों से प्रगट होते हैं, इत्यादि विवेचन है।

२. एक जीव की अपेक्षा काल — इस अनुयोगद्वार में प्रत्येकगति आदि मार्गणा में जीव की जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थिति का निरूपण किया गया है।

३. एक जीव की अपेक्षा अंतर — एक जीव का गति आदि मार्गणाओं के प्रत्येक अवान्तर भेद से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल — विरहकाल कितने समय का होता है?

---

१. षट्खण्डागम (सिद्धांतचिन्तामणि टीका) पु. ६, अंतिम प्रकरण।

४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय— भंग-प्रभेद, विचय-विचारणा, इस अधिकार में भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीव नियम से रहते हैं या कभी रहते हैं या कभी नहीं भी रहते हैं, इत्यादि विवेचना है।

५. द्रव्यप्रमाणानुगम— भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीवों का संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि काल प्रमाणों की अपेक्षा वर्णन है।

६. क्षेत्रानुगम— सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों लोकों के आश्रय से स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है।

७. स्पर्शनानुगम— चौदह मार्गणाओं में सामान्य आदि पांचों लोकों की अपेक्षा वर्तमान और अतीतकाल के निवास को दिखाया है।

८. नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम— नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंत, अनादिसांत, सादि अनंत और सादि सान्त काल भेदों को लक्ष्य करके जीवों की काल प्ररूपणा की गई है।

९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम— मार्गणाओं में नाना जीवों की अपेक्षा बंधकों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

१०. भागाभागानुगम— इसमें मार्गणाओं के अनुसार सर्वजीवों की अपेक्षा बंधकों के भागाभाग का वर्णन है।

११. अल्पबहुत्वानुगम— चौदह मार्गणाओं के आश्रय से जीवसमासों का तुलनात्मक प्रमाण प्ररूपित किया है।

अनन्तर चूलिकारूप 'महादण्डक' अधिकार में गर्भोपक्रांतिक मनुष्य पर्याप्त से लेकर निगोद जीवों तक के जीवसमासों का 'अल्पबहुत्व' निरूपित है।

इस प्रकार क्रमशः इस द्वितीय खण्ड में सूत्रों की संख्या—

४३+९१+२१६+१५१+२३+१७१+१२४+२७४+५५+६८+८८+२०५+७९=१५९४ है।

मेरे द्वारा सिद्धांतचिंतामणि टीका में पृष्ठ संख्या— २८१ है।

महत्वपूर्ण विषय— इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण विषय आया है, जिसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

''बादरणिगोदपदिट्ठिदअपदिट्ठिदाणमेत्थ सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिद्दिट्ठा?

गोदमो एत्थ पुच्छेयत्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ[1]।''

शंका— वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त जीवों के वनस्पति संज्ञा देखी जाती है। बादरनिगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में 'वनस्पतिसंज्ञा' क्यों नहीं निर्दिष्ट की?

समाधान— 'गौतम गणधर से पूछना चाहिए।' गौतम गणधरदेव बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों की वनस्पति संज्ञा नहीं मानते। हमने यहाँ उनका अभिप्राय व्यक्त किया है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सूत्रों में जैन ग्रंथों में दो मत आये हैं, वहाँ टीकाकारों ने अपना अभिमत न देकर दोनों ही रख दिये हैं।

इस ग्रंथ की टीका का समापन मैंने हस्तिनापुर में 'रत्नत्रयनिलयवसतिका' में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी,

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ७, पृ. ५४१।

वीर नि. संवत् २५२४, दिनाँक-१२-१२-१९९७ को पूर्ण की है।

उसकी संक्षिप्त प्रशस्ति इस प्रकार है—

वीराब्दे दिग्द्विखद्वयंके, शांतिनाथस्य सन्मुखे। रत्नत्रयनिलयेऽस्मिन्, हस्तिनागपुराभिधे।।१।।

षट्खण्डागमग्रंथेऽस्मिन्, खण्डद्वितीयकस्य हि। क्षुद्रकबंधनाम्नोऽस्य, टीकेयं पर्यपूर्यत।।२।।

गणिन्या ज्ञानमत्येयं, टीकाग्रन्थश्च भूतले। जीयात् ज्ञानर्द्धये भूयात् भव्यानां मे च संततम्।।३।।

तृतीय खण्ड—बंधस्वामित्वविचय

पुस्तक ८—

इस तृतीय खण्ड में नाम के अनुसार ही बंध के स्वामी के बारे में विचार किया गया है। यथा—

''**जीवकम्माणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगेहि एयत्तपरिणामो बंधो**[1]।''

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होता है, वह बंध है और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं।

बंध के स्वामित्व के विचय—विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये एकार्थक शब्द हैं।

वर्तमान में जो साधु या विद्वान् मिथ्यात्व को बंध में 'अकिंचित्कर' कहते हैं उन्हें इन षट्खण्डागम की पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। अनेक स्थलों पर आचार्यों ने कहा है—''मिच्छत्तासंजमकसायजोगभेदेण चत्तारि मूलपच्चया[2]।'' मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के मूलप्रत्यय—मूलकारण हैं।

यहाँ भी गुणस्थानों में बंध के स्वामी का विचार करके मार्गणाओं में वर्णन किया गया है।

सूत्रों में बंध-अबंध का प्रश्न करके उत्तर दिया है। यथा-''पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है?[3]।।५।।

सूत्र में ही उत्तर दिया है—

''मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धसंयत उपशमक व क्षपक तक पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिक काल के अंतिम समय में जाकर इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं[4]।।६।।

यहाँ पाँचवें प्रश्नवाचक सूत्र में टीकाकार ने इस सूत्र को देशामर्शक मानकर तेईस पृच्छायें की हैं—

१. यहाँ क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है? २. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है? ३. या क्या दोनों की साथ में व्युच्छित्ति होती है? ४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है? ५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ६. क्या अपने और पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ७. क्या सांतर बंध होता है? ८. क्या निरंतर बंध होता है? ९. या क्या सांतर-निरंतर बंध होता है? १०. क्या सनिमित्तक बंध होता है? ११. या क्या अनिमित्तक बंध होता है? १२. क्या गति संयुक्तबंध होती है? १३. या क्या गति संयोग से रहित बंध होता है? १४. कितनी गति वाले जीव स्वामी हैं? १५. और कितनी गति वाले स्वामी नहीं हैं? १६. बंधाध्वान कितना है—बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक है? १७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? १८. क्या प्रथम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है?

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. २-१६१।

३-४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. ७-१३।

१९. या अप्रथम अचरिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? २०. क्या बंध सादि है? २१. या क्या अनादि है? २२. क्या बंध ध्रुव ही होता है? २३. या क्या अध्रुव होता है?

इस प्रकार ये २३ पृच्छायें पूछी गईं इस पृच्छा में अंतर्भूत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पुन: इनका उत्तर दिया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ३२४ सूत्र हैं।

इस ग्रंथ की संस्कृत टीका मैंने मार्गशीर्ष कृ. १३ को (दिनाँक १२-१२-९७) हस्तिनापुर में प्रारंभ की थी। उस समय 'श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' की योजना बनाई थी। भगवान ऋषभदेव का धातु का एक सुंदर ८'×८' फुट का समवसरण बनवाया गया था। इसके उद्घाटन की तैयारियाँ चल रही थीं। इसी संदर्भ में मैंने मंगलाचरण में तीन श्लोक लिखे थे। यथा—

सिद्धान् नष्टाष्टकर्मारीन्, नत्वा स्वकर्महानये। बंधस्वामित्वविचयो, ग्रंथः संकीर्त्यते मया।।१।।

श्रीमत्-ऋषभदेवस्य, श्रीविहारोऽस्ति सौख्यकृत्। जगत्यां सर्वजीवाना-मतो देव! जयत्विह।।२।।

यास्त्यनन्तार्थगर्भस्था, द्रव्यभावश्रुतान्विता। सापि सूत्रार्थयुङ्मान्ये! श्रुतदेवि! प्रसीद नः।।३।।

पुन: दिल्ली में मैंने द्वि. ज्येष्ठ शु. ५ श्रुतपंचमी वीर नि.सं. २५२५ को (दि. १८-६-१९९९ को) डेढ़ वर्ष में प्रीतविहार में श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में पूर्ण किया है।

इस ग्रंथ के अंत में मैंने ध्यान करने के लिए १४८ कर्मप्रकृतियों से विरहित १४८ सूत्र बनाये हैं। यथा—

''**मतिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम् ।।१।।**

पूर्णता का अंतिम श्लोक—

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।
श्री शांतिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम् ।।८।।

इस प्रकार संक्षेप में इस तृतीय खण्ड का सार दिया है।

चतुर्थ—वेदना खण्ड

पुस्तक ९—

इस चतुर्थ और पंचम खण्ड में जो विषय विभाजित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

अग्रायणीय पूर्व के अर्थाधिकार चौदह हैं—१. पूर्वांत २. अपरान्त ३. ध्रुव ४. अध्रुव ५. चयनलब्धि ६. अध्रुवसंप्रणिधान ७. कल्प ८. अर्थ ९. भौमावयाद्य, १०. कल्पनिर्याण ११. अतीतकाल १२. अनागतकाल १३. सिद्ध और १४. बुद्ध[१]।

यहाँ 'चयनलब्धि' नाम के पाँचवें अधिकार में 'महाकर्म प्रकृतिप्राभृत' संगृहीत है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। १. कृति २. वेदना ३. स्पर्श ४. कर्म ५. प्रकृति ६. बंधन ७. निबंधन ८. प्रक्रम ९. उपक्रम १०. उदय ११. मोक्ष १२. संक्रम १३. लेश्या १४. लेश्याकर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व १८. भवधारणीय १९. पुद्गलात्त २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व[२]।

इन चौबीस अनुयोगद्वारों को षट्खण्डागम की मुद्रित नवमी पुस्तक से लेकर सोलहवीं तक में 'वेदना'

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. २२६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, सूत्र ४५, पृ. १३४।

और 'वर्गणा' नाम के दो खंडों में विभक्त किया है। वेदना खण्ड में ९, १०, ११ और १२ ऐसे चार ग्रंथ हैं।

इस नवमी पुस्तक में मात्र प्रथम 'कृति' अनुयोग द्वार ही वर्णित है। छ्यालिसवें सूत्र में कृति के सात भेद किये हैं—

१. नामकृति २. स्थापनाकृति ३. द्रव्यकृति ४. गणनकृति ५. ग्रन्थकृति ६. करणकृति और ७. भावकृति।

इन कृतियों का विस्तार से वर्णन करके अंत में कहा है कि—यहाँ 'गणनकृति' से प्रयोजन है[१]।

इस ग्रंथ में श्रीभूतबलि आचार्य ने 'णमो जिणाणं' आदि गणधरवलय मंत्र लिए हैं जो कि श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं। यहाँ ''णमो जिणाणं'' से लेकर ''णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।'' चवालीस मंत्र लिए हैं। अन्यत्र 'पाक्षिक प्रतिक्रमण' एवं 'प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी' टीकाग्रंथ तथा भक्तामर स्तोत्र ऋद्धिमंत्र आदि में अड़तालीस मंत्र लिये गये हैं।

इन ४८ मंत्रों को 'श्रीगौतमस्वामी' द्वारा रचित कृतियों में इसी ग्रंथ में दिया गया है।

इस नवमी पुस्तक में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही विस्तार से इन मंत्रों का अर्थ स्पष्ट किया है। अनंतर 'सिद्धान्त ग्रंथों' के स्वाध्याय के लिए द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धि का विवेचन विस्तार से किया है।

इस ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका मैंने शरदपूर्णिमा वी.नि.सं. २५२५ को (२४-१०-९९ को) दिल्ली में राजाबाजार के दिगम्बर जैन मंदिर में प्रारंभ की थी।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत गणधरवलय मंत्रों की टीका लिखते समय मुझे एक अपूर्व ही आल्हाद प्राप्त हुआ है। इसकी पूर्णता मैंने आश्विन शु.१५—शरदपूर्णिमा वीर.नि.सं. २५२६ को (१३-१०-२००० को) दिल्ली में ही प्रीतविहार-श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में की है। जिसका अंतिम श्लोक निम्नलिखित है—

अहिंसा परमो धर्मो, यावद् जगति वर्त्स्यते।
यावन्मेरूश्च टीकेयं, तावन्नंद्याच्च नः श्रियै।।१।।

इस प्रकार नवमी पुस्तक का किंचित् सार लिखा गया है।

पुस्तक १०—

इस ग्रंथ में 'वेदना' नाम का द्वितीय अनुयोगद्वार है। इस वेदनानुयोग द्वार के १६ भेद हैं— १. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान[२]।

इस दशवीं पुस्तक में प्रारंभ के ५ अनुयोगद्वारों का वर्णन है। सूत्र संख्या ३२३ है। आगे ११वीं और १२वीं पुस्तक में सभी वेदनाओं का वर्णन होने से इस तृतीय खण्ड को वेदनाखण्ड कहा है।

यहाँ प्रथम 'वेदना निक्षेप' के भी नामवेदना, स्थापनावेदना, द्रव्यवेदना और भाववेदना ऐसे निक्षेप की अपेक्षा चार भेद हैं।

दूसरे 'वेदनानयविभाषणा' में नयों की अपेक्षा वेदना को घटित किया है। तीसरे 'वेदनानामविधान' के

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. ४५२। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, सूत्र १।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की अपेक्षा आठ भेद कर दिये हैं[१]।

वेदना द्रव्यविधान के तीन अधिकार किये हैं—पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इस ग्रंथ में इनका विस्तार से वर्णन है।

इस ग्रंथ में वेदनाक्षेत्रविधान के भी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ऐसे तीन भेद किये हैं।

आश्विन शु. १५—शरदपूर्णिमा (१३-१०-२०००) को दिल्ली में मैंने टीका लिखना प्रारंभ किया था पुनः

इस ग्रंथ की टीका का समापन शौरीपुर भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि में वैशाख कृ. ७, वी.सं. २५२८, दिनाँक ३-५-२००२ को किया है। मेरे द्वारा लिखित पृ. संख्या ११८ हैं।

इस प्रकार संक्षिप्त सार दिया गया है।

पुस्तक नं. ११—

इस ११वें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन है। सूत्र इसमें ५९३ हैं और पृ. संख्या २०० है। इसके पूर्वार्द्ध की पूर्णता "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग" श्री ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ पर की है एवं उद्धरार्ध को अर्थात् पूरे ग्रंथ का समापन पावापुरी-भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पर श्रावण शु. ७, वी.सं. २५२९, दिनाँक ४-८-२००३ को किया है।

पुस्तक १२—

इस ग्रन्थ में वेदनाअनुयोगद्वार के १६ भेदों में से ८वें से लेकर १६वें तक भेद वर्णित हैं—८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान।

इन नव वेदना अनुयोगद्वारों का इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णन है। इसमें सूत्र संख्या ५३३ है।

'वेदनाप्रत्ययविधान' में जीवहिंसा, असत्य आदि प्रत्यय—निमित्त से ज्ञानावरण आदि कर्मों की वेदना होती है। जैसे कि—

मुसावादपच्चए।।३।।

......मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचनसमूह असत् वचन है इत्यादि।

ऐसे संपूर्ण वेदनाओं का वर्णन किया गया है।

इसमें सूत्र ५३३ हैं, पृ. १७५ हैं।

इस ग्रंथ की टीका मैंने कुण्डलपुर तीर्थ पर पौष कृ. ११ वी.नि.सं. २५३० के दिन पूर्ण की है। इसी संदर्भ में मैंने लिखा है—

अस्यां पौषकृष्णैकादश्यां तिथौ काशीदेशे वाराणस्यां नगर्यां महानृपतेः अश्वसेनस्य महाराज्ञ्यः वामादेव्यो गर्भात् भगवान् पार्श्वनाथो जज्ञे। उग्रवंशशिरोमणिः मरकतमणिसन्निभः त्रयस्त्रिंशत्त-मस्तीर्थंकरोऽयं अस्मात् वीरनिर्वाणसंवत्सरात् द्विसहस्र-अष्टशताशीतिवर्षपूर्वं अवततार।

उक्तं च तिलोयपण्णत्तिग्रंथे—

अट्ठुत्तरिअधियाए वेसदपरिमाणवासअदिरित्ते।
पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्तीवड्ढमाणस्स ।।५७७।।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, पृ. १३।

भगवान पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के २७८ वर्ष बाद वर्धमान भगवान की उत्पत्ति हुई है तथा भगवान महावीर को जन्म लिये २६०२ वर्ष हुए अत: २७८ में वह संख्या जोड़ देने से २७८+२६०२=२८८० वर्ष हो गये अत: मैंने यह घोषणा की थी कि आगे आने वाले पौष कृ. ११ (६-१-२००५) को भगवान पार्श्वनाथ का 'तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' प्रारंभ करें पुन: एक वर्ष तक सारे भारत में भगवान पार्श्वनाथ का गुणगान करें।

इस प्रकार इस बारहवीं पुस्तक का विषय संक्षेप में लिखा है।

पंचम खण्ड—वर्गणाखण्ड

पुस्तक १३—

नवमीं पुस्तक में चयनलब्धि के 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' के 'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि चौबीस अनुयोगद्वार कहे गये हैं। वेदना खण्ड में मात्र 'कृति और वेदना' ये दो अनुयोगद्वार आये हैं। शेष २२ अनुयोगद्वार इस 'वर्गणाखण्ड' नाम के पांचवें खण्ड में वर्णित हैं। इस खण्ड में भी १३वीं, १४वीं, १५वीं एवं १६वीं ऐसी चार पुस्तकें हैं। इस खण्ड में 'बंधनीय' का आलंबन लेकर वर्गणाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है अत: इसे 'वर्गणाखण्ड' नाम दिया है।

इस तेरहवीं पुस्तक में 'स्पर्श, कर्म और प्रकृति' इन तीन अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इसमें 'स्पर्श अनुयोगद्वार' के सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं-स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्शस्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्शअनंतरविधान, स्पर्शसन्निकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान, स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्शअल्पबहुत्व।[2]

पुनश्च प्रथम भेद 'स्पर्शनिक्षेप' के १३ भेद किये हैं—नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनंतरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बंधस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श[3]।

इस तेरहवें ग्रंथ में सूत्र की टीका के अनंतर मैंने प्राय: 'तात्पर्यार्थ' दिया है। जैसे कि—स्पर्श अनुयोगद्वार में सूत्र २६ में टीका के अनंतर लिखा है।

''अत्र तात्पर्यमेतत्-अष्टसु कर्मसु मोहनीयकर्म एव संसारस्य मूलकारणमस्ति। दर्शनमोहनीय-निमित्तेन जीवा मिथ्यात्वस्य वंशगताः सन्तः अनादिसंसारे परिभ्रमन्ति। चारित्रमोहनीयबलेन तु असंयताः सन्तः कर्माणि बध्नन्ति।

उक्तं च श्री पूज्यपादस्वामिना—

बध्यते मुच्यते जीवः सममः निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ।।

एतज्ज्ञात्वा कर्मस्पर्शकारणभूतमोहरागद्वेषादिविभावभावान् व्यक्त्वा स्वस्मिन् स्वभावे स्थिरीभूय स्वस्थो भवन् स्वात्मोत्थपरमानंदामृतं सुखमनुभवनीयमिति।''

कर्म अनुयोगद्वार में भी प्रथम ही १६ अनुयोगद्वाररूप भेद कहे हैं—कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता, कर्मनाम विधान आदि। पुनश्च कर्मनिक्षेप के दश भेद किये हैं-नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अव्य:कर्म, ईर्यापथकर्म, तप:कर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १२, पृ. २७९। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४।

इसमें 'तप:कर्म' के बारह भेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'क्रियाकर्म' में—

''तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं, चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम[1]।।२८।।''

यह क्रियाकर्म विधिवत् सामायिक—देववंदना में घटित होता है। इसी सूत्र को उद्धृत करके अनगारधर्मामृत, चारित्रसार आदि ग्रंथों में साधुओं की सामायिक को 'देववंदना' रूप में सिद्ध किया है। इसका स्पष्टीकरण मूलाचार, आचारसार आदि ग्रंथों में भी है। 'क्रियाकलाप' जिसका संपादन पं. पन्नालाल सोनी ब्यावर वालों ने किया था उसमें तथा मेरे द्वारा संकलित (लिखित) 'मुनिचर्या' में भी यह विधि सविस्तार वर्णित है। इन प्रकरणों को लिखते हुए, पढ़ते हुए मुझे एक अद्भुत ही आनंद का अनुभव हुआ है।

तृतीय 'प्रकृति' अनुयोगद्वार में भी सोलह अधिकार कहे हैं—प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान आदि।

इसमें प्रथम प्रकृतिनिक्षेप के चार भेद किये हैं—नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति।

इसमें द्रव्यप्रकृति के दो भेद हैं—आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति। नोआगमद्रव्यप्रकृति के भी दो भेद हैं—कर्मप्रकृति और नोकर्म प्रकृति।

कर्मप्रकृति के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म प्रकृति।

इस तेरहवीं पुस्तक में प्रकृति अनुयोगद्वार में व्यंजनावग्रहावरणीय के ४ भेद किये हैं। धवला टीका में श्री वीरसेनस्वामी ने श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दों के अनेक भेद करके कहा है—

''सद्दपोग्गला सगुप्पत्तिपदेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्सेण जाव लोगंतं ताव गच्छंति।

कुदो एदं णव्वदे?

सुत्ताविरूद्धाइरियवयणादो। ते किं सव्वे सद्दपोग्गला लोगंतं गच्छंति आहो ण सव्वे इति पुच्छिदे सव्वे ण गच्छंति, थोवा चेव गच्छंति।......

जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि त्ति उवदेसादो[2]।''

शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दशों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्टरूप से लोक के अंतभाग तक जाते हैं।

यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

यह सूत्र के अविरुद्ध व्याख्यान करने वाले आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

क्या वे सब शब्दपुद्गल लोक के अंत तक जाते हैं या सब नहीं जाते?

सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा—शब्द पर्याय से परिणत हुए प्रदेश में अनंत पुद्गल अवस्थित रहते हैं। दूसरे आकाश प्रदेश में उनसे अनंतगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं।

इस तरह वे अनंतरोपनिधा की अपेक्षा वातवलयपर्यंत सब दिशाओं में उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश के प्रति अनंतगुणे हीन होते हुए जाते हैं।

आगे क्यों नहीं जाते?

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २८, पृ. ८८।

२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २२२।

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वे वातवलय के आगे नहीं जाते हैं। ये सब शब्द पुद्गल एक समय में ही लोक के अंत तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्गल कम से कम दो समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा लोक के अंत को प्राप्त होते हैं।

अष्टसहस्री ग्रंथ में भी शब्द पुद्गलों का आना, पकड़ना, टकराना आदि सिद्ध किया है क्योंकि ये पौद्गलिक हैं—पुद्गल की पर्याय हैं।

इन सभी प्रकरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि—

आज जो शब्द टेलीविजन—दूरदर्शन, रेडियो—आकाशवाणी, टेलीफोन—दूरभाष आदि के द्वारा हजारों किमी. दूर से सुने जाते हैं। टेलीफोन से कई हजार किमी. दूर से वार्तालाप किया जाता है। टेपरेकार्ड, वी.डी.ओ. आदि में भरे जाते हैं, महीनों, वर्षों तक ज्यों की त्यों सुने जाते हैं। यह सब पौद्गलिक चमत्कार है।

वास्तव में ये शब्द मुख से निकलने के बाद लोक के अंत तक फैल जाते हैं। इसीलिए इनका पकड़ना, दूर तक पहुँचाना, भेजना, यंत्रों में भर लेना आदि संभव है।

इन्हीं भावनाओं के अनुसार मैंने ३० वर्ष पूर्व भगवान 'शांतिनाथ स्तुति' में यह उद्गार लिखे थे। यथा—

सुभक्तिवरयंत्रतः स्फुटरवा ध्वनिक्षेपकात्। सुदूरजिनपार्श्वगा भगवतःस्पृशन्ति क्षणात्।
पुनः पतनशीलतोऽवपतिता नु ते स्पर्शनात्। भवन्त्यभिमतार्थदाः स्तुतिफलं ततश्चाप्यते[१] ।।२०।।

हे भगवन्! आपकी श्रेष्ठ भक्ति वो ही हुआ ध्वनिविक्षेपण यंत्र, (रेडियो आदि) उससे स्फुट—प्रगट हुईं शब्द वर्गणाएं बहुत ही दूर सिद्धालय में—लोक के अग्रभाग में विराजमान आपके पास जाती हैं और वहाँ आपका स्पर्श करती हैं। पुनः पुद्गलमयी शब्दवर्गणायें पतनशील होने से यहाँ आकर—भक्त के पास आकर आपसे स्पर्शित होने से ही भव्यजीवों के मनोरथ को सफल कर देती हैं, यही कारण है कि इस लोक में स्तुति का फल पाया जाता है अन्यथा नहीं पाया जा सकता था।

इसमें ज्ञानावरण के अंतर्गत श्रुतज्ञानावरण के विषय में कहते हुए 'श्रुतज्ञान' के विषय में बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है।

प्रश्न हुआ है—"श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं?

उत्तर दिया है—श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की संख्यात प्रकृतियाँ हैं।

जितने अक्षर हैं और जितने अक्षर संयोग हैं उतनी प्रकृतियां हैं।[२]"

पुनश्च—श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के बीस भेद किये हैं—पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, आदि से पूर्वसमासावरणीय पर्यंत ये बीस भेद हैं।[३] इनसे पहले श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं, जिनके ये आवरण हैं।

उन श्रुतज्ञान के नाम—पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास, ये श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं।

---

१. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से प्रकाशित) पृ. १५१। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४३-४४-४५, पृ. २४५ से। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४८, पृ. २६१।

इस ग्रंथ की टीका के लेखन में मैंने जो परम आल्हाद प्राप्त किया है, वह मेरे जीवन में अचिन्त्य ही रहा है।

एक तो षट्खण्डागमरूपी परम ग्रंथराज, दूसरे श्रीभूतबलि महान आचार्य के सूत्र, तीसरे श्रीवीरसेनाचार्य की धवला टीका और चौथा भगवान महावीर तीर्थ त्रिवेणी का संगम। यही कारण है कि यह ग्रंथ मेरा यहाँ 'तीर्थ त्रिवेणी संगम' में अतिशीघ्र मात्र नव माह में पूर्ण हुआ है।

इस ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य ने अगणित रत्न भर दिये हैं। यथा—'**श्रुतज्ञानमन्तरेण चारित्रानुत्पत्तेः।**''

''**द्वादशांगस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राविनाभाविनो मोक्षमार्गत्वेनाभ्युपगमात्।**

श्रुतज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए चारित्र की अपेक्षा श्रुत की प्रधानता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अविनाभावी द्वादशांग को मोक्षमार्गरूप से स्वीकार किया गया है।

यहाँ पर ५०वें सूत्र में श्रुतज्ञान के इकतालीस (४१) पर्याय शब्द बताये हैं। जैसे—प्रावचन, प्रवचनीय आदि।

इस ग्रंथ में श्रुतज्ञान के पर्याय, पर्यायसमास आदि बीस भेद किये हैं और उन्हीं का विस्तार किया है।

तब प्रश्न यह हुआ है कि—उन्नीसवां 'पूर्व' और बीसवां 'पूर्वसमास' भेद तो इन बीस भेदों में आ गया है पुनः—

अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचारांग आदि ग्यारह अंग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका, इनका किस श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव होगा?

तब श्रीवीरसेनस्वामी ने समाधान दिया है कि—

इनका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास में अंतर्भाव होता है अथवा प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान में इनका अंतर्भाव कहना चाहिए परंतु पश्चादानुपूर्वी की विवक्षा करने पर इनका 'पूर्वसमास' श्रुतज्ञान में अंतर्भाव होता है, ऐसा कहना चाहिए[१]।

इस प्रकार इस ग्रंथ में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान का बहुत ही सुन्दर विवेचन है।

अनंतर सर्व कर्मों का वर्णन करके अंत में कहा है कि यहाँ 'कर्म प्रकृति' से ही प्रयोजन है।

यहाँ तक इन १३ ग्रंथों में ५६३० सूत्रों की मेरे द्वारा लिखित संस्कृत टीका के पृष्ठों की संख्या-२८१+१९१+१४०+८३+१२४+२८७+२५७=१३५६+९४८=२३०४ है।

इस प्रकार संक्षेप में इस ग्रंथ का सार दिया है।

पुस्तक १४—

इस ग्रंथ में 'कृति, वेदना' आदि २४ अनुयोगद्वारों में से छठे बंधन अनुयोगद्वार का निरूपण है। सूत्र संख्या ५८० है। इसमें बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान ये भेद किये हैं। पुनश्च बंध के नामबंध, स्थापनाबंध, द्रव्यबंध और भावबंध ये चार भेद कहे हैं।

भावबंध के आगमभावबंध और नोआगमभावबंध दो भेद हैं।

आगम भावबंध के स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रंथसम, नामसम और घोषसम ये नव भेद हैं। इनके विषय में वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनसे लेकर जो अन्य उपयोग हैं उनमें भावरूप से जितने उपयुक्त भाव हैं, वे सब आगमभावबंध हैं।[२]

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २७६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १४, पृ. ७।

नोआगमभावबंध के भी दो भेद हैं—जीव भावबंध और अजीव भावबंध।

इनमें से जीवभावबंध के ३ भेद हैं—विपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध, अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और तदुभयप्रत्ययिकजीवभावबंध।

इनमें देवभाव, मनुष्यभाव आदि विपाकप्रत्ययिक जीव भावबंध हैं।

अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध के औपशमिक अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और क्षायिकअविपाक-प्रत्ययिकजीवभावबंध, ऐसे दो भेद हैं।

औपशमिक के उपशांत क्रोध, उपशांत मान आदि भेद हैं।

क्षायिक के क्षीणक्रोध, क्षीणमान आदि भेद हैं।

तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबंध के क्षायोपशमिक एकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक द्वीन्द्रियलब्धि आदि बहुत भेद हैं।

इस प्रकार सूत्र १३ से १९ तक इन सबका विस्तार है।

ऐसे ही अजीव भावबंध के भी तीन भेद हैं—विपाकप्रत्ययिक, अविपाकप्रत्ययिक और तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबंध। विपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोगपरिणतवर्ण, प्रयोगपरिणतशब्द आदि भेद हैं।

अविपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के विस्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

तथा तदुभयप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोग परिणत वर्ण और विस्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

इसके अनंतर द्रव्यबंध के आगम, नोआगम आदि भेद-प्रभेद किये हैं।

इस प्रकार 'बंध' भेद का प्ररूपण किया गया है।

अनंतर 'बंधक' अधिकार में मार्गणाओं में बंधक-अबंधक को विचार करने का कथन है।

अनंतर—

बंधनीय के प्रकरण में—वेदनस्वरूप पुद्गल है, पुद्गल स्कंधस्वरूप हैं और स्कंध वर्गणास्वरूप हैं[१], ऐसा कहा है।

वर्गणाओं का अनुगमन करते हुए आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—

वर्गणा, वर्गणाद्रव्य समुदाहार, अनंतरोपनिधा, परंपरोपनिधा, अवहार, यवमध्य, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व।

वर्गणा के प्रकरण होने से यहां वर्गणा के १६ अनुयोगद्वार बताये हैं—१. वर्गणा निक्षेप २. वर्गणानयविभाषणता ३. वर्गणाप्ररूपणा ४. वर्गणानिरूपणा ५. वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम ६. वर्गणासांतरनिरंतरानुगम ७. वर्गणाओजयुग्मानुगम ८. वर्गणाक्षेत्रानुगम ९. वर्गणास्पर्शनानुगम १०. वर्गणाकालानुगम ११. वर्गणाअनंतरानुगम १२. वर्गणाभावानुगम १३. वर्गणाउपनयनानुगम १४. वर्गणापरिमाणानुगम १५. वर्गणाभागाभागानुगम और १६. वर्गणा अल्पबहुत्वानुगम।

पुस्तक १५—

इस ग्रंथ में 'बंधनअनुयोगद्वार' की चूलिका को लिया है जिसमें ५८१ से ७९७ तक सूत्र हैं जो कि २१७ हैं। पुनश्च निबंधन अनुयोगद्वार के सूत्र २० ऐसे कुल २१७+२०=२३७ सूत्र हैं।

बंधन अनुयोगद्वार की चूलिका के अंत में ७९७वें सूत्र में 'बंध विधान' के चार भेद किये हैं—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध।।७९७।।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७०, पृ. ५१।

इस सूत्र की टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने कह दिया है कि—'श्री भूतबलिभट्टारक' ने 'महाबंध' खण्ड में इन चारों भेदों को विस्तार से लिखा है अत: मैंने यहाँ नहीं लिखा है। यथा—

यहाँ 'भट्टारक' पद से महान पूज्य अर्थ विवक्षित है। ये भूतबलि आचार्य महान दिगम्बर आचार्य थे, ऐसा समझना।

''एदेसिं चदुण्णं बंधाणं विहाणं भूदबलिभडारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं त्ति अम्मेहिं एत्थ ण लिहिदं। तदो सयले महाबंधे एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि[१]।''

इस ग्रंथ में चौबीस अनुयोगद्वारों में से ७वाँ निबंधन, ८वाँ प्रक्रम, ९वाँ उपक्रम, १०वाँ उदय और १२वाँ मोक्ष इन ५ अनुयोगद्वारों का कथन है। सूत्र संख्या 'निबंधन' अनुयोगद्वार तक है।

आगे प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष अनुयोगद्वारों में सूत्रसंख्या नहीं है।

इसमें मंगलाचरण में श्रीवीरसेनाचार्य ने प्रथम निबंधन अनुयोगद्वार में 'श्री अरिष्टनेमि' भगवान को नमस्कार किया है।

द्वितीय 'प्रक्रम' अनुयोगद्वार में श्री शांतिनाथ भगवान को, तृतीय 'उपक्रम' अनुयोगद्वार में श्री अभिनंदन भगवान को एवं चौथे 'उदय' अनुयोगद्वार में पुनरपि श्रीशांतिनाथ भगवान को नमस्कार किया है।

निबंधन—'निबध्यते तदस्मिन्निति निबंधनम्' इस निरूक्ति के अनुसार जो द्रव्य जिसमें संबद्ध है, उसे 'निबंधन' कहा जाता है। उसके नाम निबंधन, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावनिबंधन ऐसे छह भेद हैं।

इनमें से नाम, स्थापना को छोड़कर शेष सब निबंधन प्रकृत हैं। यह निबंधन अनुयोगद्वार यद्यपि छहों द्रव्यों के निबंधन की प्ररुपणा करता है तो भी यहाँ उसे छोड़कर कर्मनिबंधन को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ अध्यात्म विद्या का अधिकार[२] है।

प्रश्न—निबंधनानुयोगद्वार किसलिए आया है?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है, उनके मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है तथा उन कर्मों के योग्य पुद्गलों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है। आत्मलाभ को प्राप्त हुए उन कर्मों के व्यापार का कथन करने के लिए निबंधनानुयोग द्वार आया है[३]।

उनमें मूलकर्म आठ हैं, उनके निबंधन का उदाहरण देखिये—''उनमें ज्ञानावरण कर्म सब द्रव्यों में निबद्ध है और नो कर्म सर्वपर्यायों में अर्थात् असर्वपर्यायों में—कुछ पर्यायों में वह निबद्ध है[४]।।१।।''

यहाँ 'सब द्रव्यों में निबद्ध है।' यह केवल ज्ञानावरण का आश्रय करके कहा गया है क्योंकि वह तीनों कालों को विषय करने वाली अनंत पर्यायों से परिपूर्ण ऐसे छह द्रव्यों को विषय करने वाले केवलज्ञान का विरोध करने वाली प्रकृति है। 'असर्व—कुछ पर्यायों में निबद्ध है' यह कथन शेष चार ज्ञानावरणीय प्रकृतियों की अपेक्षा कहा गया है।

इत्यादि विषयों का इस अनुयोग में विस्तार है।

२. प्रक्रम अनुयोगद्वार के भी नाम, स्थापना आदि की अपेक्षा छह भेद हैं। द्रव्य प्रक्रम के प्रभेदों में कर्म-प्रक्रम आठ प्रकार का है। नोकर्म प्रक्रम सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७९७ पृ. ५६४। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १, पृ. ४।

क्षेत्रप्रक्रम ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकप्रक्रम के भेद से तीन प्रकार का है। इत्यादि विस्तार को धवला टीका से समझना चाहिए।

३. उपक्रम अनुयोगद्वार में भी पहले नाम, स्थापना आदि से छह भेद किये हैं पुनः द्रव्य उपक्रम के भेद में कर्मोपक्रम के आठ भेद, नो कर्मोपक्रम के सचित्त, अचित्त और मिश्र की अपेक्षा तीन भेद हैं पुनः क्षेत्रोपक्रम—जैसे ऊर्ध्वलोक उपक्रांत हुआ, ग्राम उपक्रांत हुआ व नगर उपक्रांत हुआ आदि।

काल उपक्रम में—बसंत उपक्रांत हुआ, हेमंत उपक्रांत हुआ आदि। यहाँ ग्रंथ में कर्मोपक्रम प्रकृत होने से उसके चार भेद हैं—बंधन उपक्रम, उदीरणा उपक्रम, उपशामना उपक्रम और विपरिणाम उपक्रम।

इसी प्रकार इन सबका इस अनुयोगद्वार में विस्तार है।

४. उदय अनुयोगद्वार में नामादि छह निक्षेप घटित करके 'नोआगमकर्मद्रव्य उदय' प्रकृत है, ऐसा समझना चाहिए।

वह कर्मद्रव्य उदय चार प्रकार का है—प्रकृति उदय, स्थितिउदय, अनुभाग उदय और प्रदेश उदय।

इन सभी में स्वामित्व की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं। जैसे—

प्रश्न—पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अंतराय इनके वेदक कौन हैं?

उत्तर—इनके वेदक सभी छद्मस्थ जीव होते हैं,[१] इत्यादि। इस प्रकार से यहाँ संक्षेप में इन अनुयोगद्वारों के नमूने प्रस्तुत किये हैं।

५. मोक्ष—इसमें श्री मल्लिनाथ भगवान को नमस्कार करके टीकाकार ने मोक्ष के चार निक्षेप कहकर नोआगम द्रव्यमोक्ष के तीन भेद किये हैं—मोक्ष, मोक्षकारण और मुक्त।

जीव और कर्मों का पृथक् होना मोक्ष है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये मोक्ष के कारण हैं। समस्त कर्मों से रहित अनंत दर्शन, ज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण, कृतकृत्य जीव को मुक्त कहा गया है।[२]

इस १५वें ग्रंथ की टीका को मैंने आश्विन शु. १५, वी.सं. २५३२, हस्तिनापुर में पूर्ण किया है।

पुस्तक १६—

'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बंधन, निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष ये ग्यारह अनुयोगद्वार नवमी पुस्तक से पंद्रहवीं पुस्तक तक आ चुके हैं। अब आगे के १२. संक्रम, १३. लेश्या, १४. लेश्या कर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व, १८. भवधारणीय, १९. पुद्गलात्त २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व ये १३ अनुयोगद्वार शेष हैं। इस सोलहवीं पुस्तक में इन सबका वर्णन है।

इस ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं, मात्र धवला टीका में ही इन अनुयोगद्वारों का विस्तार है।

१. संक्रम—अनुयोग द्वार के भी छह भेद करके पुनः कर्मसंक्रम के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश संक्रम भेद किये हैं।

विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है कि—चार आयु कर्मों का संक्रम नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है, आदि।

२. लेश्या—इसके भी नामलेश्या, स्थापनालेश्या, द्रव्यलेश्या और भावलेश्या भेद किये हैं।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. २८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण में कारणभूत जो मिथ्यात्व, असंयम और कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति होती है उसे नो आगमभाव लेश्या कहते हैं।[1]

भावलेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह भेद हैं।

३. लेश्याकर्म—इसमें छहों लेश्याओं के लक्षण—'चंडो ण मुवइ वेरं' इत्यादि बताये गये हैं।

४. लेश्यापरिणाम—कौन लेश्याएं किस स्वरूप से और किस वृद्धि अथवा हानि के द्वारा परिणमन करती हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ 'लेश्या परिणाम' अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है।

इसमें 'षट्स्थान पतित' का स्वरूप कहा गया है।

५. सातासात अनुयोगद्वार—इसके समुत्कीर्तना, अर्थपद, परमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ऐसे पांच अवान्तर अनुयोगद्वार हैं। समुत्कीर्तना में-एकांत सात, अनेकांत सात, एकांत असात और अनेकांत असात।

अर्थ पद में—सातास्वरूप से बांधा गया जो कर्म संक्षेप व प्रतिक्षेप से रहित होकर सातास्वरूप से वेदा जाता है वह एकांतसात है। इससे विपरीत अनेकांत सात है[2] इत्यादि।

६. दीर्घ-ह्रस्व—इन अनुयोगद्वार के भी चार भेद हैं—प्रकृतिदीर्घ, स्थितिदीर्घ, अनुभागदीर्घ और प्रदेशदीर्घ।

आठ प्रकृतियों का बंध होने पर प्रकृति दीर्घ और उनसे कम का बंध होने पर नो प्रकृतिदीर्घ होता है[3]।

ऐसे ही ह्रस्व में प्रकृति ह्रस्व, स्थिति ह्रस्व आदि चार भेद हैं।

एक-एक प्रकृति को बांधने वाले के प्रकृति ह्रस्व है इत्यादि।

७. भवधारणीय—इस अनुयोगद्वार में भव के तीन भेद हैं—ओघभव, आदेशभव और भवग्रहण भव।

आठ कर्मजनित जीव के परिणाम का नाम ओघभव है। चारगति नामकर्मों का या उनसे उत्पन्न जीव परिणामों को आदेश भव कहते हैं।

भुज्यमान आयु को निर्जीण करके जिससे अपूर्व आयु कर्म उदय को प्राप्त हुआ है, उसके प्रथम समय में उत्पन्न 'व्यंजन' संज्ञा वाले जीव परिणाम को अथवा पूर्व शरीर के परित्यागपूर्वक उत्तरशरीर के ग्रहण करने को 'भवग्रहणभव' कहा जाता है। उनमें यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है।[4]

८. पुद्गलात्त—इस अनुयोगद्वार में नामपुद्गल, स्थापनापुद्गल, द्रव्यपुद्गल और भावपुद्गल ऐसे चार भेद हैं।

यहाँ आत्त-शब्द का अर्थ गृहीत है अत: यहाँ 'पुद्गलात्त' पद से आत्मसात् किये गये पुद्गलों का ग्रहण है। वे पुद्गल छह प्रकार से ग्रहण किये जाते हैं—ग्रहण से, परिणाम से, उपभोग से, आहार से, ममत्व से और परिग्रह से। इत्यादि।

९. निधत्तानिधत्त—इस अनुयोगद्वार में भी प्रकृतिनिधत्त, स्थितिनिधत्त, अनुभागनिधत्त और प्रदेशनिधत्त ऐसे चार भेद हैं।

जो प्रदेशाग्र निधत्तीकृत हैं—अर्थात् उदय में देने के लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृति में संक्रमण करने के लिए शक्य नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करने के लिए शक्य हैं ऐसे प्रदेशाग्र की निधत्त संज्ञा है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४९८।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५०७। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१२।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में प्रविष्ट मुनि के सब कर्म अनिधत्त हैं, इत्यादि।

१०. निकाचितानिकाचित—इस अनुयोगद्वार में प्रकृति निकाचित आदि चार भेद हैं। जो प्रदेशाग्र, अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय में देने के लिए भी शक्य नहीं हैं, वे निकाचित हैं। अनिवृत्तिकरणवर्ती मुनि के सर्वकर्म अनिकाचित हैं, इत्यादि।

११. कर्मस्थिति—इस अनुयोग में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों के प्रमाण की प्ररूपणा कर्मस्थिति 'प्ररूपणा है, ऐसा श्री 'नागहस्तीश्रमण' कहते हैं किन्तु आर्यमंक्षु क्षमाश्रमण का कहना है कि—'कर्मस्थिति संचित सत्कर्म की प्ररूपणा का नाम 'कर्मस्थिति' प्ररूपणा है। यहाँ दोनों उपदेशों के द्वारा प्ररूपणा करना चाहिए, ऐसा श्री वीरसेनस्वामी ने कहा[१] है।

१२. पश्चिमस्कंध—इस अनुयोगद्वार में ओघभव, आदेशभव और भवग्रहणभव ऐसे तीन भेद करके यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है। जो अंतिम भव है उसमें उस जीव के सब कर्मों की बंधमार्गणा, उदयमार्गणा, उदीरणामार्गणा, संक्रममार्गणा और सत्कर्ममार्गणा ये पाँच मार्गणाएं पश्चिम स्कंध अनुयोगद्वार में की जाती हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र का आश्रय करके इन पांच मार्गणाओं की प्ररूपणा कर चुकने पर तत्पश्चात् पश्चिम भव ग्रहण में सिद्धि को प्राप्त होने वाले जीव की यह अन्य प्ररूपणा करना चाहिए[२] इत्यादि।

१३. अल्पबहुत्व—इस अनुयोगद्वार में 'नागहस्तिमहामुनि' सत्कर्म की मार्गणा करते हैं और यह उपदेश प्रवाहस्वरूप से आया हुआ परंपरागत है। सत्कर्म चार प्रकार का है—प्रकृतिसत्कर्म, स्थिति सत्कर्म, अनुभाग सत्कर्म और प्रदेश सत्कर्म। इनमें से प्रकृति सत्कर्म के मूल और उत्तर की अपेक्षा दो भेद करके मूल प्रकृतियों के स्वामी को लेकर कहते हैं—''पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पांच अंतराय प्रकृतियों के सत्कर्म का स्वामी कौन है? इनके सत्कर्म के स्वामी सब छद्मस्थ जीव हैं। इत्यादि रूप से अल्पबहुत्व का विस्तार से कथन किया गया है।[३]

इस प्रकार यहाँ सोलहवें ग्रंथ में इन उपर्युक्त कथित शेष १३ अनुयोगद्वारों को पूर्ण किया है।

उपसंहार यह है कि—कृति, वेदना, स्पर्श आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में से 'कृति और वेदना' नाम के मात्र दो अनुयोगद्वारों में 'वेदनाखण्ड' नाम से चौथा खण्ड विभक्त है। पुनश्च 'स्पर्श' आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक २२ अनुयोगद्वारों में 'वर्गणाखण्ड' नाम से पांचवां खण्ड लिया गया है। यहाँ तक पाँच खंडों को सोलह पुस्तकों में विभक्त किया है। छठे महाबंध खण्ड में सात पुस्तकें विभक्त हैं जो कि हिन्दी अनुवाद होकर छप चुकी हैं।

भगवान महावीर की वाणी से संबंध—इन 'षट्खण्डागम' सूत्र ग्रंथराज का भगवान महावीर की वाणी से सीधा संबंध स्वीकार किया गया है। जैसा कि श्री वीरसेनाचार्य ने नवमी पुस्तक में लिखा है—

''लोहाइरिए सग्गलोगं गदे[४]**..........।**

इस प्रकरण को मैंने प्रारंभ में ही उद्धृत किया है।

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो। बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स।।

श्रीधरसेनाचार्य महामुनीन्द्र जयवंत होवें कि जिन्होंने 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' नाम के शैल—पर्वत को

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१८। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१९। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ.५२२। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. १३३।

बुद्धिरूपी मस्तक से उद्धृत करके—उठा करके श्रीपुष्पदंत एवं श्री भूतबलि ऐसे दो महामुनियों को समर्पित किया है। अनंतर—

जो टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं उनके रचयिता सभी टीकाकारों को मेरा कोटि-कोटि नमन है कि जिनके प्रसाद से श्रीवीरसेनस्वामी ने ज्ञान प्राप्त किया होगा। पुनश्च—

श्री वीरसेनस्वामी के हम सभी पर आज अनंत उपकार हैं कि जिनकी इस धवल-शुभ्र-उज्ज्वल-धवलाटीका के किंचित् मात्र अंश को मैंने समझा है।

इसमें पूर्वजन्म के संस्कार, वर्तमान में सरस्वती की महती कृपा, प्रथम क्षुल्लिका दीक्षागुरु श्री आचार्य देशभूषण जी एवं आर्यिका दीक्षा के गुरु के गुरु इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य एवं उनके प्रथम शिष्य पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज (आर्यिका दीक्षा के गुरु) का मंगल आशीर्वाद ही मेरे इस श्रुतज्ञान में निमित्त है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस ग्रंथ की टीका-सिद्धान्तचिंतामणि को मैंने वैशाख कृ. २, वी.नि.सं. २५३३, दिनाँक ४-४-२००७ को पूर्ण की है। इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में २३७५, द्वितीय खण्ड में १५९४, तृतीय खण्ड में ३२४, चतुर्थ खण्ड में १५२५ और पाँचवें खण्ड में १०२३ ऐसे १६ ग्रंथों में कुल ६८४१ सूत्र हैं और मेरे द्वारा लिखित सिद्धांतचिंतामणि टीका के ३१०७ पृष्ठ हैं। आज मैंने अपनी आर्यिका दीक्षा के ५१ वर्ष पूर्ण कर इस चिंतामणि टीका को पूर्ण करके अपने आध्यात्मिक जीवन पर कलशारोहण किया है। भगवान शांतिनाथ की कृपा प्रसाद से साढ़े ग्यारह वर्ष में इस टीका को पूर्णकर आनंद का अनुभव करते हुए भावश्रुत की प्राप्ति के लिए 'महाग्रंथराज षट्खण्डागम' को अनंत-अनंत बार नमस्कार करती हूँ।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।
द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते[१]।।

---

१. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वित) पु. १, पृ. २।

अथ फोसणपरूवणासुत्ताणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	४
२.	ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	६
३.	सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	८
४.	अट्ठ वारह चोद्दसभागा वा देसूणा।	९
५.	सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१६
६.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१६
७.	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१८
८.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१८
९.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३०
१०.	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।	३२
११.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३४
१२.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	३५
१३.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३६
१४.	पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।	३६
१५.	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३७
१६.	पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३९
१७.	विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३९
१८.	एग वे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।	३९
१९.	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४०
२०.	सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१
२१.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	४१
२२.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो।	४१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ओघं।	४२
२४.	सासण सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३
२५.	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	४३
२६.	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४
२७.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४५
२८.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	४५
२९.	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणि-णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४७
३०.	सव्वलोगो वा।	४७
३१.	सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो।	४८
३२.	पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।	४८
३३.	सव्वलोगो वा।	४९
३४.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो।	५१
३५.	सव्वलोगो वा।	५२
३६.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।	५२
३७.	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	५३
३८.	सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागः।	५४
३९.	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स-असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।	५४
४०.	मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	५५
४१.	सव्वलोगो वा।	५५
४२.	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	५६
४३.	अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	५७
४४.	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	५९
४५.	अट्ठ चोद्दसभागा वा।	५९
४६.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठी केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	५९
४७.	अद्धुट्ठा वा, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	५९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४८.	सम्मामिच्छादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	६१
४९.	अद्धुट्ठा वा अट्ठ चोदसभागा वा देसूणा।	६१
५०.	सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति देवोघं।	६२
५१.	साणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज–दिभागो।	६४
५२.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	६४
५३.	आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	६५
५४.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।	६५
५५.	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	६६
५६.	अणुद्दिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	६७
५७.	इंदियाणुवादेण एइंदिय–बादर–सुहुम–पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	६९
५८.	वीइंदिय–तीइंदिय–चउरिंदिय–तस्सेव पज्जत्त–अपज्जत्त कवेडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	७१
५९.	सव्वलोगो वा।	७१
६०.	पंचिंदिय–पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	७२
६१.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	७२
६२.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	७३
६३.	सजोगिकेवली ओघं।	७३
६४.	पंचिंदिय–अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज–दिभागो।	७३
६५.	सव्वलोगो वा।	७४
६६.	कायाणुवादेण पुढविकाइय–आउकाइय–तेउकाइय–वाउकाइय–बादर–पुढविकाइय–बादरआउकाइय–बादरतेउकाइय–बादरवाउकाइय–बादरवणप्फदि–काइयपत्तेयसरीर–तस्सेव अपज्जत्त–सुहुमपुढविकाइय–सुहुमआउकाइय–सुहुमतेउकाइय–सुहुमवाउकाइय–तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	७५
६७.	बादरपुढविकाइय–बादरआउकाइय–वादरतेउकाइय–बादरवणप्फदिकाइय–पत्तेयसरीर–पज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	७८
६८.	सव्वलोगो वा।	७८
६९.	बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स संखेज्जदिभागो।	८०
७०.	सव्वलोगो वा।	८०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७१.	बणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	८०
७२.	तसकाइय — तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	८१
७३.	तसकाइय — अपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो।	८२
७४.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८३
७५.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	८४
७६.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।	८५
७७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८५
७८.	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	८६
७९.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग छदुमत्था ओघं।	८६
८०.	सजोगिकेवली ओघं।	८६
८१.	औरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	८६
८२.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८७
८३.	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	८७
८४.	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८७
८५.	असंजदसम्मादिट्ठिहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८८
८६.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	८८
८७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८८
८८.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	८९
८९.	सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	८९
९०.	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	९१
९१.	अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।	९१
९२.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	९१
९३.	सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	९२
९४.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	९२
९५.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	९३
९६.	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	९३
९७.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।	९४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९८.	एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा।	९४
९९.	असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज–दिभागो।	९४
१००.	छ चोद्दसभागा देसूणा।	९४
१०१.	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जाभागा सव्वलोगो वा।	९५
१०२.	वेदाणुवादेण इत्थिवेद–पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	९८
१०३	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	९८
१०४.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज–दिभागो।	९९
१०५.	अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	९९
१०६.	सम्मामिच्छादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१००
१०७.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।	१००
१०८.	संजदासंजदेहिकेवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१०१
१०९.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१०१
११०.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि उवसामग–खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१०१
१११.	णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१०२
११२.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	१०२
११३.	बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।	१०३
११४.	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	१०३
११५.	असंजदसम्मादिट्ठि–संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१०४
११६.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१०४
११७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	१०४
११८.	अपगतवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१०५
११९.	सजोगिकेवली ओघं।	१०५
१२०.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ–माणकसाइ–मायकसाइ–लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	१०६
१२१.	णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।	१०६
१२२.	अकसाईसु चतुट्ठाणमोघं।	१०७
१२३.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि–सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१०८
१२४.	सासणसम्मादिट्ठीहि ओघं।	१०८
१२५.	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज–दिभागो।	१०९
१२६.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	१०९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२७.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	१०९
१२८.	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	११०
१२९.	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	११०
१३०.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।	११०
१३१.	अजोगिकेवली ओघं।	११०
१३२.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	११२
१३३.	सजोगिकेवली ओघं।	११२
१३४.	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	११३
१३५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	११३
१३६.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओघं।	११३
१३७.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।	११३
१३८.	संजदासंजदा ओघं।	११४
१३९.	असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	११४
१४०.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं?लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	११६
१४१.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।	११६
१४२.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	११७
१४३.	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	११७
१४४.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	११७
१४५.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	११८
१४६.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी ओघं।	११९
१४७.	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।	१२०
१४८.	पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२०
१४९.	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२२
१५०.	तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं?लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२३
१५१.	अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२३
१५२.	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंयतसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२४
१५३.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२४
१५४.	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२५
१५५.	दिवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२५
१५६.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं।	१२५
१५७.	पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५८.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२६
१५९.	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२६
१६०.	पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२६
१६१.	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं।	१२७
१६२.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१२७
१६३.	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	१२७
१६४.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१२९
१६५.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१३१
१६६.	अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	१३१
१६७.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१३३
१६८.	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	१३३
१६९.	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१३५
१७०.	सजोगिकेवली ओघं।	१३६
१७१.	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।	१३६
१७२.	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	१३६
१७३.	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१३७
१७४.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	१३८
१७५.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	१३८
१७६.	मिच्छादिट्ठी ओघं।	१३८
१७७.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	१३९
१७८.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	१३९
१७९.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।	१४०
१८०.	असण्णीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो।	१४०
१८१.	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१४२
१८२.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।	१४२
१८३.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१४३
१८४.	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो।	१४४
१८५.	णवरि विसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१४५

अथ कालपरूवणासुत्ताणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	१५१
२.	ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१५८
३.	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो। जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो। जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५८
४.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१५९
५.	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	१७२
६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१७२
७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	१७३
८.	उक्कस्सेण छ आवलिआओ।	१७४
९.	सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७४
१०.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१७५
११.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७६
१२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१७६
१३.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१७७
१४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७७
१५.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१७८
१६.	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१७९
१७.	एकजीवं पडुच्च जहण्णेणंतोमुहुत्तं।	१८०
१८.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१८०
१९.	पमत्त-अपमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१८१
२०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१८१
२१.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१८२
२२.	चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एकसमयं।	१८२
२३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१८३
२४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एकसमयं।	१८४
२५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१८४
२६.	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८५
२७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१८५
२८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८६
२९.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१८६
३०.	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१८६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८७
३२.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१८७
३३.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९०
३४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९०
३५.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।	१९०
३६.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	१९१
३७.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९१
३८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९१
३९.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१९२
४०.	पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९२
४१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९३
४२.	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोव-माणि।	१९३
४३.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	१९४
४४.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९४
४५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९४
४६.	उक्कस्सं सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१९५
४७.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९६
४८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९६
४९.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं।	१९७
५०.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	१९७
५१.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९८
५२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९८
५३.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि।	१९९
५४.	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	१९९
५५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९९
५६.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	२००
५७.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणि-णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२००
५८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२००
५९.	उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि।	२०१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६०.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२०२
६१.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२०३
६२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२०३
६३.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।	२०४
६४.	संजदासंजदा ओघं।	२०४
६५.	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२०५
६६.	एकजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२०५
६७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२०६
६८.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२०७
६९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२०७
७०.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	२०७
७१.	सासणसम्मदिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२०८
७२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२०८
७३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२०९
७४.	उक्कस्सं छ आवलियाओ।	२०९
७५.	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२०९
७६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२१०
७७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२१०
७८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२११
७९.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२११
८०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२११
८१.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।	२१२
८२.	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१३
८३.	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१३
८४.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२१४
८५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१४
८६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२१४
८७.	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२१५
८८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२१६
८९.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि।	२१६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९०.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२१६
९१.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२१७
९२.	एक्कजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२१७
९३.	उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि।	२१७
९४.	भवणवासियप्पहुडि जाव सदार–सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजद–सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२१८
९५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२१८
९६.	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	२१८
९७.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२२०
९८.	आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२१
९९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२१
१००.	उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कतीसं सागरोवमाणि।	२२१
१०१.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२२२
१०२.	अणुद्दिस–अणुत्तरविजय–वइजयंत–जयंत–अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२२
१०३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीसं, बत्तीसं, सागरोवमाणि सादि–रेयाणि।	२२२
१०४.	उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि।	२२३
१०५.	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२३
१०६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।	२२३
१०७.	इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२६
१०८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२२६
१०९.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२६
११०.	बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२७
१११.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२२७
११२.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि–उस्सप्पिणीओ।	२२७
११३.	बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२२८
११४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२९
११५.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	२३१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११६.	बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३२
११७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२३२
११८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२३२
११९.	सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३३
१२०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२३३
१२१.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	२३३
१२२.	सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३४
१२३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३४
१२४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२३४
१२५.	सुहुमे इंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३५
१२६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२३५
१२७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२३६
१२८.	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३६
१२९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।	२३६
१३०.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	२३६
१३१.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३७
१३२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२३७
१३३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२३७
१३४.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२३८
१३५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३८
१३६.	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवम-सदपुधत्तं।	२३८
१३७.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२३९
१३८.	पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदियअपज्जत्तभंगो।	२३९
१३९.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२४१
१४०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२४१
१४१.	उक्कस्सेण असंखेज्जा।	२४१
१४२.	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादर-वणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२४२
१४३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२४२
१४४.	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।	२४२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४५.	बादर-पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२४३
१४६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२४३
१४७.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	२४३
१४८.	बादरपुढवि-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२४४
१४९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२४४
१५०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२४४
१५१.	सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदि-काइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्ता पज्जत्ताणं भंगो।	२४५
१५२.	वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो।	२४५
१५३.	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२४५
१५४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२४५
१५५.	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टं।	२४६
१५६.	बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो।	२४६
१५७.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं सव्वद्धा।	२४६
१५८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२४६
१५९.	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि वे सागरोवम-सहस्साणि।	२४६
१६०.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२४७
१६१.	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।	२४७
१६२.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२५१
१६३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५१
१६४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२५४
१६५.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२५४
१६६.	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५५
१६७.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२५५
१६८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५५
१६९.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२५५
१७०.	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५६
१७१.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२५६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५६
१७३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२५६
१७४.	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२५७
१७५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५८
१७६.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२५८
१७७.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो।	२५८
१७८.	ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२५९
१७९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२५९
१८०.	उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।	२५९
१८१.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो।	२५९
१८२.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२६०
१८३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं।	२६०
१८४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२६१
१८५.	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२६१
१८६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२६१
१८७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	२६१
१८८.	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।	२६१
१८९.	असंजदसम्मदिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२६२
१९०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२६२
१९१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२६३
१९२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२६३
१९३.	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२६४
१९४.	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं।	२६४
१९५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।	२६४
१९६.	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२६६
१९७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	२६६
१९८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२६६
१९९.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२६६
२००.	सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो।	२६६
२०१.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२०२.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स अंखेज्जदिभागो।	२६७
२०३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२६७
२०४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२६७
२०५.	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२६७
२०६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२६८
२०७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२६८
२०८.	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।	२६८
२०९.	आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२७०
२१०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२७०
२११.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	२७१
२१२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२७१
२१३.	आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२७२
२१४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२७२
२१५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२७२
२१६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२७२
२१७.	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२७३
२१८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२७३
२१९.	उक्कस्सेण तिण्णि समया।	२७३
२२०.	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२७४
२२१.	उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।	२७४
२२२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२७४
२२३.	उक्कस्सेण वे समयं।	२७४
२२४.	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं।	२७५
२२५.	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं।	२७५
२२६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं।	२७५
२२७.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२७७
२२८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२७७
२२९.	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।	२७८
२३०.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२७८
२३१.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२७८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३२.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा।	२७९
२३३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२७९
२३४.	उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि।	२७९
२३५.	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२७९
२३६.	पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२८१
२३७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२८१
२३८.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	२८१
२३९.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२८२
२४०.	णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२८२
२४१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२८२
२४२.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२८३
२४३.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२८३
२४४.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२८३
२४५.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२८३
२४६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२८४
२४७.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	२८४
२४८.	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२८४
२४९.	अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२८५
२५०.	कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो।	२८६
२५१.	दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२८८
२५२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२८८
२५३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२८८
२५४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२८८
२५५.	दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२८९
२५६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२८९
२५७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२८९
२५८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२८९
२५९.	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।	२९०
२६०.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुद अण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२९२
२६१.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२९२
२६२.	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	२९३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२६३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२९३
२६४.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	२९३
२६५.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२९३
२६६.	आभिणिबोहियणाणि–सुदणाणि–ओधिणाणीसु असंजदसम्मा–दिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय–वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२९४
२६७.	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२९४
२६८.	केवलणाणी सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।	२९४
२६९.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२९६
२७०.	सामाइय–च्छेदोवट्ठाणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२९६
२७१.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त–अप्पमत्तसंजदा ओघं।	२९७
२७२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं।	२९७
२७३.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।	२९७
२७४.	संजदासंजदा ओघं।	२९८
२७५.	असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	२९८
२७६.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवंाडुच्च सव्वद्धा।	२९९
२७७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२९९
२७८.	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि।	२९९
२७९.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२९९
२८०.	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२९९
२८१.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	३००
२८२.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	३००
२८३.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय–णीललेस्सिय–काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३०२
२८४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३०२
२८५.	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	३०२
२८६.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	३०३
२८७.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	३०३
२८८.	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३०५
२८९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३०५
२९०.	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।	३०५
२९१.	तेउलेस्सिय–पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा।	३०८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३०८
२९३.	उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	३०८
२९४.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	३०८
२९५.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	३०८
२९६.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३११
२९७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	३११
२९८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३११
२९९.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३१६
३००.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३१६
३०१.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	३१६
३०२.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	३१६
३०३.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	३१६
३०४.	असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	३१६
३०५.	संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३१८
३०६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	३१८
३०७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३१८
३०८.	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं।	३१८
३०९.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३२२
३१०.	एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो।	३२२
३११.	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देस्सो।	३२२
३१२.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३२२
३१३.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	३२२
३१४.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	३२२
३१५.	अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच सव्वद्धा।	३२६
३१६.	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो।	३२६
३१७.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति ओघं।	३२८
३१८.	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।	३२९
३१९.	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३३०
३२०.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३३०
३२१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।	३३०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३२२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३३०
३२३.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	३३१
३२४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३३१
३२५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	३३१
३२६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३३१
३२७.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	३३२
३२८.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	३३२
३२९.	मिच्छादिट्ठी ओघं।	३३३
३३०.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३३४
३३१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३३४
३३२.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	३३४
३३३.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	३३४
३३४.	असण्णी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३३५
३३५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	३३५
३३६.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	३३५
३३७.	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	३३६
३३८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३३६
३३९.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।	३३६
३४०.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	३३६
३४१.	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो।	३३७
३४२.	अजोगिकेवली ओघं।	३३७

सम्मेदशिखर टोंक वन्दना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तीर्थराज सम्मेदशिखर है, शाश्वत सिद्धक्षेत्र जग में।
एक बार जो करे वन्दना, वह भी पुण्यवान सच में।।
ऊँचा पर्वत पार्श्वनाथ हिल, नाम से जाना जाता है।
जिनशासन का सबसे पावन, तीरथ माना जाता है।।१।।

जब प्रत्यक्ष करें यात्रा, उस पुण्य का वर्णन क्या करना।
लेकिन प्रतिदिन भी परोक्ष में, गिरि का ध्यान किया करना।।
आँख बन्दकर करो कल्पना, मेरी यात्रा शुरू हुई।
प्रात:काल चले सब यात्री, जय जयकारा शुरू हुई।।२।।

एक हाथ में छड़ी दूसरे, में चावल की झोली है।
ज्यादातर सब पैदल हैं, पर किसी-किसी की डोली है।।
कभी न चलने वाले भी, हिम्मत कर पर्वत चढ़ते हैं।
पारस प्रभु के पास पहुँचने, हेतु कदम बढ़ चलते हैं।।३।।

चढ़ते-चढ़ते आठ किलोमीटर, का पथ जब तय होता।
दायें हाथ तरफ तब इक, चौपड़ा कुंड दर्शन होता।।
वहाँ दिगम्बर जिनमंदिर, संस्कृति की अमिट धरोहर है।
पार्श्वनाथ चन्द्रप्रभु बाहुबलि की मूर्ति मनोहर हैं।।४।।

उस मन्दिर में रुककर अपने, प्रभु का दर्शन कर लेना।
सुन्दर बनी धर्मशाला में, इच्छा हो तो ठहर लेना।।
मंदिर दर्शन करके फिर, यात्रा प्रारंभ करो अपनी।
बायें हाथ चलो चढ़ कर जहाँ, गौतम स्वामी टोंक बनी।।५।

यहाँ पहुँचकर ठंडी-ठंडी, हवा थकान मिटाती है।
गणधर चरण वन्दना से, यात्रा की शक्ती आती है।।
प्रथम टोंक यह हुई पास में, दुतिय टोंक कुंथु जिन की।
तीर्थंकर क्रम में यह पहली, टोंक नमूँ कुंथु प्रभु की।।६।।

इन टोंकों के दर्शन से, उपवास का फल प्रारंभ हुआ।
त्रय प्रदक्षिणा देने से, आगे शुभ गति का बंध हुआ।।
शुभ भावों से आगे बढ़कर, टोंक तीसरी आती है।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर की, वन्दना सहज हो जाती है।।७।।

चौथा नाटक कूट तीर्थंकर, अरहनाथ का आया है।
जहाँ करोड़ों मुनियों ने भी, तपकर शिवपद पाया है।।
वन्दन कर आगे बढ़ने से, मल्लिनाथ के चरण मिले।
आगे छठे टोंक पर श्री, श्रेयाँसनाथ पदकमल मिले।।८।।

इन सबका वन्दन कर मैंने, सिद्धशिला को नमन किया।
वहाँ विराजे सिद्धों को, अपने मन में स्मरण किया।।
थकना नहिं अब पुष्पदंत की, सप्तम टोंक पे चलना है।
आगे चढ़ने हेतु वहीं से, आतमशक्ती भरना है।।९।।

पुष्पदंत प्रभु के चरणों में, अर्घ्य चढ़ाकर नमन किया।
और चले आठवीं टोंक पर, पदमप्रभू का शरण लिया।।
नवमीं टोंक विराजे श्री, मुनिसुव्रत जिन के चरणकमल।
इन सबके पावन पद में, श्रद्धा से मैंने किया नमन।।१०।।

हे भव्यात्मन् ! अब दसवीं चन्द्रप्रभ टोंक पे चलना है।
पहले दौड़-दौड़ कर उतरो, फिर ऊँचाई चढ़ना है।।
चन्द्रप्रभ मंदिर में जाकर, चरणवन्दना करना है।
अपने सारे सुख-दुख को, प्रभु चरण बैठकर कहना है।।११।।

अब ग्यारहवीं टोंक पे चलकर, ऋषभदेव को नमन करो।
गिरि कैलाश से मुक्त हुए, यहाँ उनके चरण चिन्ह प्रणमो।
श्री शीतल जिनवर की है, बारहवीं टोंक प्रसिद्ध कही।
मन-वच-तन से वन्दन कर, पाओ यात्रा का पुण्य सही।।१२।।

श्री अनंत तीर्थंकर का, तेरहवाँ कूट स्वयंभू है।
उनके चरणों में श्रद्धायुत, शीश झुकाकर वन्दूँ मैं।।
संभव जिनवर का चौदहवाँ, धवलकूट माना जाता।
वासुपूज्य जिनका पन्द्रहवां, टोंक सभी को सुखदाता।।१३।।

इनको वन्दन कर आगे, अभिनन्दन प्रभु के पास चलो।
बन्दर चिन्ह सहित उन प्रभु की, टोंक पे बन्दर से न डरो।।
अभिनन्दन के चरणों में, कर नमन चलो जलमंदिर तक।
चढ़ो वहाँ से जहाँ है गौतम, गणधर प्रभु की टोंक प्रथम।।१४।।

फिर सत्रहवीं टोंक से अपनी, अगली यात्रा करना है।
धर्मनाथ प्रभु के चरणों में, नमन सभी को करना है।।
सुमतिनाथ का अट्ठारहवाँ, टोंक है अविचल कूट कहा।
नौ करोड़ बत्तीसलाख, उपवास का फल मिलता है यहाँ।।१५।

उन्निसवाँ है टोंक शांतिजिन, का जो यहाँ से मोक्ष गये।
नौ करोड़ से अधिक मुनी, इस कुंदकूट से मोक्ष गये।।
शांतिनाथ के संग सब मुनियों, को श्रद्धा से नमन किया।
पुनः बीसवीं टोंक पे जाकर, वीरप्रभू की शरण लिया।।१६।

श्री सुपार्श्व तीर्थंकर इक्कीसवीं टोंक पर राजे हैं।
कहते हैं यहाँ की मिट्टी से, रोग सभी नश जाते हैं।।
इनका वंदन करके पास में, विमल नाथ की टोंक चलो।
बाइसवीं इस टोंक को नमकर, अजितनाथ के निकट चलो।।१७।

थके कदम से तेइसवीं इस, टोंक का वंदन कठिन तो है।
लेकिन यात्रा पूरी करने, का शुभ भाव हृदय में है।।
धीरे-धीरे चढ़कर आखिर, अजितनाथ तक पहुँच गये।
उन चरणों में नमन किया फिर, नेमिनाथ जी प्राप्त हुए।।१८।

इस चौबिसवीं टोंक पे नेमीनाथ चरण को नमन किया।
पारसनाथ प्रभू पाने हेतू फिर मैंने गमन किया।।
स्वर्णभद्र यह टोंक है अंतिम, यात्रा पूर्ण यहाँ होती।
पार्श्वनाथ की पूजन करके, मन सन्तुष्टि यहाँ होती।।१९।।

कुछ क्षण ध्यान करो फिर नीचे, गुफा में स्थित चरण नमो।
खुशी-खुशी वन्दना पूर्ण कर, पर्वत से नीचे उतरो।।
यही वन्दना आत्मा की, भव्यत्व शक्ति बतलाती है।
तभी "चन्दनामती" सभी में, भक्ति स्वयं आ जाती है।।२०।।

भगवन् ! इस सम्मेदशिखर का, पुनः पुनः दर्शन पाऊँ।
यही भावना है मन में, सिद्धों के गुण में रम जाऊँ।।
इसी क्षेत्र से कभी मुझे, निर्वाण धाम भी मिल जावे।
सिद्ध भक्ति मेरे जीवन में, सिद्ध अवस्था दिलवाये।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणि टीका में प्रयुक्त गाथाएँ

	गाथा	पृष्ठ सं.
१.	मुहसहिदमूलमज्झं, छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण। हंतूणेगट्ठकदे, घणरज्जू होंति लोगम्हि।। (षट्खण्डागम पु. ४, (धवला टीका समन्वित) पृ. १४६।)	७
२.	अडसीदट्ठावीसा, गहरिक्खा तार कोडिकोडीणं। छावट्ठिसहस्राणि य, णवसय-पण्णत्तरिगि चंदे।।३६२।। (त्रिलोकसार)	११
३.	''वेसदछप्पण्णंगुल-कदिहिदपदरस्स संखभागमिदे। जोइसजिणिंदगेहे, गणणातीदे णमंसामि।।३०२।। (त्रिलोकसार)	१२
४.	बत्तीसं सोहम्मे, अट्ठावीसं तहेव ईसाणे। वारह सणक्कुमारे, अट्ठेव य होंति माहिंदे।।१।।	६२
५.	बम्हे कप्पे बम्होत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं। छसु कप्पेसु य एवं चउरासीदी सयसहस्सा।।२।।	६२
६.	पण्णासं तु सहस्सा लंतव-काविट्ठएसु कप्पेसु। सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीसं सहस्साइं।।३।।	६३
७.	छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे। सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेय।।४।।	६३
८.	एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मज्झिमेसु सत्तहियं। एक्काणउदिविमाणा तिसु गेवज्जेसु वरिमेसु।।५।।	६३
९.	गेवज्जाणुवरिमया णव चेव अणुद्दिसा विमाणा ते। तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए।।६।। (षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. २३६।)	६३
१०.	बीजे जोणीभूदे जीवो, वक्कमइ सो व अण्णो वा। जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए।। (षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पु. ४, पृ. २५१।)	७९
११.	''तेऊ तेऊ य तहा तेऊ पउमा य पउमशुक्का य। सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाणं।।	१२९
१२.	तिण्हं दोण्हं दुण्हं च्छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च। एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं।।	१३०
१३.	कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो। उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।।	१५२
१४.	लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया दु एक्केक्का। रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा।। (षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) , पृ. ३१५)	१५३

१५. पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य। १५३
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि।।
(षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३१६)

१६. णत्थि चिरं वा खिप्पं वुत्तारहिदं तु सा वि खलु वुत्ता। १५४
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पहुच्च भवो।।
(षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३१७)

१७. उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च। १५४
त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्त्तो ह्येक इष्यते।। (३७७३)।।१।।

१८. निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा। १५४
दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः।। (५११०)।।२।।

१९. रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च। १५५
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा।।३।।

२० रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च। १५५
वारुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पंचदशो दिने (१५)।।४।।

२१. सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च। १५५
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि।।५।।

२२. सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च। १५५
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्तोऽन्योऽरुणो मतः। (१५)।।६।।

२३. समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्ताश्च समाः स्मृताः। १५५
षण्मुहूर्ताः दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा।।७।।

२४. नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात्। १५५
देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च।।८।।

२५. सव्वे वि पुग्गला खलु एग्गे भुत्तुज्झिदा हु जीवेण। १६०
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे।।

२६. एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं। १६१
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चावि।।

२७. सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु, एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन। १६४
ह्यसकृत्त्वनन्तकृत्वा, पुद्गलपरिवर्तसंसारे।।

२८. सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जन्तुनाऽक्षुण्णः १६५
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे।।

२९. उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु। १६५
जातो मृतश्च बहुशः, परिभ्रमन् कालसंसारे।।

३०. नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु। १६६
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः।।
३१. उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स। १७०
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।।
३२. संते वए ण णिट्ठादि, कालेणाणंतएण वि। १७१
जो रासी सो अणंतो त्ति, विणिद्दिट्ठो महेसिणा।।
३३. ण य मरइ णेव संजम-मुवेइ तह देस संजमं वावि। १८०
सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ।।
३४. मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः, चतुर्गतीनां गहनं परेण। २२४
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन, त्वं मा कदाचिद् भुजमालुलोकः।।२५।। (विषापहार स्तोत्र)
३५. तिण्णि सया छत्तीसा, छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं। २२९
अंतोमुहुत्तकाले, तावदिया होंति खुद्दभवा।।१।।
३६. आवलिय अणागारे, चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिब्भाए। २२९
मणवयणकायफासे, अवायईहासुदुस्सासे।।१।।
३७. केवलदंसण-णाणे, कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य। २२९
पडिवादुवसामेंतय, खवेंतए संपराए य।।२।।
३८. माणद्धा कोधद्धा, मायद्धा तह चेव लोभद्धा। २३०
खुद्दभवग्गहणं पुण, किट्टीकरणं च बोद्धव्वं।।३।। (धवला टीका, पुस्तक ४, पृ. ३९१)
३९. शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः। २४९
विधत्ते नानाभूपवनजलवन्हिद्रुमतनुम्।।
४०. त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्। २४९
स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः।।२।। (जिनस्तोत्र संग्रह पृ. १३६)
४१. गुणजोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि। २५३
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे।। (षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका), पृ. ४११)
४२. एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णवय अट्ठेव। २५७
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा। (धवला पुस्तक ४, पृ. ४१५)
४३. स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणं श्रुतचक्षुषा। २९५
पश्यन् पश्यामि देव! त्वां केवलज्ञानचक्षुषा।।
४४. चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः। २९८
प्रणमामि पंचभेदं, पञ्चमचारित्रलाभाय।।६।। (वीरभक्ति-मुनिप्रतिक्रमणसूत्रे)
४५. दो द्दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए। ३१९
दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुक्कलेस्साए।। (षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका), पृ. ४७५)

४६. पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि। ३२०
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति।।५०७।।

४७. णिम्मूलखंधसाहुवसाहं, छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं। ३२०
खाउं फलाइं इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं।।५०८।। (गोम्मटसार जीवकांड)

४८. किण्हादिलेस्सरहिया, संसारविणिग्गया अणंतसुहा। ३२१
सिद्धिपुरं संपत्ता, अलेस्सिया ते मुणेयव्वा।।५५६।। (गोम्मटसार जीवकांड)

४९. अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो। ३२४
भावकलंकइ पउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।।४२।।

५०. एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। ३२४
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण।।४३।। (षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका) पृ. ४७७)

५१. कामादिप्रभवश्चित्रः, कर्मबंधानुरूपतः। ३२४
तच्च कर्मस्वहेतुभ्यो, जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः।।९९।।

५२. शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती, ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्। ३२४
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती, स्वभावोऽतर्कगोचरः।।१००।।
(अष्टसहस्री कारिका नं. ९९-१००, पृ. ४८५ से ५१०)

५३. वंसत्थलवणणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे। ३३९
कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं।।१७।। (निर्वाणभक्ति प्राकृत)

५४. यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां, निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम्। ३३९
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः, संतोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या।।२१।।
(निर्वाणभक्ति संस्कृत)